

॥ श्री ॥

# ॥ ढूढक हृदय नेत्रांजनं ॥

अथवा

॥ सत्यार्थ चंद्रोदयाऽस्तकं ॥

कर्त्ता

॥ श्री मद्विजयानंद सूरीश्वर ( प्रसिद्ध नाम आत्मारामजी )  
लघुशिष्येनाऽपर मुनिना संयोजितं ॥  
दुहा

शह्योद्धार गुरुनेकिया, अंजनता करें हम ।  
तो क्या ढूढक हृदयमें, अबीभी रहेगा भ्रम ? ॥१॥

॥ छपवाके प्रसिद्ध करनार ॥

खानदेश आमलनेरा निवासी

॥ शा. रतनचंद्र दगडुसा पटनी. ॥

प्रथमवार-प्रति. १९०० ]

अमदावाद - श्री " सत्यविजय प्रिन्टिंग प्रेसमां.

शा. सांकलचंद्र हरीलाले छाप्युं.

संवत्. १९६५

॥ किमत. रू १-४ काचा पुठाकी ॥

॥ किमत. रू १-८ पाका पुठाकी ॥

॥ इस ग्रंथ छपवानम, प्रथम आश्रय दाता ॥

(स्वानदेश) आमलनेरा निवासी, धर्मात्मा सा बधूसा दगडुसाकी भार्या पानावाड्, की तरफसे रूपैया चारसोंका, उत्तम आश्रय मिलनेसे, ते बाईका पोषक सा. रतनचंद, दगडुसाके नामसे छपवानेका प्रबंध किया गयाथा ।

परंतु अनेक कारणके योगसे, दूसरे प्रेसमें पुनः छपवानेका प्रबंध करना पडा । और आगे ग्रंथका भी विस्तार हो जानेसे, दुपट खरचका बोजा उठाना पडा । इसी कारणसे दूसरे भी सद-गृहस्थोंका आश्रय लेनेकी विशेष आवश्यकता हुई । ते सदगृहस्थोंकी, और गाहकोकी भी, यदि पिछले भागमें हमने दिवाई है । और कितनेक संस्थाके नामकी भी यदि, प्रथमसे छपवाई दी है । जिससे लोकोंको लेनेकी भी सुगमता हो जावे ॥ इत्यलं ॥

॥ लि. ग्रंथ कर्ता ॥

---

॥ इस पुस्तकको छपवानेका अधिकार किसीकोभी नहीं है ॥

---

॥ ॐ नमो जिनमूर्त्तये ॥

॥ प्रस्तावना ॥

॥ सज्जन पुरुषो ! यह दूँडनी पार्वतीजीने, प्रथम-ज्ञानदी-  
पिका, नामकी पुस्तक प्रगट करवाईथी, परंतु थोड़ेही दिनोंमें, सु-  
निराज श्रीवल्लभ विजयकी तरफसे-गप्प दीपिका समीरके, ज-  
पाटेमें सर्वथा प्रकारसे बूजगईथी, और वह कठोर पबनको, हटानेकी  
समर्थ नहीं होतीहुई, इस दूँडनीजीने, पुनः सत्यर्थ चंद्रोदय जैन,  
नामका पुस्तकको प्रगट करवाया, परंतु यह विचार न किया कि-  
एक तो रात्रिका समय, दूसरा दृष्टि विकारका भारी दोष, तोपिछे-  
एक चंद्रका उदय मात्र हैं सो, वस्तु तत्त्वका बोध-यथावत्, किस  
प्रकारसे करा सकेगा ?। चंद्रका उदय तो क्या, लेकिन सूर्य नारा-  
यणका उदय होनेपरभी, दृष्टि दोषके विकारवाले पुरुषोंको, कुछभी  
उपकार नहीं हो सकता है। इस वास्ते प्रथम-दृष्टि दोष दूर करनेकी  
ही, आवश्यकता है। जब दृष्टि दोष दूर होजायगा, तब उनके पिछे-  
से, क्षयोपशमानुसारसे—चंद्रके उदयमेंभी, और सूर्यके उदयमें-  
भी-वस्तु तत्त्वका, यथावत् भान होजायगा। हमारे दूँडकभाइयांका  
जिनप्रतिपाके विषयमें दृष्टि दोष दूर होनेके वास्ते, हमनेभी यह अंज-  
नरूपग्रंथ, तैयार किया है। कदाच अंजन करती बखत, दृष्टि  
दोषका कारणसे किंचित्—कर्कशता, मालूम पड़ेगी, परंतु जो  
शिरको ठीकाने रखके, अंजन करते रहेंगे तो, दृष्टि दोषका  
विकार तो न रह सकेगा। और तो क्या लेकिन-कोई भूत  
प्रेतादिककाभी दोष, हुवा होगा सोभी प्राये न रह सकेगा ! हमारा  
अंजनको हमको ऐसी खात्री है। परंतु विपरीत भवितव्यतावालो-

को, कदाच हमारा अंजन, फागदाकारक—न हुवा तो, कुछ अंजनका दाष, न गीना जायगा ? ॥

जबसे यह गुरु विनाका पंथ प्रगट हुवा है, तबसे आजतक, इनके कितनेक पल्लव ग्राही दूढकीने, अपना मनःकल्पित मतको धकानेके लिये, अन्य मतके, और जैनमतकेभी सर्व शास्त्रोंमें सम्मत, और जिनकी साक्षी यह धरती माताभी हजारों कोशों तकमें, हजारों वर्षोंमें, गवाही दे रही है, वैसी श्रीवीतराग देवकी अलोकिक मूर्त्तिका, और जैन मतके अनेक धुरंधर आचार्य महाराजाओंकाभी, अनादर करके, हप्तो गणधर भाषित सूत्रही मानेंगे, वैसा कहकर, मात्र. [ ३२ ] वत्रांश ही सूत्रोंको आगे धरके, अपना दूढक पंथको धकाये जातेथे, और अपनी सिद्धाई प्रगट करनेको, सर्व महापुरुषोंकी निन्दाके साथ, अगडंगडं लिख भी मारतेथे, जैसे प्रथम दूढक जेठमलजीने—समकित सार, लिख माराथा, और पिछे किसीने छपवाके प्रसिद्ध करवायाथा, परंतु जब गुरुवर्य श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी ( प्रसिद्ध नाम आत्मारामजी ) की तरफसे, उनका उत्तर रूप-सम्यक्त्व शह्योद्धार, प्रगट हुवा, तब उनका उत्तर देनेकी शुद्धि न रहनेसे, थोडेदिन चुपके होके बैठ गयेथे । फिर इस दूढनीजीने—ज्ञानदीपिकाका, धतंग खडा किया, उनका भी उत्तर हो जानेसे चुपके हो गयेथे, ऐसे वारंवार जूठे जूठे लिखनेको उद्यत होते है ।

परंतु मूर्त्ति पूजकोंकी तरफसे, सत्य स्वरूप प्रगट होनेसे, दूढकोंको, कोई भी प्रकारसे उत्तर देनेकी जाग्या न रहनेसे, पुनः इस दूढनी पार्वतीजीने, मनः कल्पित जूठे जूठे चार निक्षेपका लक्षण लिखके, जो गणधर गूंथित, श्री अनुयोगद्वार नामका महागंभीर,

सर्व सूत्रोंका मूल सूत्र है, उनको भी धक्का पुहचानेका इरादा उठाय़ा है। और—स्थापना निक्षेपको, उठानेके लिये, कितनेक मूर्ख दूढकोंने, जो जो कुतर्कों किइथी, उनका ही पुनर्जीवन करके, और वर्त्तमानमें प्रचलित कुतर्कोंसें, अपनी थोथी पोथी भरदेके, जैन मतके शत्रुभूत, आर्यसामाजिकके, दो चार पंडितोंकी प्रशंशा पत्रिका, किसीभी प्रकारसें डलवायके, अज्ञान वर्गको भ्रमित करनेका उपाय किया है ?

ते पंडितोंकी सम्मति, नीचे मुद्रय—

(१) वसता लवपुर मध्ये, छात्रान् शास्त्रं प्रवेशयता ।  
संमतिरत्र सुविहिता, दुर्गादत्तेन सुविलोक्य ॥ १ ॥

पं० दुर्गादत्त शास्त्री० अध्यापक० आ० का० लाहौर ॥

( २ ) मिथ्या तिमिर नाशक मेतन्—उपक्रमोपसंहार पूर्वकं,  
सर्वं मयाऽवलोकितम् । इति प्रमाणीकरोति । लाहौर डी० ए०  
वी० कालेज प्रोफेसर, पंडित राधाप्रसाद शर्मा शास्त्री ॥

( ३ ) दयानंदने एग लिखाथा, सत्यार्थ प्रकाशे ठीक ।  
मूर्त्तिपूजाके आरंभक हैं जैनी, या जगमें नीक ॥ पर अवलोकन  
कर यह पुस्तक, संशय सकल भये अब छीन, ताते धन्यवाद तुहि  
देवी, तूं पार्वती यथार्थ चीन । ३ । साधारण अबलामें ऐसी, होइ  
न कब हूं उत्तम बुद्ध । ताते यह अवतार पछीनो, कह शिवनाथ  
हृदय कर शुद्ध ॥ बार २ हय ईश्वरसे अब, यह मांगे हैं बरकरजोर ।  
चिरंजीवि रह पर्वत तनया, रचे ग्रंथ सिद्धान् निचोर ॥४॥ इत्यादि ॥

॥ दोहा. ॥

पंडित योगीनाथ शिव, लिखी सम्मति आप ।

लवपुर मांही निवास जिह, शंकरके प्रताप ॥ १ ॥

(४) पार्वती रचितो ग्रंथो, जैनमत प्रदर्शकः ।

प्रीतयेऽस्तुसतां नित्यं, सत्यार्थ चंद्र सूचकः ॥ १ ॥

१८१५।१९०५ } गोस्वामि रामरंग शास्त्री, मुख्य संस्कृत ध्या-  
पक, राजकीय पाठशाला, लाहौर ॥

( ५ ) सत्यार्थ चंद्रोदय जैन-इस पुस्तकमें, यह दिखलाया है कि, मूर्त्तिपूजा जैन सिद्धांतके विरुद्ध है। युक्तियों सबकी समझमें आने वाली है। और उत्तम हैं, दृष्टांतोंसे जगह २ समजाया गया है। और फिर जैनधर्मके सूत्रोंसे भी-इस सिद्धांतको पुष्ट किया है। जैनधर्म वालोंके लिये यह ग्रंथ अवश्य उपकारी है ॥

लाहौर—राजाराम पंडित० संपादक आर्य ग्रंथावली ॥

( ६ ) अंग्रेजीमें—पी० तुलसीराम. बी० ए० लाहौर ॥

( ७ ) गुरुमुखी अक्षरोंमें—

\* इनसातों पंडितोंको, न जाने किस कारणसे फसाये होंगे ।

\* कितनेक पंडितोंने तो बड़ी २ उपमाओ देके, दृढ़नीजीकी, बड़ी ही जूठी प्रशंसा कीई है। सो सत्यार्थसे, अर्थके साथ विचार लेना ॥

क्योंकि जैन धर्मका जंडाको लेके फिरने वाली, दूढ़नी पार्वतीजीको ही, जैन धर्मके तत्त्वोंकी समझ नहीं है, तो पिछे जैन धर्मके तत्त्वोंकी दिशा मात्रसे भी अज्ञ, ते पंडितोंका दम क्या दूषण निकालें ? ॥ इसमें तो कोई एकाद प्रकारकी चालाकी मात्र ही दीखती है । ते सिवाय नतो पंडितोंने किंचित् मात्रका भी विचार किया है । और नतो दूढ़नी पार्वतीजी भी जैन धर्मका तत्वका समझी है । मात्र भव्य प्राणियोंको जैन धर्मसे सर्वथा प्रकारसे भ्रष्ट करनेको प्रवृत्तमान हुई है ॥

केवल इतना ही मात्र नहीं, परंतु अपनी स्त्री जातिकी तुलना कोभी प्रगट करके, जाति स्वभाव भी जगें जगेंपर दिखाया है, और परमप्रिय वीतराग देवकी शांत मूर्त्तिको पृथ्वर, पहाड, आदि निद्र वचन लिखके तीक्ष्ण बाण वर्षाये है ? । और इनके पूजने वाले श्रावकोंको, और उनके उपदेशक, गणधर महाराजादिक सर्व आचार्योंको, अनंत संसारी ही ठहरानेका प्रयत्न किया है ? । और अपने आप पर्वत तनयाका स्वरूपको धारण करती हुई, और गणधर ग्रंथित सिद्धांतको भी तुल्यपणे मानती हुई, और जूठे जूठे लिखती हुई भी, जगें जगें पर तीक्ष्ण वचनके ही बाण छोडती हुई चली गई है ? ॥

परंतु हमने यह जमानाका विचार करके, और स्त्री जातिकी तुल्यताकी उपेक्षा करके, सर्वथा प्रकारसे प्रिय शब्दोंसेही लिखनेका विचार किया है, परंतु इस दूढ़नीजीका तीक्ष्ण वचनके आगे, हमारी बुद्धि ऐसी अटक जातिथीकि, छेवटमें किसी किसी जगेंपर दूढ़नीजीका ही अनुकरण मात्र करादेतीथी, तो भी हमने हमारी तरफसे, नर्म स्वरूपसे ही लिखनेका प्रयत्न किया है ।

( ८ ) दूंदनीजीके-कितनेक, अपूर्ववाक्य.

परंतु जिसने, दूंदनीजीका तदन जूठका पुंज, और केवल कपोल कल्पित, और अति तीक्ष्ण, वचनका लेख, नहीं वांचा होगा, उनको हमारा लेख किंचित् तीक्ष्ण स्वरूपसें मालूम होनेका संभव रहता है, इस वास्ते प्रथम दूंदनीजीने—सत्यार्थ चंद्रोदयमें, जे जूठ, और निंश, और कटुक, शब्दो लिखे है, उसमेंसें किंचित् नमुना दाखल लिख दिखाता हूं, जिससें पाठक गणका ध्यान रहै ॥ और विचार करणमें मसगुल बने रहें ॥

॥ देखो दूंदनी पार्वतीजीकी चतुराइपणेका लेख ॥

( १ ) मस्तावनाका पृष्ठ. १ लेमें—दंडक सिवाय, सर्व पूर्वाचार्योंको, सावद्याचार्य ठहरायके, हिंसा धर्मके ही कथन करनेवाले ठरहाये है ॥ १ ॥

विचार करोकि, जैन मार्गमें जो पूर्वधर आचार्यों हो गये है, सो क्या हिंसामें धर्म कह गये है? अहो क्या दूंदनीके लेखमें सत्यता है? ॥ और मंदिर, मूर्त्तिका, लेख है सो तो, गणधर गूंथित सूत्रोंमें ही है? । तो क्या यह दूंदनी गणधर महाराजाओंको, हिंसा धर्मी ठहराती है? ॥

( २ ) आगे पृष्ठ. २१ में—चार निक्षेपका स्वरूपको समजे बिना, दूंदनीजी तो बन बैठी पंडितानी, और सर्व पूर्वाचार्योंको कहती है कि हठवादीयोंकी मंडलीमें, तत्त्वका विचार कहां । इत्यादि ॥ २ ॥

पूर्वाचार्योंकी महा गंभीर बुद्धिको पुहचना तुमहम सर्वको महा कठिन है, परंतु हमारा किंचित् मात्रका लेखसें ही, विचार करना कि दूंदनीजीको, निक्षेपके विषयका, कितना ज्ञान है, सो पाठक गणको मालूम हो जायगा ॥



( ३ ) पृष्ठ. ३६ में-वीतराग देवकी, अलोकिक शांत मूर्त्तिको, जैनके मूल सिद्धांतोंमें, वर्णन करके वंदना, नमस्कार, कराने-वाले, गणधर महाराजा, सो तो सर्व भव्यात्माको मत [ मदिरा ] पीलानेवाले ॥

और वंदना, नमस्कार, करनेवालेको मूर्ख ठहराये । और अपना थोथा पोथामें जगें जगेंपर जूठे जूठे लिखनेवाली, और अभीतक दूंदनेवाली दूंदनीजी, सो तो बन बैठी पंडितानी ? ॥ ३ ॥

[ ४ ] पृष्ठ. ४३ में-वीतरागकी शांतमूर्त्तिको, वंदनादिक, करनेवाले, बाल अज्ञानी ॥ ४ ॥

दूंदनीजीने, वीतरागकी मूर्त्तिके वैरीको तो, बनादिये ज्ञानी, क्या ? अपूर्व चातुरी मगट किई है ? ॥

[ ५ ] पृष्ठ. ५२ में-सिद्धांतके अक्षरोंकी स्थापनासें, ज्ञान नहीं होता है, ऐसा जूठा आक्षेप करके भी, कहती है कि-तुम्हारी मति तो ' मिथ्यात्वने ' बिगाड रखली है, इत्यादि ॥ ५ ॥

॥ इसका निर्णय, हमारा लेखसें, मालूम हो जायगा ॥

[ ६ ] पृष्ठ. ५७ में-बालककी लाठीकीतरां, अज्ञानीने, पाषाणादिकका-बिंब, बनाके, भगवान् कल्प रखला है ॥ इत्यादि ॥ ६ ॥

॥ इस लेखमें, गणधरादिक सर्व जैनधर्मियोंको, अज्ञानी ठहरायके, अभीतकभी दूंदकरनेवाली दूंदनी ही ज्ञानिनी बन बैठी है ? ॥

[ ७ ] पृष्ठ. ६३ में-मूर्त्तिपूजक, कभी ज्ञानी न होंगे इत्यादि दूंदनीजीने लिखा है ॥ ७ ॥

[ ८ ] पृष्ठ. ६४ में-मूर्त्तिपूजना, गुडीयांका खेल ॥ इत्यादि ८

॥ दूंदकों, जो कुछ क्रिया करके दिखलाते है, सोभी तो गु-डीयांका ही खेल हो जागया क्योंकि दूंदक लोको भावको ही मुख्य पणे बतलाते है, तो पिछे दूसरी क्रियाओ करके, बतलानेकी भी क्या जरूरी है ? ।

[ ९ ] पृष्ठ. ६७ में-पथरकी मूर्ति धरके, श्रुति भी लगानी नहीं चाहीये ॥ इत्यादि ॥ ९ ॥

वीतरागो भव्य मूर्ति, ध्यानका मुख्य आलंबन है, परंतु दूंदनीजीको, कितना द्वेष प्रज्वलित हुवा है ? ॥

[ १० ] पृष्ठ. ६८ में-मूर्तिपूजक तो, सर्व सावद्याचार्यके, धोषेमें आये हुये है । इत्यादि ॥ १० ॥

॥ गुरु त्रिनाका तत्व विमुख लोकाशा वर्णीयेका, मनः कल्पित मार्गको पकडके चलनेवाले, सो तो, धोषेमें आये हुये नहीं ? वाहरे दूंदनीजी वाह ? ॥

[ ११ ] पृष्ठ. ६९ में-जिन मूर्तिका सूत्र पाठोंको, जूठा ठहरानेके लिये, पूर्वके महान् महान् सर्व आचार्योंको, कथाकार कहकर, गपौडे लिखनेवाले ठहराय दिये है ॥ इत्यादि ॥ ११ ॥

॥ इस दूंदनीने आचार्योंका नाम देके, सूत्रकार गणधर महाराजाओंको ही, गपौडे लिखनेवाले ठहराये है ?

और स्वार्थी दो चार पंडितोंकी पाससें, स्तुति करवायके दूंदनीजी अपने आप साक्षात् ईश्वरकी पार्वतीका, स्वरूपको धारण करके, और जैन सिद्धांतोंसें तदन विपरीतपणे लेखको लिखके, दूंदकोका, उद्धार करनेका, मनमें कल्पना कर बैठी है ? क्या अपूर्व न्याय दिखाया है ? ॥

( १२ ) पृष्ठ. ७१ में-दूंदनीजी शाश्वती जिन प्रतिमाओं-

का होना मूल सूत्रोंसेही लिख दिखाती है, और लिखती हैकि—  
पाषाणो पासक—चेइय, शब्दसें. मंदिर, मूर्त्तिको, ठहरायके, अर्थ—  
का अनर्थ करते है. ॥

ऐसा लिखके—फिर पृष्ठ. ७७ में—उवाई सूत्रका पाठसें—चेइय,  
शब्दसें, मंदिर मूर्त्तिका अर्थ भी करनेको, तैयार हुई है ? ॥

और पृष्ठ. १४३ में—स्वप्नके पाठसें—चेइयं ठयावेइ दव्व  
हारिणो मुनी भविस्सइ, लिखके मंदिर, मूर्त्तिका, अर्थको भी  
दिखलाती है ॥

और पृष्ठ. ८६ में—दूढनीजी लिखती हैकि—मूर्त्तिका नाम—  
चेइय, कहि नहीं लिखा है ॥

ऐसा लिखके—पृष्ठ. १०० में—लिखती है कि—चेइय, शब्दका  
अर्थ,—प्रतिमा पूर्वाचार्योंने, पक्षपातसें लिखा है ॥

ऐसा कह कर पृष्ठ. ११४ में—सम्यक्च शहयोद्वारका, चैत्य  
शब्दसें प्रतिमाका अर्थको, निंदती है ॥

और पृष्ठ. ११८ में—चेइय, शब्दसें,—प्रतिमाका, अर्थ करने  
वालेको, हठनादी ठहराती है ॥ १२ ॥

कैसी दूढनीजीके लेखमें चातुरी आई है ? ॥

( १३ ) पृष्ठ. १२९ में—दूढनीजी लिखती हैकि, सावयाचा-  
योंने, माल खानेको, निशीथ भाष्यादिकमें, मनमाने गपौडे, लिख  
धरे है । इत्यादि ॥ १३ ॥

दूढनीजीने, एक सामान्य मात्र—चार निज्ञेपका, स्वरूपको

समजे विना,-त्राण निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके, लिख मारा । तो पिछे गुरुज्ञान विनाकी दूढ़नीजीको, निशीथ भाष्यका पत्ता नहीं लगनेसें, गपौडे कहें, उसमें क्या आश्चर्य ? ॥

( १४ ) पृष्ठ. ११३ में-दूढ़नीजी लिखती हैकि-मंदिर, मूर्त्ति, मानने वाले आचार्योंने, सत्य दया धर्मका, नाश कर दिया है । इत्यादि ॥ १४ ॥

पाठकवर्ग ! अलोकिक शांत मुद्रामय वीतराग भगवान्की भव्य मूर्त्तिका दर्शन होनेसें, दूढ़नीजीका क्या सत्यानाश हो जाता है ? जो जूठा रुदन करती है ? ॥

( १५ ) पाठकवर्ग, चउद पूर्वके पाठक, श्रुत केवली, गिने जाते हैं । ऐसों जो भद्रबाहु स्वापीजी है, उनकी रची हुई-निर्युक्तियां, सोतो अनघडित गपौडे, दूढ़नीजी कहती है ? ॥१५॥

समजनेका यह हैकि, निर्युक्तियां क्या वस्तु है, सोतो दूढ़नीजीको दर्शन मात्रभी हुये नहीं होंगे, परंतु अपनी जूठी पंडितानी पणाके छाकमें, चकचूर बनी हुई, चउदां पूर्वके पाठीकोंभी, कुछ छेखामें ही, गीनती नहीं है ? । अहो हमारे दूढ़कोंमें, मूढताकी प्रबलताने क्या जोर कर रख्या है ? ।

( १६ ) पृष्ठ. १३३ में-पीतांबरीदंभ धारीने, जडमें, परमेश्वर बुद्धि, कर रख्खी है । इत्यादि ॥ १६ ॥

पाठकवर्ग !-इस दूढ़नीजीने-पृष्ठ. ११४ में-ऐसा लिखाथा कि-महावीर स्वापीजीके पहिले भी-मूर्त्ति, होगी तो उसमें क्या आश्चर्य है ॥

और पृष्ठ. १५८ में-लिखती हैकि, यह संवेग पीतांबर, ( लट्ठापंथ ) अनुमान अढाई सौ वर्षसें निकला है ॥

तो पिछे पीतांबरियोंने, मूर्त्तिमें परमेश्वरकी कल्पना किई है, यह कैसे सिद्ध करके दिखलाती है। क्योंकि मंदिर, मूर्त्तियोंतो, हजारो वर्षके बने हुये है। और चारोवर्ण ( जाति ) के लोक, अपना अपना उपादेयकी-मूर्त्तियोंको, मान दे रहे है, तो क्या दूंदनीजीको, एक पीतवस्त्र वालेही दिखलाई दिये ?

( १७ ) पृष्ठ. १३९ में—सूत्रका-अर्थ है, सोभी दूंदनी। और—निर्युक्तियां है, सोभी दूंदनीही है। और सूत्रोंकी-भाष्य, है सोभी दूंदनीजी। अपने आप बनी जाती हुई, कहती है कि—तुम्हारे मदीनमत्तोंकी तरह, मिथ्याडिंभके, सिद्ध करनेके लिये, उलटे कल्पित अर्थ रूप, गाले गरडानेके लिये, निर्युक्ति नामसे, बडेबडे पोथे, बनारखे है, क्या उन्हे धरके हम बांचे ?। इत्यादि ॥ १७ ॥

पाठकगण ! चतुर्दश पूर्व धर, किजो श्रुत केवली भद्र बाहु स्वामीजी है उनकी रची हुई, नियंत्रित अर्थ वाली, निर्युक्तियां, सो तो कल्पित अर्थके गोले, ॥ और अगडं बगडं लिखके, मूठोंमें पंडितानी बनने वाली, आजकलकी जन्मी हुई, जो दूंदनीजी है, उनके वचन, सो तो यथार्थ-निर्युक्तियां और यथार्थ-भाष्य अहो क्या अपूर्व चातुरी, मूठोंके आगे प्रगट करके दिखलाती है ? ॥

( १८ ) पृष्ठ. १४४ में—लिखती है कि—मूर्त्तिपूजाके, उपदेशको, कुमार्गमें भेरनेवाले है ॥ १८ ॥

सूत्रार्थके अंतमें, यह अर्थ, जो दूंदनीजीने लिखा है सो, केवल मनः कल्पित, जूठ पणे लिखा है ॥

( १८ ) पृष्ठ. १९९ में—लिखती है कि—मूर्त्ति-पूजा, मिथ्या-स्त्र, और, अनंत संसारका हेतु ॥ १९ ॥

गुरु परंपराका ज्ञानसे रहित, हमारे दूढ़को, सूत्रका परमार्थको समझे बिना, जो मनेमें आता है सोही लिख मारते है ॥ देखोकि, प्रथम पृष्ठ. ७३ में—इस दूढ़नीने, पूर्णभद्र, यक्षादिकोंकी, पथरकी, मूर्तियांकी पूजासें, धन, दोलत, पुत्रादिक प्राप्त होते है, ऐसा लिखके, सब दूढ़कोंको, लालचमें डालेथे ॥

और पृष्ठ. १२६ में—“कयबलिकम्मा” के पाठार्थमें—नित्य (दररोज) कर्त्तव्यके लिये—वीर भगवानके भक्त श्रावकोंको, पितर, दादेयां, वाबे,भूत, यक्षादिककी मूर्तिके पूजनेवाले बताये है ॥ तो अब विचार करनेका यह है कि—वीतराग देवकी मूर्तिको पूजे तो मिथ्यात्व, और अनंत संसारका हेतु, और पूजाका उपदेशक, कुमार्गमें गेरने वाले, दूढ़नीजीने लिख मारा । और भूतादिक, मिथ्यात्वी देवोंकी मूर्त्ति पूजा, दररोज श्रावकोंकी पास कस्वानेका, दूढ़नीजी तो उपदेशको देने वाली, और इनके भोंदू दूढ़को, भूतादिक मिथ्यात्वी देवकी मूर्त्तिको, दररोज पूजने वाले, कौनसें खडडेमें, और कितने काल तक रहेंगे, उनका प्रमाणभी तो, दूढ़नीजीने लिखके ही दिखाना चाहीताथा ? । पाठक गण जो तदन मूढताको प्राप्त होके जूठे जूठ लिखनेवाले है उनको हम क्या कहेंगे ? ॥

केवल जूठ ही लिखनेसें, संतोषताको प्राप्त नहीं हुई है, परंतु आज तक शुधी जितने पूर्व धरादिक, महान् महान् आचार्यों हो गये है, उनका सर्वथा प्रकारसें वारंवार तिरस्कार करनेको, जगें जगें पर राक्षसी कलम चलाई है ॥

क्योंकि—इस दूढ़नीजीने—जैन धर्मके नियमका, एक पुस्तक, भिन्न-पणेभी छपवायके—उसका पृष्ठ. १३ से—इनका सत्यार्थ चंद्रोदयकी जाहीरान, भी छपवाई है । उसका पृष्ठ. १४ से—लिखती हैकि—इस पुस्तकमें प्राचीन जैनधर्म दूढिये मतका—सूत्रोंद्वारा मंडनही नहीं

किया, वरंच सूत्रप्रमाण, कथा, उदाहरण, तथा युक्ति, आदिसें हस्तामलक करानेमें-कुछ भी बाकी नहीं छोडी । वरंच द्रव्यनिक्षेप, भाव निक्षेप, मूर्त्तिपूजन निषेध, चेइय शब्द वर्णन, शास्त्रोक्त वर्णनके अतिरिक्त प्रश्नोत्तरकी रीति ।

और पीतांबर धारियोंके-नवीन मार्गका मूलसूत्रों, माननीय जैन ऋषियोंके-मंतव्यों, प्रबल युक्तियोंमें खंडन किया है । और युक्तियोंभी ऐसी प्रबल दी हैकि-जिनको जैन धर्मारूढ-नवीन मत-वलंबियोंके सिवाय, अन्य संप्रदायिकभी, खंडन नहीं कर सकते । वरंच बडे २ विद्वानोंनेभी श्लाघा ( प्रशंसा ) की है । इस पुस्तकमें विशेष करके श्री आत्माराम आनंदविजय संवेगीकृत, जैनमार्ग प्रदर्शक—नवीन कपोल कल्पित ग्रंथोंकी, पूर्ण अंदोलना की है ॥ इत्यादि ॥

पाठकवर्ग ? इस दूंदनीजीका-जूठा गर्विष्ठपणेका लेखमें, जैन धर्मके नियमानुसार एकभी बात हैया नहीं ? सो हमारा लेखकी साथ एकैक बातका पुक्तपणे विचार करते चले जाना ॥

हमारे दूंदकभाइयों ? प्राचीन है या-अर्वाचीन ? यह भी विचार करते चले जाना । दूंदनीजीका लेख-२ सूत्रों द्वारा है कि-केवल कपोल कल्पित ?

यह भी हमारा विचार करना । और ३ युक्तिवाला है कि-केवल कुयुक्तिवाला ? सोभी विचार करना । और ४ द्रव्य निक्षेप, ५ भाव निक्षेप, ६ मूर्त्तिपूजन निषेध, ७ चेइय शब्दका वर्णन शास्त्रोक्त है कि-केवल दूंदकोका कपोल कल्पित है ?

इस बातोंका भी पुक्तपणे विचार करते चले जाना । फिर भी दूंदनीजी लिखती है कि-पीतांबरधारियोंके-नवीन मार्गका, ८

( १६ ) दूढनीजीके-कितनेक, अपूर्ववाक्य.

मूल सूत्रों, और माननीय जैन ऋषियोंके-९ मंतव्योंका, प्रबल यु-  
क्तिसे खंडन किया है ।

इस लेखमें भी विचार करनेका यह है कि-हमारे दूढक भा-  
इयों-वीतराग धर्मके अवलंबन करनेवाले है कि, जैन धर्मको एक  
कलंक रूपके है ? क्योंकि-जैनके तत्त्वरूप-सूत्रोंका, और प्राचीन  
माननीय जैन धर्मके, महान् महान् ऋषियोंका-मंतव्योंका भी, खं-  
डन करनेको उद्यत हुये है ? तो अब हमारे दूढकोंको-किस मतमें  
गानेंगे ? ।

फिर भी लिखती है कि-प्रबल युक्तियोंसे खंडन किया है ।  
इस बातमें हम इतना ही कहते है कि गुरुविनाकी दूढनीजीमें प्रथम  
जैन तत्त्वोंको समझनेके ही ताकात नहीं है, तो पीछे जैन धर्मके-  
सूत्रोंको और जैन धर्म के महान् महान् ऋषियोंके-मंतव्योंको,खंडन  
ही क्या करनेवाली है ? ।

फिर लिखती है कि-युक्ति भी ऐसी प्रबल दी है कि-जैन  
धर्मरूढ तो खंडन नहीं कर सकते है, परंतु अन्य संप्रदायिक भी  
खंडन नहीं कर सकते । हे दूढनीजी ! थोडासा तो ख्यालकर कि-  
समाकित सारमें-जेठमलजी दूढकने किइ हुइ-जूठी कुतकों, कितने  
दिन चलीथी ? ।

और गप्प दीपिकामें-तेरी ही किइ हुइ-जूठी कुतकों भी, कि-  
तने दिन तक चलीथी ? तो अब तेरा सत्यार्थकी-जूठी कुतकों भी  
कितने दिन चलेगी ?

किस बातपर जूठा गुमान कर रही है ? सत्यके आगे जूठ  
कहांतक टीक रहेगा ? । दूढनीजी लिखती है कि-बड़े बड़े विद्वानोंने  
भी श्लाघा ( प्रसंसा ) की है ।



हे दूंदनीजी ? इसमें भी खयाल करना कि-जब तूने जैनधर्मके तत्त्वोंसे-विपरीत लेखको लिखा, तब ही जैनधर्मसे विरोध रखनेवाले-ते पंडितोंने, तेरी प्रसंसा कीई ? इस बातसे तूने क्या जंडा लगाया ? पाठकगण ! इस जाहीरातमें-दूंदनीजीने-प्रथम यह लिखा है कि-सूत्रप्रमाण, कथा, उदाहरण, युक्ति आदिसें, हस्तामलक करानेमें-कुछ भी बाकी नहीं छोडी ।

इसमें इतनाही विचार आता है कि-आजतक जो जो जैन धर्मके-धुरंधर महापुरुषों हो गये सो तो-सूत्रादिक प्रमाणोंसे हस्तामलक करानेमें सब कुछ बाकी ही छोड गये है । केवल--साक्षात्पणे पर्वत तनयाका स्वरूपको धारण करके-इस दूंदनीजीने ही-कुछ भी बाकी नहीं छोडा है ? । हमको तो यही आश्चर्य होता है कि, इस दूंदनीजीको-जूठा गर्बने, कितनी बे भान बनादी है ? ।

क्योंकि दूंदनीजीने-जैनधर्मके तत्त्वकी व्यवस्थाका नियमानुसार-एक भी बात, नहीं लिखी है । तो भी गर्व कितना किया है ? सो हमारा लेखकी साथ विचार करनेसें-पाठक वर्गको भी-मालूम हो जायगा ।

और हम भी उस विषयके तरफ वखतो वखत पाठक वर्गका किंचित् मात्र ध्यान खेचेंगे । और दूंदनीजीकी कुयुक्तियोंको, तोडनेके सिवाय, नतो अशुद्धियोंकी तरफ लक्ष दिया है । और नतो पाठाडंबर करके-वांचनेवालेको कंटाला उत्पन्न करनेका निचार किया है । केवल श्री अनुयोग द्वार सूत्रके वचनानुसार-चार निक्षेपका, यत् किंचित् स्वरूपको ही-समजानेका विचार किया है । सो विचार करनेवाले-भव्य पुरुषोंको, हमारा यही कहना है कि-आजकालके नवीन पंथियोंके विपरीत वचनपर आग्रह नहीं करके,

केवल गणधरादि महापुरुषोंके ही-वचनोंका आश्रय अंगीकार करना? यद्यपि दूंदक पंथमें-बहुतेक साधु, और श्रावक, बड़े २ बुद्धिमान् भी हुये होंगे, और वर्त्तमान कालमें भी होंगे । परंतु गुरु-पं-पराका ज्ञानके अभावसें, आजतक नतो कोई निक्षेपोंकी दिशा मात्रको समजा है । और नतो कोई नयोंकी दिशा मात्रका भी विचार कर सक्या है । केवल दया दया मात्रका जूटा पोकार करते हुये, और जैन धर्मके सर्व मुख्य ३ तत्त्वोंको विपरीतपणे ग्रहण करते हुये, वीतराग देवकी परम भव्य मूर्तियोंको, और जैन धर्मके धुरंधर सर्व महा पुरुषोंको, निंदते हुये । गुरुद्रोहीपणेका महा पायश्चित्तकोही उठाते रहे है । उनोंकी दयाकी खातर, और भव्य जीवोंके उपकारकी खातर, हमने दो ग्रंथ बनानेका परिश्रम उठाया है सो-सत्यार्थ चंद्रोदय-और सत्यार्थ सागर-और धर्मना दरवाजा ॥ आदि दूंदक ग्रंथोंमें लिखे हुये-चार निक्षेप, और-सात नयादिक, विचारके साथ, हमारा लेखको मिलाके देख लेना । और भवोभवमें आत्माका घातक, दुराग्रहको छोड करके, योग्य बातपर लक्ष लेना ॥ इति अलमधिक मपंचेन ॥

सूचना—पाठकगण ! हमारी मूलभाषा गूजराती है परंतु पंजाबी लोकोंकी असह्य मेरणासें, और हिंदी भाषाके लेखका उच्चर होनेसें, हमको भी हिंदी भाषामें ही लिखना पडा है, सो किसी स्थानमें यत् किंचित् भाषा दोष हुवा हो तो-क्षमा करके, मात्र तत्वका ही लक्षको करना । और छापावालेकी गफलत हुइ हो तो उनको भी समालके वाचना ॥

लि. मुनि अमरविजय, पुना ।

सं. १९६६ कार्तिक मास ११

## अनुक्रमणिका.

विषय—	पृष्ठ.
१ पूर्वाचार्योक्त तीर्थकरोंकी महा मंगलिक, भव्य मूर्तिकी स्तुतिरूप, मंगलाचरणके २ काव्यार्थ—	१
२ द्रुहनीजीका—ग्रंथ, शास्त्ररूप-नहीं है, किंतु भव्यजनोंको-शस्त्ररूपही है, इति ग्रंथ करनेका-प्रयोजन स्वरूप, काव्यार्थ—	२
३ वस्तुमें तीन प्रकारसें—(१) नामका निक्षेप, करनेरूप, पूर्वाचार्योक्त-लक्षण ज्ञापक आर्या, उनका अर्थ, और उनके तात्पर्यका स्वरूप—	२
४ पूर्वाचार्योक्त (२) स्थापना निक्षेप-लक्षण ज्ञापक आर्या, उनका अर्थ, और उनके तात्पर्यका स्वरूप—	४
५ पूर्वाचार्योक्त (३) द्रव्य निक्षेप लक्षण ज्ञापक आर्या, उनका अर्थ, और उनका तात्पर्यका स्वरूप—	५
६ पूर्वाचार्योक्त (४) भाव निक्षेप लक्षण ज्ञापक आर्या, उनका अर्थ, और उनका तात्पर्यका स्वरूप—	६
७ सामान्यपणे-सर्व वस्तुका चार निक्षेपमें, सूचनारूपे-सिद्धांतकी मूल गाथा, उनका अर्थ, और द्रुहनीजीकी समझमें-फरकका विचार सहित स्वरूप—	११
८ ग्रंथ कर्त्ताकी तरफसें-प्रगट अर्थ स्वरूप, चार निक्षेपका लक्षणके-चार दुहे, अर्थ सहित-	१४
९ आवश्यक (१) नाम निक्षेप सूत्र पाठ, उनका अर्थ, और उनके तात्पर्यका स्वरूप-	१७

- १० आवश्यक (२) स्थापना निक्षेप सूत्रपाठ, उनका अर्थ, और उनके तात्पर्यका स्वरूप— १८
- ११ आवश्यक (३) द्रव्य निक्षेप सूत्रपाठ, उनका अर्थ, और उनके तात्पर्यका स्वरूप— २०
- १२ आवश्यक (४) भाव निक्षेप सूत्रपाठ, उनका अर्थ, और उनके तात्पर्यका स्वरूप— २४
- 
- १३ दूँढनीजीके—मनः कल्पित, चार निक्षेपका लक्षण— २६
- १४ आवश्यक (१) नाम निक्षेप सूत्रपाठ, अर्थ सहित, दूँढनीजीके तरफका— २७
- १५ आवश्यक (२) स्थापना निक्षेप सूत्रपाठ, अर्थ सहित, दूँढनीजीके तरफका— २८
- १६ आवश्यक (३) द्रव्य निक्षेप सूत्र पाठ, उनका अर्थ, नयों-का विचार सहित, दूँढनीजीका— २९
- १७ आवश्यक (४) भाव निक्षेप, मूलविनाका त्रुटक स्वरूप अर्थ पाठ, दूँढेनोजाका— ३०
- 
- १८ सूत्रपाठ, और दूँढनीजीका कल्पित लक्षण, इन दोनोंका मेलसें, (१) नाम निक्षेपमें, विपरीतपणेकी, समीक्षा— ३१
- १९ नाम निक्षेपकीतरां—दोनों पाठोंका मेलसे, (२) स्थापना निक्षेपमें—विपरीतपणेकी, समीक्षा— ३३
- २० पूर्वोक्तकी रीति प्रमाणे—दोनों पाठोंका मेलसें, (३) द्रव्य-निक्षेपमें, विपरीतपणेकी, समीक्षा— ३४

२१	पूर्वोक्त रीति प्रमाणे—दोनों पाठोंका मेळसें, (४) भाव निक्षेपमें—विपरीतपणेकी, समीक्षा—	३७
२२	(१) नाम निक्षेपमें, विशेष समीक्षा—	३७
२३	(२) स्थापना निक्षेपमें, विशेष समीक्षा—	३८
२४	[३] द्रव्य निक्षेपमें, विशेष समीक्षा—	३९
२५	(४) भाव निक्षेपमें, विशेष समीक्षा—	४०
२६	सूत्रमें—निक्षेप चार, दूंदनीजीका—विकल्प आठ । उन की समीक्षा—	४१
२७	(१) नाम निक्षेपमें—दूंदनीजीकी, कुतर्कका विचार—	४१
२८	(२) स्थापना निक्षेपमें—दूंदनीजीकी, कुतर्कका विचार—	४३
२९	(३) द्रव्य निक्षेपमें—दूंदनीजीकी, कुतर्कका विचार—	४५
३०	(४) भाव निक्षेपमें—दूंदनीजीकी, कुतर्कका विचार—	४५
॥ इति दूंदनीजीके कल्पित आठ विकल्पकी सामान्यपणे समीक्षा ॥		

३१	तीर्थकरमें—ऋषभदेव नाम । और पुरुष, स्थंभादिकमें ऋषभदेव, नाम निक्षेप ॥ इस प्रकारसें दूंदनीजीकी जूठी कल्पनाकी, समीक्षा—	४७
३२	ऋषभदेवके—शरीरमें, स्थापना । और मूर्तिमें—ऋषभदेव भगवानका, स्थापना निक्षेप ॥ इस प्रकारसें दूंदनीजीकी जूठी कल्पनाकी, समीक्षा—	४८
३३	ऋषभदेव भगवानकी, पूर्व अवस्थामें—द्रव्य । और उन की, अपर अवस्थामें—द्रव्य निक्षेप ॥ इस प्रकारसें दूंदनी- जीकी जूठी कल्पनाकी, समीक्षा—	४८
३४	तीर्थकर भगवानका—जीव, सोता—भाव । और शरीरयुक्त	

- तीर्थकर भगवानमें—भाव निक्षेप ॥ इस प्रकारसें दूढनी-  
जीकी जूठी कल्पनाकी, समीक्षा— ४९
- ३५ वस्तुका—नाम सो, नाम निक्षेप नहीं, ऐसा दूढक जेठम-  
लजीका—भ्रमितपणासें, दूढनीजीकोभी भ्रमितपणा हुवा,  
उनकी समीक्षा— ५०
- ३६ भगवानमें भगवानका—नाम निक्षेप । परंतु भगवानमें,  
भगवानका—स्थापना निक्षेप, कैसा ? इस प्रकारसें दूढनी-  
जीका, भ्रमितपणेकी समीक्षा— ५१
- ३७ आत्मारामजी, बूटेरायजी, संस्कृतपढे हुये नहींथे, सो  
बिथ्यावादी कहती है । उनकी समीक्षा— ५२
- ३८ एक स्थापना निक्षेपका, स्वरूपकी मूर्त्तिमें, दूढनीजी ह-  
मारी पास—चार निक्षेप, मनानेको तत्पर होती है । उनकी  
समीक्षा. ५३
- ३९ एक वस्तुमें—चार निक्षेप करनेका, दूढनीजीने कहा । परंतु  
देवताका मालिक रूप वस्तुमें—इंद्र नामका, निक्षेप किये  
बिना, गूजरके पुत्रमें करके दिखाया । और—इंद्रमें, तीन  
निक्षेपही रहने दिया । उनकी समीक्षा— ५४
- ४० इक्षु रसका सार—मिशरी नामकी वस्तुमें, दूढनीजीने एक  
स्थापना निक्षेपही, घटाके दिखाया, परंतु तीन निक्षेपको  
नहीं । उनकी समीक्षा— ५५
- ४१ तीर्थकरमें दूढनीजीने—अढाई निक्षेप, करके दिखाया ।  
दोढ निक्षेपको नहीं । उनकी समीक्षा— ५६
- ४२ ठाणांग सूत्रका—मूल पाठसें, चारो निक्षेपकी सत्यता  
हमेरा तरफसें ? हेय, २ ज्ञेय, ३ और उपादेयके  
स्वरूपमें, दिखाई है— ५६

४३ निक्षेप चार, दूंदनीजीका-विकल्प आठ, उसमें—शंका-  
का समाधान— ५७

॥ इति चार निक्षेपके विषयमें, दूंदनीजीका ज्ञान ॥

- ४४ (१) इंद्रमें, (२) गूजरके पुत्रमें, (३) खानेकी मिशरीमें,  
(४) मिशरी नामकी कन्यामें, (५) मिट्टीका कूजामें,  
इस पांच प्रकारकी वस्तुमें सिद्धांतका वचनके अनुसारसें,  
चार २ निक्षेप, भिन्न २ पणे करके दिखाया है— ५९
- ४५ ऋषभदेव भगवानके, और ऋषभदेव नामका पुरुषके—  
चार चार निक्षेप, भिन्न २ पणे, करके दिखाया है— ६१
- ४६ केवल मूर्ति स्वरूपकी वस्तुके—चार निक्षेप, सिद्धांतानुसा-  
रसें, करके दिखलाये है— ६२
- ४७ दूंदनीजीको, केवल स्थापना स्वरूपकी मूर्तिमेंही, वस्तुका  
चार चार निक्षेपकी, भ्रांति हुईथी । उनका समाधान— ६२
- ४८ दूंदनीजीका (१) नाम । और (२) नाम निक्षेपकी । सि-  
द्धांतके पाठका मेलसें, पुनः समीक्षा— ६३
- ४९ दूंदनीजीकी (३) स्थापना । और (४) स्थापना निक्षे-  
पकी । सिद्धांतक-पाठका मेलसें, पुनः समीक्षा— ६५
- ५० दूंदनीजीका (५) द्रव्य । (६) द्रव्य निक्षेपकी । सिद्धांतके  
पाठका मेलसें, पुनः समीक्षा— ६६
- ५१ दूंदनीजीका (७) भाव । (८) भाव निक्षेपकी । सिद्धांतका  
मेलसें, पुनः समीक्षा— ६८
- ५२ दूंदनीजीके आठ विकल्पका तात्पर्य— ७०
- ५३ स्त्रीकी मूर्त्तिसें—काम जागे । भगवानकी मूर्त्तिसें—वैरा-  
ग्य नहीं । उनकी समीक्षा— ७१

- ५४ मूर्त्तिसें—ज्यादा समज, होती है । परंतु वंदना करनेके योग्य नहीं । उनकी समीक्षा— ७२
- ५५ पशुको—मूर्त्तिका ज्ञान, होता है । उनको समीक्षा— ७३
- ५६ बाप बाबेकी—मूर्त्तियांको, कौन पूजता है ? इस वास्ते—भगवानकी मूर्त्तिभी, पूजनिक नहीं । उनकी समीक्षा— ७४
- ५७ मल्लादिन कुमारने, स्त्रीकी मूर्त्तिको देखके—लज्जा पाई, और अदबभी उठाया, परंतु हरएकने नहीं । उनकी समीक्षा— ७५
- ५८ वज्र करण राजाने. अंगूठीमें—जिन मूर्त्तिको रखके, दर्शन किया । सोभी करनेके योग्य नहीं । उनकी समीक्षा— ७६
- ५९ मूर्त्तिके आगे—मुकद्दमा, नहीं पेश होसकता है । उनकी समीक्षा— ७७
- ६० मित्रकी मूर्त्तिसें—प्रेम, जागे । भगवानकी मूर्त्तिसें—प्रेम, न जागे । उनकी समीक्षा— ७८
- ६१ भगवानकी—मूर्त्तिसें, कोई खुश हो जाय तो हो जाय । नमस्कार कौन विद्वान करेगा ? । उनकी समीक्षा— ७८
- ६२ मूर्त्ति मानते है, पूजन नहीं मानते है । उनके पर—शासु बहुका, दृष्टांत । उनकी समीक्षा— ८०
- ६३ भगवानका—नामभी, तुम्हारीसी समजकी तरह नहीं । उनकी समीक्षा— ८२
- ६४ जीवर नामका—महावीरके, पेरोंमें पडना । उनकी समीक्षा— ८३
- ६५ भेषधारी, और मूर्त्तिका विवादकी, समीक्षा— ८३
- ६६ पार्श्वनाथके—नामसें, गालो दे उनकेपर द्वेष । उनकी मूर्त्तिको—आप गालो दे । उनकी समीक्षा— ८४



- ६७ अक्षरोंको-देखके, और मूर्तिको-देखके, ज्ञान होना-कि-  
स भूलसें कहते हो ? । उनकी समीक्षा- ८५
- ६८ बालक का-लाठीके घोडेकी, समीक्षा- ८६
- ६९ खांडके-हाथी घोडे, खानेसें पाप । मिट्टीकी गौ-तोडनेसें  
पाप । और वीतराग देवकी मूर्तिकी-निंघाकरनेसें लाभ ।  
उनकी समीक्षा- ८६
- ७० लोहेमें-सोनेका भाव, करलेनेकी । समीक्षा- ८८
- ७१ ढूंढनीजीने-पंडितोंसें सुनी हुई, मूर्ति पूजा । और शा-  
स्त्रोंमें देखी हुई, मूर्तिपूजा । उनकी समीक्षा- ८८
- ७२ नमो सिद्धाणके पाठसें सिद्धोंको । और नमोऽधुणके पा-  
ठसें, तीर्थकर, और तीर्थकर पदवी पाके मोक्ष गये उ-  
नको-नमस्कार, करनेकी समीक्षा- ८९
- ७३ मूर्तिको धरके-श्रुति, नहीं लगाना । उनकी समीक्षा- ९१
- ७४ सूत्रोंमें-मूर्ति पूजा, कहीं नहीं लिखी है, लिखी है तो-  
हमेंभी दिखाओ । उनकी समीक्षा- ९२
- ७५ देवलोकमें-जिन प्रतिमाओंका पूजन, कूलरूढि । उनकी  
समीक्षा- ९३
- ७६ नमोऽधुण के पाठसें, देवताओने, जिन प्रतिमाओंको-न-  
मस्कार किया, सो तो ढूंढनीजीका परंपराके व्यवहासें ।  
उनकी समीक्षा- ९५
- ७७ पूर्णभद्र यक्षादिकोंकी-मूर्तियांकी पूजासें, ढूंढनीजी-धन  
पुत्रादिककी, प्राप्ति करा देती है । उनकी समीक्षा- ९९
- ७८ गणधरोंके लेखमेंभी, सैकड़ो पृष्ठोंकी-निरर्थकता । उनकी  
समीक्षा- १०२

( २६ ) नेत्रांजन प्रथम भाग अनुक्रमणिका.

- ७९ बह्वे अरिहंत चेइयमें पाठांतर आता है, उसको प्रक्षेपरूप ठहराती है। उनकी समीक्षा— १०३
- ८० अंबड श्रावकजीका-अरिहंत चेइय, के पाठसे-सम्यक् ज्ञान, व्रतादिक, दूंडनीजीका अर्थ। उनकी समीक्षा— १०४
- ८१ आनंद श्रावकका-अरिहंत चेइय, का पाठको, प्रक्षेप रूप ठहरायके-लोप करनेकी, कोशीस कीई है। उनकी समीक्षा— १०८
- ८२ द्रौपदीजी श्राविकाका-जिन प्रतिमाके पूजनमें, अनेक जूठी कुतकों करके, और सर्व जैनाचार्योंको निंदके, और छेवटमे कामदेवकी-मूर्त्तिका पूजनकी, जूठी सिद्धि करके, उसकी मूर्त्तिके आगे-वीतराग देवकी स्तुति रूप-नमोधु-णंका, पाठको भी, पढानेको तत्पर हुइ है?। उनकी समीक्षा— ११०
- ८३ चैत्य शब्दसे-प्रतिमाका अर्थ, दूंडनीजी अनेक स्थलोमें, अपनाही लेखमें-मान्य करती है। तो भी सर्व जैनाचार्योंकी, निंदा करके-लिखती है कि, चैत्य शब्दका अर्थ-प्रतिमा, नहीं होता है। उनकी समीक्षा— ११५
- ८४ ठाणागादिक सूत्रोंमें-मूल पाठोंसे, सिद्ध रूप, नंदीश्वरादिक-द्वीपोंमें, रही हुई, शाश्वती जिन प्रतिमाओंको-वंदना करनेको जाते हुये, जंघाचारणादिक-महामुनिओंकी पास, वहां पर-ज्ञानका ढेरकी स्तुति करनेकी, जूठे जूठे-सिद्धि करके दिखलाती है। उनकी समीक्षा— ११७
- ८५ चमरेंद्रका पाठके विषयमें-देवताओ कोइ कारणसर, ऊर्ध्व लोकमें गमनकरेंतो? अरिहंत। २ अरिहंतकी प्रतिमा।

- ३ और कोइ महात्मा । इन तीनोंमेंसें एकादका शरणा लेके, जाते है । उसमें जो दूसरा शरण-जिन प्रतिमाका है, उसके स्थानमें-अरिहंत पद, की जूठी सिद्धि करनेको देवयं चेइयं, के पाठका तात्पर्यको समजे बिना, कुछका कुछ लिख मारा है । उनका भी खुलासाकी साथ ।  
समीक्षा— १२१
- ८६ चैत्य शब्दका अर्थ-पकारांतरसें पांच दश, कदाच कर सकते है । तो भी ११२ अर्थकी, जूठी सिद्धि करनेका प्रयत्न किया है । उनकी समीक्षा— १२६
- ८७ मूर्त्तिपूजनमें-षट् कायारंभ, और जडको चेतन मानकर मस्तक जुकाना, मिथ्यात्व कहती है । उनकी समीक्षा—१३०
- ८८ महा निशीथकी-गाथामें, लिखा हैकि-जिन मंदिरोंसें, पृथ्वीको मंडित करता हुवा, और दानादिक धर्मको करता हुवाभी श्रावक, बारमा देवलोक तकही, जा सकता है । इसमें दूंडनीजिने, मंदिरोंका अर्थको-लोप करनेका, प्रयत्न किया है । उनकी समीक्षा. १३२
- ८९ कयबलिकम्माका, पाठके संकेतसें, वीर भगवानके श्रावकोंका-दररोज जिन प्रतिमाका पूजन, सर्व जैना-चार्योंने लिखा है । उसके स्थानमें दूंडनीजी-मिथ्यास्वी पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिकोंकी-भयंकर मूर्त्तियांको, दररोज पूजानेको तत्पर हुई है । उनकी समीक्षा— १३३
- ९० दूंडनीजी-जैनके सब ग्रंथोंको, गणौडे कहती है । और जैनके आजतक जितने आचार्यों हुये है, उस सबको-साषट्पाचार्य कहकर, निंदती है । और-निर्युक्ति, भाष्य,

टीका, सब दूंदनीजीही, बननेको चाहती है । और नंदी सूत्रको मान्य करके, कहती हैकि—उसमें लिखे हुये सूत्र है, परंतु प्रमाणिक नहीं । इत्यादिक जूठ जूठ लिखके अपनी सफाई दिखाई है के, जूठ बोलना पाप है । उनकी समीक्षा.

१३८

९१ दूंदनीजीने, मूर्त्तिपूजा-पांडितोंसे सुनी, शास्त्रोंमेंभी देखी। और परम श्रावकोंको जिन मूर्त्तिके बदलमें-पितरादिकोंकी, और धन पुत्रादिकके वास्ते-पूर्ण भद्रादिकोंकी, मूर्त्तियांको पूजाती हुई, लिखती हैकि, सूत्रोंमें तो-मूर्त्तिपूजाका जिकर ही नहीं । उनकी सामान्यपणे समीक्षा. १४८

९२ पंचम स्वप्नके पाठमें, साधुको मंदिर बनवानेका, लोभ करके माला रोहणादिक करणेका-निषेध किया है । उस पाठमें दूंदनीजी, सर्वथा प्रकारसे, निषेध करके दिखलाती है । उनकी समीक्षा.

१५१

९३ महा निशीथके पाठमें, अरिहंत भगवंतकेही नामसे-प्रतिमाकी, गौतम स्वामीजीने अपनी पूजाका, प्रश्न किया है । भगवंतने-उसका निषेध किया है । उस पाठसे दूंदनीजी-सर्वथा प्रकारसे, निषेध करके दिखलाती है । उनकी समीक्षा.

१५५

९४ विवाह चूलियाके पाठमें-तीनों चोवीसीकी जिन प्रतिमाओंको बांदनेकीभी, और पूजनेकीभी, प्रथम भगवंतने आज्ञा दीई है । और साधु पूजाके आशयका दूसरा प्रश्नके उत्तरमें निषेध किया है । उसमें दूंदनीजी सर्वथा प्रकारसे निषेध करके दिखलाती है । उनकी समीक्षा.

१६२

- ९५ दादाजी जिनदत्त सूरिजीने-अनेक जिन मंदिरोंकी प्रतिष्ठाओ कराई है । उनोंने साधुजीकी पूजाका निषेध किया है । उस पाठसें दूढनीजी-सर्वथा प्रकारसें निषेध करके दिखलाती है । उनकी समीक्षा. १६७
- ९६ मूर्तिपूजाका चलन बारांवर्षी दुकालसें दिखलाती है । और भगवंतके पहिलेसेंभी होनेका कहती है । और चोथे आरेके साधुओंकोभी असंयमी ठहराती है । उनकी समीक्षा. १७२
- ९७ दूढनीजी-जैन तत्त्वादर्शादिक ग्रंथोंको निरर्थक ठहरायके, अपनी गण्य दीपिकासें-छोकोको प्रकाश दिखाती है । उनकी समीक्षा. १७५
- ९८ जैन तत्त्वसें विमुख दूढिये, सो तो सनातन जैन । और जैन तत्त्वानुकुल जैनी, सो तो सब नकल जैन । उनकी समीक्षा— १७८
- ९९ लोकाशाहने, पुराने शास्त्रोंका-उद्धार किया । और दीक्षा गुरुजीसें, लडकर लवजीने, दूढियांका-उद्धार किया । ओर पीतांबरियांका—कल्पित नयामत निकला है । उनकी समीक्षा— १८०
- १०० वेद व्यासके वखतमेंभी दूढिये हीथे, और सब सभाओंमें-जित मिलाते मिलाते, आजतक चले आये है । इस वास्ते अढाई सो वर्षका-मत लिखने वाले, मिथ्या वादी है । उनकी समीक्षा— १८७
- १०१ दूढनीजी-तीर्थकरोंकी, सब गुरुओंकी,जूठी निंदा लिखके, और अपना साध्वीपणा दिखाके, लिखती है कि-ऐसी

( ३० )      नेत्रांजन प्रथम भाग अनुक्रमणिका.

---

- पुस्तको वांचने वालोंका, अंतःकरण मलीन होता है !  
लिखने वालोंको पाप होता है । उनकी समीक्षा— १९९
- १०२ पूर्वाचार्यकृत-जिनेश्वर देवकी, मंगलिक मूर्तिकी स्तु-  
तिरूप, ग्रंथका प्रथम विभागकी पूर्णाहृति ॥ १९९
- 

॥ इति दूंडक हृदय नेत्रांजनस्य प्रथम विभागस्य अनुक्र-  
मणिका समाप्ता ॥

---

---

प्रथम भाग तात्पर्य प्रकाशक, दुहा बावनीकी,  
अनुक्रमणिका, नीचे मुजब ॥

विषय

पृष्ठ

- १ प्रथमके भागमें, जो दोनों तरफका सूत्र पाठका मेलसें, खंडन किया गयाथा, उसका तात्पर्य (५) दुहामें, अर्थके साथ दिखाया गया है ॥ २०१
  - २ मूर्त्तिके विषयमें, दूढनीजीने अनेक प्रकारकी जूठी कुतकों कीईथी, उसका खंडन प्रथम भागमें कियाथा । उसका तात्पर्य [६] दुहासें ( ४१ ) मा दुहातक, अर्थके साथ दिखाया गया है ॥ २०२
  - ३ सिद्धांतके पाठोंका, दूढनीजीने जो विपरीतार्थ कियाथा । उसका खंडन प्रथमके भागमें कियाथा । उसका तात्पर्य ( ४२ ) मा दुहासें ( ५१ ) मा दुहातक, अर्थके साथ दिखाया गया है ॥ २२३
  - ४ दूढनीजीने जूठ बोलना पाप मानाथा । परंतु (५२) मा दुहाके अर्थमें, ( २७ ) कलमके साथ, दूढनीजीका जूठ दिखाया गया है— २३६
- ॥ इति तात्पर्य प्रकाशक दुहा बावनीकी अनुक्रमणिका  
संपूर्ण ॥

॥ मूढोंका विचारताकी निष्फलता कालेख ॥

- १ इस लेखमें अनेक प्रकारके दृष्टांतोंके साथ मूढ प्राणियों काही विचार किया गया है— २४१

## ॥दूंडक हृदयनेत्रांजन द्वितीय विभागस्य अनुक्रमणिका॥

विषय—

पृष्ठ.

- १ हेय, ज्ञेय, और उपादेयके स्वरूपसें—शिव, विष्णु, भक्ता-  
दिकाश्रित, वस्तुके चार २ निक्षेपका स्वरूप— १
- २ अनादरणीय रूप, १ हेय वस्तुके चार निक्षेपमें, साधु  
पुरुषाश्रित—स्त्रीका दृष्टांत— ३
- ३ ज्ञानप्राप्ति करने योग्य, २ ज्ञेय वस्तुके चार निक्षेपमें—मेरु  
पर्वतादिक दृष्टांत— ५
- ४ स्मरण, वंदन, पूजन, करनेके योग्य, ३ परमोपादेय व-  
स्तुके चार निक्षेपमें—तीर्थकर भगवान्का दृष्टांत— ६
- ५ चार निक्षेपका—विषयमें, दूंडनीजीके कल्पित लक्षणका  
लेख— ७
- ६ दूंडनीजीका—कल्पित लक्षणमें, विपरीतपणेका किंचित्  
विचार— ८
- ७ सिद्धांत शब्दसें, जैन सूत्रोंकी—अति गंभीरताका विचार— ९
- ८ सूत्रकार, और लक्षणकारके मतानुसार, ग्रंथकारके त-  
रफसें—वस्तुके चार निक्षेपका लक्षण स्वरूप— १०
- ९ ग्रंथकारके तरफसें, चार निक्षेपका विषयमें किंचित् स-  
मजूति— ११
- १० ग्रंथकारके तरफसें, चार निक्षेपका विषयमें—दूसरा प्रका-  
रसें लक्षणद्वारा समजूति— १२
- ११ चार निक्षेपका विषयमें—सार्थकता, निरर्थकताका विचार १३
- १२ दूंडनीजीके मतसें, दूंडक जेठमलजीका रचित—समाहित  
सार पुस्तकका, निरर्थक रूप चार निक्षेपका स्वरूप— १७



- १३ दूँडनीजीके ही मतसेँ, दूँडनी पार्वतीजीकी रची हुई-ज्ञान दीपिका पुस्तकके, निरर्थक रूप चार निक्षेपका स्वरूप- २२
- १४ चार निक्षेपकी सत्यतामें, ठाणांग सूत्रका मूलपाठ अर्थकी साथ- २३
- १५ निक्षेप विषयका-उदाहरणमें १ शिव पार्वती । २ वेदया पार्वती । और ३ दूँडनी पार्वती । यह तीनों पार्वतीका ( १ ) शिव भक्त आश्रित, प्रथम ( १ ) नाम निक्षेपका स्वरूप- २३
- १६ यह तीनों पार्वतीका ( १ ) शिव भक्ताश्रित, ( १ ) स्थापना निक्षेपका स्वरूप- २५
- १७ यह तीनों पार्वतीका ( १ ) शिव भक्ताश्रित, ( १ ) द्रव्य निक्षेपका स्वरूप- २६
- १८ यह तीनों पार्वतीका ( १ ) शिव भक्ताश्रित, ( ४ ) भाव निक्षेपका स्वरूप- २७
- १९ यह तीनों पार्वतीका ( २ ) कामी पुरुषाश्रित, चार चार निक्षेपका स्वरूप- २९
- 
- २० यह तीनों पार्वतीका ( ३ ) दूँडक भक्ताश्रित, मूर्ति पूजकका संवाद पूर्वक ( १ ) नाम निक्षेपका स्वरूप- ३१
- २१ यह तीनों पार्वतीका ( ३ ) दूँडक भक्ताश्रित, मूर्तिपूजकका संवाद पूर्वक, ( २ ) स्थापना निक्षेपका, सविस्तर स्वरूप । इसमें दूँडनीजीका लेखके भी-अनेक उदाहरण दिये गये है- ३६
- २२ यह तीनों पार्वतीका ( ३ ) दूँडक भक्ताश्रित, ( ३ ) द्रव्य निक्षेपका, सविस्तर स्वरूप- ६८

- २३ यह तीनों पार्वतीका ( ३ ) दूढक भक्ताश्रित, ( ४ ) भाव  
निक्षेपका स्वरूप— ७१
- २४ दूढक श्री—गोपाल स्वामीजीका, मृतक देहकी मूर्ति, और  
उसका वर्णन— ७७
- २५ मूर्त्तिका खंडन करनेवाली, दूढनी पार्वतीजीकी—मूर्त्ति,  
और उसका वर्णन— ७७
- २६ वीतरागी मूर्त्तिसें, विपरिणाम होनेमें—दिवाने पुरुषोंका  
दृष्टांत— ८०
- २७ दूढनी पार्वतीजीका ही लेखकी, ( १९ ) कलमके स्व.  
रूपसें, हमारे दूढक भाइयके, संसार खातेका स्वरूप— ८३
- ॥ इति दूढक हृदय नेत्रांजनस्य द्वितीय विभागस्याऽनुक्र-

मणिका समाप्ता ॥

॥ प्रतिमामंडन स्तवनावली संग्रहानु क्रमणिका ॥

कर्त्ताकानाम-	गाथा--	पृष्ठ.
१ श्रीयशो विजय कृत स्तवन-	१५—	३
२ सोजतमें बन्याहुवा स्तवन-	३६—	४
३ श्रीसोभाभ्य विजय कृत स्तवन-	१५—	८
४ श्री जिनचंद्र सूरिकृत स्तवन-	११—	९
५ श्रीपरमानंद मुनिकृत स्तवन-	२२—	१०
६ संप्रतिराजाका,स्तवन कनक मुनि-९—		१२
७ श्रद्धिय रतन मुनिकृता चोपाई-	७—	१३
८ श्री लक्ष्मीवल्लभ सूरिकृत स्तवन-२७—		१४
९ श्री लाल मुनि कृत स्तवन-	८—	१६
१० प्रतिमामंडन रास. जिनदास-	६६—	१७
११ जिनराज सेवक कृत स्तवन-	६—	२९
१२ प्रतिमा विषये चिदानंदजीके उद्गारो, अर्थ सहित तीन कवित-	३—	२९
१३ माधव दूढक जिन प्रतिमा आदिकी करेली निंदा- गाथा-	१५ । ९ । ४—	३१
१४ कुंदनमल दूढके कपीलादासा का किया हुवा अ- नुकरण-	७—	३४
१५ जिन प्रतिमाके निंदक दूढकोंको-मुनिराज श्रीवल्लभ विजयकी तरफसे,कक्कादिकमें शिक्षा वत्रीसी-३२-३६		
१६ ग्रंथकार मुनिअमर विजयकी तरफसे, निंदक दूढ- कोंको-हित शिक्षाका स्तवन-	१७—	४२

॥ इति श्रीमद्विजयानंदसूरिशिष्य, मुनिअमर विजय  
कृता, स्तवन संग्रहावलीकी, अनुक्रमणिका, समाप्ता॥

स्वाध्वी श्री. शो. शम्य श्रीजीको. पुत्रि. अत्र  
 विजय की तरफ से चले.  
 (३६) देह-पत्र र वा. उ. अ. वा. जी. जी.

## ॥ दोनों कोन्फरन्सको—सूचना ॥

॥ पाठक गण! यह—नेत्रांजन पुस्तक, तीर्थकरोंका मूलत-  
 प्योंको, सत्यपणे प्रागट करनेके लिये, प्रेसमें छप रहाथा जब, बं-  
 ध करानेके वास्ते, संपकी हिमायती करती हुई दूढक कोन्फरन्स,  
 मूर्त्तिपूजक कोन्फरन्सको—अतिभेरणा कर रहीथी । ओर दोनों  
 कोन्फरन्सके अनेक पत्रो, हमारी उपर आते रहेथे ! और हम  
 योग्य उत्तर लिखते रहेथे । ओर—जैन समाचार, दूढक पत्रभी,  
 संपकी हिमायती करता हुवा, बारंवार पोकार उठाता रहाथा । सो  
 बहुतेक लोकोंको मालूम होनेसे, सब लेख हम दरज नहीं करते है ।  
 परंतु सत्य संपकी, हिमायत करने वाली—दोनों कोन्फरन्सको,  
 हमारी यह सूचना हैकि—दूढकोंके पुस्तकका, और हमारी तरफसे  
 बहार पडे हुये दोनों पुस्तकका, मुकाबलाके साथ, दो दो मध्यस्थ  
 पंडितोंको बिठाके, निःपक्षपातसे—निर्णय करा लेवे । और—तीर्थकर,  
 गणधरादिक, सर्व आचार्योंकी—जूठी निंदा करने वालोंको, योग्य  
 शासन करें । अगर जो ऐसा न करेंगे तो, कोन्फरन्सो हैसो सत्य  
 संपकी हिमायती करने वाली है ऐसा, कोईभी न मानेंगे । किंतु—  
 तीर्थकर, गणधरादिक, सर्व महा पुरुषोंकी निंदा करने वालोंकी  
 ही—हिमायत करनेवाली है । ऐसा खटका, सबके दिलमें, बना ही  
 रहगा ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

# ॥ ढूँढक हृदय नेत्रांजनं ॥

अथवा

॥ सत्यार्थ चंद्रोदयाऽस्तकं ॥

॥ मंगलाचरण ॥

ऐंद्र श्रेणिनता प्रतापभवनं भव्यांगिनेत्राऽमृतं, सिद्धां-  
तोपनिपद्भिचार चतुरैः प्रीत्या प्रमाणीकृता ॥ मूर्तिः  
स्फूर्तिमती सदा विजयते जैनेश्वरी विस्फुर न्मोहोन्माद  
घनप्रमाद मदिरा मत्तै रना लोकिता ॥ १ ॥

॥ अर्थः—इंद्रोकी श्रेणिसंभी नमन हुयेली, और प्रतापका घर,  
और भव्य पुरुषोंके नेत्रोंको अमृतरूप, और सिद्धांतके रहस्य वि-  
चारी पुरुषोंने बड़ी प्रीतिके साथ प्रमाण किई हुई, ऐसी श्री जि-  
नेश्वर देवकी “ मूर्ति ” सदा ( सर्वकाल ) आ दुनीयामां जयवंती  
रहो । और यह मूर्ति कैसी है कि, विस्फुरायमान जो मोह, ति-  
ससं हुवा उन्माद, और अत्यंत प्रमाद, यही भइ ‘ मदिरा ’ उनके  
वशसे बने है मदोन्मत्त, उनसें नही देखी गई यह जिनमूर्ति है ॥  
॥ इति काव्यार्थः ॥

॥ किं कर्पूरमयी सुचंदनमयी पीयूषतेजोमयी,  
किं चूर्णीकृतचंद्रमंडलमयी किं भद्रलक्ष्मीमयी ॥  
किंवा नंदमयी कृपारसमयी, किं साधु मुद्रामयी,

त्यंतमे हृदि नाथ मूर्ति रमला नो भावि किं किमयी ॥२॥

॥ अर्थ:—हे भगवन् तुमेरी “ मूर्ति ” क्या कर्पूरमय है ? अमृतका तेजरूप है ? क्या चूर्ण किया हुआ चंद्रका मंडलरूप है ? अथवा भद्रलक्ष्मीरूप है ? अथवा केवल आनंदरूप है ? वा कृपा-के रसमय है ? वा साधुकी मुद्रामय है ? एसी निर्मल मूर्ति मेरे हृदयमे क्या क्या रूपको धारण नहीं करती है ? अर्थात् सर्व प्रकारके जो जो उज्वल रूप पदार्थ है, उनकाही भावको, मेरे हृदयमें प्रकाशितपणे हो रही है ॥ २ ॥ ॥ इति मंगला चरणं ॥

॥ अब इस ग्रंथ करनेका प्रयोजन ॥

सत्यार्थ चंद्रोदयक नामधेयं, शस्त्रं जनानां न तु शास्त्रभावं  
॥ इत्येव मत्वा मुनिनाऽमरेणा, क्लृप्ता समालोचन  
सामवार्त्ता १

॥ अर्थ:—सत्यार्थ चंद्रोदय नामका “ पुस्तक ” शास्त्र रूप नहीं है, किंतु लोकोंको, केवल शस्त्ररूप ही है, वैशा समजकर “मुनि अमरविजयने ” यह समालोचन करणे रूप, सम वार्त्ताकी रचना, किई है ॥ १ ॥

॥ प्रथम “ चार निक्षेपका ” लक्षण कहते हैं ॥

॥ “ नाम निक्षेप ” लक्षण ॥ आर्याछंद ॥

यद्वस्तुनोऽभिधानं, स्थित मन्यार्थे तदर्थ निरपेक्षं ॥

पर्यायानऽनभिधेयं च नाम यादृच्छिकं च तथा ॥ १ ॥

॥ अर्थः—“ नाम ” है सो ‘ तीन ’ प्रकारसे रखा जाता है जो भाव वस्तुओंका (अर्थात् पदार्थोंका) नाम चला आता है सो, प्रथम प्रकारका नाम है ॥ १ ॥ ते “नाम” अन्य वस्तुओं में स्थित होके, उनके पर्यायवाची दूसरे नामको नहीं जनावें सो, दूसरा प्रकारका ‘ नाम ’ है ॥ २ ॥ अपनी इच्छापूर्वक हरकोइ “ नाम ” रखलेना यह तिसरा प्रकारका “ नाम ” समजना ॥ ३ ॥ \*

॥ तात्पर्य—विमानके अधिपतिओंमें “ इंद्र ” नामका, ही “ निक्षेप ” होता रहेगा, और पुरंदर, शचीपति, मघवा, आदि, पर्यायवाची नामको प्रवृत्तिभी किई जावेगी ॥ जैसे कि,—ऋषभदेव, नाभि सुत, आदिनाथ, आदि प्रथम तीर्थकरमें, नामकी प्रवृत्ति होती है । यह प्रथम प्रकारके नामका तात्पर्य ॥ १ ॥ यही पूर्वोक्त इंद्रादिक, ऋषभदेवादिक, नाम है सो, जब दूसरी वस्तुओंमें दाखल किये जावें तब, उनके पर्यायवाचक पुरंदरादिक, और नाभि सुतादिक, जो विशेष नाम है, उनकी प्रवृत्ति दूसरी वस्तुओंमें नहीं कि जावेगी । जैसे कि—गूज्जरके पुत्रका नाम “ इंद्र ” दिया है, परंतु इस गूज्जरके पुत्रमें—शचीपति, पुरंदर, आदि जो इंद्रके विशेष नाम है, उनकी प्रवृत्ति नहीं किई जावेगी । ॥ ऐसे ही दूसरा ऋषभदेवके नामवाले पुरुषमें—आदिनाथ, नाभिसुत आदि पर्यायवाची, दूसरे नाम नहीं दिये जावेंगे । यह दूसरा प्रकारके नामका तात्पर्य ॥ २ ॥ अब तिसरा प्रकारका रखा हुवा, नाम है सो, व्या-

\* संकेतित नामका उच्चारण, जिस ‘वस्तुके’ अभिप्रायसे किया, वह नाम श्रवण द्वारा होके, मनको जिस ‘वस्तुका’ बोध करा देवे, सोइ नाम, तिस वस्तुके नामनिक्षेपका, विषय समजना. इसमें तीनों प्रकारके नामका समावेश होता है ॥

करणादिकसें, सिद्ध हुये बिनाके शब्दोका, समजना । जैसे कि-डिब्ध, काविब्ध, गोलमोल, आदि, अपनी इछा पूर्वक रखा गया सो समजना ॥ ३ ॥

॥ जो यह “ तीन ” प्रकारसें नाम रखे जाते है, उसको ही जैन सिद्धांतकारोंने, नामनिक्षेपके स्वरूपसें, वर्णन किये है ॥ परंतु दूसरा कोई भिन्न स्वरूपवाला, “ नाम निक्षेपका ” प्रकार नहीं है ॥

॥ इति प्रथम “ नामनिक्षेपका ” लक्षणादिक स्वरूप ॥

॥ अब दूसरा “ स्थापना निक्षेपका ” लक्षणादिक, कहते है ॥

यत्तु तदऽर्थवियुक्तं, तदऽभिप्रायेण यच्च तत्करणि ॥

लेप्पादि कर्म स्थापनेति, क्रियतेऽल्पकालं च ॥२॥

॥ अर्थः—जे वस्तुमें जो गुण है, उनके गुणोंसे तो रहित, और उसीके अभिप्रायसें, उनके ही सदृश, जो करणि, ( अर्थात् सदृ रूपा जो आकृति ) जैसे—तीर्थकरादिककी मूर्ति, ॥ १ ॥ “ चकारसें ” २ अन्यथा प्रकारसेंभी ( अर्थात् असदृ रूपा “ यह दोनो भेदवाली स्थापना, लेप्पादिक दश प्रकारमे करनेकी, सूत्रकार दिखावेंगे, उस विधिसें किई जो “ स्थापना ” उसका नाम “ स्थापना निक्षेप ” है, सो “ स्थापना ” अल्प कालकी, और चकारसें, यह तात्पर्य है कि, यावत् कालतककी भी किई जाती है ॥ २ ॥ ×

× जिस नामवाली वस्तुका, सदृशरूपकी आकृतिसे, अथवा असदृशरूपकी आकृतिसे, ने त्रादिक द्वारा होके, मनमें बोध हो-जाना, सोई उस वस्तुका, स्थापना निक्षेपका, विषय समजना ॥



इति श्लोकार्थः॥ तात्पर्य—जे जे नाम निक्षेपका लक्षणसें, सिद्ध स्वरूपकी वस्तुओ है, ते ते वस्तुओके गुणोंसें तो रहित, मात्र उनके सदृश्य आकृति, अथवा असदृश्य आकृति, लेप्यादिक दश प्रकारमें करके, उस वस्तुको समजना, सो सो “ स्थापना निक्षेप ” रूपसें, मानी जाती है ॥

जैसेकि-तीर्थकरकी मूर्तियां, अथवा साधु आदिकी मूर्तियां, सदृश्य आकृतिसें होती है । और आवश्यकादिक क्रिया रूप वस्तुओं को जाननेके लिये, अक्षरोकी स्थापना, अथवा कायोत्सर्गका स्वरूप वाला साधु आदिकीभी स्थापना, किई जाती है, सो यह सर्व “ स्थापना निक्षेपका ” विषय रूप समजना ॥ २ ॥

॥ इति दूसरा “ स्थापना निक्षेपका ” लक्षणादि स्वरूप ॥

“ अब तिसरा “ द्रव्य निक्षेपका ” लक्षणादिक लिखते है ॥  
भूतस्य भाविनो वा, भावस्य हि कारणं तु यल्लोके ॥  
तद् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः, सचेतनाऽचेतनं कथितं ॥ ३ ॥

॥ अर्थः—इस लोकमें जो अतीत, और अनागत कालकी भाव पर्यायका, \*कारणरूप वस्तु है, उस वस्तुको “ द्रव्य ” स्वरूपसे कहते है, सो द्रव्यरूप वस्तु, एक चेतनरूप, दूसरा अचेतन रूप, और तिसरा चेतनाऽचेतनरूप, ऐसे तीन प्रकारकी तत्त्वके ज्ञान पुरुषोंने कही है ॥ ॥ इति श्लोकार्थः ॥

\* जिसके बिना “ भाववस्तु ” भिन्नस्वरूप नही दिखती है, और नेत्र श्रवणादिकसें, जिसके स्वरूपका बोध, मनको होता है, सोई “ द्रव्य निक्षेप ” का विषय है ॥

तात्पर्य—जैसेकि—इंद्र पदसें च्यवन होके, मनुष्यपणे प्राप्त हुयेको “ इंद्र ” कहना, यह भूतकालकी अपेक्षासें ॥ और मनुष्य पदसें च्यवन होके, इंद्रपणे उत्पन्न होने वाले मनुष्यकोभी “ इंद्र ” कहना, यह भावी कालकी अपेक्षासें । जैसेकि—पुत्रको पट्टाभिषेक करके, राज कार्यसें निवृत्त हुये राजाकोभी, “ राजा ” कहना । अथवा राज्य प्राप्त होने वाला कुमारको, “ राजा ” कहना । इहां १ चेतन वस्तु, कारण रूप द्रव्य है ॥ अब जो काष्ठादिक वस्तुसें, उत्पन्न हुयेली, डब्बी आदिक वस्तुमें, काष्ठका आरोप करणा ॥ अथवा काष्ठादिकसे, उत्पन्न होने वाली, डब्बी आदि वस्तु काष्ठमें ही है वैसा मान लेना, सो इहां दोनो जगें पर, २ अचेतन, काष्ठ ही कारणरूप द्रव्य है ॥ ऐसें ही जो चेतन अचेतनरूप वस्तुसें, उत्पन्न हुयेली, अथवा उत्पन्न होने वाली, वस्तु होवें, उनका कारण, ३ चेतन अचेतनरूप, समजना ॥

यह जो १ चेतनरूप वस्तु । अथवा २ अचेतनरूप वस्तु । अथवा ३ चेतना चेतनरूप वस्तु है । उनका भूतकालमें, अथवा भविष्यकालमें, जो कारणरूप पदार्थ है, सोई “ द्रव्य निक्षेप ” का विषय है ॥ क्योंकि कारण विना, कार्यकी उत्पत्ति, होती ही नहीं है । परम उपयोगी जो, “ कारणवस्तु ” है, वही कार्यभावको ” प्राप्त होता है, उनको “ द्रव्य निक्षेप ” का विषय माना है सो निरर्थक स्वरूप कभीभी न होगा ।

॥ इति तृतीय “ द्रव्य निक्षेपका ” लक्षणादि स्वरूप ॥

॥ अथ चतुर्थ “ भाव निक्षेपका ” लक्षणादि लिखते हैं ॥  
॥ भावो विवक्षित क्रियाऽनुभूतियुक्तो वै समाख्यातः ॥

सर्वज्ञै रिन्द्रादिव दिहें दनादि क्रियाऽनुभावत् ॥ १ ॥

॥ अर्थ.—व्याकरणकी व्युत्पत्ति द्वारासें, अथवा शास्त्रका संकेतसें, अथवा लोकोंके अभिप्रायसें, जे जे शब्दोंमें जे जे क्रियाओ मान्य किई हुई हो, ते ते क्रियाओंका, ते ते वस्तुओंमें, ( अर्थात् पदार्थोंमें ) वर्त्तन होता हो, तब उस वस्तुको, “ भाव रूप ” सर्वज्ञ पुरुषोंने कहा है । जैसेकि—परम ऐश्वर्य परिणामका भोगको, वर्त्तन करता हुवा इंद्र है, सोई “ भाव इंद्रका ” विषय है । क्योंकि—तिस वर्त्तमान कालमें, साक्षात् रूप इंद्रमें, परम ऐश्वर्यकी क्रियाका, अनुभव हो रहा है । यही भावस्वरूपके वस्तुओंको, जैन सिद्धांतकारोंने, “ भाव निक्षेप ” का विषयस्वरूपसेंही माने है ॥

॥ इति श्लोकार्थः

॥ तात्पर्य—जिस जिस\* भाव निक्षेपके विषयभूत वस्तुमें जे जे नाम दिये गये हैं, अथवा दीये जाते हैं, सो सो “ नामनिक्षेप ” ही है, । सो सो नाम निक्षेप है सो, संकेतके जाण पुरुषोंको, वह नामका श्रवण मात्र है सोई उसी भावनिक्षेपरूप वस्तुकाही, बोधकी जागृति कराता है, प्रत्यक्ष वस्तु होवें उसका प्रत्यक्षपणे, और परोक्ष वस्तु होवें उसका परोक्षपणे ॥ १ ॥ परंतु जो पुरुष संकेतको नही जानता है और परोक्ष वस्तुको देखीभी नही है वह, पुरुष उस भाव वस्तुका बोधको नही प्राप्त हो सकता है, तब उस पुरुषके वास्ते, वही नाम निक्षेपका परोक्ष पदार्थकी, “ आकृति ” दिखाकेही, विशेषपणे बोध करा सकते हैं, वह किई हुई आकृति हैसो, भावरूप पदार्थके

\* दुनीयामें जितने वस्तु, दृश्य, अदृश्य स्वरूपकी कही जाती है, वह सभी भी भावनिक्षेपके विषयभूतकी ही है ॥

सदृश होनेसे, भाववस्तुका बोध करानेमें, नाम सेभी विशेषही कारणरूप होती है, परंतु निरर्थक रूपकी नहीं है ॥२॥

॥ अब भाव पदार्थकी जो पूर्व अवस्था है, अथवा अपर अवस्था है, सोभी उस भाव पदार्थका “द्रव्य स्वरूप” परम कारणरूप होनेसे, उसी भाव पदार्थकाही बोध कराने वाला है, इस वास्ते सर्व प्रकारसे ही उपयोग स्वरूपका है, परंतु निरर्थक रूप नहीं है ३ ॥ अब चतुर्थ निक्षेपका विषयभूत जो ‘भावपदार्थ’ है, सो तो उपयोग स्वरूपकाही है, ॥ इति चार निक्षेपका सामान्य प्रकारसे तात्पर्य ॥

॥ विशेष समजूती—जिस जिस “ नामका ” आदर होता है, सो सो, केवल नाम मात्रका नहीं होता है, परंतु उस नामके संबंधवाला, “ भाव पदार्थका ” ही आदर होता है । जैसे—ऋषभादिक नामका, आदर करनेसे, हम तीर्थकरोंकाही आदर करते हैं ॥ यद्यपि यह ऋषभादिक नाम, दूसरी वस्तुओंका होगा, तोभी हमको बाधक न होगा, क्योंकि—जिस जिस वस्तुके अभिप्रायसे, नामका उच्चारण करेंगे, उस उस वस्तुकाही बोध करानेमें, नाम उपयोगवाला रहेगा, इससे अधिक नाम निक्षेपका प्रयोजन नहीं है ॥ १ ॥

अब यही “ “ ऋषभादिक ” नाम है सो, अनेक वस्तुओंके साथ संबंधवाले हो चुके हैं, अथवा होते हैं, उस उस “ भाववस्तुका ” दुर्लक्ष करके भी, इसीही ऋषभादिक के नामसे, हम हमारा जो इष्ट रूप तीर्थकरो है, उस वस्तुकाही लक्ष कर लेते हैं; और हमारा परम कल्याण हुवा, एसे नामके उच्चारण मात्रसे ही मानते हैं, तब जो खास वीतराग दशाका बोधको करानेवाली, और तीर्थकरोंके ध्यानस्थ स्वरूपकी, और ऋषभादिक नाम निक्षेपकीतरां, दूसरी वस्तुओंसे, संबंधको नहीं रखनेवाली, जिनेश्वर भगवानकी

मूर्त्तियोंका, आदर करनेसे, हमारा कल्याण क्यों न होगा ? अपितु निश्चय करकेही, हमारा कल्याण होगा। जो हम एक प्रकारसे विचार करें तो, नामसेभी, मूर्त्तियां है सो, विशेषपणेही “वस्तुका” बोध करानेवालीयां होती है. कारण यह है कि—ऋषभादिक नाम है सो, दूसरी वस्तुओंके साथ, मिश्रितपणेभी होते रहते है, परंतु वीतरागी मूर्त्तियां तो, किसीभी दूसरी वस्तुओंके साथ, संबंध नही रखतीयां है, यही मूर्त्तियोंमें विशेषपणा है ॥ २ ॥ अब जो ऋषभादिक नाम, और उनकी मूर्त्तियां, हमारा कल्याणको करने वाली हो चूकी है, उस तीर्थकरोंकी—बाल्यावस्था, अथवा मृतक देहरूप अपर अवस्था है सो, देवताओंका चित्तको भी, भक्तिभाव करनेको द्रवित करती है, सो तीर्थकर ‘भावका’ कारणरूप शरीरकी, भक्तिभाव करनेको, हमारा चित्त द्रवीभूत क्यों न होगा ? अपितु अवश्यही होगा, परंतु हमारा भाग्यकी न्यून्यता होनेसे, ऐसा संबंधही मिलनेका कठीन है ॥ ३ ॥ अब जे जे वस्तुओ साक्षात्पणे है, और उनकी प्रवृत्ति; अपने अपने कार्यमें हो रही है, सोई “ भाव निक्षेपका ” स्वरूपकी है. ॥ जिसको जो वस्तु उपादेयरूप है, सो तो अपना उपादेयके स्वरूपसे मानताही है. । इस वास्ते साक्षात् तीर्थकरो है सो तो, हमारा उपादेय रूपही रहेंगे । इसमेंतो कुछ विवादका स्वरूप ही नही है ॥ ४ ॥ इतिचार निक्षेपकी समजूती ॥

॥ अब दूसरी प्रकारसेभी किंचित् समजूती करके दिखावते है अब जिस वस्तुके “ नाम निक्षेपकी ” अवज्ञा करेंगे, उससेभी उस ‘भाव’ पदार्थकी ही अवज्ञा होती है, जैसे—अपने शत्रुके नामकी अवज्ञा लोक करते है. ॥ १ ॥ फिर उस शत्रुकी मूर्त्तिकोभी विकृत वदनसेही देखते है ॥ २ ॥ और उनकी पूर्व अपरकी अवस्था-

को श्रवण करकेभी आनंदित होते ही नहीं है, सोभी उस 'भाव' पदार्थकीही अवज्ञा है ॥ ३ ॥ ऐसैं सर्व पदार्थोंके विषयमें विचारणेका है ॥ इति द्वितीय प्रकार.

इसमें फिरभी विशेष यह है कि—जो 'भाव' पदार्थ, जिस पुरुषको, अनिष्ट रूप है; उस पुरुषको उसका नाम निक्षेप ॥ १ ॥ उसकी स्थापना ॥ २ ॥ उनकी पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूप भी ॥ ३ ॥ दिलगीरी ही करानेवाले होते है इत्यादिक समजूति, दूसरे भागमें, विशेषण करके हम दिखावेंगे.

एक हूढककी तर्क—जैन सूत्रोंमें,—चार निक्षेप कहै है, इसमें सिद्ध होता है कि, तीर्थंकर भगवानने चार ही बातको छुट, दीई हुई है, इसमेंसे कभी एक बात, हम न माने तो, क्या संसार सागर नहीं तरसकते है ? तुम चार निक्षेपको मानने वाले ही तरोंगे इति अभिप्रायः ॥

उत्तर—तर्कवालेको, हम इतनाही पुछते है कि—नवतत्त्वमेंसे एक तत्त्वका लोप, कोई पुरुष दुराग्रहसे करे, और उनका लोप विषयकाही उपदेश देवे, वह संसार सागर तरें के नहीं ? और ऐसैही षट् द्रव्यमेंसे, एक जोव द्रव्यका लोप, दुराग्रहसे करनेवाला, और छ जीवकी कायमेंसे—एक त्रस जीवकी कायका लोप, दुराग्रहसे करनेवाला, । संसार सागर तरेंके नहीं ? ॥ ऐसैहि तीर्थंकर भाषित जे जे मूल स्वरूपके तत्त्वो है, उसमेंसे मात्र एकैक ही तत्त्वका लोप, दुराग्रहसे करनेवाला, संसार सागर तरेंके नहीं ? । तुम कहोंगेकि—ऐसे तत्त्वका लोप, करने वाला नहीं तर सकाता है । तबतो तुमरे प्रश्नमें, तुमनेभी योग्य विचार कर लेना ॥ परंतु हमतो इस बातमें, ऐसा अनुमान करते है कि—गणधर गूथित तत्त्वो-

मेसैं—एक ही तत्त्वका लोप करनेवाला है, उनको, हजारो तो जैन ग्रंथोंका, और हजारो ही महान् पुरुषोंका, अनादर करके, अज्ञानां धपणसें, महा प्रायश्चित्तका, गठडा ही, शिर पर उठाना पडता है, कारण यह है कि—वह लोप किया हुवा तत्त्व हेसो ग्रंथोंमें व्यापक, और युक्ति प्रयुक्ति आदिसें सिद्धरूपही होता है, मात्र मूलरूप जैन सिद्धांतोंमें, बडी गंभीरताके स्वरूपसें, सूचितपणे होनेसें, वह एक तत्त्वका लोप करने वाला, नाम धारी उद्धत शिष्यको, प्रगटपणे मालूम नही होनेसें ही, यह प्रकार खडा होता है, इसीही वास्ते उनके पिछे चलने वालोंको, अनेक जूठ साच बातोंको खडी करनी पडती है, तब ऐसें जैन तत्त्वमें विपर्यास करने वालेके निस्तारका निगर्थ कैसें करसकेगे ? सिद्धांतके अभिप्रायसें देखें तबतो तत्त्वोंके विपर्यास करने वालोंके अनंत संसारका भ्रमणही सिद्ध होता है । इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इहांतक लक्षणकार महाराजने, जो यह चारनिक्षेपके लक्षण बांधे है सो, श्री अनुयोगद्वार सूत्रकी, एक मूल गाथाका ही अर्थ प्रगट करनेके वास्ते बांधे है । और उस लक्षण कारके अभिप्रायसें ही, हमने भी अर्थ करके दिखाया है, परंतु कुछ अधिकपणेसें नही लिखा है ॥ सोई सूत्रकी गाथा, इहांपर लिखके भी बतावते है.

॥ तद्यथा ॥

॥ जथ्यय जं जाणोज्जा, निख्वेवं निख्विवे निर वसेसं ।  
जथ्य विय न जाणोज्जा, चउक्कगं निख्विवे तथ्य ॥ १ ॥

॥ अर्थः—जिहां जिस वस्तुमें, जितने निक्षेपें करणेका जाने, वहां उस वस्तुमें उतने ही निक्षेपें करें । जिस वस्तुमें अधिक निक्षेपें

करणेका नहीं जान सकें, उस वस्तुमें “ चार निक्षेपें ” तो अवश्य ही करें. ॥ १ ॥

इसी ही गाथाको, दृढनी पार्वतीजीने, सत्यार्थ-पृष्ठ-२० में लिखके, अर्थ भी किया है सो यह है कि-जिस जिस पदार्थके, विषयमें, जो जो निक्षेपे जाने, सो सो निर्विशेष निक्षेपे। जिस विषयमें ज्यादा न जाने, तिस विषयमें चार निक्षेपें करे। अर्थात् वस्तुके स्वरूपके समजनेको, चार निक्षेप तो करे। नाम करके समजो। स्थापना ( नकसा ) नकल करके समजो। और ऐसे ही पूर्वोक्त द्रव्य, भाव, निक्षेप करके समजो। परंतु इस गाथामें ऐसा कहा लिखा है कि-चारो निक्षेपे, वस्तुत्वमें ही मिलाने, वा चारों निक्षेपे बंदनीय है। ऐसा तो कही नहीं। परंतु पक्षमें, हठमें, यथार्थपर निगाह नहीं जमती, मनमाने अर्थ पर दृष्टि पडती है। यथा हठ वादियोंकी मंडलीमें, तत्त्वका विचार कहां, मनमानी कहें चाहे जुट चाहे सच है ॥

॥ पाठक वर्ग इस गाथामें “ अर्थ ” इतना ही मात्र है कि-दूनीयामें जो वस्तु मात्र है, उनकी समज विशेष प्रकारसें भी कर सकते हैं, अगर विशेष प्रकारसें नहीं कर सकें तो, चार प्रकारसें तो, अवश्य ही करनी चाहियें। इस विषयको सिद्धांतकारोंने-चार निक्षेपकी, संज्ञासें वर्णन किया है। परंतु दृढनीजीने, सिद्धांतकारोंका अभिप्रायको समजे बिना, अधिक पणेसें छिनकाट किया है, सो तो हमारा किया हुआ चार निक्षेपका लक्षणार्थसें ही, आप लोकोने समज लिया होगा, और आगे पर भी जिहां जिहां विचार करते चलेंगे, वहां वहां समजाते जावेंगे। इस वास्ते इहां वि-क्षेपणे कुछ नहीं लिखते है.



परंतु इस चारनिक्षेपके विषयमें, पाठक वर्गको, प्रथम इतना ख्याल अवश्यही करके हृदयमें धारण कर लेना चाहिये कि, जिससे आगे आगे समजनेको बहुत ही सुगमता हो जावे, सो ख्यालमें कर लेनेकी बात यह है कि—

॥ जे जे “ भाव स्वरूपकी ” वस्तुओं, उपादेय स्वरूपकी ( अर्थात् प्रीति करनेके, अथवा परम प्रीति करनेके, स्वरूपकी ) होती है, उनके चारो ही निक्षेप, उपादेय स्वरूपके ही रहेंगे । इसमें किंचित् मात्रका भी फरक न समजेंगे. ॥ १ ॥

और जे जे “ भाव स्वरूपकी ” वस्तुओं, ज्ञेय स्वरूपकी ( अर्थात् ज्ञानही प्राप्त करनेके स्वरूपकी ) होंगी, उस वस्तुके, चारो ही निक्षेप, ज्ञान ही प्राप्त करानेमें कारणरूप रहेंगे. । इसमें भी किंचित् मात्रका फरक न समजेंगे. ॥ २ ॥

और जे जे “ भाव स्वरूपकी ” वस्तुओं, हेय स्वरूपकी ( अर्थात् दिलगीरी उत्पन्न करानेके स्वरूपकी ) होंगी, उनके चारों निक्षेप भी, दीलगीरी ही उत्पन्न करानेमें, कारणरूप रहेंगे. । इसमें ~~भी किंचित् मात्रका फरक न समजेंगे. ॥ ३ ॥~~

परंतु इसमें भी विशेष ख्याल करनेका यह है कि—जिस समुदायने, अथवा एकाद पुरुषने, जिस भाव वस्तुको उपादेय के स्वरूपसे, मानी है, उनको ही वह “ भाव स्वरूप वस्तुके ” चारों निक्षेप, उपादेय स्वरूपके रहेंगे. । परंतु अन्यजनोंको, उपादेय स्वरूपके न रहेंगे. । जैसे कि—“ तीर्थंकररूप भाववस्तुका ” चारों निक्षेपको, जैन लोक मान देते है, वैसे, अन्यमतवाले नहीं देते है ॥

और “ कृष्ण आदि भावस्तुके ” चारो निक्षेपको मान, जैसे उसके उसके भक्त लोक देवोंगे, वैसे, दूसरे लोक, मान नहीं देवोंगे । यह जग जाहिरपणे की ही बात है ॥

॥ अब इस “ चार निक्षेपके ” सामान्य बोधके, दुहे कहते हैं ॥

दुहा.

वस्तुके जो नाम है, सोई नाम निक्षेप ॥

वस्तु स्वरूप भिन्न देखके, मतकरो चित्त विक्षेप ॥ १ ॥

अर्थ:—जिस जिस वस्तुका जो “ नाम ” दिया गया है, अथवा दिया जाता है, सोई “ नाम निक्षेपका ” विषय है, परंतु एक नामकी. अनेक वस्तु देखके, चित्तमें विक्षोभ नहीं करना, । यद्यपि एक नामकी, अनेक वस्तुओं होती है; तो भी संकेतके जाण पुरुषो है सो, नाम मात्रका श्रवण करनेसें भी यथो चित्त योग्य वस्तुका ही, बोधको प्राप्त होते है ॥ १ ॥ इति नाम निक्षेप ॥

॥ किइ आकृति जिस वस्तुकि, वामे ताकाही बोध ।

सो स्थापन निक्षेपका करो सिद्धांतसें सोध ॥ २ ॥

॥ अर्थ:—जिस वस्तुका, नाम मात्रका श्रवणसें, हम बोध कर लेनेको चाहते हैं, उस वस्तुकी आकृतिसें, उनका बोध करनेको क्यों न चाहेंगे ? कारण यह है कि उस आकृतिमें तो, उसी वस्तुका ही, विशेष प्रकारसें, बोध होता है । सोई स्थापना निक्षेपका विषय है, इस बातका सोध जैन सिद्धांतसें करके देखो, यथा योग्य साक्ष्य हो जायगा ॥ २ ॥ इति स्थापना निक्षेप ॥

॥ कारणसें कारज सदा, सो नही त्याज्य स्वरूप ।  
द्रव्य निक्षेप तामें कहें, सर्व तीर्थकर भूप ॥ ३ ॥

॥ अर्थ:-वस्तु मात्रकी, पूर्व अवस्था, अथवा अपर अस्था है, सोई कारणरूप “ द्रव्य ” है, उस द्रव्य स्वरूपको, सिद्धांतकारोंने, “ द्रव्य निक्षेपका ” विषयरूप माना है, सो कुछ त्यागनेके योग्य, नही होता है, ऐसा सर्व तीर्थकरोंने कहा है ॥ और हम प्रत्यक्षपणे भी देखते है कि-भविष्यकालमें, पुत्रसें सुख पानेकी इच्छावाली माता, बालककी विष्टादिसें भी, घृणा ( अर्थात् बालकका तिरस्कार ) नही करती है । और अपना पुत्रके मरण बाद भी, बडा विलाप ही करती है । अगर जो यह दोनों अवस्था, त्याज्यरूपकी होती, तब पुत्रका प्रथम अवस्थामें काहेको विष्टादि उठाती ? और मरण बाद दिलगरी भी काहेको करती ?

परंतु कारणरूप द्रव्य है, सो भी उपयोग स्वरूपका है ॥ इस वास्ते तीर्थकरोंकी भी, पूर्व अपर अवस्था है सो भी हमारे परम पूजनिक स्वरूपकी ही है, परंतु त्याज्य स्वरूपकी नही है । और तो क्या परंतु जो जो पुरुष, जिस जिस भाव वस्तुको चाहनेवाले है, सो सो पुरुष उस उस वस्तुका कारणरूप “ द्रव्यकाभी ” योग्यता प्रमाणे, आदर, सत्कार, करते हुये ही, हम देखते है । जैसेकि-दीक्षा लेनेवालेका, और सृत्क साधुकी देहका, जो तुम हूँदकभी, आदर करतेहो । सोभी, साधु भावका कारणरूप “ द्रव्य वस्तुका ” ही करते हो । तो पिछे तीर्थकर भगवानकी, पूर्व अपर अवस्था, आदरनीय क्यों न होगी ? हमतो यही कहते है कि-मात्र भगवानके वैरी होंगे, वही तीर्थकरोंकी

मूर्त्तिका । २ । और तीर्थकरोंकी पूर्व अपर अवस्थाका । ३ । अनादर करनेको प्रवृत्त मान होगा, परंतु जो भव्यात्मा होगा सोतो, तीनकालमेंभी, अनादर करनेको, प्रवृत्त मान न होगा । किंतु शक्ति प्रमाणे, भक्ति ही करनेमें, तत्पर हो जावेगा ॥ ३ ॥ इत्यल मधि-केन ॥ इति तृतीय “ निक्षेपका ” स्वरूप.

॥ नाम आकृति और द्रव्यका, भावमें प्रत्यक्ष योग ।  
तिनको भाव निक्षेपसें, कहत है गणधर लोग ॥४॥

॥ अर्थ: “ भाव वस्तुका ” दूसरी जगेंपर श्रवण किया हुवा नाम । १ । और उनकी देखी आकृति ( अर्थात् ) मूर्त्ति ) । २ । और पूर्व अपर कालमें, देखा हुवा द्रव्य स्वरूप । ३ । यह तीनोंकोभी, प्रत्यक्षपणे जिस “ भाव वस्तुमें ” हम जाण लें, सोई “ भाव निक्षेपका ” विषयभूत पदार्थ है । ऐसा गणधर लोकोने ही, सिद्धांत रूपसें वर्णन किया है ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ “ भाव निक्षेपका ” स्वरूप ॥

॥ इति चारों निक्षेपके विषयमें शिघ्र बोधक दूरे ॥

सूचना—दुहामें चार निक्षेपके लक्षण, हमारा तरफसें, शिघ्र बोधके वास्ते लिखे है । अगर किसी वस्तुके निक्षेपमें, सिद्धांत कारके अभिप्रायसें, फरक मालूम हो जावे तो, सिद्धांतकारके ही वचनसें निर्वाह कर लेना, परंतु हमारा वचनपर आग्रह नही करना, कारण यह है कि—महापुरुषोंकी गंभीरताको, हम नही पुद्च सकते है ॥

॥ इहांतक जो चार निक्षेपका विषय कहा है सो, सर्व वस्तुका सामान्यपणेसे, चार निक्षेपका बोध करानेवाली, श्री अनुयोग द्वार सूत्रकी, मूल गाथाका ही अभिप्रायसें कहा है. ॥

॥ परंतु अरूपी ( अर्थात् रूपरहित ) ज्ञान गुणादिक, जो जो वस्तुओं है, उनका निक्षेप विशेष प्रकारसे, कोई आधार वस्तुके योगसेही, समजनेके योग्य होते है ॥ इस वास्ते करुणा समुद्र गणधर भगवान, ते ते अरूपी वस्तुओंके 'निक्षेपोंका' विशेष बोध करानेके वास्ते, प्रथम वीतराग भाषित तत्त्व समुद्रका एक अंशरूप, और हमारी नित्य क्रियाका प्रकाशक, जो 'आवश्यक' सूत्र है, उनकाही मुख्यत्वपणा करके, और विशेष प्रकारसे निक्षेपोंका बोध करानेके वास्ते, फिरभी विशेष सूत्रकी रचना करते है, उनका पाठ नीचे मुजब.

॥ प्रथम उस आवश्यकका नाम निक्षेप सूत्रं ॥

॥ से कितं आवस्सयं, आवस्सयं चउच्चिहं पण्णात्तं, तंजहा । नामा वस्सयं १ । ठवणा वस्सयं २ । दव्वा वस्सयं ३ । भावा वस्सयं. ४ । से कितं नामा वस्सयं २ जस्सणं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाणं वा, आवस्स एति नामं कज्जइ सेतं नामा वस्सयं. ॥ १ ॥

अर्थः—अवश्य करणे योग्य, अथवा आत्माने गुणोंके वश्य करें, अथवा गुणोंसे वासित करें, सो क्रियाका वाचक, आवश्यक वस्तुका, चार निक्षेप करते है ॥ नाम आवश्यक. १ । स्थापना आवश्यक. २ । द्रव्य आवश्यक. ३ । भाव आवश्यक. ४ । नाम आवश्यक क्या है कि—जिस जिवका, मनुष्य आदिका । अजीवका, पुस्तक आदिका । अथवा बहुत जीवोंका अजीवोंका । दोनो मिले

हुये आदिका, आवश्यक वैसा नाम किया सो " नाम आवश्यक " है ॥ १ ॥

नाम निक्षेप सूत्रका तात्पर्यः—इहां जो " आवश्यक " शब्दका, निक्षेप करनेमें, सूत्रकारकी प्रवृत्ति है सो, तीर्थंकर भगवानके, अरूपी ज्ञान गुणका जो एक अंश, छ आवश्यक रूप "वस्तु है " उनकी मुख्यतासेही है । और प्रसंगसे जिहां जिहां इस नामका संभव होता है सोभी दिखाया है । परंतु हम तीर्थंकरोंके भक्त तो, अनुपादेय वस्तुओंका दुर्लक्ष करके, जिहां इष्टरूप अवश्य क्रियाका, संभव है । उनकाही बोध, नाम मात्रसेभी कर लेते है । इस वास्ते उनका आधारभूत आवश्यक पुस्तक 'वस्तुका' अभिप्रायसे; तिरस्कार हम नाम मात्रसेभी, सहन न कर सकेंगे । जैसे— " कुरान " नाम मात्रका तिरस्कार मुसलमानो, और " वेद " नाम मात्रका तिरस्कार, ब्राह्मणो सहन नही कर सकते है ॥ कोई पुछेंगे कि—उपादेय वस्तुके अभिप्रायसे, सूत्रकी रचना हुई है, ऐसा तुमने कैसे जाना । उत्तर—आत्माको गुणोंसे वासित करे इत्यादिक अर्थसे ॥ और सत्यार्थ—पृष्ठ. २ में—पार्वतीजीनेभी लिखा है कि—अवश्य करनेके योग्य, सो आवश्यक इस लेखसेभी, और आगेके सूत्रोंसेभी, सिद्धरूपही पडा है । मात्र विचार करनेवाला होना चाहीये ? ॥

॥ इति नाम निक्षेप सूत्रका तात्पर्यार्थ ॥

॥ इति आवश्यक नाम निक्षेप सूत्रार्थः ॥

अथ आवश्यक स्थापना निक्षेप सूत्र.

सेकितं ठवणावस्सयं २ जण्णां ' १ कठकम्मेवा ।

२ चित्तकम्मेवा । ३ पोथकम्मेवा । ४ लिप्पकम्मेवा ।  
 ५ गंधिमेवा । ६ वेढिमेवा । ७ पूरिमेवा । ८ संघाइ-  
 मेवा । ९ अरकेवा । १० वराडएवा । एगोवा, अणो  
 गोवा, सम्भावठवणा वा, असम्भावठवणा वा, आवस्स-  
 एत्ति ठवणाठ विजइ सेतं “ठवणावस्सयं” २ ॥ नामठव-  
 णाणां को पइविसेसो णामं आवकहिअं, ठवणा इत्त-  
 रिआ वा, आवकहिआ वा ॥

अर्थः—स्थापना आवश्यक क्या है कि—? काष्ठमें । २ चित्रमें ।  
 ३ पत्र आदिके छेदमें, अथवा लेख मात्रमें । ४ लेप कर्ममें । ५ गंध-  
 निमें । ६ वेष्टनक्रियामें । ७ धातुके रस पूरणमें । ८ अनेक मणि-  
 काके संघातमें । ९ चंद्राकार प्राषाणमें । १० कौडीमें ॥ यह दश  
 प्रकारमेंसें किसीभी प्रकारमें, क्रिया और क्रियावाले पुरुषका अमे-  
 द मानके, एक अथवा अनेक, आवश्यक क्रियायुक्त साधुकी आकृ-  
 तिरूपे, किसीमें अनाकृतिरूपेभी, जो स्थापित करना । अथवा  
 आवश्यक सूत्रका पाठ लिखना । उसका नाम “स्थापना निक्षेप”  
 है. २ ॥ नाम, स्थापनामें, इतना विशेष है कि, नामयावत् कालतक  
 रहता है । स्थापना इतरकाल, वा पूर्णकालतकभी रहती है.

इति २ स्थापना निक्षेप सूत्रार्थ.

अब स्थापना निक्षेप सूत्रका तात्पर्य—भगवानके अरूपी ज्ञान  
 गुणका, एक अंशरूप अक्षरोंकी स्थापनासें, क्या हमारी उपादेय  
 रूप, छ आवश्यक क्रियाका, बोध, आवश्यक शब्दसें नहीं होता  
 है? तुम कहोगे कि होता है, तो पिछे स्थापनानिक्षेप निरर्थक केशा ?

जब ते अरूपी ज्ञान गुणका, एक अंशका अक्षरोंकी स्थापना निक्षेपको, निरर्थक मानोंगे, तब जैनके सर्व सिद्धांतभी, निरर्थक, और उपयोग बिना के ही, हो जायगे ? ॥ और आवश्यककी दूसरा प्रकारकी स्थापनामें—दंडनीका सत्यार्थ पृष्ठ ४ का लेखमें जो “आवश्यक करने वालेका रूप, अर्थात् हाथ जोड़े हुये, ध्यान लगाया हुआ ऐसा रूप ” के अर्थसे लिखा है, उससेभी, जैन साधुकी मूर्तिही सिद्ध होती है, सो भी निरर्थक कैसें होंगी ? तुम कहोंगे कि—नमस्कार नहीं करते है, तो पिछे दंडक साधुकी मूर्तियां किस वास्ते पडाव ते हो ? और साधुका नाम मात्रसें भी नमस्कार क्यों करते हो ? जैसें मूर्तिमें, साधु साक्षात्पणेसें नहीं है, तैसें नामका अक्षरोंमेंभी साक्षात्पणे साधु बैठानही है ? ॥ हम तो यही कहते है कि—जो हमारी प्रिय वस्तु है, उनके चारों निक्षेपही, प्रिय रूप है । उसमेंभी वीतराग देवतो, हमारा परम प्रिय रूपही है, उनका चार निक्षेप, हमको परम प्रिय रूप क्यों न होगा ? सो बारंबार ख्याल करते चले जाना.

इति स्थापना निक्षेप सूत्रका तात्पर्यार्थ.

॥ अथ ३ द्रव्य निक्षेप सूत्रं. ॥

॥ सेकितं दव्वावस्सयं २ दुविहं पणत्तं तंजहा;

१ आगमओअ । २ नो आगमओअ । सेकितं—

१ आगमओ दव्वावस्सयं २ जस्सणं आवस्सएत्ति पदं सिख्विअं ठितं, जितं, मितं, परिजितं, नामसमं, घोससमं, जावधम्म कहाए, नोअणुपेहाए, कम्हा अणुवओगो दव्वमिति कट्टु. ॥



॥ ( मूल. ) नैगमस्सरां—एगो अणुवउत्तो आगम-  
ओ, एगं दव्वावस्सयं । दोण्णिण अणुवउत्ता, दोण्णिण दव्वा  
वस्सयाइं । तिण्णिण अणुवउत्ता आगमओ, तिण्णिण द-  
व्वावस्सयाइं । एवंजावइआ, तावइयाइं दव्वावस्सआइं  
१ ॥ एवमेव ववहारस्सवि २ ॥ संगहस्सरां—एगो  
वा, अणेगो वा, अणुवउत्तो वा, अणुवउत्ता वा, आ-  
गमओ दव्वावस्सयं, दव्वावस्सआणि वा ३ ॥ उज्जु-  
सुयस्स—एगो अणुवउत्तो, आगतो, एगं दव्वावस्सयं,  
पुहुत्तं नेळइ ४ ॥ तिएहं सदनयाणं—जाणए अणुव-  
उत्ते अवथ्यु ७ ॥

॥ सेकिंतं २ नो आगमओ, दव्वावस्सयं २ ति-  
विहं पन्नत्तं, तं, जाणग सरीर १ । भविअसरीर २ ।  
जाणग भविअ वतिरित्तं ३ । वतिरित्तं तिविहं पन्नत्तं  
१ लोइअं । २ कुप्पावअणिअं । ३ लोउत्तरिअं ।  
इत्यादि. ॥

अर्थः—द्रव्यावश्यक, १ आगम, २ नो आगमसें, दो प्रकारका  
है । १ आगमसें द्रव्यआवश्यक यह है कि—जिस साधुने आवश्यक  
सूत्र सिखा है, स्थिर किया है, जितलीया है, प्रमाण युक्त पढा है,  
परिपक्वभी किया है, अपना नाम प्रमाणेही याद किया है, गुरुने  
दिखाया वैसेही उच्चारणभी कर रहा है, और उनका अर्थभी पुछ  
गाछ करके यथावत् समज लीया है, और छेवटमें धर्म कथा भी

कर रहा है, परंतु क्रियाकाले आगमका कारणरूप “ जीवद्रव्य ” उपयोग बिनाका होनेसे, द्रव्य आवश्यकसे है.

इसमें विशेष यह है कि—नैगमनय—एक उपयोग बिनाका होवे तो, एक द्रव्यावश्यक मानता है । दो होवे तो दो । तीन होवे तो तीन । ऐसे जितने उपयोग बिनाका होवे, उतनाही “द्रव्यावश्यक” मानता है ? । ऐसेही व्यवहार नय मानता है. २ । संग्रह नय—एक वा अनेक, उपयोगवाला, वा उपयोगवालेको, द्रव्यावश्यकवाला, द्रव्यावश्यकवाले, करके मानता है ३ । ऋजुसूत्रनय—एकही अनुपयोगवाला, एकही द्रव्यावश्यक मानता है, न्यारा नहीं मानता है ४ । शब्दादिक तीन नय है सो—आवश्यक सूत्रार्थमें उपयोगवालेकोही आवश्यक रूप वस्तुसे मानता है. ७ ॥ २ नो आगमसे—द्रव्य आवश्यक तीन प्रकारसे है—१ आवश्यक सूत्रपठित साधुका प्रेत सो जाणग शरीर । २ नवदीक्षितादिक,के जो आवश्यक सूत्र पढ़ेंगे सो, भविष्य शरीर । ३ यह दोनोसे व्यतिरिक्त जाणग, भविष्य शरीरसे, व्यतिरिक्त, अर्थात् उपादेय-रूप प्रचलित आवश्यकका विषयसे भिन्न स्वरूप, नाम प्रमाणे स्वरूपको दिखानेवाली क्रिया, उनका यह तीन भेद समजना—मुख धावन, दंत धावन, आदि जो जो क्रियाओ लोको अवश्य करते है सो लोकिक है १ ॥ और चरकादिक साधुओंका, जो यज्ञादिक पूजन विगरे अवश्य कर्त्तव्य है, सो कु प्रावचनिक स्वरूपके है २ ॥ अब जो जिनाज्ञाका लोप करके, स्वच्छंदपणे वर्त्तन करनेवाले, नाम धारी जैन साधु,होके, लोक दिखावा पुरती क्रिया, करनेवाले है, उनका यह आवश्यक कर्त्तव्य है सो, लोकोत्तरिक स्वरूपका कहा है ३ ॥ मात्र इहां जैनागमका उच्चारण है, परंतु उपादेय रूप ‘भाव’ वस्तुसे, व्यतिरिक्तपणे काही है.

इति ३ द्रव्य आवश्यकका सूत्रार्थ.

॥ अब द्रव्यनिक्षेपका तात्पर्य—यह जो “ निक्षेपके ” वर्णनमें सूत्रकारकी मवृत्ति है सो, तीर्थकरोंके अरूपी ज्ञानगुणका, एकैक अंशकी, मुख्यतासे ही है । इस वास्ते जिनाज्ञाका पालन करनेवाले पुरुषोंकी, जो द्रव्यनिक्षेपका स्वरूपवाली, आवश्यककी ‘द्रव्य क्रिया’ है, सो भी, हमको आदरणीय स्वरूपकीही है ॥ और उस पुरुषोंकी पूर्व अवस्था, अर्थात् दीक्षा ग्रहण करनेकी इछारूप अवस्था । अपर अवस्था, उनकी मृतक शरीर रूप अवस्था, यह दोनो प्रकारसे द्रव्य-निक्षेपका विषयरूपकी अवस्था है सो भी, हमको आदरणीयरूप ही है । इसी वास्ते हम दीक्षा महोत्सव, और उनका मरण महोत्सव, करते है । मात्र जो जिनाज्ञासे विपरीत होके, लोक रंजन क्रियाओ करते है, उस पुरुषोंका कर्त्तव्यको, उपादेयके स्वरूपसे व्यतिरिक्तपणे, ( अर्थात् अनुपादेयपणे ) लोकोत्तरिक नामका भेदसे निषेधी दीई है ॥ परंतु द्रव्यनिक्षेपका अनादर, नहीं किया है ॥ और जो नयोंका अवतरण करके दिखाया है, सोतो जिस २ नयकी जो जो मान्यता है । सोई दिखाई है । सो भी सर्व उपादेयक स्वरूपकी ही है । परंतु निरर्थक रूपकी नहीं है ? । क्यों कि-जैनीयोंको तो, साते नयोंका स्वरूप मान्य रूप ही है । और जो स्वछंद चारीयांका कर्त्तव्य, व्यतिरिक्तके भेदमें, ‘लोकोत्तरिक’ स्वरूपसे दिखता है सो, नयोंका विषयमें दाखल नहीं हो सकता है । परंतु नया भासके रूपसे ही रहेगा । इसी वास्ते भिन्न स्वरूपसे वर्णन किया है ॥ और विशेष यह है कि-श्रावकोकी, सम्यक्त्वकी करणी आदिलेके, बारांत्रत तककी, जो जो प्रत्यक्षका विषयरूपकी करणी है, सो सो सर्व करणी । और साधुकी पंच महाव्रतादिक,

१ आहार, २ विहार, ३ व्याहार, ४ व्यवहारादिक विगरे, जो जो क्रियाओं प्रत्यक्षपणेसें दिखनेमें आती है । सो सो सर्व क्रियाओ, १ नैगम नय । २ व्यवहार नय । ३ संग्रहनय । और ४ ऋजुसूत्र नय । यह जो चार नयों है, इनकी मुख्यता-सेंही, जैन सिद्धांतोंमें वर्णन किई हुई है ? । और इस विषयकी क्रियाओंका, आदर करनेसेंही, हम, लोकोमें, सिद्ध रूप हो के फिरते है ? । और यही द्रव्य निक्षेपका विषयभूतकी क्रियाओं, परिणामकी धाराको वृद्धि करनेको, परम कारणभूतही है, इस वास्ते यह द्रव्य निक्षेपकी क्रियाओभी, निरर्थक रूपकी न रहेगी ? । अगर जो निरर्थक रूपकी मानेंगे तो, जैन सिद्धांतोंमें वर्णन किई हुई, सर्व क्रियाओंका निरर्थकपणा होनेसें, हम जैन मतकाही लोप करनेवाले सिद्ध हो जायगे ? । इस बातको पाठक वर्गोंने बारंबार विचार करतेही चलेजाना ? ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति द्रव्य निक्षेप सूत्रका तात्पर्य ॥

॥ अथ ४ चतुर्थ भाव निक्षेप सूत्र. ॥

॥ सेकितं भावा वस्सयं २ दुविहं पण्णात्तं, तंजहा ।  
 १ आगमओअ । २ नोआगमओअ । सेकितं १ आगम-  
 ओ भावा वस्सयं, जाणए उव उत्ते, सेतं भावावस्सयं ।  
 सेकितं २ नोआगमओ भावावस्सयं २ तिविहं पण्णात्तं,  
 तंजहा १ लोइअं । २ कुप्पावणिअं । ३ लोगुत्तरिअं इत्यादि. ॥

१ शुद्ध भोजन व्यवहार । २ शुद्ध यात्रा व्यवहार । ३ शुद्ध भाषा व्यवहार । ४ शुद्ध क्रिया व्यवहार.

॥ अर्थः—भाव आवश्यकमी—१ आगम, २ नो आगम, दो प्रकारसे है ॥ १ आगमसे भाव आवश्यक यह है कि—जी आवश्यक-का जाण साधु पुरुषादि, सूत्रार्थमें उपयोग सहित वर्त रहा है, सी-जनना ॥ २ नो आगमसे तीन प्रकारका है—१ लोकिक जे—भारत रामायणादिकका श्रवण मनन आदि ते । २ कुमावचानिक जे—घरक आदि साधुओंका होम हवन आदि ते । ३ लोकोत्तरिक जे—शुद्ध साधु आदिका दो टंककी प्रतिक्रमण क्रिया ते । यह तीन प्रकारसे, नोआगम “भाव आवश्यककी” क्रिया, दिखाई है ॥

इति ४ भावआवश्यकरूप निक्षेप सूत्रार्थ.

अब भावनिक्षेपका तात्पर्य—तीर्थकरोंके अरूपी ज्ञान गुणका, एक अंशका आधारभूत, अजीवरूपी पुस्तकका नाम, आवश्यक सो, नामनिक्षेप ? । उसमें अक्षरोंकी रचना, अथवा पठित साधुकी मूर्ति, यह दोनो प्रकारसे, उसका स्थापना निक्षेप २ । अब वही सूत्रका पाठ, और अर्थ, गुरुमुखसे पढकर, उपयोग बिनाका साधु उपदेश करनेको लग रहा है, सो द्रव्य, द्रव्यनिक्षेप ३ । जब नही साधु उपयोगके घरमे आके, सूत्रार्थमें लीन हुवा, तब भाव हुवा, सो भाव निक्षेप ४ । यह चारो निक्षेप हमारी अवश्य क्रियारूप वस्तुके दिखाये है । इसमेंसे तीर्थकरोंके भक्तोंको-निरर्थक रूप कौनसा निक्षेप है ? उनका विचार करना.

अब द्रव्य निक्षेपके विषयमें, मृतक साधुका शरीर सो, ? जाणन शरीर है । और दीक्षा लेनेकी इच्छावालेका शरीर है सो, २। भविष्य शरीर है । उनका आदर, योग्यता मुंजव, क्या नही करते है ? करते ही है । सोभी द्रव्य निक्षेपका विषय, निरर्थक रूपका नही है ॥

॥ अब जो द्रव्यनिक्षेपके विषयमें--व्यतिरिक्तके--त्रण भेद है सो तो, हमारा अनुपादेय पणसें, सिद्धांतकारने स्वतः ही वर्णन किये है ॥

॥ अब आवश्यकके भाव निक्षेपके विषयमें, नोआगमके, त्रण भेदमेंसें--? लोकिक, २ कुभावचनिक । यह दोनो तो, नाम मात्रसें ही भिन्न स्वरूपके है । अब जो--नो आगमसें ३ लोकोत्तरिक आवश्यकको, कहा है, उसका तात्पर्य यह है कि--प्रतिक्रमणमें--उठना, बैठना, विगरे करना पडता है, उनको द्रव्यार्थिक चार नयो ही, मान, देतीयां है, परंतु शब्दादिक त्रण नयो है सो, उस क्रिया-ओंको, जड स्वरूप कहकर, मान, नही देतीयां है । इसी वास्ते लोकोत्तरिक भाव आवश्यक, सर्वथा प्रकारसे, उपादेयरूप हुये कोभी, नो आगमके, तिसरे भेदमें, दाखलकरना पडा है । इसमें तो केवल नयोकी ही विचित्रता है । परंतु हमतो, मुख्यतासें, द्रव्यार्थिक चारो नयोको, मान देके, द्रव्य क्रियाका ही, आदर करने-वाले है । इसी वास्ते त्रत पञ्चखाण आदि करावते है, क्योंकि भावका विषय है सो तो, अतिशय ज्ञानीके ही गम्य है, परंतु हम नही समज सकते है ॥ इत्यलं पलवितेन ॥

॥ इतिचतुर्थ भाव निक्षेपका तात्पर्य ॥

दूढनीजीके मनकल्पित चार निक्षेपका अर्थ--चंद्रोदय पृष्ठ. १ में

॥ श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें आदिहीमें “ वस्तुके ” स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य प्रकारसें, चार निक्षेपे, निक्षेपने (करने) कहै हैं । यथा--नामनिक्षेप-  
१ । स्थापनानिक्षेप २ । द्रव्यनिक्षेप ३ । भाव-  
निक्षेप ४ ।

॥ अस्यार्थः—\*नामनिक्षेप सो-वस्तुका आकार, और गुण-रहित, नाम, सो नामनिक्षेप १ । स्थापनानिक्षेप सो-वस्तुका आकार, और नामसहित, गुणरहित, सो स्थापनानिक्षेप २ । द्रव्यनिक्षेपसो-वस्तुका वर्तमान गुणरहित, अतीत अथवा अनागत गुणसहित, और आकार, नाम भी सहित, सो द्रव्यनिक्षेप ३ । भावनिक्षेप सो-वस्तुका नाम, आकार, और वर्तमान गुणसहित, सो भावनिक्षेप ४ ।

इति पार्वती दूननीजीके मनकल्पित चार निक्षेपका अर्थ ॥ पाठक वर्गको पुनः पुनः याद करानेके लिये इहांपर लिखके दिखाये है. ॥

अब सत्यार्थचंद्रोदय पृष्ठ २ सें सूत्र.

॥ सेकितं आवस्सयं, आवस्सयं चउविहं पण्णात्तं, तंजहा—नामावस्सयं १ । ठवणावस्सयं २ । दब्बावस्सयं ३ । भावावस्सयं ४ ।

॥ सेकितं नामावस्सयं, नामावस्सयं जस्सरां—जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाणं वा, आवस्सएत्ति—नामं, कज्जइ सेतं नामावस्सयं. १

\* वस्तुमें—नामादि चार निक्षेप, भिन्न भिन्न स्वरूपसें, समजने है, ( देखो निक्षेपके लक्षणोंमें ) तो भी नामके स्वरूपमें—आकार, और आकारके स्वरूपमें—नाम, इत्यादि, विपर्यासपणे लिखती है ॥

अस्यार्थः—प्रश्न—आवश्यक किसको कहिये—उत्तर—अवश्य करने योग्य यथाः आवश्यक नाम सूत्र, जिसको चार विधिसे समजना चाहिये, तद्यथा—नाम आवश्यक १। स्थापना आवश्यक २। द्रव्यआवश्यक ३। भावआवश्यक ४।

प्रश्न—नामआवश्यक क्या—उत्तर—जिस जीविका, अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, आदिकका। तथा अजीविका, अर्थात् किसी मकान; काष्ठ, पाषाणादिक। जिन जीवोंका। जिन अजीवोंका। उन्हें दोनोंका। नाम आवश्यक, रख दिया सो, नाम आवश्यक १।

इति दुंदनीजीका लिखा हुआ, प्रथम निक्षेप सूत्र.

और अर्थ.

सेकितं ठवणा वस्सयं, २ जण्णां, १ कठकम्मे वा,  
२ चित्तकम्मेवा, ३ पोथकम्मेवा, ४ लेपकम्मेवा, ५ गंठिकम्मेवा,  
६ वेढिकम्मेवा, ७ पुरिमेवा, ८ संघाइमेवा,  
९ अख्खेवा, १० वराडए वा, ११ एगो वा, अणोगोवा,  
सम्भाव ठवणा ए वा, १२ असम्भाव ठवणाए वा, आवस्सएत्ति ठवणा कज्जइ सेतं ठवणावस्सयं २।

अस्यार्थः—प्रश्न स्थापना आवश्यक क्या—उत्तर—१ काष्ठपैलिखा,  
२ चित्रोंमें लिखा, २, ३ पोथीपै लिखा ४ अंगुलीसे लिखा, ५ गूथ-

१ हमारी अवश्य क्रिया “वस्तुका” बोध करानेवाला, अजीव रूप पुस्तकमें, नाम निक्षेप, समजना ॥

२ इस स्थापना निक्षेप सूत्रमें—पोथी पै लिखा, आदिसँ, तीर्थकरोंका ज्ञान गुण वस्तुके, अक्षरोंकी स्थापना ॥



लिया, ६ छपेटलिया, ७ पुरलिया, ८ ढेरीकरली, ९ कारखैचली, १० कौडी रखली, ११ १ आवश्यक करनेवालेकारूप, अर्थात् हाथ जोड़े हुये, ध्यान लगाया हुआ, ऐसारूप उक्तभांति लिखा है । अथवा १२ अन्यथा प्रकार स्थापन करलिया कि, यह मेरा आवश्यक है, सो स्थापना आवश्यक २ ॥

॥ मूल-नाम ठवणाणं को पइ विसेसो, एगमं आव कहियं, ठवणा इतरिया वा होजा, आव कहिया वा होजा ॥

॥ अर्थ-प्रश्न-नाम, और स्थापनामें-क्या, भेद है.

उत्तर-नाम जावजीव तक रहता है, और स्थापना-थोड़े काल तक रहती है, वा जावजीव तकभी रहती है ।

॥ इति द्वंद्वनीजीका-दूसरा निक्षेप, सूत्र, अर्थ. ॥

॥ सेकितं दव्वावस्सयं २ हुविहा पण्णात्ता, तंज-हा-आगमओ य, नो आगमओ य २ । सेकितं आगमओ दव्वावस्सयं २ जस्सणं आवस्सएत्ति पयं सिरिकियं, जाव नो अणुपेहाए, कम्हा अणुवउगो दव्वमिति कट्टु ॥

अस्यार्थः-प्रश्न-द्रव्य आवश्यक क्या-उत्तर-द्रव्य आवश्यकके २ भेद, यथा षष्ठ अध्ययन, आवश्यक सूत्र १ । आवश्यक के पढ़नेवाला आदि २ । प्रश्न-आगम द्रव्य आवश्यक क्या । उत्तर-आव-

१ हाथ जोड़े हुये, ध्यान लगाया हुआ, आदिसें, आवश्यक क्रिया करने वाला, साधुकी स्थापना, अर्थात् मूर्त्ति, सिद्धरूप है ॥

इयक सूत्रके पदादिकका--यथाविधि सीखना, पढना, परंतु विना उपयोग, क्योंकि विना उपयोग द्रव्यही है । इति

इस द्रव्य आवश्यकके उपर ७ नय उतारीं हैं, जिसमें तीन सत्य नय कहीं है.

॥ यथासूत्र-तिएह सदनयाणां जाणए अणुवउत्ते अवश्यु ॥

अर्थ-तीन सत्यनय । अर्थात् सात नय, यथाश्लोक

नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहार ऋजु सूत्रकौ

शब्दः समभिरूढश्च एवंभूति नयोऽमी । १ ।

अर्थ-१ नैगमनय, २ संग्रहनय, ३ व्यवहारनय, ४ ऋजु सूत्रनय, ५ शब्दनय, ६ समभिरूढनय, ७ एवं भूतनय ॥ इन सात नयोंमेंसे पहिली, ४ नय, द्रव्य अर्थको प्रमाण करती हैं । और पिछली ३ सत्यनय, यथार्थ अर्थको ( वस्तुत्वको ) प्रमाण करती हैं, अर्थात् वस्तुके गुणविना वस्तुको अवस्तु प्रकट करती हैं ॥

॥ नो आगम, द्रव्य-आवश्यकके भेदोंमें-जाणग शरीर, भविय शरीर, कहै हैं ॥ ३ ॥

॥ इति दूढनीजीका-तिसरा निक्षेप, सूत्र, अर्थ ॥

२ ॥ भाव आवश्यकमें-उपयोग सहित, आवश्यकका करना कहा है ४ ॥ इन उक्त निक्षेपोंका सूत्रमें-सविस्तार कथन है ॥

१. एवंभूतो नयाअमी ॥ इहां एसा पाठ चाहीये, एसा बहुत जगे पर फरक है हम लिख दिखौंवेगे नही ॥

२ तिसरा निक्षेपके, और चौथा निक्षेपके, सूत्रादिकमें, गोटा-छा कर दिया है सो, हमारा लेखसें विचार लेना ॥

॥ इति द्रुढनीजीका लिखा हुवा-मूल सूत्र, और अर्थ, पाठक वर्गका ध्यान खैचनेके लिये लिखा है ॥

॥ अब जो द्रुढनी पार्वतीजीने-मतिकल्पनासँ, चार निक्षेपका अर्थ लिखके, सूत्रपाठ दिखाया है, उनका परस्पर विरुद्ध, और हमने लिखे हुये सूत्र, और अर्थ, और निक्षेपोंका लक्षण, तरफ पाठक वर्गका ध्यान खैचते है. ॥

द्रुढनीजीका लेख-अनुयोगद्वारका आदिहीमें "वस्तुके" स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य प्रकारसे, चार निक्षेपे निक्षेपने ( करने ) कहे है ॥ वैसा लिखके-नाम निक्षेप सो "वस्तुका" आकार, और गुण रहित, नाम ? ॥

और सूत्र पाठसँ-नाम आवश्यक ? । स्थापना आवश्यक २ । द्रव्य आवश्यक ३ । भाव आवश्यक ४ । लिखती है. ॥

समीक्षा-पाठक वर्ग :-वस्तु कहनेसँ, गुण क्रियावाली, कोई भी एक चिज माननी पडेगी, और उनमेंही चार निक्षेपे निक्षेपने ( करने ) होंगे, जब वस्तु, वस्तु रूपही न होंगे तब निक्षेपने किसमें करेंगे ? जब एक चिज रूपसँ निश्चय हो गया, तब आकार रहित, गुण रहित, कैसे कह सकेंगे ? सूत्रकारने तो-एक आवश्यक वस्तुका ही, चार निक्षेप करनेका कहकर, नाम निक्षेप-मात्र-जीव अजीवादिकमें-करनेका दिखाया है, जैसे-साधुपदका निक्षेप, नवदीक्षितमें करते है, तैसें यह आवश्यक पदकाभी-नाम निक्षेप, पुस्तकादि किसीभी वस्तुमें करणेका है. ॥

द्रुढनीजी-देखो सत्यार्थ पृष्ठ ७ ओ ९ से-किसी गूज्जरने अपने पुत्रका नाम "इंद्र" रखा सो 'नामनिक्षेप' करा है.

किर पृष्ठ १२ ओ ६ से—कन्याका नाम “मिशरी” रख दिया सो “नाम निक्षेप” है इत्यादि.

समीक्षा—पाठक वर्ग? नाम निक्षेप—तीन प्रकारसे होता है, देखो नाम निक्षेपका लक्षणमें, तीन प्रकारमेंसे यह दूसरा जो, इंद्र अर्थसे शुन्य, और इंद्रके दूसरे पर्याय नामका अनभिधेय, सो नाम निक्षेप, गुज्जरके पुत्रमें किया गया है। इस वास्ते यह वस्तुही दूसरी माननी पड़ेगी ॥ वैसे—कन्याका भी “मिशरी” नाम समजना। क्योंकि—किसी राज पुरुषमें—“राजन्” पदका। अथवा दीक्षित पुरुषमें—साधुपदका, जैसे—गुण क्रियावाची शब्दका अभिप्रायसे, नामका निक्षेप करते है, तैसे—गुज्जरके पुत्रमें, और कन्यामें—नाम निक्षेप, नहीं किया गया है। इस वास्ते गुज्जरका पुत्र इंद्र, और मिशरी नामकी कन्या, यह दोनोभी पदार्थ, अपने अपने स्वरूपसे, भिन्न भिन्न वस्तुरूपे होनेसे, कार्य होगा जब दूसरेही चार निक्षेप करने पड़ेगे। चाहे एक नामसे अनेक वस्तु हो, परंतु जिस जिस अभिप्रायसे, निक्षेप करेंगे, सोही माने जायगे.

जैसे—“हरि” यह वर्ण तो दोई है, और संकेत अनेक वस्तुरूपमें है—कृष्ण, सूर्य, सिंह, वानर, अश्व, आदिमें, परंतु वस्तुरूपे भिन्न भिन्न होनेसे, कृष्णके अभिप्रायसे किये हुये निक्षेपमें—सूर्य, सिंह, वानर, आदि कभी न गूसड सकेंगे। ऐसे जो जो वर्ण समुदाय, अनेक वस्तुका वाचक है, उनका—चार चार निक्षेप, भिन्न भिन्नसे होगा। जैसे—राजन् कहनेसे—चंद्रमा भी होता है, परंतु पुरुषमें जे राजन्पदका निक्षेप किया है सो तो भूमिपालके अभिप्रायसे किया गया, चंद्रमाका वाचक कभी न हो सकेगा। इस वास्ते यह ढुंढनी ढुंढ ढुंढकेभी यकी तोभी—निक्षेप शब्दका अर्थ हा समजी नहीं है। क्योंकि—सूत्र पाठसे तो—नाम, आकार, भिन्न भिन्न—

पणे कहती है । और नाममें आकार, और आकारमें नामकोभी, गूसडती जाती है । इनकी पंडितानीपणा तो देखो ? ॥

॥ इति ' प्रथम निक्षेप ' समीक्षा. ॥

अथ ' द्वितीय निक्षेप ' समीक्षा ॥

दूदनीजी-स्थापना निक्षेप सो-वस्तुका आकार, और नाम सहित, गुण रहित, । सूत्रपाठसें-काष्ठपै लिखा, पोथीपै लिखा, इत्यादि, सदऽसद्रूपसे दश प्रकारकी, शास्त्रकारने मानी है, उनका बारा प्रकार करके लिखतो है.

समीक्षा-पाठक वर्ग ? वस्तु है सो तो-गुण और आकार विना, कभी न होगी । और इहां-स्थापना निक्षेपमें तो, जो एक भिन्नरूपें वस्तु है उनको, दूसरी वस्तुमें स्थापित करना है । इसी ही वास्ते सूत्रकारनेभी, " स्थापना " दश प्रकारसें कही है । और आवश्यक सूत्रका, दूसरा निक्षेपभी, दश प्रकारमें ही किया है । और दूदनीभी-काष्ठपै लिखा, पोथीपै लिखा, और आवश्यक करनेवालेका रूप-हाथ जोडे हुये, ध्यान लगाया हुवा, लिखती है । तो क्या-पोथीपै लिखा हुवा आवश्यक सूत्र, पुण्यात्माको अनादरणीय है ? और आवश्यक क्रियाका ध्यानवाली, साधुकी मूर्ति, क्या-अप भ्राजना करने योग्य होती है ? । जो यह सूत्रसें सिद्ध, और सर्वथा प्रकारसें मान्य-स्थापना निक्षेपको, सत्यार्थ पृष्ठ ९ में-निरर्थक लिखती है । बाहरे पंडितानी ? यह सूत्रसें सिद्ध-स्थापना निक्षेपको, निरर्थकपणे करनेको प्रयत्न करती है ? जैसे आवश्यक सूत्र, और क्रिया युक्त साधुकी मूर्ति, अमान्य नही । तैसे ही-बीतराग देवकी मूर्ति, अनादरणीय कभी न होगी । हे

दूढ़नी ? तू नाम आवश्यक तो—भिन्न निक्षेपसें कह कर आई, और अब स्थापना निक्षेपमें भी—नाम निक्षेपको गूसडती है, तो क्या कुछभी विचार नहीं करती है ? क्योंकि तूही अपनी पोथीमें—नामका, और स्थापनाका, यावत् काल, और इतर कालसें—भेदभी कहती है । तो पीछे नाम, स्थापना, यह दोनो, एकही स्थानमें, कैसे लिखती है ? ॥

इति ' द्वितीय निक्षेप ' समीक्षा ॥

॥ अथ तृतीय ' द्रव्य निक्षेप ' समीक्षा ॥

दूढ़नी—वस्तुका—वर्तमान गुण रहित, अतीत अनागत गुण सहित, आकार नामभी सहित—सो द्रव्य निक्षेप. ॥ सूत्रपाठार्थमें,—आवश्यकके २ भेद—षष्ठ अध्ययन, आवश्यक सूत्र ॥ १ । आवश्यकके पढनेवाला आदि २ ।

समीक्षा—आगमसें ' द्रव्य निक्षेप ' यह है कि—जो साधु-उपयोग विना, आवश्यक सूत्रको पढ रहा है—सो, आगमसे—द्रव्य निक्षेप, माना है । और यह एकही भेदको—नैगमादि सातनयसे विचारा है । सो देखो हमारा लिखा हुआ, द्रव्य निक्षेपके सूत्र पाठमें । और दूढ़नी हैं सो सूत्रमें हुये विना, दो भेद करती है, उसमेंभी—पोथीपै लिखा हुआ, षष्ठ अध्ययन, आवश्यक सूत्ररूप, स्थापनाको, द्रव्य निक्षेपमें दिखाती है, और वस्तु जो होती है सो तो—गुण विना, वस्तुही न कही जायगी । तो पीछे वर्तमानमें गुण विना कैसे कहती है ? कहा है कि—

द्रव्यं पर्याय वियुक्तं, पर्याया द्रव्य वर्जिताः । किं कदा केन रूपेण, दृष्टा मानेन केन वा । १ ।

अर्थ:—द्रव्य है सो—अपने गुणोंसें रहित, और गुणों है सो—द्र

व्य विना, क्या ? किसी कालमें, अथवा किसी रूपसे, किसी पुरुषने, देखा ? । अगर देखा तो किस प्रत्यक्षादि प्रमाणसे देखा ? दिखादो ? । इस वास्ते वर्त्तमानमें गुणरहितपणे वस्तुको, कहना, सोई जूठ है । और कारणमें-कार्यका आरोप करणा, उसका नाम द्रव्यनिक्षेप है । सो-नाम, और स्थापनासें, भिन्न रूपसे, वस्तुका तिसरा-द्रव्य निक्षेप है । उसमें नामनिक्षेप, और स्थापनानिक्षेप, क्यों लिख दीखाती है ? क्योंकि-सूत्रपाठसेही भिन्नरूपे सिद्ध हो चुका है । इस वास्ते दूढनीजीका यह अगडंबगडं लिखनाही निरर्थक है ॥

दूढनी-इस द्रव्य आवश्यकके ऊपर ७ नय उतारी है, जिसमें तीन सत्यनय कही है.

यथासूत्रं-तिएहं सदनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु.

अर्थ:-तीन सत्यनय अर्थात् सातनय.

समीक्षा-हे पंडिते ! तीन सत्यनय-इसीका फलितार्थमें क्या ? सत्यशब्दका अर्थ, सात करके, सातनय, ठहराती है ? प्रथम तो यही पुछते है कि-सत्यनय, वैशा अर्थ, सूत्रमेंसे किस पदका निकाला ? क्योंकि सूत्रमें तो-शब्द, समाभिरूढ, और एवंभूत, यह तीन नय-अनुपयुक्तको, वस्तु नहि मानते है । इतनाही मात्र अर्थ है, तो पिछे-सत्य और सात, वैशा कहासें लाके टेकती है ? तुम नयोंका ज्ञान, गुरु विना-कैसे समजोगें ? ॥

॥ पार्वतीजी फिर लिखती है कि-पहिली. ४ नय, द्रव्य अर्थको प्रमाण करती हे । पिछली ३ सत्य नय, यथार्थ अर्थको प्रमाण करती है । वस्तुके गुण विना वस्तुको-अवस्तु प्रकट करती है ॥

समीक्षा-है सुमतिनी । जब पिछली तीन नयको-सत्य, ठहराती है, तो क्या ? पहिली ४ नय जूठी है ? यह अर्थ किस गुरुके

पास पड़ी ? तू कहेंगी कि—जूठी तो नहीं है। तो हम पुछते हैं कि सत्यका विपरीत क्या ? तूही दिखाव ? क्योंकि—जैनोंको तो साते नयों प्रमाणभूत है। परंतु तेरा कल्पया हुआ द्रव्यनिक्षेपको—निरर्थक ठहरानेके लिये, यह प्रपंच करना पडा होगा ? परंतु हम तेराही लेखका निरर्थकपणा, फिरभी दिखादेंगे.

इस वास्ते इहां पर, विशेष विवेचन छोडके, लक्षणादिकमें कहा हुआभी, द्रव्य आवश्यकका स्वरूप, सुगमता के लिये, प्रगट करके दिखावते हैं. ॥

जो वस्तु—पूर्व, किंवा अपर कालमें, कार्यस्वरूपका कारणरूपे निश्चय हो चुकी है, उसका नाम “द्रव्य” है. उस कार्यस्वरूपका, कारणस्वरूपमें, आरोप करणा, उसका नाम “द्रव्यनिक्षेप” कहा है। जैसे—मृतक साधु, अथवा साधु होनेवाला है, उसमें साधुपणा वर्तमान-कालमें नहीं होनेपरभी, साधुपणेका आरोप करके, साधु—कहते हैं सो—द्रव्य निक्षेपसे ही कहा जाता है. उनका नाम “द्रव्य निक्षेप” है। क्योंकि शास्त्रकारनेभी जीवादिक वस्तुमें—‘आवश्यक’ वैशी संज्ञा रखनी, उसका नाम—नाम निक्षेप, माना है १ ॥ और काष्ठादिक दश प्रकारमेंसे—किसीभी प्रकारमें, ‘आवश्यक वस्तुको, स्थापित करणा, उसका नाम—स्थापना निक्षेप, माना है. २ ॥ तैसे ही—आ-गमके भेदसे—वर्तमानमें जीवका उपयोगरूप, भाव विना, आवश्य-कका पढनेवाला साधुको—कारण मानकेही ‘द्रव्य निक्षेपमें’ कहा है। और नो आगमके भेदसे—१जाणग सरीर—कहनेसें, मृतक सा-धुको। और ‘२ भविअ सरीर’ कहनेसें—साधु होनेवालेको, द्रव्य निक्षेपमें, कहा है। सोभी कारणमें ही कार्यका आरोप किया है ॥

१ अवश्य क्रिया बोधक वस्तुको.



आवश्यक क्रियाका कारणरूप साधुमें, भाव आवश्यकका, आरोप करकेही, द्रव्य आवश्यक कहा है ॥ परंतु दूढनीजीका कल्पना हुआ-- गुण रहित, नाम, आकार, सहित--द्रव्य निक्षेप, कैसे बन सकेगा? इसीही वास्ते--द्रव्य निक्षेप के पाठमें, अर्थभी करणा छोड़ दिया है। केवल जूठा नयोंका डोल दिखाके--आडंबर क्रिया है, इत्यलं विस्तरेण ॥

इति तृतीय निक्षेप समीक्षा.

॥ अथ चतुर्थ निक्षेप समीक्षा ॥

दूढनी-वस्तुका-नाम, आकार, और वर्तमान गुण सहित, सो-भावनिक्षेप ॥ सूत्रार्थसे--भाव आवश्यकमें--उपयोग सहित, आवश्यकका करणा, कहा है ॥ ४ ॥

समीक्षा-पाठक वर्ग ! उपयोग सहित, आवश्यकका करणा, सो-भाव आवश्यक, । उस आवश्यककी क्रिया मात्रमें--नाम, आकार, कैसे गूसड गया ? अगर नाम, और आकार, आवश्यक वस्तुका गूसडनाथा तो, सूत्रसे--नामावश्यक, स्थापना आवश्यकका निक्षेप, भिन्नपणे, कहकर कैसे आई ? विचार करोकि--गणधर महाराजाओंसे विपरीतपणे जाती है कि नहीं ?

॥ इति चतुर्थ निक्षेप समीक्षा ॥ ४ ॥

पाठक वर्ग ! हम चारों निक्षेपोंकी समीक्षा, करकेभी आये है, तोभी सुगमताके लिये, किंचित् विशेष विचार दिखावते है

इसी दूढनीजीने--अपणे लक्षणमें, आकार और गुण रहित,

नाम, सो-नाम निक्षेप, लिखाया । और मूल सूत्रकारने-जीवादि-कमें-नाम निक्षेप, करना कहा । और शास्त्रकारके लक्षणसें-तीन प्रकारका ' नाम निक्षेप ' है । सो अब विचार यह है कि-गूज़रका पुत्रमें जो ' इंद्रपदका निक्षेप है, सो । और मिशरी नामकी कन्यामें-मिशरी पदका निक्षेप है सो । क्या ? कुछ आकारवाले, और मनुष्यपणेका जीवके गुणवाले, नहीं है ? जो आकार रहित, और गुण रहितवाला, नाम निक्षेपमें डालती है ? इस वास्ते दूदनीजीका मन कल्पित ' नाम निक्षेप ' ही निरर्थक है ॥ परंतु सूत्रकारका अभिप्रायसें-जीवादिकमें । और लक्षणकारके अभिप्रायसे-पर्यायका अनभिधेयरूप, जो दूसरा प्रकारका नाम निक्षेप है, सो । गूज़रके पुत्रमें तो-इंद्रपदका, और मिशरी नामकी कन्यामें-मिशरीपदका निक्षेप, सदाही सार्थकरूप ही है ॥ इसी वास्ते हम कहते कि-निक्षेपोंका अर्थ क्या है, सो यह दूदनी समजाही नहीं है ॥

॥ इति ' प्रथम निक्षेप ' विशेष समीक्षा ॥

॥ अथ ' द्वितीय निक्षेप ' विशेष समीक्षा ॥

दूदनीजी-अपणे लक्षणमें-वस्तुका आकार, और नाम सहित, और गुण रहित सो-स्थापना निक्षेप, लिखती है । और मूल सूत्रकारने-काष्ठपै-पोथीपै, लिखा । आदि दश प्रकारकी वस्तुमें-आकृति, अनाकृतिरूपे-स्थापना निक्षेप, करना दिखाया है । और लक्षणकारने-वस्तुमें जे गुण है उस गुणोंसें तो रहित, और उसीके अभिप्रायसें, उनके सदृश-आकृति, अथवा अनाकृतिरूपे, इच्छित वस्तुको स्थापित करना सो-स्थापना निक्षेप । तो अब इसमें-नामका समावेश कैसें होगा. ? अगर जो नामका समावेश करनेका

प्रयत्न करेंगे तो, सूत्रकारसेभी विरुद्ध होगा, क्योंकि सूत्रकारने नाम निक्षेपको, अलग दिखाके, भिन्नरूप दश प्रकारकी वस्तुमें स्थापना निक्षेप, करना दिखाया है ॥ इस वास्ते सूत्रकार, और लक्षणकारके अभिप्रायसें तो, मात्र मूल वस्तुको-आकृति, अनाकृतिसें, उस पदार्थको समजनेका है ॥ इस वास्ते सूत्रसे, और लक्षणकारसेभी, विपरीत, इस दृढनीजीकाही लेख, निरर्थक है। परंतु स्थापना निक्षेप, निरर्थक, कभी न ठहरेगा. ॥

इति द्वितीय ' स्थापना निक्षेप ' विशेष समीक्षा. ॥

॥ अथ तृतीय ' द्रव्य निक्षेपकी ' विशेष समीक्षा.

दृढनीजी-अपने लक्षणमें-लिखती है कि-वस्तुका वर्त्तमान गुण रहित, अतीत अथवा अनागत गुण सहित, और आकार नामभी सहित, सो-द्रव्य निक्षेप. ॥ और सूत्रार्थमें-द्रव्य आवश्यकके २ भेद-यथा षट् अध्ययन आवश्यक सूत्र ? । आवश्यकके पढनेवाला आदि २ ॥ इसमें विचार यह है कि-वर्त्तमानमें आवश्यक सूत्रका, गुण रहितपणा क्या हुवा ? क्या सूत्रका गुणथा सो, उडकर झाडपर बैठ गया ? जो गुण रहितपणा हो गया ? । और आवश्यकका पढनेवालेमेंभी-गुण रहितपणा क्या है ? तूं कहेंगी कि-उपयोग नहीं है, सो तो जीवका नहीं है, परंतु आवश्यकमेंसे क्या चला गया? तूं कहेंगी कि-क्रिया, और क्रियावालेको, एक मान के कहते है । तब तो-उपयोग विनाकी करनेरूप, क्रिया मात्रका नाम-द्रव्य आवश्यक ' हुवा । तो पीछे जो सूत्र पाठसें-नाम निक्षेप, और स्थापना निक्षेप, भिन्नपणे कहकर आइ, सो, इस द्रव्य निक्षेपमें, कैसें गूसडती है? इस वास्ते यह तेरा लेख-सूत्रकारसें विपरीत है सो तो, आलजाल

रूपही है । क्यों कि—सूत्रकारने तो—आगमसे, सृशिक्षित आवश्यक-क्रियाका करनेवाला उपयोग बिनाके साधुमें 'द्रव्य निक्षेप' कहा है । और नो आगमसे मृतक साधुमें—पूर्वकालकी, आवश्यक क्रियाका आरोप, और साधु होनेवालेमें—भविष्यत्कालकी, आवश्यक क्रियाका आरोप करके वह आगमका कारणस्वरूपमें 'द्रव्य आवश्यक' माना है, सोइ लक्षणकारनेभी दिखाया है ॥

इति 'द्रव्य निक्षेप' विशेष समीक्षा समाप्ता ॥

॥ अब चतुर्थ 'भाव निक्षेप' विशेष समीक्षा ॥

ढूढनीजी—अपने लक्षणमें—वस्तुका—नाम, आकार, और वर्तमान गुण सहित, सो—भाव निक्षेप, लिखती है ॥ और सूत्रार्थसे—उपयोग सहित, आवश्यकका, करणा कहा है, वैशा लिखती है । अब जो उपयोग सहित, आवश्यकका करना है सो तो—उपयोग सहित आवश्यककी क्रिया हुई, सो—भावनिक्षेप ॥ तो अब सूत्रसे—भिन्नपणे नाम, और स्थापना निक्षेप, कहकर आई सो, इस भाव निक्षेपका विषयमात्रमें कैसें गूसडेगा ? अब देखो हमारा तरफ के—सूत्रपाठमें । और लक्षणमें ॥ सूत्रपाठमें—आगमसे तो—उपयोग सहित, आवश्यक क्रियामें प्रवृत्ति कर रहा हुवा साधुमें—भाव निक्षेप । और नो आगमसे,—लोकिक, लोकोत्तर, और व्यतिरिक्त, के संबंधवाले पुरुषों जो अवश्य क्रियामें प्रवृत्ति कर रहे है, उस पुरुषोंमें 'भाव निक्षेप' माना है । और शास्त्रकारके लक्षणसें देखो कि—जे जे नामवाली वस्तुमें जो जो क्रियाओं सिद्ध है, उसी क्रियामें वस्तुका वर्तन होना, सो—'भावनिक्षेपका' लक्षण कहा है । सो, सूत्रकारका, और लक्षणकारका, एकही अभिप्राय मिलता है । इस

वास्ते दूंदनीजीने जो जूठी कल्पना किई है, सो तो सूत्रकारसें, और लक्षणकारसेभी, तदन विपरीत होनेसे निरर्थकही है.

इति चतुर्थ ' भाव निक्षेप ' विशेष समीक्षा समाप्ता ॥

अब सिद्धांतकारोंसें, निरपेक्ष होके, दूंदनी, आठ,  
विकल्प, करती है.

दूंदनी-सत्यार्थ पृष्ठ ११ ओ. ९ से-अथ पदार्थका नाम १ ।  
और नाम निक्षेप २ । स्थापना ३ । और स्थापना निक्षेप ४ ।  
द्रव्य ५ । और द्रव्य निक्षेप ६ । भाव ७ । और भाव निक्षेप ८ ।  
स्वरूप दृष्टांत साहित लिखते है इत्यादि.

समीक्षा-हे दूंदनी ? तीर्थकरोका, और साथमें गणधरोंकाभी,  
अनादर करके यह ' आठ विकल्प ' कल्पित लिखनेके वस्तु तेरी  
बुद्धि कैसे चली ? गणधर महाराजाओने, जो चार चार निक्षेप,  
वस्तुका किया है, उनके पूर्वापरका विचार तूं देखतीही नहीं है ? ।  
हम इतनाही कहते है कि-जो किसीभी जैन सिद्धांतमेंसें तेरे किये  
हुये आठ विकल्पका पाठ दिखावेगी, तबही तेरी गति होगी ? न-  
हितर गति न होगी । आजतक तो तेरे दूंदको परोक्षपणे गणधरोंका,  
और प्रत्यक्षपणे महान् महान् आचार्योंका--अनादर करनेसें अवि-  
वेकका लेश पावतेरहें, अब प्रत्यक्षपणे गणधरोके वचनका--अनादर  
करनेसे, न जाने तुमेरी क्या दशा बनेगी ? । वाचकवर्गको भी दूंद-  
नीने कियेली, अनादरपणेकी खातरी हो-जायगी. ॥

॥ अब नाममें-कुतर्कका विचार ॥

दूंदनी-सत्यार्थ पृष्ठ ११-१२ में-जो ' द्रव्य ' मिशरीनाम है

सो, सार्थक है । और-मिशरी नामकी, कन्या है सो, नाम निक्षेप है, सो-निरर्थक है ॥

समीक्षा-दूंदनीजी-अपने लक्षणमें लिखती है कि-आकार और गुण रहित, नाम सो, नाम निक्षेप, तो क्या-कन्या कुछ आकार रूप नहीं है? और क्या मनुष्यपणेका गुणवालीभी नहीं है? जो आकार और गुणविना के लक्षणमें, डालती है? पाठक वर्ग! नाम निक्षेप, तीनप्रकारसें, किया जाता है, देखो प्रथम निक्षेप के लक्षणमें-यथार्थ गुणवाली, मिष्ट रूप, द्रव्य मिशरीमें, प्रथम प्रकारसें ' नाम निक्षेप ' है । और कन्या रूप वस्तुमें-दूसरा प्रकारका ' नाम निक्षेप ' किया गया है, सो भी कन्यारूप वस्तुको जनानेवाला ही है; तो पिछे निरर्थक कैसें होगा? वस्तु रूपे कन्या होनेसे, कन्याका दूसरेही ' चार निक्षेप ' करने पडेंगे । इस वास्ते हम कहते हैं कि दूंदनीने, निक्षेपका अर्थ ही, कुछ समजा नहीं है ॥ जैसे-हरि, यह दो वर्ण ही है, परंतु कृष्णके वस्त्रमें, कृष्णका, भाव, प्रगट करेंगे । और-सूर्य, सिंह, के अभिप्रायके वस्त्रमें, सूर्य सिंहादिकका 'भाव' प्रगट करेंगे । परंतु एकसें दूसरी वस्तुमें ' हरि ' नामका निक्षेप, निरर्थक कैसें होगा? जब नामवाली वस्तु, वस्तुरूपे न होवें, तबही निरर्थक होगा ॥ और यह दूंदनीभी-वस्तुके चार चार निक्षेप करना, वैसा कहकर, सूत्रसें-आवश्यक रूप, एक वस्तुका, दिखाके भी आई है, तब कन्यारूप वस्तुमें, निक्षेप निरर्थक है, वैसा कैसें कहती है ?

सोतो वाचकवर्ग ही विचार करें

इति नामों-कुतर्कका विचार ॥

दूदनी-सत्यार्थ पृष्ठ ८ ओ १० सें-काष्ठ पाषाणादिकी मूर्ति, कार्य साधक नहीं ॥ और पृष्ठ ९ ओ ३ सें-दोनो निक्षेप अवस्तु है ॥ ओ १२ सें-इन दोनो निक्षेपोंको, सात नयोंमेंसे, ३ सत्य नय वालोंने, अवस्तु माना है । क्योंकि, अनुयोग द्वार सूत्रमें-द्रव्य, और भाव निक्षेपो परतो, सात २ नय-उतारी है, परंतु नाम, और स्थापना पै, नहीं उतारी है इत्यर्थः

समीक्षा-पाठकवर्ग, ? लक्षणसें जो तीन प्रकारका नाम निक्षेप किया गया, सो तो, अपणी अपणी वस्तुपणाका, भाव-प्रकट करनेवाला ही, हो चुका है ॥ और स्थापनाभी-जिस वस्तु के अभि-प्रायसें, स्थापित किई जावे, उस वस्तुका भावको क्या नहीं जना-ती है ? जो दूदनी निरर्थकपणा, और अवस्तुपणा, कहती है ? और अपणा किया हुवा लक्षणमें-आकार, और नाम, सहितपणा लिखती है, तो अब स्थापनामें अवस्तुपणा कैसे होगा ? जो वस्तुपणा न होगा तो आकारपणाभी न होगा ॥ और सूत्रकारने-पोथी पै लिखा आदि, अथवा आवश्यककी क्रियायुक्त साधुकी मूर्ति, कही है, सो क्या विचारवाले पुरुषको, आवश्यककी क्रियाका ' भाव ' प्रकट करनेवाली, स्थापना नहीं है ? जो दूदनी दोनो निक्षेपोंको, निरर्थक, कहती है ! ? और लिखती है कि-सूत्रमें, द्रव्य, और भाव निक्षेपों पर तो, सात २ नय उतारी हैं, परंतु नाम, और स्थापना पै, नहीं उतारी है इत्यर्थः, और उपर लिखती है कि-इन दोनों निक्षेपोंको, सातनयोंमेंसे, ३ सत्यनयवालोंने, अवस्तु माना है ॥ पाठकवर्ग ! इस दूदनीने कुछभी विचार है ? कि में क्या बकवाद करती हुं, जब दोनों प्रथमके निक्षेपोंपर, सातनय उतारीही नहीं है, तब सातनयोंमेंसे, ३ सत्यनयवालोंने, अवस्तु माना, वैसा कहासे लिखती हैं ? अरे दूदनी ! यह विचारही कुछ और है, तेरे बड़े

बड़े दूँडीये तो यूँही कहत कहते चले गये, कि, यह अनुयोगद्वार सूत्र-न जानै क्या है, कुछ समजा नहीं जाता है। ऐसा हमने गुरु-जीके मुखसे ही सुनाया तो पिछे तू कथा समजनेवाली है? जब यह अनुयोगका विषय समजेगा, तब तुमेरा दूँढकपणाही काहेकुं रहेगा? और यह मेरा सामान्य लेखमात्रसेंभी तुमको समजना कठीनही मालूम होता है ॥

दूँढनी-सत्यार्थ पृष्ठ १२ ओ २२ से-मिशरीका कूज्जा सो स्थापना, ॥ पृष्ठ १३ से-मिट्टी, कागजका, -आकार बनालियाँ सो, स्थापना निक्षेप है, सो-निरर्थक है. ॥

समीक्षा-पाठवर्ग, ? जे मिशरीका कूज्जामें, मिष्ट क्रिया रही हुई है, सो तो ' भावरूप ' है। उसमें-नाम, और स्थापना, कैसें गूसडती है? जब वैसाही होता तो, शास्त्रकार-दश प्रकारकी भिन्नरूप वस्तुमें, स्थापना, किस वास्ते कहते ?

दूँढनी-स्थापना अलग है, और-स्थापना निक्षेप, हम तो अलग २ मानते है.

समीक्षा-हे विचार शीले ! जो तूने स्थापना, और स्थापना, निक्षेप, अलग २ लिखके, जूठी मनः कल्पना किई है, सो तो, जैनीयोके करोडो पुस्तक लिखा गयेथे उसमेंसें, लाखो परतो विद्यमान है, उसमेंसें एकभी पुस्तकमेसे, न मिल सकेगी. । तेरी जूठी कल्पना तो तेरेही जैसे कोई होगे सो भले मानेगे । परंतु दूसरे जैनी हैं सो न मानेगे ।-इस वास्ते चारही निक्षेप के बिना, जो तूने कल्पना किई है, सो तो सर्व जैन सिद्धां तों काही विपर्यासपणा किया है ॥



॥ इति स्थापनामें--कुतर्कका विचार ॥

॥ अब द्रव्य निक्षेपमें--कुतर्कका विचार ॥

दूढ़नी-पृष्ठ १३ ओ ६ से,--द्रव्य, खांड, आदि, जिससे मिशरी बने, सार्थक है, ॥ ओ ८ से,--द्रव्य निक्षेप, मिशरी ढालनेके, मिट्टीके कूजे, इत्यादि. ॥

समीक्षा-पाठक वर्ग ! पूर्व कालमें, किंवा अपर कालमें, जो कार्य कारण रूप-एक वस्तु है, उस कारण रूप वस्तुमें-कार्यका आरोप करणा, उसका नाम-द्रव्य निक्षेप है । सो द्रव्य, और द्रव्य निक्षेप, अलग कैसे मानती है ? । खांड है सो क्या, वर्तमानमें मिशरी रूप है ? जो एकपणा कर देती है ? मात्र आरोप करके मिशरी माननेकी है ? देखो-लक्षण-ओर सूत्रपाठार्थी दूढ़नीजीकी मति तो भ्रम चक्रमें गिरी हुई है । और दूढ़नीजी कहती है के, द्रव्य निक्षेप-मिशरी ढालनेके कूजे । और आपणे लक्षणमें लिखती है कि-वस्तुका वर्तमान गुण रहित, अतीत अनागत गुण सहित, सो द्रव्य निक्षेप, । तो अब मट्टीके कूजेमें-अतीत, अनागतमें, मिशरपिणेका गुण, दूढ़नीजीने क्या देखया ? जो द्रव्य निक्षेप करके दिखाती है ? और क्या मिट्टीके कूजेको, अतीत अनागत कालमें, मिशरी करके खाये जायगें ? जो मिशरी वस्तुका ' द्रव्य निक्षेप ' कूजेमें करती है ? हे सु मतिनि ? विचार कर ? । तेरी जूठी कल्पना कहांतक चलेगी. ?

॥ इति द्रव्यमें--कुतर्कका विचार ॥

॥ अब भावनिक्षेपमें कुतर्कका विचार ॥

दूढ़नी-पृष्ठ १३ ओ १५ से-भाव, मिशरीका मिठापण, ॥

पृष्ठ १४ ओ ३ से-मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरी हुई सो 'भाव निक्षेप' इत्यादि ।

समीक्षा-पाठक वर्ग ! मिशरी में-मिठापन है सो तो 'भाव निक्षेप' है । परंतु 'कूज्जा' जो मिट्टीका है, उसमें, मिठापणेका 'भाव क्या है ! जो दूढनी मिशरी वस्तुका भाव निक्षेप मिट्टीके कूज्जेमें करती है ? क्योंकि कूज्जा जो है सो तो, एक वस्तु ही अलग है, उनके तो 'चार निक्षेप' अलग ही करने पड़ेंगे । और कूज्जा जो मिट्टीका है सो क्या खाया जायगा ? जो मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरीका भाव निक्षेप, करती है ? और अपना किया लक्षणसे, मिशरी वस्तुका 'भाव' मिट्टीके कूज्जेमें, कैसे मिलावेगी ? क्योंकि-वर्तमानमें गुण सहित, भाव निक्षेप, कहती है, । तो मिट्टीके कूज्जेमें; वर्तमानमें मिशरीपणेका भाव क्या है ? सो दिखा देवें ॥

दूढनी-" इंदं मधुकुंभं आसी " उहां तो-द्रव्य 'निक्षेप' मानाथा, तो इहां मिशरी युक्त कूज्जेमें 'भाव निक्षेप' क्यों नहीं मानते हो ? क्यों कि 'निक्षेप नाम, डालना. "

समीक्षा-है सुमतिनी ? उहां तो-जो मधु भरणरूप क्रिया है, उस क्रिया मात्रकोही, वस्तुरूप मानोथी, सो वर्तमानमें मधु भरणरूप क्रिया नहीं होनेसे, मात्र भरण क्रियारूप वस्तुका, आरोप मान के ' इंदं मधुकुंभं आसी,' ऐसा दृष्टांत दियाथा । जैसे आवश्यकके निक्षेपमें-ज्ञान वस्तुका, उपयोग विनाका साधुको 'द्रव्य निक्षेप' रूपसे मानाथा, तैसे इहांपर समजनेका है परंतु कुंभको-द्रव्य निक्षेपपणे, नहीं मानाथा । क्यों कि-कुंभका, द्रव्य निक्षेप' करणा पड़ेगा जब तो, मिट्टीमेंही करणा पड़ेगा । इस वास्ते भाव निक्षेपमें मिशरी है, सोई है । कुछ मिट्टीके कूज्जेमें-मिशरीका भाव निक्षेप,

न होगा । कूज्जेमें तो जो-कोई-भरण क्रिया आदि--विशेष गुण है सोई ' भावरूप ' है. ? ॥

इति दूढनाजीके मनः कल्पित, आठ विकल्पकी,  
सामान्यपणे समीक्षा.

॥ दूढनीजीने तीर्थकरोंमें चार-निक्षेपकी, जूठी कल्पना  
किई है, उनका विचार दिखावते है ॥

दूढनी-पृष्ठ १४ ओ ८ से-नाभिराजा कुलचंद नंदन इत्यादि,  
सद्गुण सहित, ऋषभदेव, सो नाम ऋषभदेव, कार्य साधक है.  
इत्यादि. ॥

पृष्ठ १५ ओ. ३ सें-किसी सामान्य पुरुषका नाम, स्थंभा-  
दिका नाम, ऋषभदेव, रख दिया सो,-नाम निक्षेप, निरर्थक है ॥

समीक्षा--पाठक वर्ग ! दूढनी-अपणा क्रिया हुवा लक्षणमें,  
आकार और गुण रहित, नाम सो ' नाम निक्षेप ' लिखती है ।  
तो क्या पुरुषमें-कुछ आकार नहीं है ? और क्या मनुष्यपणेका,  
गुणभी, कुछ नहीं होगा ? ॥ और तैसेही, स्थंभामें-आकार, और  
धारण करणेरूप गुण क्या नहीं हैं. ? । जो आकार और गुण वि-  
नाका ' नाम निक्षेपमें, दिखाती है । हे सुमतिनी ! देख-हमारा  
लिखा हुवा लक्षणसूत्रमें, तीन प्रकारसे, नाम निक्षेप करना, दिखा  
या है । सो तो वर्णसमुदायमात्रपणेसे संकेत है, जिसने-जिस वस्तु

१ पुरुषमें-स्थंभामें-और तीर्थकरमें-ऋषभ-और देव यहदोनो  
शब्दोका, सर्वजगें एक सरीषा संयोग होनेसे ' नाम निक्षेप ' का  
फरक नहीं है, मात्र वस्तुओंका ही फरक सें दूढनी, भ्रम हुवा है ॥

में, किया, सो उस वस्तुको, समजता है, ॥ क्यौं कि--ऋषभदेव, कहनेसें कुछ, म्लेच्छोंको ' नाभिराजाका पुत्र ' याद न आवेगा । हां इतनाही मात्र विशेष है कि, दूसरे पुरुषमें--ऋषभदेव नाम हैं सो, नाभिराजाका पुत्रके गुण पर्यायका वाचक न होगा । क्यौं कि वह वस्तुही दूसरी है, इस वास्तेसो ऋषभदेव नाम है सो तो, अपनाही पुरुषपणेका भाव प्रगट करेगा । इस वास्ते जो दूढ़नीने कल्पना किई है, सो जैनमतसें ( अर्थात् तीर्थकर गणधरोके मतसें ) तदन विपरीत होनेसें महा प्रायश्चितकी प्राप्तिको देनेवाली है । देखो नाम निक्षेपका लक्षण सूत्रमें ॥

दूढ़नी--पृष्ठ १५ ओ ९ से--औदारिक शरीर, स्वर्ण वर्ण, पद्मासन सहित, वैराग्य मुद्रा पिछाने जाय सो, स्थापना ऋषभदेव, कार्य साधक है ॥ ओ १५ से--पाषाणादिकका बिंब, पद्मासनादिकसे, स्थापन कर लिया सो,--स्थापना निक्षेप, निरर्थक है ॥

समीक्षा--पाठक वर्ग ? जब ऋषभदेव--पद्मासनादि सहित, साक्षात् होंगे, सो तो ' भाव ' रूपही है, उसको--स्थापना, कैसे कहती है ? । फिर स्थापना, और स्थापना निक्षेप, अलग है वैसा हे सुभातेनी । तुं कहांसे दूढ़कर लाई ? शास्त्रकारने तो--दश प्रकारकी ही स्थापना, भिन्नरूप वस्तुसें, मूलपदार्थकी करनी, दिखाई है । इस वास्ते--स्थापना निक्षेप, निरर्थक, नहीं है किंतु दूढ़नीकी कल्पना ही निरर्थक है.

दूढ़नी--पृष्ठ १६ ओ ६ से--संयम आदि केवल ज्ञान पर्यंत, गुण सहित शरीर सो ' द्रव्य ऋषभदेव ' कार्य साधक है ॥ ओ १३ से--निर्वाण हुए पीछे, यावत् काल शरीरको दाह नहीं किया, तावत् काल शरीर रहा सो ' द्रव्य निक्षेप ' निरर्थक है. ॥

समीक्षा—दूढ़नीने सूत्रार्थमें—षष्ठ अध्ययन सूत्र ? । और पढ़-नेवाला २ । यह दो विकल्प 'द्रव्य निक्षेपमें' कहाथा । इहां तीर्थकर पद रूप भाव प्राप्त होनेवाला प्रथम अवस्थारूप जीवतेको छोडके, एकीला मृतकमेंही द्रव्य निक्षेप कहती है । इस वास्ते यह कल्पनाही जूठ है । पाठकवर्ग ! द्रव्य, और द्रव्य निक्षेप, शास्त्रकारने—कुछ अलग नहीं माने है; मात्र आगम, नोआगम के भेदसें, माने है । और—नोआगमके, तीन भेद किये है । १ जाणग स-रीर, अर्थात् भाव प्राप्त मृतक शरीर । २ भवित्र्य सरीर, अ-र्थात् भावको प्राप्त होनेवाला शरीर । ३ व्यतिरिक्तके अनेक भेद है । अब इहां पर दूढ़नीजीने ऋषभदेवका—भविअ शरीरको तो 'द्रव्य' बनाया । और जाणग शरीरको 'द्रव्यनिक्षेप' ठहराया । विचार करो कि—गणधर पुरुषोंसे विपरीतता कितनी है ! इसीही वास्ते दूढ़नीने, द्रव्यनिक्षेपमें सूत्र, और अर्थ, छोडकर, सात न-योंका जूठा भंडोल दिखाके, अजान वर्गको भुलानेका ही उपाय किया है । जिसको तीर्थकरोका, और गणधर महाराजाओका भी, भय नहीं है, उनको कहेंगे भी क्या ? ॥

दूढ़नी—पृष्ठ १७ ओ ६ से—भगवान् जैसे नाम कर्मवालाचे-तन, चतुष्टयगुण, प्रकाशरूपआत्मा, सो 'भाव ऋषभदेव' कार्य साधक है ॥ ओ ९ से—शरीरस्थित, पूर्वोक्त चतुष्टयगुणसहित आत्मा, सो 'भावनिक्षेप. यह भी कार्य साधक है । यथा घृतसाहित कुभ घृतकुंभ इत्यर्थः ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ? इस दूढ़नीने भी—अपने सूत्रार्थमें—आ-वश्यकक्रिया और क्रियाकारक साधुरूप एक ही वस्तुमें, भाव निक्षेप लिखा है । और इहां 'एक भावनिक्षेप' है, उनके दो रूप

कर के दिखाती है । परंतु भाव, और भाव निक्षेप, शास्त्राकारने, अलग नहीं माने है । तीर्थकारोंकी विभूतिसहित, उपदेशादि क्रियायुक्तपणा है सो ई भावनिक्षेप माना है, देखो हमारा लक्षण और पाठार्थ । और घृत घटका दृष्टांत दिया है सो निरर्थक है, क्योंकि घृतमें घटपणका भाव नहीं आजाता है जो घट है सो घृतका भाव रूप होजावे । क्योंकि घटरूप वस्तु अलग होनेसे घटका भाव, घटमेही रहेगा, कार्यप्रसंगे घटका चार निक्षेप अलग ही करने पड़ेंगे.

दूंदनी-पृष्ठ १८ ओ ५ से-जेठमल दूंदक साधुका पक्ष ले के लिखती है के-वस्तुका नाम है सो नाम निक्षेप नहीं ॥ फिर दूंदनी ओ १० से-सूत्रमें तो लिखा है कि-जीव, अजीवका नाम आवश्यक निक्षेप करे सो ' नाम निक्षेप । अर्थात् नाम आवश्यक है, कि, आवश्यकहीमें ' आवश्यक निक्षेप ' कर धरे.

समीक्षा-पाठकवर्ग ? जो जो पदार्थ ' वस्तुरूपे ' एक चिज है, उसकी 'संज्ञा' समजने के लिये, इछापूर्वक वर्ण समुदायका, निक्षेप करके समजना, उसका नाम, नामनिक्षेप है, इस वास्ते नाम, और नामनिक्षेप, अलग कभी न माने जायगे, सोइ विचार पिछे दिखाके भी आये है, और जो दूंदनी लिखती है कि-जीव अजीवादिकमें, आवश्यकनिक्षेप करें, सो नामनिक्षेप है कि, आवश्यक कहींमें-आवश्यक निक्षेप करधरे । हम पुछते है कि-पुस्तकरूपे जो वस्तु है सो क्या 'अजीवरूप वस्तु' नहीं है ? जो दूंदनी छिनकती है । जब 'पुस्तक' अजीवरूप से वस्तु है तो, आवश्यक नामका निक्षेप, आवश्यकसूत्रमें करना युक्तही है । सो ' नामनिक्षेप ' शब्दार्थयुक्त होनेसे, लक्षण कारकेमतसे प्रथमप्रकारका कहाजायगा । और दूसरी वस्तुओंमें वह नामका निक्षेप दूसरा प्रकारका कहा जावेगा । देखो नाम निक्षेपका लक्षण सूत्रमें, इसवास्ते नाम, और नामनिक्षेप, अलग कभी न बनेगा.

दूढ़नीने—पृष्ठ १९ से लेके—पृष्ठ २१ तक, जो कुतर्क किई है सो तो, हमारा पूर्वका लेखसे, निरर्थक हो चुकीहै। तोभी दूढ़नीकी अज्ञता दूरकरनेको किंचित् लिख दिखाते है.

दूढ़नी—भगवान्में नामनिक्षेप किया 'महावीर' तो कोई मानभी लेवें। परंतु भगवान्में भगवान्का 'स्थापनानिक्षेप' कैसे होगा,। एसा कहकर, गाथार्थके अंतमें, लिखताहै कि—गाथामें एमा कहा लिखा है कि—चारों निक्षेप वस्तुत्वमें मिलाने, वा चारों निक्षेप वंदनीय है.

समीक्षा—हे सुमतिनि ! तुमेरे दूढ़कोंको 'निक्षेपोंका अर्थ, समज्या होतातो, ऐसी दूरदशा ही काहेको होती ? अब देखो सूत्र, और लक्षणकारके, अभिप्रायसे कि—तीर्थकर नामकर्म उपाजित 'जीवरूप वस्तु' है, ते तीर्थकरका जीवसें अधिष्ठित पुद्गलरूप भिन्नशरीरमें 'महावीर' संज्ञा दिई, सो 'नामनिक्षेप' तीर्थकरमेंही दाखल हुवा. १। और दशप्रकारकी भिन्नरूप वस्तुमेंसें—जो पाषाणरूप एकभेदमें, उस तीर्थकरका शरीरकी 'आकृति' किई गई सोभी 'स्थापना' उस तीर्थकरमेंही दाखल हुई २। और जिस वर्तमानकालमें, तीर्थकरकर्मका उपदेशरूप कार्यकी प्रवृत्ति करनेकी, योग्यता नहीं है. उनका अतीत, किंवा अनागत कालमें, आरोप करके 'तीर्थकर' कहना सो 'द्रव्यनिक्षेपभी' उस तीर्थकरमेंही होता है. ३। जब उपदेशरूप कार्यकी प्रवृत्ति करनेकी योग्यता प्रगटपणे विद्यमान रूपसेंहै तब सो 'जीवरूपवस्तु' भाव तीर्थकरपणे, कहा जाता है, ४। अब विचार करों कि, यह चारों निक्षेप, तीर्थकरका जीवरूपवस्तुमें मिलें कि, कोई दूसरी वस्तुमें जाके मिलें ? जब एक निक्षेप, वंदनीय होगा, तब तो 'चारों निक्षेपभी' वंदनीयरूपही होगा ॥

और जिसका एक निक्षेप, वंदनीय न होगा, उनका चारों निक्षेप-भी 'वंदनीय' कभी न होगा, ॥ किस वास्ते खोटी कुतर्को करके, अपणा, और अपणा अश्रितोंका, बिगाडा करलेतेहो, ? सद्गुरुका शरणालियाविना कभी कल्याणका मार्ग हाथ नहीं लगेगा. इति पर्याप्त मधिकेन ॥

॥ और पृष्ठ २१ ओ १० सें लिखा है कि—आत्मारामजी तो, विचारा पढा हुआथा ही नहीं. ॥ यहभी दूढनीका लेख सत्य-ही है। क्योंकि, आत्मारामजी पढा हुआ ही नहीं था, यह बात सारीआलम जानतीही है. मात्र हठीले दूढकों के वास्ते तो तूहीही साक्षात् पार्वतीका अवताररूपे हुई है, उनके वास्ते आत्मारामजी नहींथा, कहेवत है कि, अंधेमें काणा राजा, तैसा तूं आचरण करके जो महापुरुषोंको यद्वा तद्वा बंकती है सो, तो तेरेकोही दुखदाई होगा.

दूढनी—पृष्ठ २९ ओ १२ से—बूढेरायजी आदिक संस्कृत नहीं पढ़ेंथे, बे सब मिथ्यावादी है, और असंयमी है, उनका इत-बार नहीं करना चाहीये.

समीक्षा—पाठक वर्ग ! संस्कृत पढे विना, वचनशुद्धि, नहीं होती है। यह बात तो सिद्धही है। और जो गुरु मुखसे धारण करके, उतनाही मात्र कहता है. उनको बाधकपणा कम होता है. । और गुरुका अनुयायीपणेही, संयममें प्रवृत्ति करता है, उनका सं-यममें, कोई प्रकारका बाधक नहीं होता है. ॥ परंतु तुम दूढको तो, आजतक जो जो महा पुरुष होते आये उनका सबका, अना-दर करके, उलंठपणा करते हो इस वास्ते, तुमेरा सब निरर्थक है. ॥ संवेगी तैसैं नहीं है. ॥



॥ इति आत्मारामजी बूटेरायजी ॥

॥ अब मूर्तिमेंचार निक्षेप ॥

दूडनी-पृष्ठ २८ ओ. १९ से-मूर्तिमें-भगवानके ' चारों निक्षेप ' उतारके दिखाओ. इत्यादि ॥

समीक्षा-हे सुमतिनि ! अभीतक तेरेको निक्षेपका अर्थही समजा नहीं है, इसी वास्ते कुतर्कों कर रही है । जो निक्षेपोंका-अर्थ, समजी होनी तो, एसी एसी कुतर्कों करतीही किस वास्ते ? देख सूत्रपाठसे-निक्षेपोंका अर्थ कि,-वस्तुमें, प्रचलित वर्णसमुदायमात्र-सें, संज्ञापणाको, आरूढकरना, उसका नाम ' नामनिक्षेप ' है. १ ॥ और वस्तुको, दश प्रकारमेंसे किसीभी दूसरी प्रकारकी वस्तुमें-आकृति, अनाकृति रूपे, स्थापित करना उसका नाम ' स्थापना-निक्षेप ' है. २ ॥ और जो वस्तु कार्यरूप है; उनका पूर्व अपरकालमें जो कारणरूप स्वभाव है, उसमें कार्यरूप वस्तुका, आरोप करना, उसका नाम ' द्रव्यनिक्षेप ' है. ३ ॥ और जो वस्तु, वस्तुरूपमें स्थित होके, अपनी क्रियामें प्रवृत्ति करती है सो भावनिक्षेप है. ४ ॥ जब शास्त्रकारने निक्षेपोंका अर्थ-ऊपर लिखे मुजब किया है; तब तू हमारी पाससे ' मूर्तिमेंही, भगवान्का चारों निक्षेप, कैसे कराता है ? क्योंकि-मूर्तिमें तो, हमने, भगवान्का, केवल एक ' स्थापनानिक्षेप ' ही किया है । तू कहेगी कि-ऋषभदेव, आदिका ' नामभी ' देते हो, तो ' नामनिक्षेपभी ' तो मूर्तिमें रखतेही हो, हे विचार शीले ! नाम देते है सो तो, उस वस्तुकीही, यह मूर्ति, स्थापित किई है, उनका पिछान करनेके वास्ते है । और ' नामनिक्षेप ' तो नाभिराजाका ' पुत्ररूप वस्तुमें ' यावत् कालतकका

हो चुका है । मूर्तिमें तो पाषाणरूप वस्तुही अलग हैं । अगर जो मूर्तिरूप वस्तु है, उनका 'चार निक्षेप' कराना, चाहती होगी तो, तूने अलग रूपसें करकंभी दिखा देवेंगे । इस वास्ते जो तूने पृष्ठ ३१ तक—कुतर्क किई है सो तो, वृथाही मगज मारा है ॥ और पृष्ठ ३१ ओ. १२ सेलेके ३२ तक—दो मित्रका, दृष्टांत खडा किया है, सोभी निक्षेपोंका अर्थ समजे विना, अजानको परचानेके लिये अपणी चातुरी दिखाई है ॥

॥ इति मूर्तिमें 'चार निक्षेप' का विचारः ॥

॥ अब. चार निक्षेपके विषयमें, दूढ़नीजीको, जो ज्ञान हुवा है सो लिख दिखाते है.

॥ इंद्र १ । मिशरी २ । ऋषभदेव ३ । यह नाम रखनेके वर्ष समुदाय है । और देवताका मालिक १ । इक्षु रसकासार २ । और प्रथम तीर्थंकरका शरीर ३ । यह तीन वस्तुमें नामको रखके उनका चार चार निक्षेप करणेको, दूढ़नीजीने प्रवृत्ति किई है । परंतु, देवताके मालिकमें—इंद्र नामको रखके तीनही निक्षेप घटाके दिखाया, । और इक्षु रसकी सार वस्तुमें—मिशरी नाम रखके एक स्थापना निक्षेपही, घटाके दिखाया । और तीर्थंकरका शरीररूप वस्तुमें—ऋषभदेव नाम रखके अढाई निक्षेप घटाके दिखाया ॥ कोई पुछेंगेकि, यह कैसें हुवा, सो दिखाते है ॥

दूढ़नीजीने, सत्यार्थके प्रथम पृष्ठमें, यहलिखाई कि—“श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें—आदिहीमें, वस्तुके स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य प्रकारसे, चार निक्षेप निक्षेपने(करने) कहै है.” ॥ यह सूत्रका अभिप्राय लेके, लिखा हुवा दूढ़नीजीका लेखसे सिद्ध हुवाके, एक वस्तुके ही, चारनिक्षेप, होने चाहीये ? सो दूढ़नीजीका लेखमें,

एक भी जगें सिद्ध नहीं हो सकता है ? जैसे कि “इंद्र” यह दो-वर्णमें, नामका निक्षेप करनेको लगी है, देवताके मालिकमें, और करके दिखाया केवल गूज्जरके पुत्रमें, इस वास्ते देवताका मालिक रूप वस्तुमें, प्रथम नाम निक्षेप, घटा सकी ही न ही है ॥ देखो, सत्यार्थ पृष्ठ. ७ सें. ११ तक. ॥

॥ और इक्षु रसकी सार वस्तुमें, केवल एक स्थापना निक्षेप ही घटा सकी है । क्योंकि—कन्यारूप वस्तुमें, “मिशरी” ऐसा नामका निक्षेप करके दिखाया । और—द्रव्य निक्षेप इक्षु रसके सार वस्तुकी पूर्वावस्थामें, किंवा, अपर अवस्थामें, करनेका था, सो नहीं किया, और केवल मिट्टीका कूज्जारूप दूसरी ही वस्तुमें करके दिखाया. । और ‘भाव निक्षेप’ साक्षात्पणे जो इक्षु रसकी सार वस्तुमें, करनेका था, सो नहीं करती हुई मिट्टीके कूज्जेमें ही करके दिखाया, इस वास्ते जैन सिद्धांतके मुजब इस वस्तुमें एक ही निक्षेप घटा सकी है. ॥

॥ अब देखो तीर्थंकरका शरीर रूप वस्तुमें, दूंदनीने अढाई निक्षेप ही घटाया है. जैसे कि ‘नाम निक्षेप’ करनेको लगी तीर्थंकरकी शरीररूप वस्तुका, और करके दिखाया दूसरा मनुष्यमें. ॥ और द्रव्य निक्षेप, तीर्थंकरकी बालकपणे रूप पूर्वावस्थामें, और मृतक शरीर रूप अपर अवस्थामें, करनेका था, सो केवल अपर अवस्थामें ही, करके दिखाया, इस वास्ते तीर्थंकर ऋषभदेवके, चार निक्षेपकी सिद्धिमें, अढाई निक्षेपकी ही सिद्धि करके दिखाया. । देखो इसका विचार, सत्यार्थ पृष्ठ. १२ सें लेके पृष्ठ. १७ तक. ॥

॥ और, पृष्ठ. ७ से लेके, पृष्ठ. १७ तक, ऐसे मनः कल्पित लेख लिखके, प्रथमके तीन निक्षेपको, निरर्थकपणा भी कहती

जाती है, परंतु चारनिक्षेपमेंसे एक भी निक्षेप, निरर्थक रूप नहीं है। मात्र विशेष यह है कि—जिस निक्षेपमें जो कार्यकी सिद्धि होनेवाली है, सोई सिद्धि होती है। ॥ “जैसे कि” १ हेय पदार्थके चारनिक्षेप है सो तो त्याग पणेकी सिद्धिके करानेवाले है। और २ ज्ञेय पदार्थके चार निक्षेप है सो ज्ञान प्राप्तिकी सिद्धिके करानेवाले है। और जो परम ३ उपादेय रूप पदार्थ है उनके, चार निक्षेप है सो, आत्माकी शुद्धिकी सिद्धिके करानेवाले है। ॥

॥ देखोइस विषयमें, ‘ठाणांग’सूत्रका चांथा ठाणा. छापाकी पोथी के पृष्ठ. २६८ में—यथा—१ नाम सच्चे, २ ठवण सच्चे, ३ दव्व सच्चे, ४ भाव सच्चे, ॥ इस पाठसे, चोरो ही निक्षेपको, सत्यरूपे ही ठहराये है। परंतु, निरर्थकरूपे नहीं कहे है। ॥

प्रश्न—यह चार प्रकारके सत्यमें, निक्षेप शब्द तो आवाही नहीं है, तुमने कहाँसे लिखके दिखाया. ? ॥

॥ उत्तर—जिस जिस जगें सिद्धांतमें, १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, और ४ भाव, इन चारोंका वर्णन होगा उहाँ पर चार निक्षेपोंका ही वर्णन समझनेके है, परंतु भिन्नरूपसें तुमरे किये हुये, आठ विकल्पतो, दिग्ब, श्वेतांबर, के लाखो पुस्तकमेंसे, एक भी पुस्तकमेंसे न निकलेगा, किस वास्ते तीर्थकरोंसे और गणधर महापुरुषोंसे, विपरीतपणे जाते हो ? कोइ तो एक बातका उलटपणा करें, अगर, दो चार बातोंका, उलटपणा करके दिखावें, परंतु इस दूढ़नीजीने तो, तीर्थकर, गणधरोंका भी, भय छोडके, स्वच्छंदपणासें, सर्व जैन सिद्धांतोंका, तत्त्व पदार्थोंको ही, उलटपणा करके दिखाया है, न जाने इस दूढ़नीजीको कौनसा मिथ्यात्वका उदय हुवा होगा ? ॥

प्रथम इस दूढ़नीजीने, द्रव्यार्थिक चार नयोंका विषय रूप पदार्थ को निरर्थक ठहराके, द्रव्यार्थिक चार नयका विषयरूप, तीन निक्षेपोंको भी, निरर्थक लिखती रही, परंतु इतना विचार न किया कि, साधु, साध्वीका वेश, आहार, विहारादिक जो जो सिद्धांतमें, विचार दिखाया है सो सर्व, बहु लतासें द्रव्यार्थिक चार नयोंका ही विचारसें, लिखा हुआ है ॥ और श्रावक, श्राविकाका सामायिक, पोषध, प्रतिक्रमण, अर्थात् सम्यक्त्व मूल बाराव्रतादिकके जो जो आचार विचारका वर्णन है, सो भी सर्व प्रायें द्रव्यार्थिक चारनयोंका विषय रूपसे ही कहे गये है. इस वास्ते, द्रव्यार्थिक चारनयोंका विषयको निरर्थकपणा ठहरानेसे, सर्व जैन मार्गकी क्रिया विगरेका ही, निरर्थकपणा, ठहरता है, और जैनमार्गकी क्रियाका निरर्थकपणा ठहरनेसे, जैनमार्गका लोप करनेका महा प्रायश्चित्त होता है, इस वास्ते, दूढ़नीजीने, लेख लिखती बखते पुस्तकपणेका एक भी विचार नहीं किया है ? केवल थोथा पोथाको ही लिख दिखाया है ॥

॥ अगर जो दूढ़नीजीके मनमें, यह विचार रह जाता होगा कि, येंने आठ विकल्प किये है, उसमें कोई भी प्रकारका बाधकपणा नहीं आता है, मात्र संवेर्षालोको ही, जूठा आक्षेप करके, हमारा लेखको निरर्थकपणा ठहरा देते है. इस संकाको दूर करनेके लिये, समजूति करके दिखाते है. ॥

॥ दूढ़नीजीका कहना यह है कि नाम १ । स्थापना २ । द्रव्य ३ । और भाव ४ । यह चार विकल्प है सो, जो जो मूलकी वस्तु होती है, उसमें पाया जाता है. “जैसे कि” इंद्र नाम है सो इंद्रमें, । और भिशरी नाम है सो साक्षात् रूपकी भिशरी

वस्तुमें, । तीर्थकरोके नामादिक है सो तीर्थकरोंमें, जब यहीनामा-  
दिक, चार विकल्प, पिछेसँ दूसरी वस्तुमें दाखल किये जावें, तब  
ही निक्षेप रूपसँ कहे जावें, यह जो दूँढनीजीके मनमें, भूत भराया  
है, सो केवल सदगुरुके पाससँ सिद्धांतका पठन नहीं करनेसँ ही  
भराया है, अगर जो सदगुरुके पाससँ, सिद्धांतका पठन किया  
होत तो, यह शंका होनेका कारण कुछ भी न रहता, क्यों कि,  
१ 'इंद्र' २ मिशरी, ३ ऋषभ, ४ देव, आदि जितने शब्द है, सो तो  
अनादिसँ सिद्ध रूपही है, और वस्तुकी उत्पत्ति हुये बाद, योग्यता  
प्रमाणे, अथवा किसी वस्तुमें रूढिसँ, नामका निक्षेप किया जाता  
है. । जिस वस्तुमें, गुण पूर्वक नामका निक्षेप किया जाता है उ-  
सको योगिक भी कहते हैं. । और दो शब्दका मिश्रण करके ना-  
मका निक्षेप किया जाता है उनको मिश्र कहते हैं, इसमें विशेष  
समजूति है सो देखो लक्षणकारका नामनिक्षेपका लक्षणके श्लोकमें,  
इस वास्ते इंद्ररूप वस्तुमें, इंद्र नामका निक्षेप है सो, व्याकरणादि-  
ककी व्युत्पत्तिसँ सिद्धरूप "योगिक" शब्द है. । और--मिशरी  
रूपकी वस्तुमें मिशरी नामका निक्षेप है सो भी "योगिक"  
ही है. । और तीर्थकरमें, "ऋषभ" शब्द, और "देव" शब्द, यह  
दोनो शब्दोंका मिश्रण करके नामका निक्षेप किया गया सो "मि-  
श्ररूप" समजनेका है. ॥ जब यही इंद्रादिक नामका निक्षेप, दू-  
सरी वस्तुमें किया जाता है, तब इंद्रकी पर्यायके वाचक जो--पुरंदर,  
वज्र धरोदिक है, उसकी प्रवृत्ति दूसरी वस्तुमें, किई नहीं जाती है.  
परंतु दोनो ही वस्तुमें, कहा तो जावेंगा नामका ही निक्षेप । क्यों  
कि--दोनो ही वस्तुमें, जो इंद्र पदसँ--नामका निक्षेप किया है, सो  
वस्तुकी उत्पत्तिके बाद ही किया गया है, इस निक्षेपके विषयमें  
कुछ भी फरक नहीं है ? मात्र विशेष यही रहेगा कि, गूजरके पु-

त्रमें, इंद्र पदका नामनिक्षेपसं, गूज्जरके पुत्रका ही बोधकी प्राप्ति होगी ? और पुरंदरादिक पर्याय वाची, दूसरा " नामोका " बोधकी प्राप्ति न रहेगी. परंतु गूज्जरके पुत्रमें, इंद्र पदसं नामका निक्षेप, निरर्थक कभी न ठहरेंगा ? क्यों कि इंद्रपदके उच्चारण करनेके साथ, गूज्जरका पुत्र भी, हाजर होके, संकेतके जाननेवालेको, बोध ही कराता है. इसवास्ते जो जो वस्तुका, जो जो नामादि चार निक्षेप हैं, सों अपनी अपनी वस्तुका बोधका कारणरूप होनेसे, सार्थक रूपही है, परंतु निरर्थक रूप नहीं है, इसी वास्ते सिद्धांतकारने भी " १ नाम सच्चे । २ ठवण सच्चे । ३ द्रव्य सच्चे । और ४ भाव सच्चे. " कहकर दिखाया है. ॥

॥ और जिस वस्तुका एक निक्षेप भी असत्य अथवा निरर्थक रूपसं मानेगे सो वस्तु वस्तु स्वरूपकी ही नहीं कही जावेगी । कारण यह है कि-वस्तु स्वरूपका जो पिछान होता है सो उनके चार निक्षेपके स्वरूपसं ही होता है इस वास्ते दूंदनीजीका लिखना ही सर्व आलजाल रूपका है.

॥ इति चार निक्षेपके विषयमें-दूंदनीजीका ज्ञान ॥

अब जो प्रथमके लेखमें-दूंदनीजीने इंद्रमें त्रण निक्षेप । मिशरीमें एक निक्षेप । और ऋषभदेवमें अढाई निक्षेप । घटायाथा सो अब सिद्धांतका अनुसरण करके चार चार निक्षेप पुरण करके दिखलातें है ॥

॥ इंद्रमें जो इंद्रनाम है, सोई नाम निक्षेप है १ । और पाषाणादिकसं इंद्रकी जो आकृति बनाई है, सो स्थापना निक्षेप है २ । और इंद्रका भवकी जो पूर्वापर अस्था है, सो द्रव्य निक्षेपका वि-

षय है ३ । और साक्षात्पणे अपनी ठकुराईका भोग कर रहाहैं सो भाव निक्षेपका विषय है ४ ॥

॥ अब गूज्जरके पुत्रमें भी, चार निक्षेप घटाके दिखाते है ॥

जो गूज्जरके पुत्रमें, “ इंद्र ” नाम रखा है सो भी नाम निक्षेप ही है १ और उस गूज्जरके पुत्रकी, पाषाणादिकसं, आकृति बनाई, सो स्थापना निक्षेपका विषय है २ । और गूज्जरपणाके लायककी, पूर्वांशपर अवस्था है सो, द्रव्य निक्षेपका विषय है ३ । और साक्षात्पणे गूज्जरका कार्यको कर रहा है सो, ‘ भावनिक्षेप ’ का विषय है ४ ।

अब मिशरी वस्तुमें, दूढनीने, एक स्थापना निक्षेप ही घटाया था, उनके भी चारो निक्षेप बतलाते है. जो मिशरी वस्तुका नाम है सोई, नाम निक्षेप है १ । और मिट्टीका, कागजका, आकार बनाना सो, मिशरी नामकी वस्तुका ‘ स्थापना निक्षेप ’ का विषय है २ । और मिशरीकी, पूर्वांशवस्था खांडरूप, अपर अवस्था मिशरीका पानीरूप है सो, ‘ द्रव्य निक्षेप ’ का विषय है ३ । और साक्षात् मिशरी है सो, ‘ भाव निक्षेप ’ का विषय है ४ ॥

॥ अब ‘ मिशरी ’ नामकी, कन्याका, चार निक्षेप, करके दिखाते है—कन्याका नाम मिशरी है सो, नाम निक्षेप है १ । और उस कन्याकी, पाषाणादिकसं, आकृति बना लिई सो ‘ स्थापना निक्षेप ’ का विषय है २ । और कन्याभाव प्राप्त होनेकी, पूर्वांशपर अवस्था है सो, द्रव्य निक्षेप ’ का विषय है ३ । और जो कन्या भावको, प्राप्त हो गई है सो ‘ भाव निक्षेप ’ का विषय है ४ ॥ अब मिट्टीके कूज्जेका, चार निक्षेप, करके दिखावते है—जो ‘ कूज्जा ’ ऐसा नाम है सो, कूज्जेका, नाम निक्षेप ’ है १ । कागद, कपडा



दिक, अथवा चित्रसं, कूज्जेकी आकृति ( मूर्ति ) करके समजाना सो, ' स्थापना निक्षेप ' का विषय है २ । कूज्जेकी पूर्वावस्था मिट्टीकार्पिड रूप, अपर अवस्था टुकडे रूप है सो, ' द्रव्य निक्षेप ' का विषय है ३ । और जो साक्षात्पणे मिट्टीका कूज्जा बन्या हुवा है सो, कूज्जाके ' भाव निक्षेप ' का विषय है ४ । इति मिट्टीके कूज्जेका, चार निक्षेपका स्वरूप. ॥

॥ अब ऋषभदेव के, चार निक्षेप दिखलाते हैं-जो नाभि राजा के पुत्रमें, ' ऋषभ देव ' नाम है सोई, नाम निक्षेप है ? । और जो पाषाणादिककी आकृति है सो ' स्थापना निक्षेप ' का विषय है २ । और जो पूर्वांशपर बाल्यंशत शरीर रूप अवस्था है सो, द्रव्य निक्षेपका विषय है ३ । और साक्षात् तीर्थकर पदको प्राप्त हुये है सो भाव निक्षेपका विषय है ४ ॥ अब पुरुषके, चार निक्षेप, दिखलाते हैं-जो पुरुषका नाम, ' ऋषभ देव ' है सो, नाम निक्षेप है ? । उस पुरुषकी, पाषाणादिककी आकृति है सो ' स्थापना निक्षेप ' का विषय है २ और जो पुरुष भावकी, पूर्वांशपर अवस्था है सो ' द्रव्यनिक्षेप ' का विषय है ३ । और जो पुरुषार्थ करनेके कौ, योग्यताको प्राप्त हो गया है सो ' भावनिक्षेप ' का विषय है ४ ॥ इसी प्रकारसं-चार चार निक्षेपका स्वरूप, सर्व प्रकारकी दृश्य वस्तुओंमें, योग्यता प्रमाणे विचार लेना ॥

॥ इसी-दूढ़नीजीने -इंद्रमें त्रण, । मिशरीमें एक. । और ऋषभ-भदेवमें, अढाई निक्षेप करके दिखायाथा. । उनके हमने चार चार निक्षेप, स्पष्ट पणे लिख दिखाया सो भ्रम तो पाठक वर्गका दूर हो गया होगा, परंतु मूर्ति नामकी वस्तुके, चार निक्षेपको दिखायै बिना, शंकाही रहजायगी, सो, शंका दूर करनेके लिये, मूर्ति नामकी वस्तुके भी ' चार निक्षेप ' करके दिखलाता हूं ॥

पाषाणरूप दूसरी ' वस्तुसं ' तीर्थकर स्वरूपकी ' आकृति ' बनायके, उनका नाम रख दिया ' मूर्ति ' सो पाषाणरूप वस्तुका नाम निक्षेप हुवा १ ॥ अब इसी मूर्तिकी आकृतिका, दूसरा उतारा करके, दूर देशमें, स्वरूपको समजना सो, मूर्ति नामकी वस्तुका-दूसरा ' स्थापना निक्षेप ' २ ॥ ते मूर्ति रूपका घाट घडनेकी पूर्व अवस्था, अथवा खंडितरूप अपर अवस्था है सो, मूर्ति नामकी ' वस्तुका ' ' द्रव्यनिक्षेप ' ३ और साक्षात् रूप जो मूर्ति दिखनेमें आ रही है सो मूर्ति नामकी ' वस्तुका ' भाव निक्षेप ४ ॥ इसमें विशेष समजनेका इतना है कि-जिस महापुरुषकी आकृति बनाई है उनका ' स्थापना निक्षेप ' काही विषय है । और तें साक्षात् स्वरूपकी मूर्ति है सो अपणा स्वरूपको प्रगट करनेके वास्ते ' भावनिक्षेप ' का विषय स्वरूपकी ही है ॥ क्योंकि साक्षात् रूप जो जो वस्तुओ है सो तो प्रगटपणे ही अपणा अपणा स्वरूपको प्रकाशमान करती ही है ॥ कारण यह है कि-वस्तु स्वरूपका जो साक्षात्पणा है सोई भाव निक्षेप के स्वरूपका है ॥ इस वास्ते प्रत्यक्ष रूप जो मूर्ति नामकी वस्तु है सोई मूर्ति नामकी वस्तुका भावनिक्षेप है ॥ इति मूर्ति नामकी वस्तुके चार निक्षेप ॥

सत्यार्थ-पृष्ठ. २८ सें-दूदनीजी-भगवान्की मूर्तिमेंही, भगवानके चारो निक्षेप हमारी पाससं मनन कराती हुई, लिखती है कि-मूर्तिकी-महावीर नाम, सो नाम निक्षेप १ । महावीरजीकी तरह आकृति सो ' स्थापनानि निक्षेप ' २ । अपने आप कबूल करती हुई लिखती है कि-मूर्तिकी द्रव्य है सो भगवानका द्रव्य निक्षेप है, ऐसा हमारी पाससं-मनन कराती हुई उत्तर पक्षमें-हेमका कहती है कि-यहां तुम चूके। ऐसा उपहास्य करती

है । परंतु इस दूदनीको इतना विचार नहीं हुआ कि-मैं-मूर्ति के द्रव्यका, और भगवानके द्रव्यका, प्रश्न ही अलग अलग वस्तुका करती हूं तो, दोनोही भिन्नस्वरूपकी 'वस्तुका' चार निक्षेप एक स्वरूपका कैसे हो जायगा ? हे दूदनी जी ! नतो सिद्धांतकार चूके है, और न तो हमारे गुरुवर्य चूके है, केवल गुरुज्ञानको लिये विना तूं, और तेरा जेढमल, आदि दूढक साधुओं, इस चारनिक्षेपके विषयमें-जगें जगें पर चूकते ही चले आये है, क्योंकि-मूर्ति यह नाम-पाषाणरूप वस्तुका है । और महावीर यह नाम-सिद्धार्थ राजाका पुत्र तीर्थंकर रूप वस्तुका है । इस वास्ते दोनो ही भिन्न भिन्न स्वरूपकी वस्तु होनेसें, चार चार निक्षेप भी अलग अलग स्वरूपसें ही करना उचित होगा ? किस वास्ते जूठा परिश्रमको उठा रही है ? न तो तुम निक्षेपका विषयको समजते हो ? और न तो नयोंका विषयको समजते हो ? एकंदर वारिक दृष्टिसें जो विचार करके तपास करोंगे तो, तुम लोक जैनधर्मका सर्व तत्त्वका विचारसें ही चुके हो ? इसी वास्ते ही तुमेरा विचारोंमें, इतनी विपरीतता हो रही है ? नहीतर जैनधर्मके सिद्धांतोंमें-कोइ भी प्रकारका फरक नहीं है, किस वास्ते महापुरुषों की अवज्ञा करके-जैनधर्मसें भ्रष्ट होते हो ? ॥ इति अलमधिक शीक्षणेन ॥

इति मूर्तिमें-भगवानके 'चारनिक्षेप' का विचार ॥

इहां पर्यंत चारनिक्षेपके विषयमें, दूदनीजीका जूठा मंडन, और हमारा तरफका खंडन, और अनुयोगद्वार सूत्र पाठसें एकता देखके पाठकवर्ग अवश्य भेव गभराये होंगे, न जाने किसका कहना

सत्य होगा ? सो इस शंकाको दूर होनेके लिये, किंचित् पुनरा-  
वृत्ति रूप, सिद्धांतसें मेलन करके दिखाते है, जिससें वि-  
चार करनेका सुगम हो जावें । देखियेके-अनुयोग सूत्रकारने, चार  
निक्षेपके विना, दूसरा एक भी विचार नहीं दिखाया है । तदपि  
दूढ़नी, तीर्थकर और गणधर महाराजाओंसें-विपरीत हुई, पूर्वाऽप-  
रके विरोधका-विचार किये विना, सत्यार्थ पृष्ठ ११ में-  
अपणी मनः कल्पनासें--१. नाम, २ नाम निक्षेप, । ३ स्थापना, ४  
स्थापना निक्षेप, । ५ द्रव्य, । ६ द्रव्य निक्षेप, । ७ भाव, । ८ भाव  
निक्षेप, यह आठ विकल्प खडा करती है । परंतु इतना सोच न  
किया के, तीर्थकरके सिद्धांतको धका पुहचाके में मेरी क्या गति  
कर लउंगी ?

प्रथम इस दूढ़नीने-यह लिखाथा के-श्री अनुयोग द्वार सूत्र-  
में आदिहीमें, वस्तके स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य  
प्रकारसे चार निक्षेपे निक्षेपने ( करने ) कहै है, वैशालिखके फिर  
सूत्रपाठका आडंबर दिखाया, फिर आठ विकल्प करके, मिशरी  
नामकी वस्तुमें, और ऋषभदेव नामकी वस्तुमें, केवल मनः-कल्प-  
नासें घटानेका प्रयत्न किया. क्यों कि निक्षेप तो करने लगी है इक्षु  
रसका सारभूत, मिशरी नामकी ' वस्तुका ' उसको ' नाम ' उह  
राय के, कन्यारूप स्त्रीकी दूसरी वस्तुमें, ' नामनिक्षेप ' बतलाती है  
सो कौनसा सिद्धांतसें दिखाती है ? क्यों कि वस्तुरूपे दोनोही  
अलग अलग है. । और सूत्रकारने वस्तुमें ही, चार निक्षेप  
करने, वैशा कहा है. । तो क्या इक्षु रसका ' सारभूत ' मिशरी  
नामकी वस्तु कुछ वस्तुरूपसें नहीं है ? जो नामका निक्षेपको  
उठाती है ? । प्रथम दूढ़नी इतनाही समजी नहीं है के, वस्तु  
क्या ? और अवस्तु चिज क्या ? तो पिछे ' निक्षेपका ' विषयको

क्या समझेगी ? । तैसैं ही तीर्थकर गोत्र उपाजर्न किया हुवा जीवने, नाभिराजाके कुलमें, शरीररूप वस्तुको धारण किये बाद, माता पिता विगरेने गुणपूर्वक, 'ऋषभ' नामका निक्षेप किया है, उनको दूंदनी 'नाम' ठहरायके, पुरुषरूप दूसरी. 'वस्तुमें' 'नाम-निक्षेप' ठहराती है । तो क्या नाभिराजाके पुत्रका शरीर, कुछ वस्तुरूप नहीं है ? जो दूंदनी सूत्रको धका पुहचाके 'नाम' मात्रको ठहराती है ? सूत्रकारने तो वस्तुमें 'नाम निक्षेप' करना कहा है । इस वास्ते यह प्रथम निक्षेपके विषयमें, दो विकल्प ही, दूंदनीका निरर्थक रूपसैं हुवा है ॥ क्यों कि, इशु रसका 'सारभूत' वस्तु है उसमें, मिशरी नामका निक्षेप करके ही लोको समजते है । तैसैं, प्रथम तीर्थकरका शरीररूप 'वस्तुमें', ऋषभ नामका 'निक्षेप' हुये बाद, जैनी लोकाने तीर्थकरपणे ग्रहण किया है । इस वास्ते, नाम, और नाम निक्षेप, अलग अलग है, बैशा तीनकालमें भी नहीं होसकता है ॥

इति प्रथम-नाम, और नामनिक्षेप,का विचार.

अब 'स्थापना' और 'स्थापना निक्षेप' दूंदनीने किया हैउनका विचार देखियें ॥

दूंदनीने-साक्षात् रूप मिशरीके कूज्जेका आकार मात्रको, 'स्थापना' ठहराई, । और, मिट्टीका, तथा कागजका, मिशरीके कूज्जेका आकारको,—स्थापना निक्षेप, ठहराया । परंतु इतना सोच न कियाके, जो साक्षात् रूप मिशरीका आकार है सो तो, भाव निक्षेपका विषयरूप वस्तु है, में स्थापना किस हिसाबसैं ठहराती हुं ? क्यों कि-उस मिशरीका आकारमें, मिठापण विगरे सर्वगुण 'मिशरीका' विद्यमान है, सो तो भाव निक्षेपका विषय, दूंदनीके छ-

( ६६ ) द्रव्य, और 'द्रव्य निक्षेप' का विचार.

क्षणसे भी-सिद्धरूप है। इस वास्ते यह विकल्प ही जूठा है। और स्थापना निक्षेप है सो, मूल वस्तुकी आकृति अनाकृति रूपे, दूसरी 'दश' प्रकारकी वस्तुमें स्थापित करके, पिछान करनेका शास्त्रकारने दिखाया ही है। इस वास्ते 'स्थापना, और 'स्थापना निक्षेप' अलग अलग तीनकालमें भी नहीं बन सकते है। और न शास्त्रकारने दिखाया भी है ॥

॥ अब देखिये, ऋषभदेवके विषयमें, दूढ़नीका कहना-औ दारिक शरीर, स्वर्ण वर्ण, समचौरस संस्थान, वृषभ लक्षणादि १००८-लक्षण सहित, पद्मासन, वैराग्य मुद्रा, जिससे पहिचाने जायें कि-यह ऋषभदेव भगवान है, सो स्थापना ॥

पाठकवर्ग ? दूढ़नीजीकी धिठाई देखियेके जो तीर्थकर-पद्मासन युक्त, और वैराग्य मुद्रा सहित, सर्व लक्षण लक्षित, साक्षात् भगवानरूपे, भाव तीर्थकर पणाको प्राप्त हुये है, उनको स्थापनारूपे कर दिखाती है? नतो सिद्धांत तरफ देखती है, और न तो अपणा किया हुवा लक्षणके तरफ भी देखती है, इनकी अज्ञता-कौनसे प्रकारकी समजनी, और साक्षात्पणे भगवान सो,-स्थापना, यह विचार किस गुरुके पाससे पढकर आई ? । और, पाषाणादिकमें-स्थापना निक्षेप, करणा सो तो सूत्रके कहने गुजब योग्य ही है। इस वास्ते 'स्थापना' और 'स्थापना निक्षेप, तीनकालमें भी नहीं बन सकता है. दूढ़नीजीकी तो अकल ही ठिकानेपर नहीं है।

इति स्थापना, और स्थापना निक्षेप,का विचार.

अब दूढ़नीजीका-द्रव्य, और द्रव्य निक्षेप,का विचार-करके दिखावते है ॥

मिशरीका 'द्रव्य' खांड आदिक, जिससे मिशरी बने सो 'द्रव्य' ॥ और चासनी भरनेके पहिले, और मिशरी निकालनेके पिछे भी, मिशरीके कूजे कहत हैं सो 'द्रव्य निक्षेप' ! ॥

पाठकवर्ग अब विचार किजीये के, मिशरी नामकी वस्तुका कारण,—जो पूर्वावस्थारूप खांड है, उसमें मिशरी वस्तुका 'द्रव्य निक्षेप' करनेका शास्त्रकारने कहा है, उसको दूंदनी मिशरीका 'द्रव्य' मात्र कहती है। और जो मिट्टीका कूजामें,—मिशरी वस्तुका गुण, एक अंश मात्र भी नहीं हैं, उसमें मिशरी वस्तुका 'द्रव्य निक्षेप' ठहराती है। अब देखो दूंदनीका पोथा सें—द्रव्य निक्षेप कालक्षण—वस्तुका वर्तमान गुण रहित, अतीत अथवा अनागत गुण सहित, और नाम आकारभी सहित, सो, द्रव्यनिक्षेप, । यह दूंदनीका लक्षण, मिट्टीके कूजेमें मिशरी वस्तुका क्या है ! क्या अतीत अनागतमें, मिट्टीका कूजा है सो, मिशरी पणेका गुणको, अथवा मिशरी पणेका नामको, कुछ धारण करता है ? जो मिशरी वस्तुका 'द्रव्यनिक्षेप' कर दिखाती है ? । और, दूंदनी सूत्रसं, नो आगमके भेदमें, १ जाणग सरीर, और २ भविअ सरीरमें,—द्रव्यनिक्षेप, करना कहती है, सो तो, वस्तुकी पूर्वकाल अवस्था, किंवा अपरकाल अवस्था सिद्ध होती है, तो पिछे मिशरी वस्तुका—द्रव्य निक्षेप, मिट्टीके कूजेमें करनेका, किस गुरुपाससे पढकर दिखाती है ?

अब देखिये ऋषभदेवके विषयमें—दूंदनीका 'द्रव्य' और 'द्रव्यनिक्षेप' सत्यार्थ—पृष्ठ. १६ सें—यथा भाव गुण सहित, पूर्वोक्त शरीर, अर्थात् संयम आदि केवल ज्ञान पर्यंत, गुण सहित शरीर सो 'द्रव्य' ऋषभदेव, ॥ और पूर्वोक्त 'जाणगसरीर' और 'भविअ सरीर, अर्थात् अतीत अनागत कालमें, भाव गुण

( ६८ ) भाव, और ' भाव निक्षेप ' का विचार.

सहित, वर्तमान कालमें भावगुण रहित शरीर, अर्थात् ऋषभदेवजी निर्वाण हुए पीछे, यावत्काल शरीरको दाह नहीं किया, तावत्काल जो मृतक शरीर रहाथा सो ' द्रव्यनिक्षेप ? । ऋषभदेवजी वाले गुण करके रहित, कार्य साधक नहीं, ताते निरर्थक है ॥

॥ इहांपर देखिये दूढनीजी की धिठाई, जो ऋषभ देवका २ भविअ शरीर, ( अर्थात् भविष्य कालमें, तीर्थंकरकी ऋद्धिका भोग करने वाला शरीर, सो तो ठहराया ' द्रव्य ' । और ' जाणग सरीर ' ( अर्थात् ऋषभ देवजीका मृतक शरीर ) सो तो ठहराया ' द्रव्य निक्षेप ' । और सूत्रपाठसें,—नो आगमके भेदमें, १ जाणग सरीर, और २ भविअ सरीर, यह दोनो भेदको भी लिखती है ' द्रव्यनिक्षेप ' । तो अब विचार किजीये—दूढनीके लेखमें, कितनी सत्यता है ? ॥ यह दूढनी अपणाही लेखमें पूर्वाऽपरका विचार किये बिना, विवेक रहितपणेका आचरण करती है या नहीं ? सो पाठक वर्ग—लक्षणसें, और सूत्र पाठसें भी, वारंवार विचार करें.!! मेंकहां तक लिखके पत्रे भरुंगा ? यह दूढनीजी कभी दूसरेका लेख तरफ ध्यान न देती, परंतु अपणा लेख तरफ तो ध्यान देके लिखती ? तब भी हमको इतना परिश्रम नहीं करना पडता, परंतु जहां कुछ विचार ही नहीं है ऐसैको हम कहेंभी क्या ? ॥

इति दूढनीजीका—द्रव्य और द्रव्यनिक्षेप, का विचार.

॥ अब देखिये दूढनीका ' भाव ' और ' भावनिक्षेप ' का विचार ॥

मिशरीका मिठापण, तथा स्निग्ध, ( शरदतर ) स्वभाव ( तासीर ) सो भाव मिशरी ॥



और पूर्वोक्त मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरी भरी हुई सो, भाव निक्षेप ॥

अब देखिये इसमें विचार—जो इक्षुरसका सार, मिठापण विगरेसे, वस्तुका भाव निक्षेपणाको प्राप्त हुवा है, उनको ढूढनी 'भाव' ठहराती है। और जो मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरीपणेका—एक अंशमात्र भी गुण नहीं है, उनको मिशरी नामकी वस्तुका 'भाव' निक्षेप, ठहराती है। और अपणा किया हुआ लक्षणमें—वस्तुका नाम, आकार, और वर्तमान गुण सहित, सो,—भाव निक्षेप, वैशा लिख दिखाती है। तो अब मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरी वस्तुका गुण क्या है? और मिट्टीके कूज्जेको—मिशरी नामसे, कौन कहता है? और यह ढूढनी सूत्रसे तो, भाव आवश्यकमें, उपयोग सहि आवश्यकका करणा, वैशा लिखके आवश्यकका भावनिक्षेप लिख दिखाती है, और इहां मिशरी वस्तुका 'भाव निक्षेपमें' मिट्टीका कूज्जा दिखाती है। भाव निक्षेप करने तो लगी है मिशरी वस्तुका, और दिखाती है मिट्टीका कूज्जा, क्या मिट्टीका कूज्जेको मिशरी करके, ढूढनी खा जाती है? हे ढूढनीजी हीरीके विवाहमें, बीरीको कैसे धर देती है?।

अब देखिये ऋषभदेवके विषयमें, भाव, और भाव निक्षेप ढूढनीजीका ॥

भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला चेतन, चतुष्टय गुण, प्रकाशरूप आत्मा, सो 'भाव' ऋषभदेव ॥

और, शरीर स्थित, पूर्वोक्त चतुष्टय गुणसहित, 'आत्मा' सो 'भावनिक्षेप' है ॥

अब देखिये इसमें विचार—जो भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला

चेतन है सो, तीर्थंकरकी पूर्वकालकी अवस्था रूपे, 'द्रव्यनिक्षेपका' विषय है, उनको दूँढनी 'भावरूपमें' लिखदीखाती है, और अपणी चातुरी प्रगट करती है, परंतु अपना जूठा लिखा हुआ, द्रव्यनिक्षेपका लक्षण तरफभी ख्याल नहीं करती है। देखो दूँढनीका द्रव्यनिक्षेपका लक्षण—वस्तुका वर्तमान गुणरहित, अतीत अथवा अनागत गुणसहित, और आकार, नामभी सहित, सो द्रव्यनिक्षेप, । अब इस जूठा लक्षणसे भी, पाठकवर्ग विचार करेंकि, भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला चेतन, तीर्थंकर पदके अतीत कालकी अवस्था रूपसे है या नहीं ? जब अतीत कालमें भगवान् ऐसे नामकर्मको धारण किया तबतो अवश्य भेव द्रव्यनिक्षेपका विषय हुआ, उनको दूँढनी भाव मात्र किस हिसाबसे दिखाती है ? सो पाठकवर्ग अच्छी तरासे विचार करें ॥ जब तीर्थंकरकी ऋद्धिको प्राप्त होके, तीर्थंकर पदका भोग कर रहे है, उनको भावनिक्षेप कहना सो तो युक्ति युक्तही है। और आजतक जितने दूँढक होते आये सोभी, यूँही कहते आये है के, साक्षात् तीर्थंकर पदमें विराजते होत्रे, उस ' भावनिक्षेप ' को हम मानते है, परंतु इस दूँढनीने तो, कोई नवीन प्रकारकी चातुरी काही आचरण करके दिखाया है ॥

इति भाव, और भावनिक्षेप,का विचार.

देखिये इस विषयमें तात्पर्य—सूत्रकारने वस्तुमें ही ' चार निक्षेप ' का करणा निश्चयसे कहा है.

अब दूँढनी—निक्षेप तो करने लगीहैं—इक्षुरसके सार वस्तुका, उनका निर्वाह किये बिना, मिशरी वस्तुका ' नाम निक्षेप ' कन्यारूप दूसरी वस्तुमें कर दिखाया. । तैसे ही ऋषभदेव वस्तुका ' नामनिक्षेप ' पुरुषरूप दूसरी वस्तुमें कर दिखाया. । और दोनो व-

स्तुका 'स्थापना निक्षेप, शास्त्रकारके कहने मुजब कर दिखाया। अब 'द्रव्य निक्षेप, मिशरी वस्तुका, अपणा किया हुवा लक्षणसे भी विपरीतपणे, मिट्टीके कूञ्जेमें, कर दिखाया, जिस मिट्टीमें मिशरी पणेका भाव, न तो पूर्वकालमें है, और न तो अपरकालमें, है। और ऋषभदेव नामकी वस्तुका 'द्रव्य निक्षेप, केवल आतीतकालमें तीर्थकर भाव वस्तुका कारणरूप मृतक शरीरमें, कर दिखाया। और भविष्य कालका कारणरूप शरीरमें, केवल 'द्रव्य' पणा ठहराया ॥

अब मिशरी नामकी वस्तुका 'भाव निक्षेप' मिट्टीके कूञ्जेमें ठहराया। और ऋषभदेव नामकी वस्तुका 'भाव निक्षेप, तीर्थकरमें ठहराया। यह तो ठीकही है, परंतु मिशरी वस्तुका 'भाव निक्षेप' मिट्टीके कूञ्जेमें ठहराया यह हिसाब कैसे मिलेगा? निक्षेप तो करने लगी है किसका, और करके दिखाती है किसमें, वृद्धनीकी इतनी चातुरी दिखानेके वास्ते, यह लेख फिर लिख दिखाया है ॥ सो पाठकवर्ग पुनः पुनः विचार करें ! ॥

॥ अब स्त्रीकी मूर्तिसें—काम जागे ॥

वृद्धनी—पृष्ठ ३४ ओ. ३ सें—स्त्रीकी 'मूर्तियोंको' देखके तो, सबी कामियोंको काम जागता होगा। परंतु भगवानकी 'मूर्तियोंको' देखके, तुम सरीखे श्रद्धालुओंमेंसे, किस २ को वैराग्य हुवा, सो बताओ? ॥ ओ. १२ से—अथवा किसको किसी प्रकार 'मूर्तियों' देखनेसे, वैराग्य आभीजाय, तो क्या वंदनीय हो जायेंगी इत्यादि ॥

समीक्षा—इहांपर वृद्धनीजीने, यह क्या चातुरी दिखादी है

कि-स्त्रीयोकी मूर्तिसे तो काम जागे, परंतु भगवानकी मूर्ति देखके भगवान् पणेका भाव न जागे, परंतु सो किसके भाव न जागे कि-वीतराग देवकी मूर्तिपर द्वेष करके, जिसको अधिकपणे संसार परिभ्रमण करना होगा, उसके तो भले भाव न जागे, परंतु जिस भविक पुरुषको, भव भ्रमणकाल अल्प रहा होगा सोतो वीतराग देवकी मूर्तिको देखके सदाही प्रमुदित रहेगा, यहतो निःसंशय बात है, ॥ जब वीतरागदेवकी मूर्ति देखके भक्ति आजाये, तब वंदनिक न होगी, तो क्या निंदनिक होगी ? किस गुरुने तूने यह चातुरी दिखाई कि-वीतराग देवकी ' मूर्ति ' निंदनिक है ? ॥

॥ अब मूर्तिसे ज्यादा समज ॥

ढूढनी-पृष्ठ ३५ ओ १५ से- हांहां सुननेकी अपेक्षा आकार ( न कसा ) देखनेसे, ज्यादा, और जल्दी, समज आजाती है, यह तो हमभी मानते हैं, परंतु उस आकारको ' वंदना ' नमस्कार करनी, यह मतवाल तुम्हें किसने पीलादी ॥

समीक्ष:-हे सुमतिनि ! जो हम, मेरु, लवणसमुद्र, भद्रशालवन, गंगानदीरूप ' भाववस्तुको ' नमस्कार नहीं करते है, तो उनको ' स्थापनारूप ' नकसाको, कैसे नमस्कार करेगे ? जिस वस्तुका ' भावको ' वंदनिक मानते होंगे, उनका ' नामादि तीनोंभी निक्षेपको, वंदनिक मानेंगे, तूहि समजे बिना, मतवाली बनी हुई, गपड सपड लिख देती है ॥

ढूढनी-पृष्ठ ३६ ओ १३ से-जो वंदने योग्य होंगे, उनकी मूर्तिभी वंदी जायगी, तो क्या जो चिज खानेके योग्य होगी, उ-

सकी-मूर्तिभी, खाई जायगी ॥ असवारीके योग्यकी-मूर्ति पैभी, असवारी होगी. इत्यादि.

समीक्षा-हे विचार शीले ! तू ही लिखती है कि-मेरु, गंगानदी आदि, सुननेकी अपेक्षा, नकसा देखनेसें, जल्दी समज आजाती है ॥ तो क्या मेरुका-आकार पै चढाईभी तू कर लेती है ? और गंगानदी के आकारका-पाणीभी पीई लेती होगी ? जो खानेकी चिजका-आकारको, खानेका बतलानी है, ? और असवारीकी चिजकी आकृति पै-असवारी करनेका बतलानी है, ? ॥ जिस चिजकी 'मूर्ति' जितना कार्यके वास्ते बनाई होंगी, उनसें उतनाही कार्य प्राप्त होंगे, ज्यादा फलकी प्राप्ति कैसें होगी ? । तूने जो मिशरीका भावनिक्षेपमें-कल्पित 'मिष्ट्रीका कूज्जा' कहाया, सो क्या तू खा गईथी ? जो हमको आकारमात्रको,-खानेका, दिखाती-है ? बसकर तेरी चातुरी ॥

॥ इति मूर्तिसें ज्यादा समजका विचार ॥

॥ अब पशुका ज्ञान ॥

दूदनी-गृष्ट ३७ ओ १४ से-असल और नकलका ज्ञान तो, पशु, पक्षीभी, रखते है ॥ यथा-सवैया, पृष्ट ३८ से.

जटही प्रवीन नर पटके बनाये 'कीर' ताह कीर देखकर बिल्ली हु न मांर है, कागजक कोर २ ठौर २ नाना रंग ताह, फुल देख मधुकर दुरहीते छारे है, चित्रामका चीत्ता देख श्वान तासौं डरेनाह, बनावटका अंडा ताह पक्षी हु न पारे है, असल हुं नकलको जाने पशुपक्षी राम, मूढ नर जाने नाह नकल कैसे तारे है.

समीक्षा—हे पंडिते ? हजारो जैनशास्त्रका ज्ञान छोडके, याही उत्तम ज्ञान, दूंद २ के लाई, ? कुछ विचार तो करणाथा कि—जब बनावटकी विज पर, पशु, विगरे दोर नही करते है, कभी भ्रममें पडजावे तो, दोर करेभी, परंतु तेरें कहने मुजब निःफल हांवे । हमभी तेरी यह बात मान लेंगे ॥ परंतु कोई पुरुष—बिळीके आगे—पोपट पोपट । मधुकर आगे—फुल फुल । और श्वानके आगे—चित्ता चित्ता । पंखीके आगे—अंडा अंडा । वैशै वारंवार पुकार करे, तो क्या ? पोपटके नाम पै बिळी—दोड करेगी. ? तूं कहेंगी दोर न करे । तैमें फुलके नामसें—भमराभी न आयगा । चित्ताके नामसें—कुत्ताभी न डरेगा ॥ हां कभी 'आकृति देखनेसें' तो ते पशु, भूलभी खा जावें. परंतु—नाम मात्रका, उच्चारण सुनके तो, कभी न प्रवृत्ति करे । तो पिछे भगवान् भगवान् ऐना 'नाम' लेनेसेंभी, तुमेरा तरणा कभी न होगा. ? तो क्या होगा कि, तुमेरा नास्तिकपणा जाहेर होगा, इस वास्ते यह सबैयाका बनानेवालाभी, पंडितोंकी पंक्तिसें—अलगही मालूम होता है, क्योंकि विचार पूर्वक नही है. ॥

॥ इति पशु ज्ञानका विचार ॥

॥ अब बाप, बापेकी, मूर्तियां ॥

दूंदनी—पृष्ठ ३८ ओ १४ से—हमने तो किसीको देखा नहीं कि—अपने बापकी, बापेकी, मूर्तियां बनाके, पूज रहे हैं ॥ और उसकी न्हं ( बेटेकी बहु ) उस स्वमुरकी—मूर्तिसें, घुंगट, पल्ला, करती है ॥ हां किसीने कुलरूढी करके, वा मोहके बस होकर—क्रोध करके, भूल करके, कल्पना करली तो, उसकी—अज्ञान अवस्था है. ॥

जैसे ज्ञाताधुत्रमें-मल्लदिन कुमारन, चित्रशालीमें-मल्लिकुमारीकी 'मूर्त्तिको' देखके-लज्जा पाई, और अदब-उठाया, और चित्रकार पै-क्रोधकिया, ऐसा लिखा है ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ! बाप, बाबेकी, मूर्त्तिये, बनाके नहीं पूजते है सो सत्य है. तो वह विद्यमान हुयेभी, कौन पूजते है ! जब विद्यमान हुयेको नहि पूजत है, तो पिछे उनोकी-मूर्त्तिकी पुजा, टूटनी कैसे-कराती है, यह तो केवल कुतर्क है ॥ और स्वमुरकी मुर्त्तिसे-दटेकी बहु, घूंघट नही खैचनी है तो, स्वमुरकी बातां करनेके वरुत परभी-घूंघट न खैचेगी । और जो बाप, बाबेकी 'मूर्त्ति' पै-अदब नही करता है. सो बाप बाबेका-नामपैभी, अदब न करेगा । तो उनोका नामभी निरर्थक हो जायगा ॥ जब वैसा हुवा तब तो तुमको,-भगवान्का-नामसेभी, कुछ लाभ न होगा, तेरी कुतर्क तेरेकुं ही-बाधक रूप है ॥ और तूं लिखती है कि-मल्लदिनकुमारने, चित्रशालीमें-मल्लिकुमारीकी-मूर्त्तिको, देखके-लज्जापाई, अदब, उठाया, इत्यादि.

जब मोहके बससेभी, मल्लदिनकुमारने-मल्लिकुमारीकी मूर्त्तिकी लज्जा किई, और अदब उठाया, । तब अरिहंतदेवके-परमरागी, परम भक्त, जो होंगे सोतो, वीतरागदेवकी-मूर्त्तिको, देखनेके साथ, आनंदितहोके अवश्य ही अदब उठावेगा, और रंगतानमें-मग्नभी हो-जायगा ॥ और जिसको महामोहके उदयसे गाढ मिथ्यात्वकी प्राप्तिहुईहोगी सो, और बहुतकालतक संसार परिभ्रमण करना रहा होगा सो-निर्लज्ज होकेही वीतरागदेवकी 'मूर्त्तिकी' बेअदबी करेगा. परंतु भव्यपुरुषतो कभीही-बैअदबी न करेगा. ॥

दंडनी—पृष्ठ. ३९ ओ. ९ सें—हरएकने—मूर्त्तिको देखके, ऐसा नहिं किया, क्योंकि यहशास्त्रोक्त क्रियानहीहै इत्यादि । भगवंतने उपदेश कियाहोकि—यहक्रिया इसविधिसे, ऐसे करनी योग्य है इत्यादि ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ? दूंदनी लिखतीहै कि—हरएकने मूर्त्ति देखके, ऐसा नहिं किया. यहशास्त्रोक्तक्रिया नहीं है । विचार यह हैकि—जे वीतरागदेवकी—मूर्त्तिकी स्थापना, हजारो वरससे होतीआई, और सारीपृथ्वीकोभी मंडित कररहीहै, और हजारो सास्त्रोंमें लेखथी होचुकाहै, तोभी दूंदनी कहतीहैकि—यह शास्त्रोक्त विधि नहीं है. ॥ यह कैसा न्याय हैकि—अंधेके आगे हजारो—दीपक, प्रगट करनेपरभी, और ऊलूको सूर्यका—प्रकाश, दिखानेपरभी, कहदेवें कि दीपकका, और सूर्यका—प्रकाश तो है ही नहीं. उनको हम कैसे समजावें ?

॥ इति मल्लदिन कुमार ॥

॥ अब वज्र करणमें कुतर्क ॥

दूंदनी—पृष्ठ. ४० ओ. ९ सें—पद्मपुराण ( रामचरित्र ) में—वज्रकरणने—अंगुठीमें 'मूर्त्ति' कराई, ॥ आगे ओ. १२ सें—यहसब उच्च, नीच, कर्म, मिथ्यादि पुण्यपापका, स्वरूप दिखानेको, संबंधमें कथन, आज्ञाता है, यहनहीं जानना कि—सूत्रमें कहे हैं तो—करने योग्य होगया ॥

समीक्षा—दूंदनीका हठतो देखो, कितना जबरजस्त है, कि, जिस वीतराग देवकी—मूर्त्तिका पुजनसे, श्रावकोंको—पुण्यकी प्राप्ति होती होवे सोभी, करनके योग्य नहीं । और वज्रकरणको परम



सम्यक्धारि श्रावक जानके, रामलक्ष्मण दोनोभाईने पक्षमें होके, जय दिवाया । सो वज्र करणभी--वोतरागदेवकी मूर्त्ति शिवाय, दूसरेको नमस्कार करनेवाला नहीथा. उर्साही पुण्यके प्रबलसें, जय भी प्राप्त हुवा. दूंदनी लिखती है कि--करने के योग्य नहीं, हठकी प्रबलता तो देखो ?

जो कार्य दुखदाई होवे, सो कार्य--करने के योग्य नहीं होता है । परंतु जो कार्य इस लोकमें, और परलोकमें, सदा सुखदाता है, सो भी कार्य--करने लायक नहीं ? ऐसा किस गुरुके पास पढी ?

॥ इति वज्र करणमें कुतर्कका विचार. ॥

॥ अब मूर्त्तिके आगे मुकद्दमा ॥

दूंदनी--पृष्ठ ४२ ओ ३ से--राजाकी मूर्त्तिको लावें तो, मुकद्दमें, नकलें, कौन उस--मूर्त्तिके आगे, पेश करता है. ॥

समीक्षा--पाठक वर्ग ! राजाकी मूर्त्तिके आगे--मुकद्दमें, नकलें, पेश नहीं होते हैं, यह--मान, लिया । परंतु दूर देशमें जब राजा चला गया, तब उसके नाम मात्रसेंभी--मुकद्दमें, नकलें, पेश न किई जायगी । तो पिछे तीर्थकरोंके अभावमें--तार्थकरोंके ' नामसें ' यह दूंदको, हे भगवन् २ का--नाम, दे दे के, क्यौं कुकवा करते है ? क्यौंकि दूंदनीके मानने मुजब--कुछ सिद्धि तो, होनेवाली है नहीं । यह दूंदनी--कुतर्कसे धोथी पोथी भरके, अपनी पंडितानीपणा दिखलाती है, परंतु विचार नहीं करती है कि, ऐसा लिखनेसे मेरी गतिभी क्या होगी. ॥

॥ इति राजार्क मूर्तिके आगे मुकुटमें ॥

॥ अब मित्रकी मूर्तिको देखनेसँ प्रेम ॥

दूढनी-पृष्ठ ४२ ओ १० सँ-हमभी मानते है की-मित्रकी मूर्तिको देखके-प्रेम, जागता है, परंतु यह तो मोह कर्मके रंग है ॥

समीक्ष-दूढनीकी मूढना तो देखो कि,-मित्रकी मूर्तिको देखते 'प्रेम' जागना है. परंतु जे-वीतराग देव, इपारा परम तरन तारन, संसार समुद्रसँ पार उतारन, उनकी-मूर्तिको देखके 'प्रेम' न जागे, तो पिउे दूर भव्य विना, अथवा अभव्य के विना, यह लक्षण दूभरेमें कैसें होंगे ? हमभी यही समज ते है कि, जिसको संसार भ्रमण, करनेका रहा होगा, उसकीही वीतरागदेव पर बहुत 'प्रेम' न जागेगा. ॥

॥ अब मूर्तिको वंदना नही ॥

दूढनी-पृष्ठ ४३ ओ. ९ सँ-ऐसेही भगवान्की मूर्तिको देखके, कोई खुश हो जाय तो हो जाय, परंतु नमस्कार, कौन विद्वान् करेगा. और दाल चावलादि, कौन विद्वान् चढावेगा. ॥

यथा गीत, " चाल " लूचेकी-कूक पाडे सुनता नाही, राग-रंग क्या । आखो सेती देखे नाहीं, नाच नृत्य क्या, ॥ ताक थइया ताक थइया ताक थइया क्या, इकेंद्री आगे पंचेंद्री नाचे, यह त-मासा क्या, १ । नामिकाके स्वर चाले नाहीं, भूप दीप क्या । मुखमें जिन्हा हाले नाहीं, भोग पान क्या, ॥ ताक थइया २ । परम त्यागी परम वैरागी, हार श्रृंगार क्या । आगमचारी पवनविहारी, ताले जिंदे क्या, ॥ ताक थइया ३ । साधु श्रावक पूजी नाहीं, देव

रीस क्या, । जीत विहारी कुल आचारी, धर्म रीत क्या, ॥ ताक थइया ४ ॥ इति.

समीक्षा—धर्मकी प्राप्तिको प्राप्त होनेवाले जीव, वीतराग भगवान्की मूर्त्तिका देखके तो, सभी खुब हो जाते है, केवल निर्भीग्य शेखरोंका हा खुशी होती न हागा। और वंदना, नमस्कारभी, करना उचित ही है. क्यों कि जब हम भगवान्का, नामके--वर्ण मात्रको उच्चारण करके नमस्कार करते है. तो पिछे उनकी--वैराग्य मुद्रामयी, परम शांत -मूर्त्तिको, देखके, नमस्कार करनेमें हमको क्या हरकत आति है ? जो तूं कुतर्कोंसे पेट फूगानी है। जिनका--नाम मात्र, हमारा--वंदनाय है, तो उनकी-मूर्त्ति, वंदनीय क्यों न होगी ? ॥ और जो--फल फलादि चढाते है. सो तो उस भगवान्के नामसे--खेराद करते है. ॥ जैसे--आगे राजा लोको, भगवान्का नाम मात्रको सुणेनकी साथ, मुकट विना सर्व अलंकार खेराद कर दंतथे. । तैसे हमभी हमारा शक्ति मुजब, प्रथम भेटके अवसरमें, खेराद करते है, । और जिनको--खानेको ही न होगा, तो वह खेराद भी क्या करेगा ?

और तूं लिखती है कि--कूक पाडे सुनता नाही. रागरंग क्या. इत्यादि. यहभी समज विनाका बकवाद है. । क्योंकि पृष्ठ ४८ ओ. ३ से--तूंही लिखती है कि--गुणियोंके नाम, गुण सहित लेनेसे ( भजन करनेसे ) महा फल होता है, अर्थात् ज्ञानादिक कर्म सय होते है.

और दूढक लोकोभी बडा तडकेसे ( पिउली रातसे ) उठकर--तवन, सज्जाय, पढकर कूका प डत है. तो पिछे कैसे कहती है, कि कूक पाडनेसे सुनताही नहीं, जो ऐसाही है तो तुम--मौनकर, एक

जगोपर बैठ क्यों नहीं रहते हो ?

और भगवानको, एकेद्रिपणा कैसे कहती है ? तू कहेगी. हम तो--मूर्त्तिको एकेद्रि कहते है. ॥ हे सुमतिनी ! उसमें एकेद्रिपणा है कहां, सोतो वीतरागदेवकी-आकृति है ॥ और जां--धूपादिक, करते है सो तो--भक्तिका अंग है. क्योंकि भगवान् साक्षात् बिराजतेथे, तबभी भक्तजनो--धूपादिक, करतेही थें । और भोगभी कुछ भगवानको नहीं करते है, सोतो उनके नामपै--खेराद करते है । हार श्रृंगारादि करते है सोभी, हमारा भावकी--वृद्धि के, वास्तेही करते हैं. कुछ भगवान्के वास्ते नहीं करते है. जैसे साक्षात् भगवान् विचरतेथे, तबभी--समवसरणकी रचना, और भूमिकी पवित्रता, विगरे देवतादिक करतेथे, सो कुछ भगवानके वास्ते नहीं करतेथे. तैसें यहभी हम लोक-हमाराही कल्याणके वास्ते करते है. तो पिछे भगवान्के वास्ते किया, वैसा क्यों सोर मचाती है ? जो समवसरणादिक, भगवान्के वास्ते होताथा, वैसा कहेगी तो, तूही कलंकित होगी. कुछ भगवान् कलंकित न होंगे.

और साधु श्रावक पूजनाही, यह जो कहा है सोभी अयोग्य पगेका ही है. क्योंकि साधुको--मूर्त्ति पूजनेका, अधिकारही नहीं है. और श्रावको तो- हजारो वरससे पूजते आते है. और पूजतेभी है. तूम अज्ञोंको दिखे नाही हमभी करे क्या. ॥

इति मूर्त्तिका--वंदना विचार ॥

॥ अब मूर्त्तिको पूजन विचार ॥

दूइनी-पृष्ठ ४४ ओ. १४ से-हम-मूर्त्ति, मानते है, परंतु

‘मूर्त्तिका पूजन’ नहीं मानते है. वैसा कहकर एक-दृष्टांत दिया है कि—

दूदनीबहुको, सासु-मंदिर, ले चली, उहां शेरको देखके बहु, सासुको समजानेके लिये-गिर पडी. और कहने लगी, यह मेरेको-खा लेंगे. सासुने कहा यह तो पत्थरका-आकार है, नहि खा सक्ते, आगे बहु-एक गौ पास बछा है, वैसी पत्थरकी गौ देख-दोहने लगी. सासुने कहा, यह दुधकी-आशा पूरण न करेगी. आगे देवकी मूर्त्तिको जुक २ सीस निवाती सासु, बहुकोभी कहने लगी, तूं क्यौं सीस नहीं निवाती-तब बहु.

छप्पा. कहकर, सासुको समजाने लगी.

पर्वतसे पाषाण फोडकर-सिला जो लाये,  
बनी गौ, और सिंह, तीसरे हरी पधराये;  
गौ जो देवे दुध, सिंह जो उठकर मारे,  
दोनों बातें सत्य होय, तो हरी निस्तारे;  
तीनोंका कारण एक है, फल कार्य कहे दोग;  
दोनों वासे जूठ है, तो एक सत्य किम होय.

सासु लाजबाब हुई, घरको आई, फिर-मंदिरको न गई.

समीक्षा-शेरकी मूर्ति, उठकर मारती नहीं है. और गौकी मूर्ति, न दुध देती है, । तैसे-जिनप्रतिपा, न तार सकेगी । यह तेरी बातभी मान लेंवे । तो क्या शेर २ ऐसा-नामका उच्चारण करतेके साथ-शेर आके, तेरी और तेरे सेवकोकी-मिट्टीतो खराब करता ही होगा ? और-गौ, गौका, पुकार करनेकेही साथ-दुधका मटका भी, भरही जाता होगा ? तूं कहेंगी, कि, शेरका-नाम उच्चारण कर-

( ८२ ) मूर्तिका पूजन नहीं नामभी तुमेरा जैसा नहीं.

नेसे तो शेर कभी नहीं—मारता है, और गौका—नाम उच्चारण करनेसे, नतो—दुधका मटका भरता है । जब तो तुम दूँढको जे भगवानका—नाम, ले, लेके, पुकार करते हो, सोभी तुमेरा—निरर्थक ही हो जायगा, तब तो तेरा दिया हुआ दृष्टांत तुमको ही—धर्मसे, भ्रष्ट करनेवाला होगा ॥ हमको तो—नाम, स्थापना, दोनोही कल्याणकारी है । पाठकवर्ग ! इस दूँढनीने, प्रथम एक सवैया लिखा । फिर ताकथइया ताकथइयासे, नाच कर दिखलाया । अब इस तिसरा दृष्टांत देके, भगवानका—नाम स्मरण मात्रभी छुडवाके, न जाने उनके भोंदू सेवकोंको—कौनसें खड्डेमें गेरेंगी, ? ॥ और पृष्ठ १६२ ओ. ३ से—दूँढक मतपणाको सनातनसे दावा बांधती है, तब तो आज हजारो घरससे इनके पूर्वजो, मूर्तिपूजकोंके—खंडन करतेही आये होंगे, सो पुस्तके उनके पूर्वजों क्या—मरती वरत साथ लेके चले गयेथें ? सो उनका कोईभी प्रमाण नहीं देती हुई, आजकालके मूठोंका प्रमाण देती है ? और साक्षात् पार्वतीरूपका अवतार लेके, क्या तू—ही दुनीयामें उतर आई है ? जो परमपवित्र रूप जिनमूर्तिका—खंड करनेको, इतना धांधल मचाया है. ?

दूँढनी—अजी मूर्ति तो हम मानते हैं, परंतु मूर्तिका—पूजन, नहीं मानते हैं ॥ हम पुछते हैं कि, मूर्ति है सो—कोईभी जातकी कामना तो पूरी करनेवाली है नहीं, तो तू—मानतीही किस वास्ते है, ? क्या भोले जीवोंको भरमाती है. ? जिनमूर्तिके बदल तेरी कुतकों है सो तो तेराही—घात करनेवाली होगी. धर्मात्मा पुरुषोंको तो, जिनमूर्ति—सदाही कल्याणदाता—बनी हुई है, तेरी कुतकोंसें क्या होनेवाला है ?

॥ अब नाम भी तुमेरे जैसा नहीं ॥

दूँढनी—पृष्ठ ४७ ओ ७ से—हम तो—नामभी, तुम्हारीसी सम-

जकी तरह—नहीं मानते हैं, क्यों कि हम जानते हैं कि—बिना गुणों के जाने, बिना गुणों के यादमें ग्रहें—नाम लेनेसे, कुछ लाभ नहीं. हम तो गुण सहित—नाम लेते हैं, सो तो—भावमें ही दाखल है.

समीक्षा—हे दूढनी ! तू क्या साक्षात्—पर्वत तनयाका, स्वरूप धारण करके आई है ? जो हमारी समज तूने मालुम हो गई । तू भगवान्का—नाम, गुणोंको याद करने के वास्ते लेती हैं. तो हम क्या—गालीयां देने के वास्ते, भगवान्का—नाम लेते हैं ? बाहरे तेरी चतुराई. ?

॥ जीवर और भेषधारी. ॥

दूढनी—पृष्ठ ४८ ओ ८ से—किसी जीवरका—नाम—महावीर है, तो तुम उसके पैरोंमें पडते हो. !

समीक्षा—हे दूढनी ! किसने तेरे आगे ऐसा कहा कि,—जीवरका नाम महावीर, सो, सिद्धार्थ राजाका—पुत्र है. क्योंकि—महावीर, यह नाम तो, अनादिका अनेक वीर पुरुषोंमें रखाता आया है. परंतु हमारा जो—महावीर नामका, संकेत है, सो तो—त्रिशला नंदनमें ही होनेसे, हम तो उनको ही याद करनेवालों है. जिसने जिस वस्तुमें जिनका संकेत किया है, सो तो उनकाही समजता है. दूसरे के अभिप्रायमें—तिसरेकी जरूरी ही क्या है ?

दूढनी—पृष्ठ ४९ ओ. १ लीसें—भेषधारी, और मूर्त्तिके, विवादमें—कहती है कि, मूर्त्तिमें—गुण अवगुण दोनोही नहीं, ताते—बंदना करना कदापि योग्य नहीं.

समीक्षा—हे दूढनी ? जो भ्रष्ट थयेलो भेषधारी ते, और जो सर्वगुणसंपन्न वीतरागदेवकी—आकृति ते, क्या एक प्रमाणमें करती है ? इहांपर थोडासा विचार कर कि, जिस तीर्थकरोके साथ केवल संबंध हुयेंले वर्णका समुदायरूप—नाम मात्र हे, सोभी—कल्याणकारी है.

और तिनकी आकृतिभी, भव्य पुरुषोंका—भावकी वृद्धि करनेवालीही है. उनको क्या भेषधारीकी तर्रें—निषेध करती है. ? क्यों कि परम योगावस्थाकी—मूर्त्तिको देखके तो, सारी आलमभी खुस हो जायगी । परंतु तेरी जैसी—साध्वी, कोई पुरुष के संगमें, चित्र निकाले-ली देखे तो, सभीही निर्भ्रलना करेंगे, तो साक्षात्—भ्रष्ट भेषधारीकी अपभ्राजना सभी क्योंन करेंगे ? जब भ्रष्टकी—मूर्त्ति होगी, तबही निंदनिक होगी ? परंतु सर्वगुणसंपन्न वीतरागदेवकी—मूर्त्ति, यद्यपि वीतरागके गुणोंसे रहितभी है, तोभी महा पुरुष संबंधी होनेसे, अनादरणीय कभी न होगी. तुम दूढको ही—चेलको शिक्षा देते हो. कि, गुरुके आसन पै—बैठना नहीं. पैर लगाना नहीं. इत्यादि, ते-तीस आसातना सिखाते हो, तो क्या आसनमें—गुरुजी, फस बैठे है. हे दूढनी ! तेरेको—लोकव्यवहार मात्रकीभी खबर नहीं, है तो शास्त्र-का गूज्यको क्या समजेगी. ?

॥ अब पार्श्व अवतार ॥

दूढनी—पृष्ठ ५० ओ ६ से—तुम्हारा पार्श्व अवतार, ऐसे कहके गालो दे तो द्वेष आवे, कि देखो यह कैसा दुष्ट बुद्धि है.

समीक्षा—जब कोई—पार्श्व अवतार, ऐसे कहकर—गालो देवे, उनकेपर तो दूढनीको द्वेष आ जावे. और जो लाखो महापुरुषो, भगवंत संबंधी मूर्त्ति बनायके, उनके आगे भजन बंदगी करते है, उस मूर्त्तिकी अवज्ञा करनेको—पत्थर आदि कहती है, इनका भग-वान् पै भक्तानीपणा तो देखो ? कितना अधिकपणाका है. ?

॥ अब अक्षरोंसे ज्ञान नहीं ॥

दूढनी—पृष्ठ ५४ ओ १ से. ॥ जिसने गुरुमुखसे—श्रुतज्ञान नहीं पाया, अर्थात् भगवान्का स्वरूप नहीं सुना, उसे मूर्त्तिको



देखके कभी ज्ञान नहीं होगाकि, यह किसकी-मूर्ति है, जैसे अन-पद-अक्षर, कभी नहीं वाच सकता, फिर तुम-अक्षराकारको देखके, तथा-मूर्तिको देखके, ज्ञान होना किस भूलसे कहते हो, ज्ञान तो ज्ञानसे होता है. क्योंकि अज्ञानीको तो पूर्वोक्त-मूर्तिसे ज्ञान होता नहीं. और ज्ञानीको-मूर्तिकी गर्ज नहीं इत्यर्थ:-

समीक्षा-वाहरे दूंदनी वाह ! अक्षरोंसे, और मूर्तिसे तो, ज्ञान होता ही नहीं है, यह बात तो तेरी निशानके जंडेपर चढानेवाली ही है । क्योंकि दूंदकों तो-जबसे माताके गर्भमें आये है, तबसे ही-तीन ज्ञान लेके आये होंगे, इस वास्ते न तो-अक्षरोंकी जरूरी रहती है. और न तो-मूर्तिकी जरूरी रहती है. यह बात तो तेरे पास बैठनेवाले, ही मान लेंगे. दूसरे कोइभी मान्य न करेंगे ॥ क्योंकि हमको तो-अक्षरोंको, मास्तर दिखाके सिखाता है. जद पि-छेसे-बाचना, और पढना, आता है । तैसे ही हमारे माता पिता, अथवा गुरुजी, हमको पिछान करा देते है कि-यह वीतरागदेवकी मूर्ति है. पिछेसे उनके गुणोंकोभी समजाते है. तब ही-हमारी स-मजमें आता है. इस वास्ते-अक्षरोंकी स्थापना, और हमारे परमो-पकारी वीतरागदेवकी-मूर्तिकीभी स्थापना, हमारा तो निस्त्वारही करनेवाली होती है । और तुम दूंदकों तो त्रण ज्ञान सहित जन्म लेते होंगे ? इस वास्ते न तो-अक्षरोंकी स्थापनाकी, और न तो वीतरागदेवकी-मूर्तिकी स्थापनाकी, जरूरी रहती होगी । ? जब वेशाही था तो, प्रथम पृष्ठ. ३६ में-आकार ( नकसा ) देखनेसे ज्यादा, और जल्दी समज आती है. यह तो हमभी मानते है, वेशा क्यों लिखाथा ? कुछ पूर्वाऽपरका विचार तो करणाथा ? हमको तो-नाम, और स्थापना, इन दोनोंकीभी जरूरी रहती ही है ॥

॥ इति अक्षरोंसे ज्ञानका विचार ॥

॥ अब लाठीको घोडा ॥

दूढ़नी-पृष्ठ ५६ ओ १३ से-बालकने अज्ञानतासे उसको ( लाठीको ) घोडा कल्प रखा है, ताते उस कल्पनाको ग्रहके, घोडा कह देते है, परंतु घास दानेका-टोकरा तो नही रख देते है। वैसे भगवान्का-आकार, कह देते है, परंतु वंदना, नमस्कार तो नहीं करे। और लड्डु पेंडे तो अगाडी नहीं धरे।

समीक्षा-भला हमनेभी तेरा लिखा हुवा-मान लियाकि, भगवानका आकारको देखके-आकार कह देते हो, परंतु नमस्कार नहीं करते हो। तो-नाम देके तो-नमस्कार, करतेही होंगे कि नही? जो भगवान्का-नाम, देके-नमस्कार, करते हो, तब तो घोडाका नाम देकेभी-घास दानेका टोकरा रख देनेकी-सब क्रिया करनी पड़ेगी? तुम कहोंगे लड्डु पेंडे तो, भगवान्का-नाम देके नहीं चढाते है? हम यह अनुमान करते है कि-जिसको खानेको नही मिलता होगा उनको, भगवानके-नामपै, खेराद करनेका कहासे मिलेगा? इसमें मूढता तो देखो कि, जिस भगवानका-नाम देके, नमस्कार करें, उस भगवान्की-मूर्ति देखके, नमस्कार करें तो हम डुब जावे। यह किस प्रकारके कर्मका उदय समजना?

॥ इति लाठीका घोडा ॥

॥ अब खांडके खिलौने ॥

दूढ़नी-पृष्ठ. ५७ ओ. १३ से-खांडके हाथी, घोडा, खानेसे दोष है ॥ पृष्ठ. ५८ में-मिट्टीकी-गौ, तोडनेसे हिंसा लागे. परंतु मिट्टीकी गौसे-दुध, न मिले, दोष तो हो जाय, परंतु लाभ न होय इत्यादि-पृष्ठ. ५९ तक सुधि ॥

सर्माशा—जब कोइ मिट्टीकी गौ बनाके मारे, उसको तो हिंसा दोषकी प्राप्ति होवे । वैसा तो दूढनी मानती ही है. परंतु मिट्टीकी गौको पूजे तो—लाभकी प्राप्ति न होवे । जैसेही भगवान्की मूर्त्तिसे—प्रार्थना निःफल मानती है । हम पुछते है कि—कोइ पुरुष, है गौ माता ! हे गौ माता ! दुध दे, दुध दे, वैसा पुकार करनेवाला है उनको—दुध मीलें के नही मिले ? तूं कहेंगी के उसकोभी—दुध काहेका मिले ? तब तों तूं, भगवानका—नाम, जपना भी निःफलही मानती होगी ? क्योंकि उससे—लाभकी तो प्राप्ति मानती ही नही है । तूं कहेंगी के, भगवान्का—नाम देनेसे तो, हमको—लाभ होवें, तब तो गौ माताके—नामसेभी, तुमको—दुधकी प्राप्ति होनी चाहीये, तूं कहेंगी वैसा कैसे—बने, तो पिछे भगवान्के—नामसेभी, लाभ कैसे होवे. इस वास्ते तेरा मंतव्य मुजब--नतो तुमको भगवान्के--नामसेभी लाभ, और नतो भगवान्की--मूर्त्तिसेभी लाभ होगा, तो यह तुमको जो मनुष्यजन्म मिला है, सोभी निःफल रूप हो जायगा. और भगवान्के साथ द्वेष करनेसे न जाने तुमेरे दूढकोंको—क्या क्या गति करनी पड़ेगी ? हमको तो—भगवान्का, नाम देतेभी कल्याणकी प्राप्ति होती है. और उनकी--मूर्त्ति देखनेसे, और उनके नामपै--खेरादभी करनेसे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है ॥ और निर्भाग्य शेखरोंकों, भगवान्के--नामसे, और भगवान्की--मूर्त्तिसेभी, अकल्याणकी प्राप्ति होती होंगी तब इसमें दूसरेभी क्या करेंगे ?

और विशेष यह है कि, नतो हम—दुधके वास्ते, गौका नाम लेते है, और नतो उनकी--मूर्त्तिके पाससेभी, दुधकी प्राप्ति होनेकी इच्छा करें. मात्र जिस\* उद्देशसे ( अर्थात् जिस—कार्यके वास्ते )

\* वीतरागसे प्रेम, और उनकी भक्तिसे--हमारा अधोर कर्मका नाशके वास्ते ॥

भगवान्का-नाम जपते है, तिस उद्देशसेही--मूर्तिकीभी उपासना करते है. तूं किस वास्ते-कुतकों करके, वीतरागकी-भक्तिसे दूर होती है. ?

दूढनी-पृष्ठ ५९ ओ. ११ से-कोइ पुरुष--लोहेमें, सोनेका भाव करले कि, यह हे तो--लोहेका दाम, परंतु मैं तो भावसे--सोना मानता हुं. इत्यादि.

समीक्षा-तूने जे पृष्ठ. ४८ ओ. ८ में-जीवरमें, महावीर नामका निक्षेप करके, पैरामें पडनेका किया है, उस जीवरके भावसे, तूं जो महावीरका-नाम, जपती होगी, तब तो जरूर तेरा भाव--लोहेमें सोनेका, रखने जैसा हो जायगा। परंतु हमतो जे परम त्यागी वीतरागदेव हैं, उनकाही भाव करके--नामसेभी, और--आकृतिसेभी, जपते है, इस वास्ते--सोनेके भावमे ही--सोना समजते है। अगर जो तूं वीतरागदेवका भावको--लोहारूप ठहराती होवें, तब तो, तेरेकोही--दुखदाई होगा, हम तेरेको कुछभी नहीं कहते है.-

॥ अब पंडितोंसे सुनी हुई पूजा ॥

दूढनी-पृष्ठ ६१ ओ ६ से-और हमने भी बडे बडे पंडित, जो विशेषकर--भक्ति अंगको मुख्य रखते हैं, उन्होसे-सुना है कि, यावत् काल--ज्ञान नहीं, तावत् काल--मूर्ति पूजन है, और कई जगह लिखाभी--देखनेमें आया है. ॥

समीक्षा-पाठक वर्ग ! विचार करो कि, यावत्काल--ज्ञान नहीं तावत्काल--मूर्तिपूजन है, बैशा दूढनी पार्वतीजीने, कई जगह--शास्त्रमें लिखा हुवा देखा है, और भक्ति अंगको मुख्य रखनेवाले पंडितोंसेभी--सुना है। इससे यह सिद्ध हुवा कि, तत्वरहित लोकोको, मूर्तिपूजनभी, भगवानकी-भक्ति प्राप्त करनेको एक परम

साधन है ? तो पिछे जिसको-नीति रिति मात्रकीभी खबर नहीं है, वैसे-दूढ़कोंकी पाससे, यह दूढ़नी वीतरामदेवकी-मूर्त्तिकी भक्ति-मात्र छुडवाती हुई, और अपणा परमपूज्य वीतरामदेवकी-अवज्ञा करानेका प्रयत्न करती हुई, और यह जूठा थोथा पोथाकी रचना करती हुई, अपणाभी क्या गति कर लेवेगी ? और उनके सेवकोकोभी-किस गतिमे डालेगी ? क्योंकि जिसको परमतत्त्व प्राप्त हो गया है, अथवा परम-ज्ञानकी प्राप्तिमें ही, सर्व संगत्याग करके-लगा हुआ है, वैसा-साधुकी पाससे तो, शास्त्रकार भी-पूजन करानेका निषेध ही लिखते है, तो फिर किसवास्ते वह थोथा पोथामें-कुतकोंका जालकी रचनाकरके, अपणा, और अपने आश्रित हुयेले भद्रिक सेवकोका-नाश करनेका प्रयत्न कर रही है ? । क्योंकि जब साधुपदको प्राप्त होके-परमतत्त्वकी प्राप्ति मिलालेवेगा, तब सभी क्रियाओं-आपोआप छुट जाती है । उस पुरुषको तरे जैसा, मर्त्तिपर-द्वेषभाव ही, काहेको करणा पडेगा ? अगर जो तू तरे मनमें अपने आप-तत्त्वज्ञानका पुतलापणा मानती होवे, तब तो यह मेरा छोटासा लेख मात्रसे ही विचारकर ? । क्योंकि तेरा लेख यह शास्त्ररूपसे नहीं है, किंतु तेरे को और तेरे आश्रित सेवकोको-शस्त्ररूप होनेवाला जानकरही, मेरेको यह कलम चलानी पडी ह. ॥

॥ इति पंडितोंसे-सुनी हुई, मूर्त्तिपूजाका विचार ॥

॥ अब नमोऽस्थुर्णका पाठ ॥

दूढ़नी-पृष्ठ. ६५ ओ. १४ से-जो " नमोसिद्धाणं " पाठ पढना है इससे तो-सर्व सिद्ध पदको नमस्कार है. और जो " नमोऽस्थुर्णका " पाठ पढना है इससे जो-तीर्थकर, और तीर्थकर पदवी

पाकर परोपकार करके-मोक्ष हुये हैं, उन्हींको नमस्कार है. इत्यर्थः—

समीक्षा—हे ढूँढनी 'नमोत्थुणंका' पाठसे, वर्तमान तीर्थकरोंको, और मोक्षमें प्राप्त हुये तीर्थकरोंकोभी, नमस्कार करना तू मानती है ? परंतु मोक्षमें प्राप्त हुये तीर्थकरो तो, अपरकालकी अवस्थारूपसे 'द्रव्यनिक्षेपका' विषय है । देखो सत्यार्थ पृष्ठ. १६ में—'द्रव्य' संयमादि केवल ज्ञान पर्यंत, गुण सहित शरीर, सो मानाथा । और 'द्रव्यनिक्षेप'जो भगवानका-मृतक शरीर सो, तूने निरर्थकपणे मानाथा ॥ अब इहांपर लिखती है कि, जो 'नमोत्थुणंका' पाठ पढना है इससे. तीर्थकर, और तीर्थकर पदवी पाकर परोपकार करके-मोक्ष हुये हैं, उन्हींको-नमस्कार है । विचारना चाहीये कि, जो तीर्थकरपणे २० विहरमान है, उनको तो नमस्कार करना युक्तियुक्त हो जायगा, परंतु जे ऋषभादि तीर्थकरो, हो गये है, उनको नमस्कार, किम 'निक्षेपाको' मानके करेंगे ? । जो 'द्रव्यनिक्षेपाको' मानके नमस्कार करें तो, ढूँढनीने-मृतक शरीर पिछेसे निरर्थकपणा माना है । और दूसरा निक्षेपभी कोई घटमान होई सकता नहीं । इस वास्ते 'नमोत्थुणंका' पाठ, और जे लोगस्स के पदमें—“ अरिहंत कित्त इस्सं चउयीसंपि केवली ” यह पाठ पढनेका है सोभी-निरर्थक हो जायगा ? इस वास्ते शास्त्रकारने—जिस प्रमाणे निक्षेप माना है, उस प्रमाणे निक्षेपका स्वरूपको मानेंगे, तब ही 'अरिहंते कित्त इस्सं' यह पाठ और 'नमोत्थुणंकाभी' पाठ, सार्थक होगा । परंतु ढूँढनीजीके मन कल्पित-निक्षेपसे नमस्कारका लाभकी सिद्धि न होगी ॥

॥ इति नमोत्थुणं पाठका विचार ॥

मूर्त्तिमें श्रुति लगानी नहीं ॥ और सूत्र पाठमें-कुतकों. ( ९१ )

॥ अब मूर्त्तिको धरके श्रुति लगानी नहि ॥

दूढनी-पृष्ठ ६७ ओ ६ से-मूर्त्तिको धरके उसमें-श्रुति लगानी नहीं चाहीये.

समीक्षा-पाठक वर्ग ! इस दूढनीको, कोई मिथ्यात्वके उदयसे, केवल वीतरागदेवपर ही-परमद्वेष हुवा मालूम होता है ? नहीं तो ध्यानके अनेक आलंबन है. उसमेंभी-नासाग्र दृष्टियुक्त, और पञ्चासन सहित, परम योगावस्थाकी सूचक, वीतरागदेवकी-मूर्त्ति, प्रथमही ध्यानका आलंबनरूप है. तोभी दूढनी-लिखती है के, मूर्त्तिका धरके-श्रुति लगानी नहीं चाहीये, कितना वीतरागदेव उपर द्वेष जागा है । नहीं तो देखो कि-समुद्र पालीको, चोरके बंधनोंको देखनेसे भी--धर्म ध्यानकी प्राप्ति हुई। और 'प्रत्येक बुद्धियोंको' बलादि देखके, धर्म ध्यानकी प्राप्ति हुई । यह सब तो ध्यानकी प्राप्तिके कारण हो जाय. मात्र वीतराग देवकी- मूर्त्तिको देखनेसे दूढनीके ध्यानका नाश हो जाय ? यह तो दूढनीको द्वेषका फल है उसमें दूसरे क्या करे ?

॥ इति मूर्त्तिमें श्रुति लगानेका विचार ॥

॥ अब सूत्रपाठकी-कुतकोंका, विचार करते है ॥

पाठक वर्ग ! दूढनीने-इहां तक जो जो-कुतकों किईथी, उसका सामान्य मात्र तो-उत्तर लिख दिखाया है, उससे मालूम हो गया होगा कि, दूढनी के वचनमें सत्यता कितनी है ? और इसीही प्रकारसे आगे सूत्रकारोंका लेखपैभी, जो जूठा आक्षेप किया है, सोभी, स्वजन पुरुष तो समज ही लेंगे. परंतु अजान वर्ग तो शं-

कितनी रहेंगे ? वैसा समझकर, उनकी शंका दूर करनेके लिये, सूत्रपाठका खोटा-आक्षेपों पै, किंचित् मात्र-समीक्षा करके भी दिखला देते हैं. इससे यह भी मालूम हो जायगा कि, दूढ़को जैनाभास होके केवल जैनधर्मको कलंकित करनेवालेही है! सुज्ञेष्टु किमतिविस्तरेण.

॥ अब सूत्रोंमें मूर्त्तिपूजा नहीं ॥

दूढ़नी-पृष्ठ ६७ ओ ४ सँ-सूत्रोंमें तो-मूर्त्तिपूजा, कहीं नहीं लिखी है. यदि लिखा है तो हमें भी दिखाओ.

समीक्षा-पाठक वर्ग ! स्वमत, परमतके, हजारो पुस्तकोपर, ' जिन मूर्त्तिका ' अधिकार-लिखा गया है. और आज हजारो वरसोंसँ, श्वेतांबर, दिगंबर, यह दोनोभी बड़ी शाखाके,--लाखों आदमी, पूजभी रहें हैं. और कोई अबजोंके अबजोंका खरचा लगाके, संपादन किई हुई, करोडो ' जिन मूर्त्तिके ' विद्यमान सहित, आजतक एकंदरके हिसाबसँ-छत्रीशहजार ( ३६००० ) जिन मंदिरोंसे-पृथ्वीभी मंडित हो रही है. और यह दूढ़नीभी पृष्ठ ६१ में लिखती है कि-हमनेभी बडे बडे पंडित, जो विशेषकर भक्ति अंगको मुख्य रखते हैं, उन्हांसँ-सुना है कि,--यावद् काल ज्ञान नहीं, तावत् काल-मूर्त्तिपूजन हैं. और कई जगह-लिखाभी देखनेमें आया है. वैसा प्रथमही लिखके आई, और इहाँपै लिखती है कि-सूत्रोंमें तो मूर्त्तिपूजा कहीं नहीं लिखी है, यदि लिखी होवें तो हमेंभी बताओ ॥ विचार करो अब इस दूढ़नीको हम क्या दिखावें ? क्योंकि जिसके हृदयनेत्रोंमें वारंवार छार्ई-आजाती है, उनको दिखेगाभी क्या ? ॥ और जो मूलसूत्रोंमें-जिन प्रतिमा पूजनके प्रगटपणे साक्षात् पाठ है, उनकोभी-कुतर्का करके विगाढनेको, प्रष्टत हुई है, तो अब इसको, हम किसतरां समजावेंगे ? हमारी



समीक्षा तो उसके वास्ते होंगी कि, जिसका-भव्यत्व निकट होगा; सोई पुरुष तीर्थकरोंसे-विपरीत बचनपै, विश्वास न करें, और शुद्ध आचारण पै दृढ होवे.

इति सूत्रोंमें 'मूर्त्तिपूजा नहीका विचार ॥

॥ अब शाश्वती जिन प्रतिमाओंका विचार ॥

दूंदनी-पृष्ठ ६९ ओ. ९ से-देव लोकोमें तो, अकृत्रिम अर्थात् शाश्वती, बिन बनाई मूर्त्तये, होती है, । और देवताओका 'मूर्त्तिपूजन' करना-जीत व्यवहार, अर्थात्-व्यवहारिक कर्म होता है, । कुछ सम्यग्दृष्टि, और मिथ्यादृष्टियोंका-नियम नहीं है । कुल रूढिवत् । समदृष्टिभी पूजते है, मिथ्यादृष्टिभी पूजते है. ॥

समीक्षा-देवलाकमें जो इंद्रकी पदवीपर होते है सो तो, नियम करके-सम्यग् दृष्टिही होते है, वैसा शास्त्रकारने-नियम दिखाया है, । और वही इंद्रो, अपना हित, और कल्याणको समजकर, शाश्वती जे 'जिन प्रतिमाओ' ( अर्थात् अरिहंतकी प्रतिमाओ ) है, उनका-पूजन करते है । उसको दूंदनी-कुल रूढीवत् व्यवहारिक कर्म कहती है. । भला-दुर्जनास्तुष्यंतु इति न्यायेन, तेरा मान्या हुवा, व्यवहारिकही कर्म, रहने देते है । हम पुछते है कि-करनेके योग्य व्यवहारिक कर्म, कुछ-हित, और कल्याणके वास्ते होंता है या नही ? । तूं कहेगी कि-करनेके योग्य-व्यवहारिक कर्मसे, कुछ हित और कल्याणकी प्राप्ति, नही होती है, । वैसा कहेगी, तबतो, तूं जो मुखपै मुहपत्ति बांधके, हाथमें ओघा लेके-फिरती है सो । और श्रावकके कूलमें-रात्रिभोजन नहीं करना सोभी, व्यवहारिकही

कर्म है, उनकोभी-छुटानेकाही उपदेश करती होगी ! और दो वखत जो-आवश्यक क्रियादि, कर्तव्यको तू करती है, सोभी नित्य कर्तव्य होनेसे-व्यवहारिकही कर्म रहेगा । और श्रावकोकों-जीव-हत्या नहीं करनी, यहभी तो श्रावकोकों कुलका-व्यवहारसेही चली आती है. यह सब व्यवहारिक कार्यभी करनेके योग्य है, उसको क्या तू-छुटानेका उपदेश करती है ? जो हमारा परम पूजनिक वीतरागदेवकी-मूर्त्तिका पूजनको, व्यवहारिक कर्म कहकर, भक्तजनको भ्रममे गेरके-छुटानेके वास्ते शोर मचा रही है ?

तू कहेगी कि-सुख पै मुहपत्तिका-बांधना, और हाथमें ओघा लेके-फिरना, यह तो आत्मिक धर्म है । और रात्रिभोजन श्रावकोको-नहीं करना, सोभी आत्मिक धर्मही है । वैसा कहेगी तब तो, तेरा ही वचनसे-तेरेकु ही बाधक होता है. क्योंकि तूही पृष्ठ ६४ ओ. ४ से लिखती है कि-बहुत कहानी-क्या, ज्ञानका कारण तो, ज्ञानका अभ्यासही है । इस प्रकारका तेरे लेखसे तो-तत्त्वज्ञानके पिछेसेही-आत्मि धर्मकी प्राप्ति होनी चाहिये, तो पिछे मुहपत्ति और ओघा ही, तेरेको-आत्मिक धर्म कैसे करादेगा ? यहभी तो तेरा गुडियोंकाही खेल है ? तूभी जबतक यह-व्यवहारिकरूप मुहपत्ति, और ओघा-न छोडेगी तबतक कभीभी-ज्ञानिनी नहीं बनेगी? वैसे औरभी श्रावकोके-करणे योग्य-कर्तव्योका, विचारभी समज लेना । परंतु इस बातमें हम तो यह कहते है कि-जबतक रात्रि भोजन त्याग व्यवहार आदि, श्रावककुलका आचार रहेगा, तबतक यह-जिन प्रतिमाका-पूजनभी अवश्यही रहेगा ? सोई-हित, और कल्याणकारी है । और तूभी कहती है कि-समदृष्टिभी पुजते है, मिथ्या दृष्टिभी पुजते है । हमभी यही कहते है कि-मुहपत्ति, और औघा समदृष्टिभी-रखते है. मिथ्यादृष्टिभी-रखते है । तू क-

हेगीकि सोतो सब समदृष्टिही होते है, ऐसा-कहना, या ऐसा-मान लेना, सब-गलत है ॥ क्योंकि जैन धर्मकी क्रिया करनेवालेमेंभी--निश्चयसे तो सैंकड़ोंमें दो चार भी समदृष्टि मिलाना कठीन ही है ॥ वैसें श्रावकोंमेंभी-रात्रिभोजन त्याग, आदि क्रियाओंको, समदृष्टिभी करते है, मिथ्या दृष्टिभी करते है. सो क्या सब छुडाने के योग्य है ? तूं कहेगी कि यह सब-व्यवहारिक क्रियाओ-छुडाने के योग्य नहीं है. तो पिछे-जिनप्रतिमाका पूजनको, व्यवहारिकपणेका-आरोप रखके, छुडानेके वास्ते-द्वेषभाव कर रही है. सो तेरी-किस गतिके वास्ते होगा ? इत्यलं. विस्तरेण. ॥

॥ अब देवताओंका-नमो स्थुणंका, विचार ॥

दूदनी-पृष्ठ ७० ओ. १३ सें-और नमोस्थुणं के पाठ विषयमें-तर्क करोगे तो, उत्तर यह है कि, पूर्वक भावसे मालुम होता है कि, देवता-परंपरा व्यवहारसे कहते आते है. ॥ भद्रबाहु स्वामी जीके पिछे, तथा वारावर्षी कालके पिछे-लिखने लिखानेमें-फरक पडा हो । अतः ( इसी कारण) जो हमने अपनी बनाई-ज्ञानदीपिका नामकी पोथी-संवत् १९४६ की छपी पृष्ठ ६८ में-लिखाथा कि, मूर्त्तिखंडनभी हठ है, ( नोट ) वह इस भ्रमसे लिखा गयाथा कि-जो शाश्वती मूर्त्तियें हैं वह २४ धर्मावतारोंमेंकी हैं, उनका उत्थापकरूप-दोष लगनेके कारण, खंडनभी-हठ है, परंतु सोचकर देखा गया तो, पूर्वोक्त कारणसे-वह लेख ठीक नहीं । और प्रमाणिक-जैन सूत्रोंमें-मूर्त्तिका पूजन, धर्म प्रवृत्तिमें, अर्थात् श्रावकके सम्यक्त्व व्रतादिके अधिकारमें, कहींभी नहीं चला इत्यर्थः-

समीक्षा-अब इहांपर दूदनीका-विचार देखो कि-पृष्ठ. ६९

में-देवताओंका मूर्तिपूजन-व्यवहारिक कर्म, कुल रूढीवत्, कहकर दिखाया । और फिर कहाकि-सम्यग् दृष्टिभी पूजते है, मिथ्या दृष्टिभी पूजते है । अब इहां पै-नमोत्थुणका पाठ, शास्वती जिन-मूर्तियाँके आगे, देवता-परंपरा व्यवहारसे कहते आते है, वैसा लिखके दिखाया । और इस लेखके-नीचेका भागमें-जैन सूत्रोंमें मूर्तिका पूजन, धर्म प्रवृत्तिमें, अर्थात् श्रावकके-सम्यक्त्व व्रतादिके अधिकारमें, कहींभी नहीं चला ॥ अब विचार यह है कि-समदृष्टि भी पूजते है, मिथ्या दृष्टिभी पूजते है । वैसा लेख ढूँढनीही-अपणी पोथीमें लिखती है, यहभी तो सूत्रमेंसेही लिखा होगा ? । तब कैसे कहती है कि-सम्यक्त्व व्रतादि अधिकारमें-मूर्ति पूजन कहींभी नहीं चला ? । विशेषमें तू इतनाही मात्र-कह सकेगी कि-व्रताधिकारमें ' मूर्तिका पूजन ' कही नहीं चला है । परंतु है विमतिनी ! सम्यक्त्व विनाके ढूँढकोका, जो व्रत है सोतो, केवल पोकलरूपही है, और व्रतादि मेहलका पायारूप सम्यक्त्व है, उनकी दृढ भासिका कारण ' जिन मूर्तिका पूजनभी ' है । किस वास्ते विपरीत तर्कों करके भौंदू लोकोंको जिन मार्गसे भ्रष्ट कर रही है ? हे ढूँढनी अपणे लेखमें-तूही लिखती है कि-मूर्तिको सम्यग् दृष्टिभी पूजते है. तो पिछे " नमोत्थुणं अरिहंताणं. " इत्यादि यह उत्तम पाठभी पढनेका, उत्तम व्यवहारसेही चला आया होगा ? तो यह परंपराभी उत्तमही होगी ? जैसे श्रावकके कुलमें, रात्रिभोजन त्याग, सामायिक, पोसह, करनेका परिपाठ है, और दो टंक आवश्यक क्रिया आदिक व्यवहारिक जो जो कर्म है, उनको, जबसे बालक अज्ञान-पणेमें होता है, तबसेही उत्तमपणेका व्यवहारिक कर्तव्य जानके, सब प्रवृत्ति करनेको लग जाता है ! तू कहेगी यह बालक तो सम्यक्त्वधारी है, तो अभी जिसको शरीर ढकनेकी तो खबरभी नहीं

इसका अर्थ वही है कि वह सन्तानों को भी यह धर्म व्यवहारों के समान प्रतिकूल कलम चला जाती है। जो शिवजी के चरित्रों से भी—जिनमें पूजन, और न्यायपूर्ण नारेणों, आदि पाठकम भद्रता, व्यवहारिक कर्मों कहेंगे। तो भी उचित प्रमाण ही कहा जायगा। बस ही अधिक के कुलम—मूर्तिपूजन के व्यवहार कर्तव्य के भी यह तर्क खिड़न करणों प्रयत्न है सो तो, तैरा और आदि अंतोके धर्मों—अस करणों की प्रयत्न है। इससे अधिक फलकी प्रयत्न है न होयति ॥ और जो तू असमान करती है कि—यह वह स्वामीजीके पिछे, तथा बारा वर्षों बालके पीछे—लिखत—लिखनेमें फल पडा है। यह भी तैरा अनुमान, भोले जीवोंकी अमानकाही है। क्योंकि—आज हजारों वरस हुए चला आता है कि मूर्तिक पूजन, विगंभी, श्वतावर, यह—दोनों संप्रदायके, लाखों पुस्तकें बढ़ गयी हुवा है, उस पाठको लिखने—लिखावत, फलरूप अनुमान करती है। हम खुछते है कि, सनातनप्रणेका जन्म धर्मों का दावा कर्णोंके तैरे दुंदुकी, कितने जैन पुस्तकोंमें रचिया कस्कि, यह जूव अनुमान कर गये है? यह तैरे जैसे एक दस आधुनिक दुंदुका कियो हया—अनुमानतो, कोई भोदु, अथवा धर्मोंका दावा सोई मान्य करेया, परंतु विक्षण पुरुष तो—विचारही करेया

और लिखती है कि—मूर्ति खंडनमें हठ है, वह इस असे—लिखा गयाया कि, जो शाश्वती मूर्तियें हैं वह २४ धर्मोक्तियों की हैं, उनका—उत्थापकरूप, दोष लगनेके कारण—खंडनमें हठ है, परंतु सीधकर देखाया तो, पूर्वोक्त कारणसे, वह लेखनीक नहीं ॥

पाठकवंगे ! हूदनी कहती है कि, शाश्वती मूर्तियां २४ अवशारोंमें की जानकर—खंडन करणा, हठ मनिाया तो अब २४ अ-

वतारों की नहीं है-इसका प्रमाण तो कुछ लिखा नहीं है ? और चौबीस अवतारोंकी " मूर्ति पूजनका " प्रमाण तो तेरा ही थोथा पोथामें-जगें जगें पर सिद्ध रूपही पडा है ॥ प्रथम देख-पृष्ठ. १४७ का सूत्र पाठ ॥ जिण पंडिमाणं भंते, वंदमाणे, अच्चमाणे । इंतो गोयमा, वंदमाणे, अच्चमाणे, इत्यादि ॥ पृष्ठ. १४८ सें तेराही अर्थ देख-हे भगवन् जिण पडिमाकी-वंदना करे, पूजा करे, हां गौतम-बादे, पुजे ॥ यह तेरा ही लेखसे तीनो चौबीसीके-धर्मावतारोंकी-मूर्तिका पूजन सिद्धरूप, ही है ॥

और दूसरा प्रमाण भी देख-पृष्ठ. ६१ में-तूने ही लिखा है कि-बड़े बड़े पंडितोंसे सुना है कि-यावत्काल ज्ञान नहीं तावत्काल-मूर्ति पूजन है ! और कइ जगह, लिखा भी देखनेमें आता है ॥ यह लेख भी तो तेरा हाथसे ही-तूने लिखा है । केवल तू विचार मूढ-हो गई है ॥ और इनके सिवाय १ महा निशीथ सूत्रका पाठ । २ उपाशक दशा सूत्रसे-आनंद काम देवादिक महा श्रावकका पाठ । और ३ उवाइ सूत्रसे-अंबड परिव्राजकका पाठ ॥ ४ ज्ञाता सूत्रसे-द्रोपदी महा सतीजीका पाठ । और ५ भगवती सूत्रसे-जंघा चारणादिका पाठ ॥ इत्यादि । जगें जगें पर तूने लिखा हुवा, तेरा ही थोथा पोथामें-जिनमूर्तिका अधिकारको, प्रगटपणे दिखा रहा है परंतु कोइ मिथ्यात्वरूप-कमलाका रोग होनेसे, अब तेरेको-विपरीतरूप ही हो गया है, तो अब दोष के कारणसे कैसे मिट जायगी ? हम अनुमान करते है कि, दूंदनीको उत्तम प्रवृत्ति उठानेका तो भय-रेश मात्रभी नहीं है, परंतु उसवखत श्री आत्मारामजी बाबाका भयसे-वैसा लिखा होगा ? अब बाबाजीका भयभी छोडके, अनादि सिद्ध जिनमूर्तिका खंडन करनेको, प्रबल पापके उदयसे प्रवृत्ति किई है, परंतु यह विचार न

किया कि, बाबाजी तो चला गया है, परंतु बाबाजीके मुँहे हुये-  
बाबाजी तो बैठे है. सोभी यह मेरी कागजकी-गुडीयां, कैसे  
चलने देंगे ?

॥ इति मूर्त्तिपूजन-व्यवहारिक कर्मका, विचार ॥

॥ अब पूर्ण भद्रादि यक्षोंका-पूजन विचार ॥

दूंदनी—पृष्ठ ७४ ओ. ८ से-वह जो सूत्रोंमें-पूर्णभद्रादि  
यक्षों के 'मंदिर' चले है सो, वह यक्षादि-सरागी देव, होते हैं।  
और वलिवाकुल आदिककी-इछा भी, रखते हैं। और रागद्वेषके  
प्रयोगसे-अपनी 'मूर्त्तिकी' पूजाऽपूजा देखके, बर, शराफ, भी देते  
हैं। ताते हर एक नगरके बहार-इनके 'मंदिर' हमेशासे-चले आते  
हैं, सांसारिक स्वार्थ होनेसे। परंतु मुक्तिके साधनमें-मूर्त्तिका पू-  
जन, नहीं चला। यदि जिनमार्गमें-जिनमंदिरका पूजना, सम्यक्त्व  
धर्मका लक्षण होता तो, सुधर्म स्वाधीनी अवश्य सविस्तार प्रकट  
सूत्रोंमें, सर्व कथनोंको छोड, प्रथम इसी कथनको लिखते.

१ उच्चाईजीमें-पूर्णमद्र यक्ष के मंदिर, उसकी पूजाका, पू-  
जाके फलका, धन संपदादिकी प्राप्ति होना, सविस्तर वर्णन चला  
है ॥ और अंतगढजीमें-मोगर पाणी यक्षके-मंदिर पूजाका,। हरि-  
णगपेधी देवकी-मूर्त्तिका पूजाका। और विपाक सूत्रमें-ऊँवर य-  
क्षकी-मूर्त्तिमंदिरका, और उसकी पूजाका फल-पुत्रादिका होना,  
सविस्तर वर्णन चला है ॥ यहभी: दूंदनीकाही लेख. पृष्ठ ७३ से  
लिखा है ॥ और यह सर्व मूर्त्तियोंको, और मंदिरोंकोभी, "चैत्य"  
शब्द करकेहि, प्रायें-सूत्रोंमें लिखा गया है. जैसे कि-पुण्णभद्र  
चैष्ट इत्यादि.

समीक्षा--प्रथम इसं दूंदनीने--वैसा लिखाथा की, पथरका-शेर, क्या मार लेता है ? और पथरकी गौ क्या-दुध देती है ? वैसादृष्टांतोसे-मूर्तियोंका, सर्वथा प्रकारसे-निःफलपणा, प्रगट कियाथा. । अंब इहां पै “ पूर्णभद्र यक्ष ” और “ मोगर पाणी यक्ष ” आदकी-पथरकी मूर्तियोंका, पूजन करवानेका कहकर, अपना सेबकोको, धन, दौलत, पुत्र, राज्य, आदि रिद्धि सिद्धिकी प्राप्ति करा देती है । मात्र वीतरागदेवकी मूर्तिका नजिक, इनके आश्रित ज्ञाते होंगे, तबही न जाने-बिमार पडजाती होगी ? या न जाने जिनप्रतिमाका पूजन अधिक हो जानेसे, जो पूर्णभद्रादि यक्षहै सो-अपणी पूजा, मानताका-कमीपणा देखके, इस दूंदनीके अंगभे-प्रवेश किया हो ? और तीर्थकरोंका, और गणधर महाराजाओंका, अना-दर करानेके लीये, यह जिनमूर्तिका निषेधरूप-लेख, इस दूंदनीकी पास लिखवाया हो ! क्योंकि जो विचार पूर्वक लेख होता तबतो-यह दूंदनी सामान्यपणेभी-इतना विचार तो, अवश्यही करती कि-जब पूर्णभद्रादि यक्षोंकी-पथररूप मूर्तियोंकी-प्रार्थना, भक्तिसे-पुत्र, धन, दौलत, राज्य रिद्धि आदिक ते यक्षादिक देवताओ, दे देतेथे, वैसा शास्त्र सम्मत है, तब क्या वीतरागदेवकी मूर्तियोंका भक्तिभाव देखके; जो वीतराग देवके भक्त-सम्यक्क धारी देवता-ओहै सो, प्रसन्न हो के-हमारा इस लोकका दुःख, दालिद्रादि । तथा आंधि, व्याधिभी, दूर करके अवश्य परलोकमेंभी-सुखकी प्राप्ति करानेके, कारणरूप होते । और परंपरासे अवश्यही-मोक्षकी प्राप्तिभी हमको होजाती । क्योंकि मनुष्यको दुखादिकमेंही-अकर्त्तव्य करनेपर लक्ष हो जाता है ? उस अकर्त्तव्योकाही-नरकादिक फल भोगने पडते है । फिर बहुत कालतक-संसार परिभ्रमणभी करना पडता है । जब हमको दुःख, दालिद्र, आधिव्याधि सर्वथा



प्रकारसे न रहेगी । तब हम-दान, दया, शील, तप, भाव आदि भेभी-अधिक अधिक प्रवृत्ति करके, हमारा आत्माको-अनंत दुःखकी जालमेंसेभी-छुटानेको समर्थ, हो जायेंगे । एक तो वीतरागदेवकी भक्तिकाभी-लाभ होजायगा, और हमारा आत्माभी-अनंत दुःखकी जालसे सहज छुट जायगा । इतना सामान्य मात्रभी विचार करके, दूंदनी-लेख लिखनेको प्रवृत्ति करती तब तो, तीर्थकर गणधर महाराजाओंका, अघोर पातक रूप-अनादर, कभी न करती, वैसा हम अनुमान करते है । परंतु क्या करेंकि-जिसके अंगमें-यक्ष राक्षसोका, अथवा मिथ्यात्वरूप भूतका, प्रवेश हो जाता है, तब पराधीनपणे-उस जीवके बशमें, कुछ नहीं रहता है, तो पिछे विचार ते कहांसे आवे ! क्योंकि जिस-‘ चैत्य ’ शब्द करके-पूर्ण भद्र, योगरपाणी, यक्षोंके विषयमें-मूर्ति मंदिरका अर्थ करती है, उसी ‘ चैत्य ’ शब्दका अर्थ-अरिहंतके विषयमें-जब जिस जिस शास्त्रमें आता है, तब यह दूंद पंथिनीदूंदनी प्रत्यक्षपणे लिखा हुआ मंदिर मूर्तिका अर्थको छुटानेके लिये, अगडंबगडं-लिख मारती है । इसी बास्ते हम अनुमान करते है कि, ‘ यक्ष ’ या ‘ मिथ्यात्वरूप ’ महाभूतका प्रवेश हुये बिना, ऐसा-अति विपरीत पणेका आचरण,क्यों करती, ? और देखोकि-एक तो अपना आत्माको, और अपने आश्रित सेवकोका-आत्माको, वीतरागदेवकी भक्तिसे-दूर करके, और सेवकोंको धनादिककी लालच दिखाके, यक्षादि मिथ्यात्वदेवके बशमें करनेको, यह अघोर दुखका पायारूप-ग्रंथकी, रचनाभी क्यों करती ? “ अहो कर्मणो महना गतिः ” ॥ और यक्षादिकोंकी जो मूर्ति-पत्थररूपकी है, उनकी प्रार्थनासे, धन पुत्रादिककी प्राप्ति होनेका लिखके, नीचेके भागमें यों लिखती है कि-जिन मंदिरका पूजना, सम्यक्क धर्मका-लक्षण होता तो, सुधर्मस्वामीजी-अवश्य

सविस्तार लिखते । अब इस विषयमें दूढ़नीको हम क्या लिखें-  
क्योंकि-जिन प्रतिमापूजनका लेख-दिगंबर, श्वेतांबरके, लाखो शा-  
स्त्रोंमें हो चुका है, और पृथ्वीभी-हजारो वरसोंसे, जिन मंदिरोंसे-  
मंडितभी हो रही है, तोभी यह दूढ़नी--अखीयां भींचके, लिखती  
है कि, सम्यक्क धर्मका लक्षण होता तो, सुधर्मस्वामीजी अवश्य  
लिखते ? अब ऐसों निकृष्ट आचरणवालेको, हम किसतरें समजा-  
नेको सामर्थ्यपणा करेंगे ? इत्यलंविस्तरेण.

॥ अब गणधरोंका लेखमें भी-अधिकताका, विचार ॥

दूढ़नी—पृष्ठ. ७५ ओ. ७ से-हम देखते हैं कि, सूत्रोंमें  
ठाम २, जिन पदार्थोंसे-हमारा विशेष करके, आत्मीय-स्वार्थभी  
सिद्ध नहीं होता है, उनका विस्तार-सैंकडे पृष्ठोंपर-लिखधरा है-  
पर्वत, पहाड, वन वागादि ॥ पुनः 'पृष्ठ. ७६ से-परंतु-मंदिर मू-  
र्त्तिका विस्तार, एक भी प्रमाणीक-मूलसूत्रमें, नहीं लिखा. ॥

समीक्षा—पाठक वर्ग ! यह दूढ़नी क्या कहती है ! देखो  
कि-सूचनमात्र सूत्रको, सूत्रका तो-मान देती है । फिर कहती है  
कि-आत्मीय स्वार्थभी-सिद्ध नहीं होता है, उनका-विस्तार, सैंकडे  
पृष्ठों पर, गणधर महाराजाओंने लिखधरा है । वैसा कहकर-अ-  
पणी पंडितानीपणाके गमंडमें आके-तीर्थकरोंको, तथा गणधर  
महापुरुषोंकोभी-तिरस्कारकी नजरसे, अपमान करनेको-प्रवृत्त हुई  
है । वैसी दूढ़नीको-क्या कहेंगे ? क्योंकि मूत्रमें तो एक 'चकार,  
मात्रभी रखा गया होता है. सोभी अनेक अर्थोंकी सूचनाके लिये  
ही रखा जाता है वैसें महा गंभीरार्थवाले—जैन सूत्रोंका  
लेखको, सैंकडे पृष्ठोंतक--निरर्थक ठहराती है ? अरे विना गुरुकी  
दूढ़नी ! गणधर महाराजाओंके लेखका रहस्य, तुजको समझमें  
आया होता तो-वैसा लिखतीही क्योंकि, हमारा स्वार्थकी सिद्धि

नही होती है ? इहांपरही तेरी-पंडितानीपणा, वाचकवर्ग समज लेवेंगे ? हम कुछ विशेष लिखते नहीं है । और जो तूं लिखती है कि-मंदिर मूर्तिका विस्तार एकभी-प्रमाणिक सूत्रमें, नहीं लिखा, सोतो तेराही लेखसं तेरी अज्ञता सिद्ध करके दिखा देवेंगे ॥

॥ इति सूत्रोंका लेखमेंभी-अधिकताका, विचार ॥

॥ अब बहवे अरिहंत चेइय प्रक्षेपका विचार ॥

ढूंढनी-पृष्ठ. ७७ में. “ बहवे अरिहंत चेइय. ” ( यह प्रश्नके उत्तरमें ) लिखती है कि, यदि किसी २ प्रतिमें, यह पूर्वोक्त पाठभी है, तो वहां ऐसा लिखा है कि-पाठांतरे । अर्थात् कोई आचार्य ऐसे कहते है. एसा कहकर-प्रक्षेप, पणाकी सिद्धि कीइ है. ॥

समीक्षा-हे पंडितानी ! पाठांतरका अर्थ \*तूने प्रक्षेपरूपसें समजा ? क्योंकि-उवाईजीमे तो प्रथम-‘ आयावरवंतचेइय ?, इनके बदलेमें यह “ बहवे अरिहंतचेइय २, पाठांतर करके लिखा है. परंतु केवल-प्रक्षेपरूप नहीं है. और दोनों पाठोंका अर्थभी एकही जगे आके मिलता है. । प्रथम पाठका अर्थ यह है कि-आकारवाले अर्थात् सुंदर आकारवाले, वा आकार चित्र देवमंदिराणि यह अर्थ होता है । और दूसरे पाठसे-बहुत अरिहंतके मंदिरों, बैसा खुला अर्थ होता है । उस पाठको तूं प्रक्षेपरूप कहती है ? परंतु

\* देख तेरी थोथीपोथीमें- इतरिये ( थोडा ) पृष्ठ ९ में ॥ मांडले ( नकसा ) पृष्ठ ३९ में ॥ न्हु ( बेटेकी बहु ) ऐसा तूने जगें २ पर लिखाहै सो पाठ क्या ‘ प्रक्षेप ’ रूप के है ? ॥

प्रक्षेपपाठ किसको कहते हैं, और पाठांतर किसको कहते हैं, यह भी तेरी समजमें कहाँसे आवेगा ? केवल मिथ्यात्वके उदयसे प्रगट-पणे-मंदिरोका पाठोंको, उत्थापन करनेके लिये प्रयत्न करती है ॥ परंतु शोच नहीं करती है कि-हम ढूँढको सनातनपणेका तो दावा करनेको जाते हैं, और प्रतिमापूजन निषेधका पाठ तो एकभी सूत्रसे दिखा-न सकते हैं, और मंदिरोंके जो जो पाठ सूत्रोंमें हैं. और जिस मंदिरोंकी सिद्धि रूप पाठोंके हजारों शास्त्रों तो साक्षीभूत हो चुके हैं. और पृथ्वी माताभी-जिनमंदिरोकों गोदमें बिठाके, साक्षी दे रही है. उन पाठोंकी उत्थापना करनेको हम प्रयत्न करते हैं. सो तो वीतरग देवकी महा आशातना करके अधिकही हमारा आत्माको संसारमें फिरानेका प्रयत्न करते हैं. इतना विचार नहीं करती है. उनको अधिक-हम क्या कहेंगे ?

॥ इति प्रक्षेप पाठका विचार ॥

॥ अब अंबडजी श्रावकके-पाठका विचार ॥

ढूँढनी—पृष्ठ. ७८ । ७९ में-उवाईजीका पाठ--“ अम्मड-स्सण परिठ्वायगस्स, णोकप्पई अणउत्थिएवा, अणउत्थिय देवयाणि वा, अणउत्थिय परिग्गाहियाणि वा अरिहंते चेइयंवा, वंदित्तएवा, नमंसित्तएवा, जावपज्जुवासित्तएवा, णण्णत्थ अरिहंते वा, अरिहंत चेइयाणिवा ”

॥ ढूँढनीकाही अर्थ. लिख दिखाते हैं--अम्बडनामा परिव्राजकको ( णोकप्पई ) नहीं कल्पे. ( अणुत्थिएवा ) जैन मतके सिवाय अन्ययुक्तिक शाक्यादि साधु ? । (अणः) पूर्वोक्त अन्ययु-

त्थिकोंके माने हुये देव, शिवशंकरादि २ । ( अणउत्थिय परिग्ग-  
हियाणिवा अरिहंतचेइय ) अन्यउत्थिकोंमेंसे किसीने ( परिग्गाइ-  
याणि ) ग्रहण किया ( अरिहंतचेइय ) अरिहंतका-सम्यक् ज्ञान,  
अर्थात् भेषतो है परिव्राजक, शाक्यादिका, और सम्यक्त्व व्रत, वा  
अणु व्रत, महाव्रत रूप, धर्म अंगीकार किया हुआ है जिनाज्ञानु-  
सार ३ । इनकी ( वंदित्तएवा ) वंदना ( स्तुति ) करनी ( नमांसि-  
त्तएवा ) नमस्कार करनी, यावत् ( पज्जुवासित्तएवा ) पर्युपासना  
( सेवाभक्तिका करना ) नहीं कल्पै ! पृष्ठ ७९ ओ. १४ में. लिख-  
तीहै कि, नया क्या इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है.

समीक्षा-पाठकवर्ग ! इस दूंदनीजीका हठ तो देखो कितना  
है कि-जो इसने अर्थ किया है, सो अर्थ नतो टीकामें है, और  
नतो टब्बार्थमें-कोइ आचार्यने किया है. ॥ और ( गण्णत्थ अरि-  
हंतेवा, अरिहंत ( चेइयाणिवा ) इस सूत्रका अर्थको छोडके, केवल  
मनोकल्पित अर्थ करके कहती है कि, नया क्या इस पाठका यही  
अर्थ यथार्थ है । ऐसा कहती हुई को कुछभी विचार मालूम होता  
हे ! हे सुमतिनी प्रगटपणे अनर्थ करनेको, ईश्वरने साक्षात् तेरेकुं  
भेजी है ? कि, जो आजतक हो गये हुये भाष्यकार, टीकाकार,  
टब्बाकार, यह सर्व जैन आचार्योंसे निरपेक्षहोके, अनर्थ करके क-  
हती है कि-इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है, तेरेको क्या कोईभी  
पुछने वाला न रहा है, कि, हे दूंदनीजी यह अर्थ जो आप करते  
हो सो किस प्रमाणिक ग्रंथके आधारसे करतेहो ? इनता मात्र भी  
कोई सुझ, संसार भ्रमनका भयसें, पुछने वाला होता तो, तेरी स्त्री  
जातीकी क्या ताकातथी जो मन कल्पितपणेसे इतना अनर्थ कर  
सकती ? परंतु कोई सुझ पुछनेवाला ही हमको दिखता नहीं है  
॥ अब इस पाठका अर्थ सर्व जैन महा पुरुषोंकोसम्मत यथार्थ क्या

है, सो, और इस दूढ़नीका मरोड क्या है सो भी, किंचित् लिख कर दिखावतेहै—यथा पाठार्थ—अंबडपरित्राजको न कल्पे, अन्यतीर्थीक ( शाक्यादिक साधु ) अन्यतीर्थीके देव ( हरिहरादि ) अन्यतीर्थीने ग्रहण किये हुये अरिहंतचैत्य ( जिनप्रतिमा ) को—वंदना, नमस्कार करना, परंतु अरिहंत और अरिहंतकी प्रतिमाको वंदना नमस्कार करना कल्पे. इति पाठार्थ. ॥ अब दूढ़नीका मरोड दिखावते है कि—( अणुउत्थिय परिग्गहियाणिवा अरिहंत चेइयंवा ) इस पाठका अर्थ, अन्यतीर्थीने ग्रहण किई जिन प्रतिमाका है. उसका दूढ़नी अर्थ करती है कि—अन्य यूत्थिकोंमेंसे किसीने ग्रहण किया अरिहंतका सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेषतो है परित्रजाक, शाक्यादिक, और सम्यत्तव व्रतवा अनुव्रत रूप धर्म, अंगीकार किया हुआ है जिनाज्ञानुसार. यह अर्थ करके. ! पाठके अंतपदका जो.—अरिहंत, और अरिहंतकी प्रतिमाको, वंदन, नमस्कार करना, कल्पे, इस प्रतिज्ञाकरने रूप पदका अर्थको छोडदेके, जिसका कुछ भी संबधार्थ नहीं, है, वैसा अगडं बगडं लिखके अपनी सिद्धिक—

रनेको. ८० । ८१ । ८२ । ८३ । पृष्ठ तक—कुतोकोंसे फोकटका पेट फुकाया हे। इससे क्या विपरीतपणाकी सिद्धि होयगी! सिद्धि न होगी; परंतु तेरेको, और तेरा वचनको अंगीकार करने वालोंको, वीतराग देवके वचनका भंग रूपसे, संसारका भ्रमण रूप फलप्राप्तिकी, सिद्धि हो जावे तो हो जावे ! परन्तु जिनप्रतिमाका नास्तिक पणाकी सिद्धितो तेरा किया हुआ विपरीतार्थसे कभीभी न होगी ॥

दूढ़कीनी पृष्ठ. ८१ ओ. १४ ( गण्णत्थ अरिहतेवा अरिहंतचेइयाणिवा ) पूर्व पक्षमें लिखके—पृष्ठ. ८४ के उत्तर पक्षमें अर्थ लिखती है। यथा—( गण्णत्थ ) इतना विशेष, इनके सिवाय और

कीसीको नमस्कार नहीं करूंगा, किन्के शिवाय ( अरिहंतेवा ) अरिहंतजिको ( अरिहंतचेइयाणिवा ) पूर्वोक्त अरिहंत देवजीकी आज्ञानुकूल संयमको पालनेवाले, चैत्यालय, अर्थात् चैत्य नाम ज्ञान, आलय नाम घर, ज्ञानकाघर अर्थात् ज्ञानी, ( ज्ञानवान् साधु ) गणधरादिकों को वंदना करूंगा, अर्थात् देव गुरुको । देव पदमें—अरिहंत, सिद्ध, गुरुपदमें, आचार्य, उपाध्याय, मुनि इत्यर्थः॥

फिर—पृष्ठ ८५ ओ ५ से—अब समजनेकी बात है कि—श्राव-कने, अरिहंत, और अरिहंतकी मूर्तिको, वंदना करनी तो आगार ररकी । और इनके सिवा सबको वंदना करनेका त्याग किया । तो फिर—गणधरादि, आचार्य, उपाध्याय, मुनियोंकों, वंदनाकरनी बंदहुई ॥ क्योंकि देवको तो—वंदना, नमस्कार, हुई, परंतु गुरुको वंदना नमस्कार करनेका त्याग हुआ । क्यों कि—अरिहंत भी देव, और अरिहंत की मूर्ति भी देव, तो गुरुको वंदना किस पाठसे हुई । ताते जो प्रथम हमने अर्थ किया है वही यथार्थ है ।

समीक्षा—पाठक वर्ग ! आध्वाराम तो विचारा संस्कृत पढा हुआथा ही नहीं. वैसा. पृष्ठ २१ में—दूढनीने लिखाथा सो क्या सत्य होगा, ? क्योंकि सम्यक्क शहयोद्धारमें—( अरिहंतेवा, अरिहंत चेइयाणिवा ) इसका अर्थ—अरिहंत, और अरिहंतकी प्रतिमा, इतना किंचित् मात्रही अर्थ दिखाया । और, इस दूढनीने तो, दूढदूढ कर अर्थात् मेंसेभी अर्थात् निकाल निकालाकरके गूढार्थको दिखाया, कि—जो जैनमतमें आजतक लाखो आचार्य हो गये उसमेंसे किसीनेभी नहींपाया । धन्यहै दूढनीकी ' धनगरी, माताको कि—जिसने ऐसी पुत्रीको जन्म देदिया । इसीवास्ते कहती है, के—अरिहंत, और अरिहंतकी प्रतिमाका—अर्थ करें तो, गुरुको वंदना नमस्कार, करनेका त्याग हुआ । क्योंकि—अरिहंत भी देव, और

अरिहंतकी-मूर्तिभीदेव, तो गुरुको-वंदना किसपाठसे हुई। ताते हमने-अर्थ किया, वही यथार्थ है। हे सुमतिनी ! तूं अपने सेवकोंमें-सर्वज्ञपणेका, डोलतो दिखाती है, परंतु इतना विचारभी-नही करती है, कि-जब अन्ययूथिक शाक्त्यादिक-साधुको, वंदना, नमस्कार, करना-नही कल्पें तो, जैन के-साधुको तो, वंदना, नमस्कार, करनेका अर्थापात्तिसे ही-सिद्धरूप, पडाहै। इसवास्ते यह-तेरालेख, सर्व आचार्योंसे-निरपेक्ष रूप होनेसे, तेरेकों, और तेरे आश्रितों को-बाधक रूप होगा, परंतु-साधक रूप, न होगा। इत्यर्थ ॥

॥ इति अंबडजी श्रावकके, पाठका विचार ॥

॥ अब आनंद श्रावकजीके सूत्र पाठका विचार ॥

दूढनी-पृष्ठ. ८७ से—आनंद श्रावकके विषयका पाठ लिखके. पृष्ठ ८९ ओ. ३ से लिखतीहै कि-संवत् ११८६ की लिखी हुई-उपाशक दशासूत्रकी, ताडपत्रकी प्रतिमें ऐसा पाठ सुना है ( अण्णउत्थिय परिग्गहियाइं चेइया ) परंतु ( अरिहंत चेइयाइं ) ऐसे नहीं है। यह पक्षपातीयों ने-प्रक्षेप, किया है ॥

समीक्षा-हे दूढनी ! यह ११८६ के सालका ताडपत्रका पुस्तक है, वैसा-सुना है, परंतु तूने-देखा तो, है नहीं, तो पिछे यह पाठका-फर्क कैसे लिख दिखाया ? तूं कहेगीके-ए. एफ हडौ-ल्फ हरनल साहिबके लेखके अनुमानसे-लिखती हूं। तो भी इस पुस्तकका अनुमान-उस पुस्तकपै, कभी नहीं होसकता है। खेर जो तूं-साहिबके लेखसे भी, विचार करेगी तो भी-तेरी जूठी कल्पनाकी-सिद्धि तो, कभी भी होने वाली नहीं है। क्यों कि, जो



तू (अण्ण उच्छिय परिग्गाहियाइं, चेइयाइं,) इतना पाठ मात्र, कोभी मान्यरखेगी, तोभी-आनंद-काम देवादिक महान्-श्रावको होनेसे, प्रत्याख्यानके अवसरमें-न कल्पें अम्ययूथिका, ( शाक्यादि साधु ) और अन्य यूथिक-देवतानि, (हरि हरादि देवों) अब ( अण्णउत्थिय यपरिग्गाहियाइं, चेइयाइं, ) इसमें-अरिहंत शब्दको, न मानेगी, तोभी-हरि हरादि देवोंका प्रथमही निषेध हो जानेके संबन्धमें यह चेइयाइं पाठसें, अन्ययूथिकोने-ग्रहण किई हुई-जिनप्रतिमाका ही-अर्थ, निकलेगा, और उसको ही-वंदना, नमस्कार, करनेका-नियम, ग्रहण किया है ॥ परंतु तेरा-मनः कल्पित जो, अन्य यूथिको-मेंसे, किसीने-ग्रहण किया, अरिहंतका-सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेषतो है-परिव्राजक, शाक्यादिकका, और सम्यक्त्वव्रतवा, अनुव्रतरूपधर्म अंगीकार किया हुआ है-जिनाज्ञानुसार, यह-बे संबन्ध, लंबलंबाय-मान, अगडं बगडं रूप अर्थकी, सिद्धि तो तीनकालमें भी-नही होती है ॥ काहेको फुकटका प्रयास लेके और बीतराग देवकी, आ शातना करके पापका-गठडाको, शिरपर-उठाती है ?

॥ इति आनंद श्रावकजीके-सूत्रपाठका विचार ॥

॥ अब द्रौपदीके विषयमें- कुतकोंका, विचार ॥

ढूढनी—पृष्ठ ९१ ओ. १ से—कथा जिनमंदिर के पूजने वालों-के घर-मद, मांसका-आहार, होता है, अपितु नहीं, तो सिद्ध हुवा कि-द्रौपदीने, जिनेश्वर का-मंदिर, नहीं पूजा. ॥

फिर पृष्ठ. ९४ ओ. १५ से-बहुधा यह-मुनने, और, देख-नेमें भी-आया है कि, अनुमानसे ७७०० सैवषों, के लिखितकी श्री ज्ञाता धर्मकथा, सूत्रको प्रतीहै, जिसमें-इतनाही पाठहै, यथा-तएणं सा दोवइ रायवर कन्ना, यावत् जिनघर मणु प-विस इ २ त्ता, जिन पडिमाणं--अच्चणं, करे इ २ त्ता ) बस इतनाही पाठहै. । और नई प्रतियोंमें, विशेष करके तुमारे कहे मुजब-पाठहै, ताते सिद्धहोताहै कि-भिलाया गया है. इत्यादि ॥

फिर पृष्ठ ९६ ओ. ३ से--साबूतीयह है कि-प्रमाणिक सूत्रोंमें, तीर्थकर देवकी-मूर्ति पूजाका, पाठ नही आया. । द्रौपदीने भी धर्म पक्षमें-मूर्ति नहीं पूजी, ॥ दूसरी साबूती-तुह्यारे माने हुये पाठमें-सूरयाभ देवकी-उपमा, दी है, परतु श्राविकाको श्राविकाकी-उ-पमा, नदी. ॥

फिर पृष्ठ ९७ ओ. १ से-किसी श्रावक, श्राविकाने-मूर्ति, पूजा होती तो-उपमा, देते ॥ जैसे-देवते, पूर्वोक्त जीत व्यवहारसे-मूर्ति, पूजतेहै । ऐसेही-द्रौपदीने, संसार खातेमे-पूजीहोगी ॥

फिर पृष्ठ ९८ ओ. ३ से--यहां संबंध अर्थसे-जिनप्रतिमाका अर्थ-कामदेवका-मंदिर, मूर्ति-संभव, होता है ॥

ओ १० से--विवाह केवक्त--बरहेतु, कामदेवकी--मूर्ति, पूजी होगी ॥

समीक्षा-हे ढूढनी ! द्रौपदीने-मद, मांस-खाया, वैसा कहां-

लिखा है, जो तूं महासतीकों-जूठा कलंक देके, जिन मूर्तिका पूजन-निषेध, करती है ? । क्योंकि-पंजाबखाते, वर्त्तमानमेंभी, सत्रियोंमें-मांसादिककी, प्रवृत्ति होतीहै, और स्त्रीयों तो-छूतीभी, नहींहै, उनके घरका आहार तेरेको और दूसरे दूंदको भी लेनाही पडता है तोपीछे जैनमतको धारणकरके क्यों फिरते हो ? । इस-बातसे-द्रौपदीको कलंकित, न कर सकेगी और, सातसो वर्षके प-हिलेकी-ज्ञाताधर्मकथा, लिखी हुईहै, वैसा-सुनकर, देखेविना उस कापाठ-कैसे लिखदिखाया ? और सनातन धर्मका दावा करने-वाले-तेरे दूंदको, ते ज्ञाता सूत्रकापाठ-लिखदिखानेको, कौनसी-निद्रामें पड़ेथें, जो लिखके-दिखाभी न गये ? क्या तूंही उनोंका उद्धार करनेको-जन्मी पडीहै, जो हजारो 'ज्ञाता धर्मकथाके, पु-स्तकोंमें-प्रचलित पाठको, नया मिलाया गयाहै वैसा कहतीहै, ॥

हे दूंदनी ! ज्ञाताधर्म कथाका पाठतो, यह नया-नही मिलाया गयाहै, परंतु तुम दूंदकोही-विना गुरुके मुंडेहुये, नवीन रूपसे-पे-दाहोगये हो, सो, थड मूलविना-यद्वातद्वा, बकवाद-करतेहो, परंतु यह हद उपरांतका तेरा जूठ, मूढविना दूसरा कौन मानेगा? ॥ और-तूं सात्रुतीदेती हैकि-सूत्रोंमें, तीर्थकर देवकी-मूर्तिपूजाका, पाठ नहीं आया, सो तो तुमको, कुछ-दिखताही नहीं तो दूसरा-कोई क्या करें ? क्योंकि, पुण्यात्मा पुरुषोतो-तुमेरे जैसेको, दिखा-नेकेलिये-करोडो, बलकन अब्जो, रूपैयका-व्ययकरके, सूत्रोंका पाठकी-साबूनी करनेको, हजारो 'जिनमंदिरोंसे' यह पृथ्वी भी-मंडितकरके, चले गयेहै । और धर्मात्मा-पूजतेभीहै । तोपिछे तूंकि-स वास्ते पुकार करतीहै कि-द्रौपदीने, धर्मपक्षमें-मूर्ति नहीं पूजी, तो क्या-अधर्मके वास्ते पूजिथी ? जोतूं ऐसा जूठा अनुमान कर रही है ?

और दूसरी सावृतीमें-दूढ़नी, कहती है कि-सूरयाभ देवने-पूजाकरी, ऐसों-द्रौपदीने करी, वैसों देवकी-उपमा, दीहै, परंतु श्राविकाको श्राविकाकी उपमा--नहीं दीई है। हे सुमतिनी ! क्या इतनाभी भावार्थ तू समजी नहीं ? देख इसका-भावार्थ, यह है कि-तुमेरे जैसें जो शाश्वती-जिन प्रतिमाको, मानके-कार्त्तम, अर्थात्-अशाश्वती, जिनप्रतिमाका लोप करनेका-प्रयत्न कर रहे है, उनका-हृदय नयन, खोलनेकेलिये, यह-सूर्याभ देवकी-उपमा, दीई है। जैसें-देवताओं सदाकाल 'शाश्वती जिनप्रतिमाका' पूजनसे, अपणा भवोभवका-हित, और कल्याणकी-प्राप्ति, करलेते है, तैसे ही-श्रावक श्राविकाओंकोभी--अरिहंतदेवकी-मूर्त्तिका, पूजन, सदाकाल करके, भवोभवका--हित, और कल्याणकी प्राप्ति, अवश्य ही करलेनी चाहिये, इस भावको-जनानेके लिये ही, यह सूरयाभ देवताकी-उपमा, दीहै। जैसें-दश वैकालिककी, आद्य गाथामें कहाहै कि--देवावि तं नमस्संति जस्स धम्मे सया मणो देवताभी तिसको-नमस्कार करतेहे, जिसका मन सदा धर्ममें होता है. तो मनुष्य नमस्कार करें उसमें-क्या बड़ी बात है तैसें द्रौपदी-जीके-पाठमेंभी समजनेका है ॥ और देवताकी-उपमा, देनेका-दूसरा प्रयोजन, यहहै कि-जितनी, देवता-भक्ति, करसकते है उतनी-मनुष्योंसें प्राये, नहीं हो सकतीहै, परंतु इस द्रौपदीजीने तो-मनुष्य रूप होके भी-सूरयाभ देवताकीतरां, सविस्तरबडा आडंबरसे--अरिहंत प्रतिमाकी, पूजा किईहै। इसभावको भी, जनानेके लिये, यह सूरयाभ-देवताकी-उपमा, दीइ है ॥ और जैसी-शाश्वती जिन प्रतिमाकी, भक्ति, करनेकी है, तैसी ही-अशाश्वती जिन प्रतिमाकी, भक्ति, करनेकीहै। और यह दोनोंमकारकी-प्रतिमाका पूजनसे, भावानु सार-एक सरखाही, फलकी प्राप्ति हो-

तीहै । यह भी विशेष प्रकार-बतानेके लिये, यह-उपमा, दीई सिद्ध होतीहै । परंतु वीतरागदेवकी मूर्तिके-निंदकोकी, सिद्धिके लिये, यह-सूर्याभ देवकी, उपमा नही दीई है । किसवास्ते जूठ की-सिद्धि करनेको तरफडती है ? ॥ और दूढनी कहतीहैकि-जैसे-देवते, जीतव्यवहारसे-मूर्ति, पूजतेह, हेसेही द्रोपदीने-संसार खातेमें, पूजीहोगी । अब इसमें-पुछनेका, इतनाही है कि-शाश्वतीजिन प्रतिमाका पूजन-देवताओंका, जो जीत व्यवहारसे-कहतीहै सो क्या-अधम फलदाताहै कि-कोइ उत्तम फलका-दाताहै ? । तूंकहेंगीकि-अधम फलदाताहै, तो पिछे शाश्वती जिनप्रतिमाकी-भक्तिके साथ, यह अधमफलदाता-व्यवहारका, संबंध ही क्या ? । और जो यह जीतव्यवहार, उत्तम-फलका, दाताहै. तोपिछे तुमेरे जैसे-विचार शून्य ते-दूसरे कौन होंगे कि-जो उत्तम आचारसे-भ्रष्ट-करनेको, थोयी पोथीयोंको-प्रगट करवावे ? और जीतव्यवहार, जीतव्यवहार, शाश्वती जिनप्रतिमा-पूजनी, सोतो, जीतव्यवहार. यहजो तेरा बकवादहै, सोभी जिनप्रतिमा पूजनका नास्तिकपणाकी-सिद्धिके वास्ते, कभीभी न होगा, किंतु आस्तिकपणाकीही-सिद्धिका, दाताहै ॥ और तू जो-जीतव्यवहार कहकर, उसको-संसारखाता, कहतीहै सो तुमेरा क्या चिजरूप है ? \* और संसार खाताका, जो तुमेरा-जगें जगे बकवाद, सुननेमें आताहै, सो किस माननिक-सूत्रमें, लिखाहै, जो फुकट लोकोको-भ्रममें, गेर ते हो ? । और दूढनी कहतीहैकि-संबंधार्थसे-काम देवका-मंदिर, मूर्ति, संभवहोता है, क्योंकि विवाहके वक्त, बरहेतु-काम देवकी-मूर्ति,

\* हमारे दूढकोंमें-संसार खाता, जो-चलपडा है । उनका-किंचित् स्वरूप, अवसर पाके, कोइ अलग भागमें-लिखके, दिखावेगे ॥

पूजी होगी ! अहो इस दूढ़नीने दूढ़दूढ़कर, काम देवकी-मूर्तिका, संबंधार्थ तो खूबही निकाला । क्योंकि-द्रौपदीजीका जिनप्रतिमाके पूजनको, शाश्वती जिनप्रतिमाका सविस्तारसे पूजनकरनेवाला जो सूर्याभदेव है उनकी-भलामण, शास्त्रकारने-दीईहै, इससे, काम देवके-मंदिर, मूर्तिकाही, संबंध, यथार्थ निकलनेवाला होताहोगा ? परंतु वीतराग देवकी-मूर्ति पूजनका, संबंध-योग्य नहीं होताहोगा ? और नमोत्थुंगं, का पाठभी, जो पढाहोगा, सोभी, काम देवकी मूर्तिके-आगेही, पढाहोगा ? क्योंकि, यह दूढ़नी जब संसारमें होगी, तब इसीनेभी सब विधि-काम देवकी मूर्तिके आगे, किई होगी ? इसी वास्तेही यह-संबंधार्थ, निकाल कर-दिखाती है ? दूसरे संसारसे अनभिन्न-आचार्योंकी, क्या ताकातहैकि-वैसा गूढ संबंधार्थ-हमको, निकालकर दिखादेवे ! यहतो दूढ़नीही दूढ़कर-निकाल सकतीहै, दूसरा क्यादिखा सकताहै ? ऐसा तदन विपरीत-लिखने वालोंके साथ, क्या हम ज्यादाबातकरेंगे ? वाचक-वर्ग आपही-समजलेवेंगे.

॥ इति द्रौपदीके विषयमें-कुतकोंका विचार ॥

॥ अब चैत्यका अर्थ-प्रतिमा, नहिका विचार ॥

दूढ़नी-पृष्ठ. १०० ओ. १ से-चैत्य चैत्यानि ( चइयाणि ) शब्दका अर्थ ज्ञानवान्, यति, आदि-सिद्ध, होता है, मूर्ति ( प्रतिमा ) नहीं ॥ ओ. १० सें-यदि कहीं-टीका, टब्बाकारोंने, चेइय शब्दका-अर्थ-प्रतिमा, लिखा भी है, तो, मूर्ति पृजक-पूर्वाचार्योंने, पूर्वोक्त पक्षपातसे-लिखा है ॥

समीक्षा—हे सुमतिनी ! इतना-जूठ लिखतें तेरेको कुछ भी-संका नही होतीहै ! क्योंकि नीतिमें भी कहा है कि-“आदावऽसत्यवचनं पश्चाज्जाता हि कुस्त्रियः अर्थ-नीचस्त्रीयों होती है सो प्रथमसेही-असत्य वचनको-जन्म देके, पिछेसेही आप-जन्म लेतीयां है, इस नीतिका वचनको-सार्थक कियाहो, वैसा-सिद्धहोता है, नही तो इतना-जूठ, क्यों लिखती ? । तूं ‘चेइय’ शब्दका अर्थ, ज्ञान, ज्ञानवान्, यति, आदिविना-मंदिर, मूर्तिका, नही होता वैसा जो-लिखती है । तो क्या-उवाई सूत्रमें-चंपानगरीका जे वर्णन है, उनकी-आद्यमें ही-“पुण्णभद चेइए होथथा, ” वैसा कहकर-सविस्तर पणासें ‘चेइए’ शब्दसे मंदिर, मूर्तिका-वर्णन किया है । सो क्या तुंने दिखा नही ? और-पृष्ठ ७७ में-बहवे अरिहंत चेइय, ऐसा-उवाई सूत्रका, पाठसें-जो तुने-चेइय, शब्दका अर्थ-मंदिर, मूर्तिका, करके, पाठांतरके बदलेमें-प्रक्षेप रूप, ठहरानेका-प्रयत्न, कियाथा, सो क्या-भूल गई ? इसका विचार-देख-इस ग्रंथका पृष्ठ. १०३ में । और पृष्ठ. १४३ में-चैत्यस्थापना, करवाने-लगजायगें, द्रव्य ग्रहणहार मुनि-हो जायगें ॥ ऐसा लिखके “ चैत्य स्थापना” सें -मंदिर, मूर्तिकी, स्थापना दिखानेके बखत चैत्य श-

शब्दका अर्थ--मंदिर, मूर्ति, रूप--तेरा लक्षमें क्या नहीं आया ? जो चैत्य शब्दका अर्थ--ज्ञान, और ज्ञानवान्, यतिका कहकर--मंदिर, मूर्ति-का अर्थको निषेध करती है ? । और ज्ञाता, उपाशकदशा, विपाक सूत्रोंमें भी--( पुण्यभद्रचैद्य ) के पाठसे--मंदिर, मूर्तिका अर्थको ही जनता है, ॥ और तूं भी पृष्ठ. ७३ में--पूर्णभद्र यक्षका--मंदिर, मूर्तिका अर्थपणे, लिखकेही आई है । तो पीछे तेरा--जूटा बकवाद, मूढविना--दूसरा कौन सुनेगा ? और दूँडनी कहती है कि--यदि कही, टीका, टब्बा कारोने--चैद्य, शब्दका अर्थ--प्रतिमा, लिखा भी है, तो पूर्वाचार्योंने--पक्षपातसे, लिखा है ॥ हे सुमतिनी ! तूं तेरा दूँडकपणाको--सनातनपणेका तो दावाकरनेको जाती है, तो क्या आजतक तेरे दूँडकोमेंसे, कोई भी दूँडक--टीका, अथवा टब्बार्थ, करनेको--जीवता, न रहाथा ? जो तेरेको उनका--एक भी प्रमाण, हाथमें न आया ? । जिस आचार्योंका--टीका, टब्बार्थ, वांचके--गूजारा चलाती है. उनकोही निंदती है ? तुमरे जैसे मंद बुद्धिवाले कौन होंगे कि--जिसडालपर बैठना, उसीकोही--काटना, और जिसपात्रमें--जिमना ( अर्थात् खाना ) उसी पात्रमें--मूतना, अब इससे अधिक मंद बुद्धिवाले दूसरे कहाँसे मिलेंगे ? इस वास्ते जो--टीकाकारोने--अर्थ, किया है, सोई प्रमाणरूप सिद्ध है । परंतु तेरी स्त्री जातिका तुछपणेका किया हुवा अर्थ तो, कोई मूढ होगा सोई मानेगा, परंतु सुज्ञ पुरुषो तो अवश्यही विचारकरेंगे और जो मूढपणेके दिनथे सो तो--चलेगये, अबतो सुज्ञ पुरुषोंकाही समय-प्रचलित है, काहेंकु फुकट-फजेता, कराती है ?

॥ इति चैत्यका अर्थ--प्रतिमा नहींका विचार ॥



॥ अब नंदीश्वरद्वीप-जंघाचार, गयेका, विचार ॥

दूडनी—पृष्ठ. १०२ ओ. २ सें--ठाणांगजी-सूत्रमें तथा जीवा-भिगम-सूत्रमें-नंदीश्वर द्वीपका, तथा पर्वतोंकी रचनाका, विशेष वर्णन-भगवंतने, किया है, और यहाँ-शाश्वती मूर्ति, मंदिरोंका-कथन भी है, परंतु वहाँ मूर्तिको-पडिमा नामसेही, लिखा है इत्यादि॥

ओ. ८ सें. और भगवतीजीमें--जंघा चारणके, अधिकारमें--चेइयाई बंदइ ऐसा-पाठ लिखा है । इससे निश्चय हुआ कि-जंघा चारणने-मूर्ति, नहीं पूजी, अर्थात्-बंदना, नमस्कार, नहीकरी यदि करीहोती तो एसा पाठहोता कि-जिनपडिमाओ, बंदइ न-मंस्सइता, सिद्ध हुआ कि-भगवंतके ज्ञानकी, स्तुतिकरी । अर्थात् धन्य है केवल ज्ञानकी शक्ति, जिसमें-सर्व पदार्थ, प्रत्यक्ष है ॥ यथा सूत्रं पृष्ठ. १०३ से.

जंघाचारस्सणं भंते-तिरियं, केवइए गइ विसए, पण्णत्ता, गोयमा सेणं इतो-एगोणं उप्पाएणं, रुअग-वरे दीवे-समोसरणं, करेइ, करेइत्ता, तहं-चेइयाईं, बंदइ, बंदइत्ता, ततो पडिनियत माणेवि-एगोणंउप्पाएणं, नंदीसरे दीवे-समोसरणं करेइ, तहं-चेइयाईं, बंदइ, बंदइत्ता, इह मागळइ, इह चेइयाईं, बंदइ, इत्यादि ॥

दूडनीकाअर्थ—भगवन् जंघाचारण मुनिका-तिरछी गतिका विषय, कितना है, हे गौतम--एक पहिली छालमें--रुचकवर दीपपर विश्राम करता है, तहाँ-( चेइय बंदइ ) अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञानकी स्तुतिकरे अथवा इरिया वहीका--ध्यान करनेका अर्थ भी, संभव

होता है, क्योंकि 'लोग्सस उज्जो यगरे' कहा जाता है, उसमें-  
चौबिस तीर्थकर, और केवलीयोंकी-स्तुति, होती है। फिर दूसरी  
छालमें--नंदीश्वर द्वीपमें, समवसरणकरे, तहां पूर्वोक्त-चैत्यवंदन,  
करे। फिर रहनेके-स्थान आवे, यहां पूर्वोक्त-ज्ञान स्तुति, अथवा-  
इरिवही, चौबीस त्या, करे ॥

पृष्ठ. १०४ ओ १५ से. एकवात औरभी समजनेकी है. ॥  
पृष्ठ १०५ ओ. २ से चेइयाइ-वंदइ, नमंसइ ऐसापाठ-नहीं  
आया ॥ ओ. ६ सें--केवल-स्तुति, की गई है, नमस्कार-किसीको,  
नहींकरी ॥ पृष्ठ. १०६ ओ. ३ से-धातु पाठमें लिखाहै--वदि  
अभिवादन स्तुत्योः अर्थात् "धदि" धातु, अभिवादन-स्तुतिक-  
रनेके अर्थमें है ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ? देखियें दूढनीजीका दूढकपणा, लिखती  
हे कि, -ठाणांगजी सूत्रमें, और जीवाभिगम सूत्रमें, -नंदीश्वर द्वीपका,  
तथा पर्वतों की रचनाका, औरवहां-शाश्वती " मूर्ति मंदिरोंका "   
कथनतो आताहै ॥ वैशा कहकरभी, जंघाचारणके पाठमें-अपणी  
चातुरी-प्रगट करतीहै, और कहतीहै, कि-जंघाचारण-रुचक वर-  
द्वीपमें, पहिलीही छालमें जातेहै, परंतु उहां रहे हुयें-शाश्वतें मंदिर,  
मूर्तको-वंदना, नमस्कार, नहीं करतेहै। और जो-चैत्यवंदना,  
कहीहै, सोतो वहां-ज्ञानकी, स्तुतिकरी, अर्थात् धन्यहै केवल ज्ञान-  
की शक्ति-जिसमें सर्व पदार्थ प्रत्यक्षहै, अथवा इरियावहीका, ध्यान  
करनेका-अर्थभी, संभव होताहै, उसमें लोग्सस उज्जोयगरे कहा  
जाताहै.। हे दूढपंथिनी ! चैत्य वंदनका अर्थ ज्ञानकी स्तुती होती  
है वैशा कौनसे सिद्धांतसे, और कौनसे गुरुके पाससे-तूने पढा ?  
और उहां नंदीश्वरादिक द्वीपोंमें कौनसा केवल ज्ञानका ढेर-कर

रखाथा, ? जो तू कहती है कि,—ज्ञानकी स्तुति, करी, और इरि-  
वहीका ध्यानका नाम—चैत्य वंदन है ? और जो—लोगस्स उज्जोय  
गरे का—ध्यानका नाम—चैत्य वंदन, कहती है सोभी तेरी समज  
बिना काही है—नतो तं पूजाका अर्थको समजतीहै, नतो—वंदनाका  
अर्थको समजतीहै, केवल थोथापोथा की रचना करके, अज्ञानांधो  
कों—धर्मसे भ्रष्ट करती है । नतो जंघाचारण मुनिने—पूजा किईहै ।  
और न शास्त्रकारने भी—दिखाई है, । किसवास्ते पूजापूजाका पुका  
र करती है ? क्योंकि जिस मुनिको जंघाचारण की लब्धि होतीहै,  
सोही मुनि—नंदीश्वरादिक द्वीपोंमें, रही हुई—शाश्वती प्रतिमाओकी,  
यात्रा करनेको, अपनी—लब्धिका, उपयोग करते है । इसीवास्तेही  
यहशास्त्र सम्मत पाठ है । इसका लोपतो तेरे बाबेकेभी बाबेसे—न-  
हीहो सकता है, किसवास्ते महापुरुषोंके—वचनोका अनादर करके,  
अपणा आत्माको भवभ्रमणमें जंपापात कराती है ? । और—के-  
वल ज्ञानकी, जो—स्तुति करनी दिखाती है, सोतो एकवचन रूपसे  
है । और—चेइयाई, यहपाठ है सोतो—बहुवचन रूपहै । नतो तेरेको  
- एकवचनकी, खबर है, और नतो—बहुवचनकी खबर है, केवल वे  
भाम बनी हुई, जूठाही पुकार करती है, इससे क्या—तेरी हितपणा  
की सिद्धि, हो जानेवाली है ? ॥ और उन मुनियोने रुचकवर  
द्वीपमें—नंदीश्वर द्वीपमें—जानेका जो उपयोग किया है—सो भी वहां  
के, शाश्वते—मंदिर मूर्तियोंकी, यात्रा करनेके लियेही, अपनी जं-  
घाचारणपणेकी लब्धिका उपयोग किया है । परंतु वहां—केवल  
ज्ञानका, ढेर को—वंदना, करनेके वास्ते नहीं गये है ॥ और इहां-  
पर भी अर्थात्—भरतादिक क्षेत्रमें, जो अपनी जंघाचारणपणेकी  
लब्धिसे—फिरते है, सोभी—जोजो महान् महान् तीर्थोंमें—वीतराग  
देवकी—अशाश्वती मूर्तियां, स्थापित किइ गई है, उनकी—यात्रा कर-

नैको ही -फिरते है ॥ परंतु तेरा मान्य किया हुआ-ज्ञानका ढेरको, वंदना करनेको, नहीं-फिरते है, ॥ और दूंदनी कहती है कि-चेइयाइं वंदइ नमंसइ ऐसा पाठ नहीं अया, सो केवल-स्तुति कीगई है, नमस्कार किसीको-नहीं करी, ॥ वैसा लिखकर, धातुका अर्थ, दिखातीहै, कि-वदि अभि वादन स्तुत्योः अर्थात् 'वदि' धातु, अभिवादन-स्तुति करनेके अर्थमें है. । हे पंडिते ! तुंने क्या ' वदि' धातुका अर्थ-एक स्तुति करने मात्रका ही दिखा ? तो क्या अभिवादन, और स्तुति, यह-दोनो अर्थ, द्विवचनसे, दिखाइ न दिया ? जो स्तुतिमात्र-एकही अर्थ, करती है ? । देख अभिवादन शब्दका-अर्थ, शब्दस्तोम महानिधि कोशमें-अभिवादनं, स्वनामोचार पूर्वकं-नमने, अर्थात् नमन अर्थमें, अभिवादन शब्द होता है । इस वास्ते वदि धातुका प्रयोग करनेसे-वंदनाकाभी, और स्तुति करने काभी-यहहोनो अर्थकाही, समावेश किया गया है, किस वास्ते-स्तुति मात्र अर्थका जूठा पुकार करती है ? ॥ पाठक वर्ग ! इहां समजनेका यह है कि,-प्रथम अंबड परिव्राजकके विषयमें-अरिहंत चेइयाइं, इसका अर्थ-इस दूंदनीजीने-अरिहंतका सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेष तो हे परिव्राजक, शाक्यादिका, । और सम्यक्त्व व्रत, । वा अणुव्रत, । महाव्रतरूप धर्म । अंगीकार किया हुआ जिज्ञानानुसार कियाया, । और-एगणथ्य अरिहंतेवा अरिहंत चेइया शिवा इहांपर, अरिहंतजीको, और-अरिहंत देवजीकी आज्ञानुकुल-संयमका पालनेवाले-चैत्यालय, अर्थात्-चैत्यनाम ज्ञान, आलय नाम घर, ज्ञानकाघर । वैसा अर्थ कियाया, । सो यह-वे संबधार्थ तो इस दूंदनीको मिलगया ॥ और द्रौपदीजीके विषये-कुतकों पैभी कुतकों करके प्रगटरूप-जिनपतिमाका, अर्थको छोड

देके, और विवाहार्थका-संबंध जोडके, कामदेवके मंदिरका अर्थ-  
बरनेका प्रयत्न किया। अब जंघाचारण मुनि-जो अपनी लब्धिके  
प्रयोगसे-रुचकवर द्वीपमें, और नंदीश्वर द्वीपमें-कि जिहां शाश्वते  
मंदिरोंमें शाश्वती जिनप्रतिमाओको, बंदनाकरनेको जाते हैं, उसका  
खास जो संबंधार्थ है, उनको छोडके, इनके बावने रखा हुआ  
ज्ञानका-ढेरको, बतलाती है ? । अब ऐसी यह-हठ दृढ दूंदपंथिनी  
दूंदनीको, क्या उपमा देंगे ? क्यों कि जो कोई आप नष्टरूप होके  
दूसरोंको भी-नाश करनेका प्रयत्न करें, उसको क्या कहेंगे ? ॥

॥ इति नंदीश्वर द्वीपमें जंघाचारण गयेका विचार ॥

॥ अब चमरेंद्रके-पाठका विचार ॥

दूंदनी—पृष्ठ. १०६ ओ. १० से-चमर नामा-असुरेंद्र, जो-  
प्रथम स्वर्गमें, गया है ॥ पृष्ठ १०८ ओ. १५ से-तहां सक्रेंद्रने-वि-  
चार किया कि । यह-चमरेंद्र, ऊर्ध्व लोकमें आनेकी शक्ति तो, र-  
खता नहीं है, परंतु-३ मांहला किसी एकका-शरणा लेके  
आसक्ता है ॥

पृष्ठ १०९ यथा सूत्रं—गणत्थ अरिहंतेवा १ । अरिहंत चे-  
इयाणिवा २। अणगारेवा भाविष्यणाणो णीसाए उद्धं उप्पयांति ३॥

दूंदनीका अर्थ—३४ अतिशय, ३५ वाणी संयुक्त-अरिहंत  
१ । अरिहंत चैत्यानि-अर्थात् चैत्यपद-अरिहंत छस्यन्न याति पदमें,  
क्योंकि अरिहंत देवको जबतक-केवल ज्ञान, नहीं होय, तबतक-  
पंचमपदमें, होते हैं, जब केवल ज्ञान होवे तब-अरिहंत पदमें  
होते हैं. २ ।

सामान्यसाधु-भावितात्मा. ३ । इनतीनोंमेंसे किसीका शरण

लेके आवे ॥ पृष्ठ. ११० ओ. ७ सं-अरिहंत-चैत्यपद । किसपाठसे निकाला है ? इसके उत्तरमें लिखती है कि-जिसपाठसे तुम मूर्ति पूजकोने-देवयं चेइयं, का अर्थ-प्रतिमावत् ऐसे निकाला है ॥

पृष्ठ. ११२ ओ. १२-बंदना तो करे प्रत्यक्ष-अरिहंतको, और कहेकि-प्रतिमाकी तरह, तो अरिहंतजीसे प्रतिमा-जड, अछीरही ॥

समीक्षा—अब इहांपर-सर्व महापुरुषोंसे, निरपेक्ष होके दूढनी है सो उघडपणे धीठाईपणाको-पकट करती है ॥ देखोकि-अरिहंत चेइयाणि, इस पदका अर्थ-अंबड परिव्राजकके विषयमें सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेषतो है परिव्राजक, शाक्यादिका । और सम्यक् व्रत । वा अणुव्रत । महाव्रतरूपधर्म । आदि कराया ॥ और, इसी पदका अर्थ-जंघाचारण मुनिके विषयमें-भगवानका ज्ञानकी-स्तुति, दिखाईयी कि-धन्य है केवल ज्ञानकी शक्ति, जिसमें सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष है ॥ और इस-चमरेंद्रके विषयमें-उसी चैत्य शब्दका अर्थ-चैत्यपद, करके-दिखाती है, अर्थात्-अरिहंत छद्मस्थ यतिपदमें, करके दिखाति है ॥ फिर प्रश्न उठाया है कि-चैत्यपद, यह किसपाठसे निकाला है, तब धिठाईपणा दिखाके कहती है कि-जिस पाठमेंसे तुम मूर्तिपूजकोने-देवयं चेइयं, का अर्थ-प्रतिमावत् ॥ ऐसे निकाला है ॥ इसमें विचार करनेका यह है कि, जो अरिहंत चेइयाणि, शब्द ह सो, सर्वजगें पर-अरिहंतकी-प्रतिमाओका, अर्थको-पगटपणे दिखारहा है, उसपदका अर्थ एकजगें ता-परिव्राजक । दूसरीजगें—केवल ज्ञान । और, तीसरीजगें-अरिहंत-छद्मस्थ-यतिपद । आदि भिन्न २ पणे-संबंध विनाका अर्थको प्रगट करती है । जैसे कोई पुरुष, एकजगें पर भूल जाता है, तब जगें जगें पर, गोटेंही खाता है ॥ कहवतभी है कि-ता-

लोंसे चुकी डुमनी गावे आल पाताल, तैसे ही यह दूढनीभी जैसा मनमें आता है तैसेही बकवाद-करदिखाती है । और अपना दूढक पंथको-सनातनपणेका, दावाभी करनेको जाती है, परंतु एकभी जैन सिद्धांतका प्रमाणतो दिखातीही नहीं है । केवल टीका-कार-महापुरुषोंको, और टब्बाकार-महापुरुषोंको-निंदती हुई, सर्व पंडितोंमें अपनी ही पंडिताइपणेका-प्रमाणको, प्रगट करती है ॥ परंतु इतना विचार भी-नहीं करती है, कि-टीका, टब्बाकार, महापुरुषो ते कौन, और हुं दूढनी स्त्रीजाती मात्र ते कौन ? परंतु तुछ हृदय वालोंको विचार-होता नहीं है. ॥

और-देवयं चेइयं, पदका अर्थ-प्रतिमाकी तरहका जो सम्पन्न शल्योद्धारमें किया है सो-यथार्थही किया गया है, क्यों कि ' जिनप्रतिमा ' है सो-जिनेश्वर देवके-सदृशही, सिद्धांतकारोने -मानी है. । और जिन प्रतिमाहै सो-तीनोही लोकमें विराजमानहै ॥ देख तेराही थोथाका, पृष्ठ १०२ में-ठाणांग सूत्रमें, तथा जीवा भिगम सूत्रमें-नंदीश्वर द्रोपका, तथा-पर्वतोकी रचनाका, विशेष वर्णन-भगवंतने, किया है । और वहां शाश्वती-जिन मूर्ति मंदिरों-का, कथन भी है ॥ तुं कहेगी कि-यह शाश्वती जिन प्रतिमाओ तो जैन सिद्धांतोंमें है, और हम मानते भी है, परंतु-भशाश्वती प्रतिमाओ, सिद्धांतोंमें-नहीं है, यह भी तुमेरा कहना-विचार रहित-पणेकाही है,

देख तेरीही पोथीका पृष्ठ. १४७ में-कि-जोनेरे दूढकोंने अंगी-कार कीया हुआ-नंदीसूत्रहै, उसी नंदीसूत्रमें, वर्तमान कालके कि तनेक-सूत्रोंकी, नोंध दीई है, उसीही नोंधकी गीनतीमें-आया हुआ, जो-विवाह चूलीया, सूत्रका तूं ने-पाठ, लिखा है सोई लिख दिखाताहुं-तद्यथा ॥

कइ विहाणं भंते मनुस्स लोए—पडिमा, पण्णात्ता, गोयमा अणेग विहा पण्णात्ता—उसभादिय वद्धमाण प-रियंते, अतीत, अनागए, चौवीसंगाणं तिथ्ययर पडिमा, इत्यादि ॥ पुनः—जिन पडिमाणं भंते—वंदमाणे, अच्च-माणे, । हंता गोयमा—वंदमाणे, अच्चमाणे. ॥

पृष्ठ. १४८ में, तेराही लिखा हुआ अर्थ देख-हे भगवान् मनु-ष्य लोकमें, कितने प्रकारकी प्रतिमा ( मूर्ति ) कही, गौतम अनेक प्रकारकी कहीहैं । ऋषभादि महावीर ( वर्द्धमान ) पर्यंत २४ ति-र्थकरोंकी । अतीत, अनागत-चौवीस तीर्थकरोंकी पडिमा, इत्यादि ॥ हे भगवान् जिन पडिमाकी, वंदना-करे, पूजाकरे, हां गौतम-वंदे, पूजे. ॥

यह तेराही लेखसे,—शाश्वती, तैसेही अशाश्वती, ऐसैं दोनोही प्रकारकी ' जिन प्रतिमाओंको, मूल-सिद्धांतोंका-पाठही, अना दि कालकी सिद्धिको दिखा रहा है. ॥ और जैन धर्मानुरागी है सो-अपणी अपणी योग्यता प्रमाणे-वंदन, पूजन भी, करतेही चले आते है, । और ते अनादि कालकी-जिन प्रतिमाओं, जिनेश्वर देवकेही सदृश होनेसैं, वर्तमान कालके तीर्थकरको-वंदन करनेवाले भक्तजनो है सो, होगये हुयें, और होनेवालें, सर्व तीर्थकरोंकी प्रति माओंका, और-देवलोकादिकमें रही हुई-शाश्वती जिनप्रतिमाओंका आदर, सत्कार-पदशित करनेके, बास्तेही-देवयंचेइयं, का पाठको -पठन करतेहुये, विद्यमान तीर्थकरोंको वंदन करते है, नहीके मू ढोंकीतरां-पूढनाको, प्रगट करते है. । इसवास्ते टीका, टब्बाकरणे, जो-अर्थ किया है सोई-यथार्थ है. ॥ और अलंकारके ग्रंथोंके प्रमा



णसे, 'इवपद' गर्भित होनेसे, यह अर्थ-टीका, और टब्बाकार, महापुरुषोंने, गुरु परंपरासे-चला आया हुवा, लिखा है। सोइ अर्थ-सम्यक्क सहपोद्धारमें लिखा है। परंतु तुमेरी तरा-स्वकल्पित अर्थ, नहीं लिखा है, जांतूं दूषितकर सकेगी? किस वास्ते वीतराग देवकी आशातना करके-संसार भ्रमनका बोजा-उठाती हुई, लो कोंकोभी-देती है?

और दूढनी-पृष्ठ. १० ओ. ६ सें-लिखती है कि-कोइभी, तु ह्यारा " पार्श्व " अवतार, ऐसे कहके, गालीदे तो-द्वेष आवे कि-देखो यह कैसा दुष्ट बुद्धि है, जो हमारे-धर्मावतारको, निंदनीय वचनसे बोलता है। अब इस लेखसेंभी विचारकरोकि-गालीदेने वाला तो, पार्श्वनाथके नामसे-भ्रमतार, समजता नही। अथवा, समजके भी-अवतार रूप, मानता नही है,। तोपिछे दूढनीको-द्वेष, किसवास्ते आता है?। इहांपर दूढनी कहेंगी कि-वह पुरुष पार्श्व अवतार, नही मानता है, परंतु हमतो अवतार मानतेहै, इसवास्ते द्वेष आ जाताहै। तो अब इहांपर थोडासा सोचकर देखोकि जि-सजिस, भव्य पुरुषोंने, परमशांत, पद्मासन आकृतिरूप, स्थापनाके आगे बैठकरके, वीतराग देवके गुणोंमें मग्नता होनेके लिये, जो यह वीतरागी मूर्तियोंकी रचना रची है, उस वीतरागदेवकी परमशांत मूर्तिको, कभी तो जड, कभी तो पाषाण, कभी तो अज्ञानरूप, कहकर जो अपभ्राजना करके उस भव्य पुरुषोंका चित्तको द्वेष उ-त्पन्न कराते है उनके जैसें दुष्ट बुद्धीवालें दूसरे कौन होंगे?। वीतराग देवकी मूर्तिकी तो अपभ्राजना, कभी होनेवाली नहीं है, परंतु ते निंदको ही वीतरागकी आशातनाके योगसे, अनेक भवोंमें, अपना आत्माको अपभ्राजनाका पात्र बनालेते है, उसका विचार क्यों नही करती है?।

॥ इति चमरेंद्रका पाठकी साथ, देवयं चेइयं, का विचार ॥

॥ अब दूदनीके चैत्य शब्दका विचार ॥

दूदनी—पृष्ठ. ११५ ओ. ६ से—चेतति जानाति इति चितः  
ज्ञानवानित्यर्थः तस्य भावः चैत्यं ज्ञानमित्यर्थः ॥

पृष्ठ. ११६ में—चैत्यशब्दका दश अर्थ दिखाके, पृष्ठ. ११७ में,  
श्लोक, ॥ चैत्यः ११ प्रासाद विज्ञेय, चेइ १२ हरि रुच्यते । चैत्यं  
१३ चेतना नाम स्यात्, चेइ १४ सुधा स्मृता ॥१॥ चैत्यं १५ ज्ञानं  
समाख्यातं, चेइ १६ मानस्य मानवं । चैत्यं १७ यति रुत्तमः स्यात्  
चेइ १८ भगवनुच्यते. ॥ २ ॥ चैत्यं १९ जीव मवाप्नोति, चेइ  
२० भोगस्यारंभनं । चैत्यं २१ भोग निवर्तस्य, चैत्यं २२ विनड  
नीचउ ॥ ३ ॥ चैत्यः २३ पूर्णिमाचंद्रः, चेइ २४ गृहस्यारंभनं । चैत्य  
२५ गृह मगवाहं चेइ २६ गृहस्य छादनं ॥ ४ ॥ चैत्यं २७ गृह स्तं-  
भोवापि, चेइ च २८ वनस्पतिः चैत्यं पर्वते २९ वृक्षः चेइ वृक्ष स्थूलयोः ॥  
॥ ५ ॥ चैत्यं ३१ वृक्षसारस्य, चेइ ३२ चतुःकोणस्तथा । चैत्यं  
३३ विज्ञान पुरुषः चेइ ३४ देहस्य उच्यते ॥ ६ ॥ चैत्यं ३५ गुणज्ञो ज्ञेयः  
चेइ च ३६ जिन शासनं ॥ इत्यादि ११२ ॥ पुनः नाम अलंकार  
सूरेश्वर वार्तिकादि वेदांते शब्द कल्पद्रुम प्रथम खंड पृष्ठ ४६२—  
चैत्यं क्लीपुं—आयतनं, यज्ञ स्थानं देवकुलं ॥ यज्ञायतनं यथा यज्ञ,  
युषामणि मयाश्चैत्या, श्रापि हिरण्मयाः चैत्य पुं करिभः कुंजरः ।  
इत्यादि और ग्रंथोंमें चले है । अब हठवादियोंका कथन कौनसे पा-  
तालमें गया ॥

समीक्षा—हमारे दूदक जैसे, अविचारी दूनीयामें दूसरे-होंगे  
या नहीं ? । क्योंकि, आप जैन-मतको कलंकभूतहोके, व्याकर-  
णादिक कोभी दूषित कर देतेहैं ॥ देखो दूदनीने कीईहुई-चैत्य  
शब्दकी, व्युत्पत्ति-चेतति जानाति इतिचितः ज्ञानवानित्यर्थः ।  
तस्य भाव चैत्यं ज्ञान मित्यर्थः । समजनेका यह है कि-जब "कः"

प्रत्यय आके-चितः शब्द, सिद्धहुवा, तबतो ज्ञानवान्, अर्थात् ज्ञानका आधारभूत जीवरूप अर्थ होगया । और फिर उसके भावमें “ षण् ” प्रत्यय आ गया तब जीवके बिना ज्ञान मात्रका-अर्थ, करती है । कैसी व्याकरण वालोंमें, अपनी पंडितानीपणा दिखा देती है ? ॥

अब आगे देखो-श्लोकोंकी रचना, कि-जिपमें नतो वर्णप्रमाण, नतो विभक्तिका ठिकाना, नतो छंद भंगपणेका पत्ता, केवल जंगली भाषारूप किसी मूढने मनकलित जूट लिखके-वेदांतका नामको भी, कलंकित किया है. ॥ देखो श्लोकका लक्षण, अक्षर ८ के प्रमाणसे ॥ पांचमे लघुता तोलो, गुरु छठो लख्यो गमे ॥ बीजे चौथे पदे बालो, श्लोकमां लघु सातमे ॥ १ ॥

दूहनीके लेखका विचार—प्रथम श्लोक, प्रथम पादमें-प्रसाद, और विज्ञेय, शब्दमें-विभक्ति ही नहीं है. ॥ दूसरे पदमें-वर्णही सातहै । और चैत्य शब्दका ‘ चेइ ’ नतो संस्कृत व्याकरणसे-सिद्ध होता है, और नतो प्राकृत व्याकरणसे-सिद्ध होता है, और नतो इनके आगे-विभक्तिका भी ठिकाना है । ऐसैं जिस जिस पदमें “ चेइ ” शब्द लिखा है, उहांपै सर्वथा प्रकारसे-निरर्थक पणे रखके, और वेदांतका सिद्धांतको कलंकित करके, अपनी ही पंडिताईपणेको प्रगट किई है. । तिसरे पादम-पचमा अक्षर ह्रस्वके स्थानमे-दीर्घ रख दिया है । और चौथे पादमें-चेइ शब्दभी निरर्थक, और अक्षर भी ८ के स्थानमे ६ ही रखा है. ॥

अब दूसरा श्लोक, दूसरा पादमें—‘चेइ’ निरर्थक, और विभक्तिभी नहीं है । तिसरे पादमें—पंचम अक्षर ह्रस्व चाहिये सो दीर्घ है, और छठा दीर्घ चाहीये उहां ह्रस्व है. । चौथे पादमें-‘चेइ’ शब्दही निरर्थक है ॥

अब तीसरा श्लोक—दूसरे पादमें—‘चेइ’ शब्द निरर्थक । और तिसरे पादमें—सातमा अक्षर ह्रस्व चाहिये, उहां दीर्घ रखा है । चौथे पादमें—विनउ, नीचउ, निरर्थक, संस्कृतसे सिद्ध होता ही नहीं है, और नतो विभक्ति भी कोई रखी है, और अक्षर भी सात ही है ॥

॥ अब चौथा श्लोक—प्रथम पादमें—अक्षर ही सात है, पंचम ऋस्व चाहिये वहां दीर्घ रखा है । दूसरे पादमें—चेई, शब्दही संस्कृतमें सिद्ध नहीं होता है । तिसरे पादमें—उठा अक्षर दीर्घ चाहिये वहां ऋस्वलिखा है । और चौथा पादमेंतो—‘चेइ’ शब्दही निरर्थक, है । जब वाचक रूप शब्दही न रहा तब “ वाच्य ” पदार्थकी भी सिद्धि क्या होने वाली है, इसवास्ते जहां जहां “ चेइ ” शब्द रखा है वहां सर्वथा प्रकारसे निरर्थकपणा समजनेका है ॥

अब पंचम श्लोक—प्रथम पादमें—पंचम अक्षर ऋस्व चाहिये दीर्घ रखा है । और दूसरे पादमें—‘चेइ’ शब्दका ही निरर्थकपणा है । तिसरे पादमें—अक्षरही ८ केजगे सात है, सिद्धि ही क्या करेंगे ? । चौथापादमें—अक्षर भी सात है, और ‘चेइ’ शब्दभी निरर्थक होनेसे सभी निरर्थकपणा है. ॥

॥ अब उठा श्लोक, प्रथम पादमें—अक्षरही ८ केस्थान में, सात ही है । दूसरे पादमें—‘चेइ’ शब्दही निरर्थक है, वाचक नहीं तो वाच्यकी सिद्धि क्या होनी है ? । तिसरे पादमें—अक्षरही सात है सिद्धि ही क्या करेंगे, और ‘ विज्ञान ’ पदभी विभक्ति विनाका है । चौथापाद—चेइ, शब्दसेही सर्वथा निरर्थक है. ॥

॥ अब सातमा श्लोक—आधाही है, प्रथम पादमें—‘चेइ’ शब्द ही निरर्थक रूप है तो आगे सिद्धि किस बातकी करेंगे ? ॥

पाठक वर्ग ! यह हमारी किञ्चित्मात्रकी समीक्षासे आपही विचार किजीयेकि—यह दूढ़नी, इत्यादि कहकर ११२ अर्थ ' चैत्य ' शब्दका कहती है, सो, और नम अलंकार सुरेश्वर वार्तिकादि वेदात्मिका—जूठा प्रमाण दाखल करती है, सो; सत्यरूप मालूम होता है !\*

॥ अब शब्द कल्पद्रुम प्रथम खंड पृष्ठ. ४६२ का—जूठा प्रमाणकी भी सत्याऽसत्य समीक्षा देखीये। प्रथम श्लोक—पहिले पादमें—क्लीब शब्दका—वकारही उडादिया है, और विभक्तिकाभी—ठिकाना नहीं है, पंचम अक्षर—ह्रस्व चाहिये, उहांपर दीर्घ है, और छठा सातमा अक्षर—दीर्घ चाहिये, उहां =ह्रस्व है। दूसरे पादमें—पंचम अक्षर—ह्रस्व चाहिये, उहां दीर्घ है, और छठा दीर्घके ठिकाने =ह्रस्व है। तिसरा पादमें—अक्षरही ९ करदीये है, क्या सत्यपणा समजेगे। ' करिभः ' शब्दभी कोई कोशमे दिखता नहीं, तैसैं ' हिरण्य ' भी शब्दनही दिखता है, तो किस अर्थकी सिद्धि करेंगे, जितना स्त्रीकी जातिमें—जूठपणा, शास्त्रकारोंने वर्णन किया है, उतनाही जूठापणा, इसमें भी दूढ़लो,। ऐसा—महा जूठा लेखको, लिखके भी कहती है कि—हठवादियोंका कथन—कौनसे पातालमें गया है दूढ़नी अब इसमें थोडासा तो विचार कर कि—हठवादी हम है के तेरे दूढ़को ? और यह तेरा लेखही—पातालमें गुसदने जैसा है कि—सम्यक्क शल्योद्धारका। अछी तरांसैं विचार कर। क्योंकि—सम्यक्क शल्योद्धारमें—चैत्यं जिनीक स्तद् विंबं, चैत्यो जिन सभातरुः यह जो प्रमाण दिया है सोतो—श्री कुमा-

\* ॥ हमारे गुरुजी महाराज—यह कल्पित अर्थका एक पत्रा, दूढ़क पाससैं देखा हुवा कहतेथे, सो हमने भी सुनाथा। अब यह जूठा लेख, प्रत्यक्ष पणे भी देख लिया ॥

रपाल राजाको प्रतिबोध करनेवाले—श्री हैमचंद्राचार्य महाराजका दिया है कि, जिस हैमचंद्राचार्यको, वर्त्तमान कालमें—जो अंग्रेजे लोको—बड़े प्रवीन गीने जाते है, सोभी, सर्वज्ञपणेकीही उपमा देके—बढामान दे रहे है, उस महापुरुषोंको—यद्वातद्वा, लिखनेवाली तेरे जैसी—विचार शून्याते दूसरी कौन बनेगी ? । अगर जो तेरा दूंदकपणेका पंथको—ढकके रखा होतातो, क्यौं इतना फजेता होता!!

॥ इति दूंदनीके चैत्य शब्दका, विचार ॥

॥ अब मूर्त्तिपूजनमें—मिथ्यात्वादि दोषका, विचार ॥

दूंदनी—पृष्ठ. ११८ मेंसें—लिखती है कि—मूर्त्तिपूजनमें, षट्-कार्यारंभादि दोष है, ॥ और पृष्ठ १२० ओ. ७ में—और दूसरा बडा दोष—मिथ्यात्वका है । क्यौं कि—जडको चेतन मानकर मस्तक जूकाना, यह मिथ्या है. ॥

समीक्षा—हमतो जैन सिद्धांतोका—अक्षरे अक्षर चिंतामणि रत्नके तुल्य, मान्यकरनेवाले है, परंतु तुमेरे दूंदकों जैसे नही है कि, यह तो माने, और यह तो न माने, क्यौं कि केवल मूर्त्तिपूजनमेंही—षट्कार्याका आरंभ दिखाके, उनका निषेध करनेके लिये यह थोथापोथाकी रचना किई, । परंतु तेरे दूंदक सेवको, जे—स्थानक बंधाते है, । और दीक्षा महोत्सव, और मरण महोत्सव करते है, । संघ निकालकर तुमको—वंदना, करनेको आते है । उसमें तो पूर्ण—अविचेकसें, महा आरंभका कार्य करते है, उसका, और तूं ने लिखा हुवा सूत्रका पाठका—विचार, करती बखत—तुमेरे दूंदकोकी मति, नजोने कौनसा—खेतबरणेको, जाति है ? सो उनका विचार किये बिना, केवल—मूर्त्ति पूजनमें ही, षट्कार्याका आरंभ दिखानेको, थोथापोथा—लिख मारते हो, ? क्या उसमें तुमको—षट्कार्याका आ-

रंभ, नहीं लगता है ! तुम कहोगे कि—लगता तो है, तो तुमको कौनसी अधोगतिका दाता है ? उनका भी तो विचार लिखके, साथमेही दिखा देनाथा, जिससे तेरे दूढक श्रावकोको भी—ज्ञान हो जाता कि, हम तो सभी प्रकारसे—दुर्गतिके ही बंदे बननेवाले है ! हम तो सुनते हे किं—जिस गावमें, स्थानक नहीं होता है उहाँपर, दूढक साधुको—रहनेकी विनती करते है तब, धम धमा-टसे पुकारकर उठते है कि—स्थानक तो बंधाते नही हो, काहैकी विनतीकरते हो । और उपदेश करके, पैसेकी वर्गनी कराने भी—सामील हो जाते है, उहाँ पर तुमेरी—दया माता, कहाँ जाती है ? केवल जूठा बकवादही करतेहो कि, कुछ तत्त्वकाभी—विचार करते हो ! हमतो यही समजते है कि—जोकोइ तत्त्वका विचार करनेवाला होगा सोतो—तुमेरा दूढक पंथकी नजिकमें भी न खडा रहेगा । कारण उनको भी कलंकित ही होना पडेगा । और जो अजान होंगे सो तुमेरा पकढाया हुवा—हठषणेका अनघड पथथरा लेके फगाता फिरेगा और बुद्धिमान् होंगे सो, सूत्रका—पाठको, और अपणा-कर्त्तव्योंको, और साथही उनका—तात्पर्यको, विचार करकेही अपणा पांउ धरेंगे, उनको कोइभी—दुर्गतिका कारण न रहेंगा. केवल मूढोंकाही—फजेता होता है ॥ और तूं जो दूसरा, मिथ्याश्रवका-दोष कहती है—सोतो तेरेको ही प्राप्तहोता है । क्योंकि—प्रतिमारूप अजीव पदार्थको दूसरेका पास—जीवपणको, पुकार रही है ? और अपणा आत्माको मिथ्यात्वसे, मलीन कररही है । और हम है सोतो, योग्याऽयोग्यका विचार—करणेमेंही तत्पर रहते है, किस वास्ते जूठा कलंक देके जडको—चेतनपणे, मनाती है ? हम कहते है कि—अबी भी विचार करों, और सद्गुरुका शरणाह्यो, आगे जैसी तुमेरी भवितव्यता, हम तो कहनेमें निमित्त मात्र है ॥

॥ इति मूर्त्तिपूजनमें मिथ्यात्वादि दोषका विचार ॥

॥ अब महा निशीथ सूत्र के पाठका विचार ॥

ढूढनी—पृष्ठ. १२१ से—काउंपि जिणाययणेहिं, मंडिय सव्व मेयणविटं । दाणाइ चउक्केणं, सढूढो गच्छेज्ज अ-  
च्चुअं जाव ॥ १ ॥

समीक्षा—इस महानिशीथ सूत्रके पाठसे, केवल श्रावककी करणीसे गतिका प्रबंध, किया है कि—जिनमंदिरोंको, करवायके सर्व पृथ्वी भी मंडित करदेवे, और दानादि चार धर्मकोभी करें, तोभी-१२ मा देवलोकसे, अधिक गति—श्रावककी करनीसे न होवे ॥

इसका अर्थ ढूढनी लिखती है कि—संपूर्ण भूमंडलको मंदिरों करके भरदे, (रचदे) दानादिचार करके, अर्थात् दान, शील, तप, भावना, इनचारोंके करनेसे, श्रावक जाय अच्युत १२ में देव लोक तक. ॥ अब इहाँपै यह ढूढनी—मंदिरोंका अर्थको, गपड सपड कर देके, केवल—दानादिकसे ही १२ में देवलोककी—गति, दिखाती है । परंतु बारमा देवलोककी गति कारणमें—दूसरा कारण भूत—जिन मंदिरोंका धर्मको, साथमें क्यों नहीं लिखके—दिखाती है ? यह बे संबंधा—तात्पर्य दिखाना, किस गुरुकीपाससे पठी ? ॥ फिर. पृष्ठ. १२२ ओ. २ से—लिखती है कि—इसगाथामें मंदिर बनवानेका, खंडन है कि, मंडन है । हाम पूछते है कि इस गाथामें मंदिर बनवानेका खंडन है, वैसा किस गुरुने तूने दिखा दिया? ॥

फिर. ओ. ७ सें—कहती है कि—मंदिरको—उपमा वाची श-  
ब्द में लाके—ऐसे कहा है कि—मंदिरों करके चाहे सारी पृथ्वी भर-  
देतोभी—क्या होगा, दानादि करके—श्रावक १२ में देवलोक तक  
जाते है ॥ पाठक वर्ग ? इस ढूढनीका, उद्धत्तपणा तो देखोकि—मं-



दिरोको, उपमा वाची, करती है, और मंदिर बनवानेका खंडनभी कहेती है, और कुतकों पै, कुतकों करके—पृष्ठ. १२३ ओ. ४ सें—लिखती है कि—नतो सारी मेदिनी (पृथ्वी) मंदिरों करके—भरी जाय, न १२ मा—देवलाक मिले ॥ ऐसा जूठा सोच करके—प्रत्यक्षपणे जिन मंदिरोंका—पाठका, लोप करती हुई—फिर लिखती है कि—ताते भली भांतिसे सिद्ध हुवाकि—सूत्र कर्त्ताने—उपमा, दीहे ॥ परंतु इहांपर दूढनी—इतना विचार, नही करती है कि—हजारो जैन सिद्धांतों में—जिस मंदिरोंका पाठकी—साक्षी हो चुकी है, और पृथ्वी माता भी—आपणी गोदमें लेके, साथमें—सिद्धि दिवा रही है, उनका लोप करनेको—में कैसें प्रवृत्ति करती हुं ! ॥ फिर पृष्ठ. १२४ ओ. ३ सें—लिखती है कि—द्वितीय यहभी प्रमाण है कि—प्रथम इसही, निशीथ के ३ अध्यायमें—मूर्तिपूजाका—खंडन, लिखा है, ताते निश्चय हुवाकि—पहांभी—खंडन नही है, सूत्रमें—दो बात तो, होही नही सकती है ॥ पाठकवर्ग ? महानिशीथतिसरा अध्यायके—पाठका अर्थभी, विपरीतही लिखा है । सोहमारा लेखसें—ध्यान देके, विचार लेना, इस दूढनीको तो—सर्व जगेंपर, पीलाही पीला दिखता है । न जाने क्या इनकी मतिमें—विपर्यासपणा हो गया है जो धीतराग देवसेंही, इतना—द्वेषभावको प्रगट कर रही है ॥ इत्यलं पलवितेन ॥

॥ इति महा निशीथ सूत्रके—पाठका, विचार ॥

॥ अब कवयलि कम्मा’में—कुतकाकों, विचार ॥

दूढनी—पृष्ठ. १२४ से—( कवयलिकम्मा ) के पाठमें,—अनेक कुतकों कर के—पृष्ठ. १२६ ओ. ५ सें—लिखती है कि—कही २—टीका, ट्वामें, रुढिसें—कवयली कम्मा का अर्थ—घरका देव पूजा—

लिखा है, फिर पक्षपाती-अर्थ करते है कि-श्रावकों का घरदेव-तीर्थकर देव, होता है। ओ. ९ से-तीर्थकर देव-घरके देव, नहीं, घरके देवतो-पितर, दादियां, बाबे, भूत, यक्षादि होते है ॥ ओ. १५ से-कुल-देवका मानना, संसार खातेमें, कुछ और होता है ॥ पृष्ठ. १२७ ओ. १ से-तुम्हारेही ग्रंथोमे-२४ भगवानके, शासन यक्ष, यक्षनी, लिखे है, उन्हें कौन पूजता है इत्यर्थः ॥ ओ. ७ से-रायमश्रीमें--कठियाराने, वनमें-स्नान किया, वहां-बलिकर्म पाठ, लिखा है । समजनेकी बात है कि-उसकठियारा पामरने तो-घर देवकी, वहां उजाडमें-पूजाकरी, जहां घर ना, घरदेव, उत्तम राजायोंकी-देव-पूजा-उडगई ॥ पृष्ठ. १२८. ओ. २ से-उक्तपाठ ओसकी-बुंदे ट्योल २ के, मंदिर पूजाकी सिद्धिके-आसा रूपी कुंभको, भरसकोगे ? अपितु नहीं ओ. १६ से-निशीथादिमें, साधुको-बहुत प्रकारके, व्यवहारकी विधि, लिख दी है, परंतु मूर्तिपूजाका न फल, न विधि, नना पूजनेका दंड, लिखा है ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ! देखिये दूंदनीजाकी चतुराई-‘बलिकर्म-का’ अर्थ, अस्त व्यस्त हुई-कभी तो-बलवृद्धि । कभी तो-स्नानकी, पूर्णविधि । कभी तो-पंचयज्ञोमेंसे, भूतयज्ञ । कभी तो-दानार्थ । कभीतो-नवग्रह बालिका अर्थ-दिखाके, फिर-लिखती है कि कहीं कहीं-टीका, टब्बाकारोंने, रूढीसे-‘ कयबलीकम्मा ’ का अर्थ, घरकादेव पूजा लिखा है, । फिर पक्षपातीओंने-श्रावकोंका घरदेव-तीर्थकर देव, करदिया, सो ठिक नहीं ॥ पाठकवर्ग ? जो गुरुपरंपरासे, चला आया हुवा अर्थ-टीकाकार, और टब्बाकार महापुरुषोंने किया सोतो, रूढीका-ठीक. नहीं, तो क्या बिनागुरु की दूंदनीका कियाहुवा, अगडं वगडं रूप अर्थ-ठिक होजायगा ! हे दूंदनी तेरेको लिखते-कुछभी विचार, नहीं आता है ! ॥

फिर लिखती है कि-घरका देवतो-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादि । तीर्थकर देवतो—त्रिलोकी नाथ, होते हैं । हे दूंदनी तूं क्या नित्य कर्तव्यके लिये, ते परम श्रावकोको—पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिककी, पूजा दिखाती है ? । प्रथमही देखकिं, वर्त्तमानकालके दूंदको, मलीन रूप बने हुयें—पितर, दादेयां, भूत, यक्षादि—नित्य पूजते है ? जो तूं उस उत्तम महा श्रावको कीपास—पितर, भूत, यक्षादि, दररोज पूजाती है ? ॥ फिर कहती है कि—तीर्थकर देवतो, त्रिलोकी नाथ, होते हैं, घरके देव नहीं ॥ है सुमतिनी ! त्रिलोकी नाथ है जबीही ते परम श्रावको, अपणे घरमें, महा मंगल स्वरूप मूर्तिको—पधरायके, सदाही उनकी सेवामें—तत्पर रहते है, दूसरे देवोंकी उनकों—गर्जही क्या है ? जोतूं अपना पंडितानी पणा प्रगट करके बकवाद करती है ? । फिर लिखती है कि—सहाय बांछना, कुछ और है, और कुलदेवका—मानना, संसार खातेमें—कुछ और होता है ॥

हे शुद्ध मतिनी ! तेरे दूंदक सेवकोंकी पाससें, तूं भूत, यक्षादि, नतो—स्वर्ग, मोक्षादिकके वास्ते—पूजाती है, और न तो—कोई कार्यकी सिद्धिके वास्ते, पूजाती है, तो फिर कौनसा तेरा—संसार खाताके वास्ते, पूजाती है ? सो तो दिखानाथा ? क्या अधोगतिमें पटक-नेके वास्ते—भूत यक्षादि, पूजाती है ? जो—संसार खाता का, पु-कार करती है ? बसकर तेरा पंडितानी पणेका विचारको ॥ फिर लिखती है कि—तुमरे ही ग्रंथोंमें—२४ भगवान्के शासन यक्ष, यक्षिनी, लिखे है, उन्हें कौन—पूजता है इत्यर्थः ॥ हे सुमतिनी ! तूं यह—बक-वादही, क्या कररही है, इस लेखने तो, तेरीही कुतर्कोंका नास, हो जाता है । क्यों कि जब वर्त्तमान कालमें यत् किंचित् श्रद्धावा-ले श्रावकों भी, सम्यक्द्रष्टि यक्ष, यक्षिनी, का, पूजन, विनाकारण,

दररोज नही करते है, तोफिर पवित्र कालके--ते महा श्रावको कि पाससे, मिथ्यादृष्टि--पितर, दादेयां. भूत, यक्षादिक--तू कैसे पूजाती है ?। और टीका, टब्बाकार महा पुरुषोंका, किया हुवा अर्थसे--निरपेक्ष होके, यह दूढनी--ऐसा बकवाद, कर रही हैकि--जाने ते महा श्रद्धालु श्रावको थे सो--दररोज भूत यक्षादिको की ही--पूजना, करतेथे ? और उनकाही पूजनकी सिद्धि करनेको--यह थोथा थोथा लिखके, अपनी पंडितानीपणा करतीचली जातीहो !

॥ और यही दूढनी, राय प्रश्रीय संबंधी--कठियाराका--वनेमें ' बलिकर्मके ' पाठसे देवपूजा दिखाके, कहती हैकि--उत्तम राजाओंकी घरकी देवपूजा--उडगई, ॥ हे शून्य मतिनी ! उत्तम राजाओंकी--देव पूजाकी, सिद्धिहुई कि--उडगई ? क्योंकि--जिसको जो इष्ट देव पूजनका, नित्य कर्त्तव्यरूप है, उसका नाम--शास्त्र कारोंका संकेतसे--" बलिकर्म " कहा जाता है, सो--बलिकर्म, इस कठियारे ने--जंगलमेंभी करकेही, भोजन किया । अर्थात् जोदेवसेवारूप--नित्यकर्त्तव्यथा सो, जंगलमेंभी--साथही रखाथा, और उनकीही सेवा, पूजना, करके--भोजन किया तैसेही--उत्तम राराओ और ते श्रावको, आदि--परम श्रद्धालुओंनेभी--वीतराग देवकी--मूर्तिका पूजनरूप, अपना नित्य कर्त्तव्यको, किये बादही, दूसरे कर्त्तव्योंमें--प्रवृत्ति किइ है । इसवास्ते ते परम श्रावकोकों, वीतराग देवकी--पूजा, नित्य कर्त्तव्य रूपहीथी उनकी सिद्धिही हुई है ?। और इस लेखरूप--सूर्यकी किरणोंका प्रसारसें, तेरीही--कुतकों रूप, ओसकी बुंदे--उडजानेपर भी, जोतू कुतकों रूप--ओसकी बुंदे, टटोलती टटोलती, विपरीत पणेकी बुद्धि रूप कुंभको, भरनेकी इच्छा रखेगी सो अब न भरसकेगी ॥ और निशीथादिकसें, जोतू साधुको--पूजन विधि, और--पूजनका फल, आदिको दूढती है, सोभी तेरी पंडिता

नी पणाका एक-चिन्हही, प्रगट करती है, क्यों कि-साधुको मूर्ति पूजनेका अधिकारी ही, शास्त्रकारने-नहीं दिखाया है, तो पिछे-साधुको पूजनेकी विधि, और पूजनका फल, किस वास्ते लिखेंगे ? । हां विशेषमें, इतना जरूर है कि-साधु, और श्रावक-मंदिर हुये, मंदिरमें, दर्शन करनेको-जावे नहीं तो, उनको जहर ही-प्रायश्चित्त, होता है, वैसा-श्री महाकल्प सूत्रमें लिखा है-यथा-

सेभयवं, तहारूवं समणं वा, माहणं वा चेइयघरे-गछेज्जा ? इतां मोयमा, दिणे दिणे-गछेज्जा, सेभयवं जस्स दिणे-अ गछेज्जा, तओर्भिके पायच्छित्तं हवेज्जा? गोयमा-पमायं पडुच्च तहारूवं समणं वा, माहणंवा, जो जिणघरं-न गछेज्जा, तओ छठं, अहवा दुवाल-समं, पायच्छित्तं हवेज्जा. इत्यादि ॥

अर्थ हे भगवन् ! तथा रूप श्रमण ( अर्थात् श्रावक ) अथवा माहण-तपस्वी, चैत्य घर, यानि जिनमंदिर जावे?, भगवंत कहतेहैं, हे गौतम ! रोज रोज अर्थात् हमेशां जावे. फिर गौतम-स्वामी पुछते है. हे भगवन् ! जिस दिन-न जावे तो उस दिन क्या प्रायश्चित्त होवे ! भगवंत कहतेहैं, हे गौतम ! ममादके वशसे तथा रूप-श्रावक, अथवा-तपस्वी, जों जिनगरे न जावे-तो-छट्ट; अर्थात् बेला, ( दो उपवास ) अथवा-पांच उपवासका, प्रायश्चित्त होवे. ॥ वैसाही श्रावकके, पोषध विषयमेंभी, सविस्तर प्रायश्चित्तका पाठ है सो विशेष देखना होवेसो. नवीन छपा हुआ सम्यक्क शल्योद्धार पृष्ठ. १९७ से देखलेवे. ॥ इसवास्ते साधुकी पूजन विधि आदिका, लेख ही तेरा विचारशून्यपणेका है, किस वास्ते विपरीतपणे जूठी तकों करती है ? ॥

॥ इति कथबलि कम्मा-में, कुतकोंका विचार ॥

॥ अब सावद्याचार्य-और ग्रंथोंका, विचार, करते है ॥

दूदनी-पृष्ठ १२९ से ग्रंथोंमें सविस्तार-पूजा है ! इस प्रश्न के उत्तरमें लिखती है कि-हम ग्रंथोंके-गणपौडे, नहीं मानते है, हां जो सूत्रसे मिलती बातहो, उसे मानभी लेते हैं, परंतु जो सावद्याचार्योंने-मालखानेको, मनमाने-गणपौडे, लिख धरेंहैं, " निशयि-भाष्यवत्, " उन्हें विद्वान् कभी नहीं प्रमाण करेंगे ॥

फिर. पृष्ठ. १३० से-( ३२ ) सूत्रको माननेमें-गणधर, प्रत्येक बुद्ध, दशपूर्व धारीयोंके रचे हुवे है, ऐसा-प्रमाण देके, दूसरे ग्रंथोंको-सावद्याचार्यका, कहती है । और कहती है कि-जिन ग्रंथोंके माननेसे, श्री वीतरागभाषित-परम उत्तम, दया, क्षमा रूप, धर्मको-हानि, पहुंचती है ॥ पृष्ठ. १३२ से-अर्थात् सत्यदया धर्मका-नाश, कर दिया है । फिर निर्युक्तिके, प्रश्नमें-लिखती है कि-तुम्हारीसी तरह-पूर्वोक्त आचार्योंकी बनाई, निर्युक्तियोंके पोथे, अनघ-डितकहानीये गणपौडेसे भरे हुये-नहीं मानते हैं ॥

यथा-उत्तराध्ययनकी, निर्युक्तिमें-गौतम ऋषिजी-सूर्यकी कि-णोंको-पकडके, अष्टापद पाहाडपर-चढ़गये, लिखा है ॥ आवश्यककी, निर्युक्तिमें-सत्यकी सरीखे, महावीरजीके-भक्ता, लिखे है, इत्यादि.

पृष्ठ. १३१ सें-सूत्रके मूलमें, और सूत्रकर्त्ताके अभिप्रायसे, संबंधभी नहो-उसका कथन-श्रीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णोंमें-सविस्तर कर धरना. मूर्ति पूजक ग्रंथोंमें-गणपौडे लिखे है । ऐसा कहकर एक गाथा लिखी है-सेतुज्जे. पुंडरीओ सिद्धो, मुनिकोडि पंच सं-ज्जुत्तो । चित्तस्स पूर्णमाए, सो भणइ तेण पुंडरिओ. १ ॥ इसमें सो १०० पुत्रवालेका दृष्टांत-पृष्ठ. १३६ से-दे के १३७ में लिखती

है कि, १०० मेंसे सात मरगये ९३ रहैतो-आनंद, और ९० मरजावे १० रहे तो बडा-अफसोस, इत्यादि ॥ पृष्ठ. १३८ सें-ऐसे मिथ्या वाक्योंपर-मिथ्यातीही, श्रद्धा न करते है ॥ ओ. १० से-सूतथो खलु पद्मो, बीओ निज्जुत्ति मिसिओ भणिओ । तइओए निरविसेसो, एसविही होइ अनुयोगो. १ ॥

अर्थ—प्रथम सूत्रार्थ कहना । द्वितीय-निर्युक्तिके साथ कहना, अर्थात्-युक्ति, प्रामाण, उपमा, (दृष्टांत)देकर-परमार्थको, प्रगट करना । तृतीय-निर्विशेष अर्थात्-भेदानुभेद खोलके, सूत्रके साथ-अर्थको मिला देना । इसप्रकार-निर्युक्ति माननेका अर्थ, सिद्ध है कि-तुम्हारे कल्पित अर्थ रूप, गोले-गरडानेका । वाचने लगे तो, प्रथम-सूत्रार्थ, कहलिया, । द्वितीय जो निर्युक्तियें नामसे-बडे २-पोथे, बना रखे हैं, उन्हें धरके बांचे । तीसरे जो-निरविशेष-अर्थात् ' टीका, चूर्णी, भाष्य, आदि ग्रंथों बांचे. । ऐसा तो होता नहीं है. ताते तुम्हारा-हठ, मिथ्या है ॥

१ सूत्र १ टीका २ निर्युक्ति ३ भाष्य ४ चूर्णि ५ यह पंचोंही प्रकार 'आगम' स्वरूपही कहेजाते है । उसमेंसे एक ३२ सूत्रके बिना, सर्वको जूठा ठहरायके, दूढनीही-टीकादिक सर्व प्रकार-अपणे आप बनबैठी है । परंतु सत्यार्थ-पृष्ठ ३८ में-भूत्तिखंडनके वास्ते, जिसका 'सवैया' लिखाहै-सो दूढक-रामचंद्र-तेरापंथीका खंडन-रूप एक स्तवनमें-लिखताहैकि-बत्रीश सूत्र मानां मेंतो, ते पण मानां पाठ, आगम पंच प्रकार बरोबर, निंदें गेहली ठाठ, इस कहनेसें भ्रष्टी कहीये, ग्रही नरककीवाट ॥ इत्यादि । फिरभी लिखाहैकि-टीका उत्थापेखरा ॥ यहस्तवन, अमोए इस ग्रंथके अंतमें, दाखल कियाहै, उहांसें विचार करलेना ॥

पृष्ठ. १४०—१४१ तकमें—नंदीजी वाले सूत्रोंके नामसे, ग्रंथ है भी, तो वह-आचार्य कृत-साल संवत्, कर्त्ताका नाम, लिखा है, इस कारण प्रमाणिक नहीं है ॥ पृष्ठ. १४१ में हे आता-जिस २ सूत्रोंमेंसे—पूर्व पक्षी "चेइय" शब्दको ग्रहण करके—मूर्ति पूजाका पक्ष करते है, उस २ का, मैंने—सूत्रके संबंधसे—अर्थ लिख दिखाया। अपनी जूठी कुतकों का-लगाना, छति अछति निंदा-करना, गाली-योंका-देना, स्वीकार, नहीं किया है। जूठ बोलने वाले, और गालीयों देने वालेको, नीच बुद्धिवाला समजती हूं ॥

समीक्षा-वाचक वर्ग ! खयाल करनेकी बात है कि-जो आज हजारो वर्षोंसे-हजारो ग्रंथोंकी साक्षी रूप, "जिन प्रतिमा" पूजनका-पाठ चला आता है उनको-जूठा ठहरानेके लिये, दूढ़नी कहती है कि-हम ग्रंथोंके-गपौडे, नहीं मानते है, तो पिछे अभी थोडे दिनोपै, जमें जमें पर अपमानके भाजन रूप, अज्ञानी-जेठ-मल आदि दूढ़कोंके, बनाये हुये-उप्पे, सबैयेका-प्रमाण देनेवालेको, क्या कहेंगे ? ॥ और दूढ़नी कहती है कि-जो सूत्रोंसे मिलती बात हो उसको-मानभी लेते है ॥ इसमें कहनेका यह है कि-अज्ञतक हजारो आचार्य. कि-जो सर्व सूत्रपाठी, धर्म धुरंधर, प्रमाणिक स्वरूप, महा ज्ञानकी मूर्ति रूप थे, उन महापुरुषोंका बचनको, सूत्रसे अभिलित कहकर, अब अपने आप, सूत्रसे मिलानेका कहती है, सो क्या-यह दूढ़मतिनी, कि, नतो जिस्तीको-विभक्तिका, नतो छंदका, और नतो शास्त्रके विषयका, भान है, सो सर्व महापुरुषोंसे-निरपेक्ष होके, सूत्रका मिलान करेगी ? । क्या कोई साक्षात्प्रेषण पर्वत तनयाका स्वरूपको धारण करके आई है? जो सर्व सूत्रोंकी मिलती बात हमको दिखदेगी ? । हमतो यही कहते है कि-यहभी एक मूढोंका-मूढपणेकाही बकवाद है । क्या



उस महाचार्योको, तेरा जितनाभी विवेक नहीं था ? और क्या तूही विवेकिनी जन्मी पडी है ! हे दूंदनी ! इतना गुरुद्रोहीपणा क्यों करती है ? फिर कहती है कि-माल खानेको मनमाने-गपौडे, लिखधरे है-निशीथ भाष्यवत्, उन्हें विद्वान् कभी नहीं प्रमाण करेंगे ॥ इस लेखसे मालूम होता है कि-इस दूंदनीको, आज तक खानेको कुछ माल-मिला न होगा, परंतु, गण्य दीपिका, निकालने पर, माल-बहुत मिलने लगा होगा, वैसा अनुमान होता है । उसीही माल खानेकी लालच करके-यहभी ' गपौडे, लिखकर, प्रगट करवाया होगा ? । नहींतो क्यों कहती कि-मालखानेको लिखधरे है । और इस लेखमें, इतना अच्छा किया है कि-गणधर महाराजाओको, इस कलंक से-बचाये है, अगर कलंक दे देती तो, तुच्छरूप स्त्री जातीको, कहतेभी क्या ! और दूंदपंथिनी-निशीथ भाष्यको ' गपौडे. कहकर ' कहती है कि,-विद्वान् कभी नहीं-प्रमाण, करेंगे. । परंतु इस दूंदनीको यह मालूम नहीं है कि-विद्वान् पुरुषो तो आजतक निशीथ भाष्यका एकैक वचनको-शिरसा बंध करके, मानते आये है, और आगेभी-मानेगे, केवल तुम दूंदको कोही, विश्वाताने इस महा ग्रंथका अधिकार नहीं देके, केवल मूढता रूप पाषाण दिया है, सो इधर उधर फगाया करतेहो. ॥ फिर ३२ सूत्रके बिना, दूसरे ग्रंथोंको-सावधाचार्य रचित कहती है. ॥ हे दूंदनी ! जिस दूंदकोंका-फजिता प्रगटपणे, हो रहा है, सो तो-निरवधाचार्य, और आजतक जिनोने जैन शासनको सूर्यकी तरा मकाशमान किया. और जिनोंके गुणोंमें रंजित हुई " सरस्वती " देवी साक्षात्पणे वश हुई है, ऐसे अनेक महापुरुषों, सो तो-सावधाचार्य, ऐसा लिखती हूइ-तेरी गुरु द्रोहिणीकी, लेखनी स्तंभित क्यों न हुई ? ॥ फिर लिखती है कि-जिन ग्रंथोंके माननेसे, कीत-

रागभाषित—परम उत्तम दया क्षमा रूप, धर्मको—हानि पहुंचती है ॥ हे वृंहनी ! तू सत्यरूप जैन धर्मका—वारसा, करती है किस वास्ते, क्यों कि, तूही तेरी गण्य दीपिकामे, लिखती है कि—वृंहत वृंहत वृंहलिया, सब वेद पुराण कुरानमे जोई ॥ ज्युंदही माहेसे मखण वृंहत, त्युं हम दुढीयांका मत होई. १ ॥

यही तेरा वाक्यका—विचार कर कि, इसमें सत्यरूप जैन धर्म का, कोइ नाम मात्रभी है? केवल जैनाभास बनके, किस वास्ते जैन मतको—कलंकित करतीहै!॥ फिर लिखती है कि—सत्य दया धर्मका नाश कर दिया है ॥ हे वृंहनी ! इहांपर थोडासा तो विचार करकि, उन महा आचार्योंने—सत्य दया धर्मका, जंड लगाया हैकि, नाश कर दिया है ? तेरी मति क्यों बिगडी हुई है, जरा इतिहासोकी तरफ तो देख कि—मालवा, मारवाड, गूजरात, काठियावाड, दक्षिण, आदि देशोंमें, यह याज्ञादिकमें—हजारो पशुओंका होम कियाजाताथा, उनका प्रतिबंध—राजा, महाराजाओंको, प्रतिबोध करके—करवा दिया, सो उस महापुरुषोंने सत्य दया धर्मको—स्थापित किया कि, नाश कर दिया? हे वृंहनीजी तेरेको ! इतना गर्वकिस करतूत से—होगयाकि जो कुछभी दिखता नहीं है! फिर लिखती है कि—तुम्हारीसी तरह, पूर्वोक्त आचार्यों—की बनाई—निर्युक्तियोंके पांथे, गपौडेसे भरे हुये—नहीं मानते है ॥ हे वृंहपंथिनी ! चउद पूर्व धारी भद्रवाहु स्वामिजीकी रची हुई—निर्युक्तियोंको, तू गपौडेसे भरे कहती है, तो पिछे, कौनसे तेरे—बाबे—की रची हुई—निर्युक्तियांको, निर्दोष मानती है, उनका नाम तो लिखनाथा ?! और निर्युक्तियोंको—दूषित करनेको, तूने गौतम स्थापि विषये—कुतर्क किई है, सोभी बिचार श्रून्यपणेसेही किई है, क्योंकि—जब जंघाचारण जंघाके बलसे—नंदीश्वर द्वीप तक जाते है, तो पिछे सूर्यकी किरणोका—आधारसे, गौतम स्वामीजीका—अष्टापद उ-

पर चढ जानेकी लब्धिका, कोई पण आश्चर्यकारक नहीं है ॥ केवल मिथ्यात्वके उदयसेही तुमको-विपरीत दिखता है, नहीतर इसमें सूत्रसें अमिलितपणाही क्या है ॥ और " सत्यकी " महावीरका भक्त नहीं, इसमें क्या तेरी पास-प्रमाण है, जो निर्युक्तियोंको-जूठी ठहराती है ? । हमको तो-प्रमाण, इतनाही दिखता है कि-जो भ्रष्ट होते है सो-सभी ही बातसे-भ्रष्ट ही रहते है ॥ फिर लिखती है कि-सूत्रके मूलमें, सूत्रके अभिप्रायसें-संबंधभी न हो, उसका कथन-टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णीमें-सविस्तार कर धरना ॥ हे गर्विष्ठिनी ! तूने इतनाभी विचार न आया कि-जिस मतमें-एकैक वचनकी, विपरीत-श्रद्धान करनेवाले, " जमाली " जैसे महान् साधुओंको-निन्दव मानके, कोईभी आचार्योंने-मान दिया नहीं है, वैसा निर्मल जैन मतमें, लाखों पुस्तकोंका-गोठाला, कहती हुईको-कुछभी लज्जा, नहीं आई ? इसमें शास्त्रोंका-विपरीतपणा है कि, तेरी विपरीत मतिका ? और तेरा वचनपै-विश्वास करनेवालोंका ! फिर लिखती है कि-मूर्ति पूजक-ग्रंथोंमें गपौडे, लिखे है ॥ इसमें भी थोड़ीसी निघा करके देखतो-जैसें तूने, और जेठमल हूंकने-गपौडे लिखे है वैसा तो कोई भी गपौडे लिखने वाले-न मिलेंगे ? क्योंकि जिस शास्त्रको मान्य करना-उसीसे ही विपरीतपणा । देख तेरी गप्प दीपिकाके गपौडे-गप्प दीपिका समीरमें ॥ और तेरे जेठमलके-गपौडे, देख-सम्यक्क श-ह्योद्वारमें ॥ और यह तेरा-चंद्रोदयकेभी-अनुयोग द्वारसूत्रसें सर्वथा प्रकारसे विपरीत-गपौडे, देख-यह हमारी किई हुई-समीक्षासें ॥ ऐसें अनेक दफें, गुरु विनाके तूम-जैन तत्वका रहस्यको समजे विना, मूढपणे-उपाधि तो कर बैठतेहो, फिर मूर्ति पूजकोकी तरफसें प्रत्यु-

त्तर हुये बाद, जिसका उत्तरपै उत्तर देनेके वास्ते तुमको-कुछ भी जग्या नहीं रहती है, तो पीछे तुम किस वास्ते नवीन २ चपाधि करके वारंवार बहार आते हो ?

॥ और शत्रुंजय महात्म्यकी-गाथा लिखके जो तूने चिकित्सा किई है, सोभी विचार शून्य पणेसे किई है । और इस गाथाके विषयमें, १०० पुत्रवालेका दृष्टांत दिया है-सोभी निरर्थक है, कबौं-कि-भगवानकी हयातीमें, मोक्ष गये, यह तो पूरण भाग्यशालीपणे-का-सूचक है, सो १० पुत्र वालेके साथ-कभी न जुड सकता है, किसवास्ते अगडं वगडं लिखती हुई, पंडितानीपणा दिखाती है ? ॥ फिर लिखती है कि-ऐसे वाक्योंपर, मिथ्यातीही-श्रद्धान, करते है ॥ इसमेंभी देख तेरी चातुरी-कोइ तो सिद्धांतका एकवचन न माने उनकेपर, अधवा एकाद ग्रंथको-न माने उनके पर तो मिथ्यात्वका-आरोप, करते है परंतु तू दूंदनी तो, हजारो महान् आचार्योंको-अमान्य करके, और जैन मतके लाखो ग्रंथको-अमान्य करके, महा मिथ्यात्वनी-बनी हुई, जो जैनाचार्य महा पुरुषोंको, और जैन मतके प्रमाणिक सर्व शास्त्रोंको, सर्वथा प्रकारसे आदर करनेवाले है उनको-मिथ्यात्वी कहती है, क्या तेरी अपूर्व चातुरी है कि-अपणा महान्-दोषको, छुपानेके लिये, जो सर्वथा प्रकारसे-अदूषित है, उनको अलता-दोष देके, दूषित करनेको चाहती है । परंतु जो-अदूषित है सो तो, कभीभी-दूषित, होई सकते ही-नहीं है । किम वास्ते अपनी वाचालताको प्रगट करती है ? ॥

फिर दूंदनी-सूचछोखलु पढमो, ॥ इस गाथाका मन कल्पित-अर्थ, करती है कि-प्रथम सूत्रार्थ कहना । द्वितीय-निर्युक्तिके साथ कहना, अर्थात् युक्ति, प्रमाण, उपमा, ( दृष्टांत ) देके परमार्थको-प्रगट करना । तृतीय-निर्विशेष अर्थात् भेदानुभेद खोलके, सूत्रके

साय-अर्थको, मिला देना, इस प्रकार--निर्युक्ति माननेका अर्थ सिद्ध है ॥

वाचक वर्ग ! दोखये इसमें--दूढ़नीजीका बेहंगापणा. कहती है कि-सूत्रार्थ कहकर-युक्ति, प्रमाण, उपमा, दृष्टांत देके, परमार्थको प्रगट करना । इसमें विचार यह है कि-जो टीकाकारोंने-अर्थ किया, सो तो सूत्रार्थ नहीं, परंतु जिस मूढके मनमें, जो आ जावे-सोही बकना, सो तो दूढ़नीका-सूत्रार्थ । और दूसरा-निर्युक्तिका अर्थ, युक्ति, प्रमाण, उपमा, दृष्टांत, देके, परमार्थको-प्रगट करना, कहती है, । अब इसमेंभी विचार देखिये कि-जो युक्ति नियमित हो, सो युक्ति प्रमाण होती है कि-जिस मूढके मनमें जो आया सोही ! बके, सो युक्ति-प्रमाण होगी ! और प्रमाण भी शास्त्रकारका दिया सो तो अप्रमाण, और अपने आप जो । मनमें आ जावे सोही बकना, सो तो-प्रमाण । यहभी कैसा न्याय कहा जायगा ? ऐसेही, उपमा, दृष्टांतके विषयमेंभी-विचारनेका है, क्योंकि-जो हमारेसे लाखोपट ज्ञानको धारण करनेवाले-महान् २ आचार्यों है, उनोका किया हुआ-सूत्रार्थ, और उनोंकी दिई हुई-युक्ति, और उनोंने दिखाया हुआ-प्रमाण, दृष्टांतादि, सो तो-अप्रमाण, और हमारे मूढोंके मनमें-जो आया, सोही बकना, सो तो-प्रमाण, यह बात-महामूढोंके बिना दूसरें कौन-प्रमाण करेंगे ? ॥ प्रथम-यह अनर्थ करनेवाली ज्ञान गर्विष्ठिनी जो-दूढ़नी है, उनकाही विचार देखिये, यह हमारी बनाई हुई-समीक्षासं, कि-चैत्य शब्दके; अर्थमें-विभक्तिका, छंदका, अर्थका-कितना भान है ? जो महापुरुषोंका किया हुआ-अर्थको, त्याग करके, अपने आप-सर्व सूत्रोंका अर्थ, और युक्ति, प्रमाण, उपमा, दृष्टांतोंसे-सिद्ध करके, और भेदानुभेदसेंभी-सिद्ध करके, दिखला देगी ? ॥

यह लिखना—उन्मत्तपणेका है कि, योग्य रितिका है ? सो तो—  
घाचक वर्गही, परीक्षा—कर लेवेंगे ॥

फिर लिखती है कि—नंदीजीवाले, सूत्रोंके नामसे—ग्रंथ है भी,  
तो वह—आचार्य कृत—साल, संवत्, कर्त्ताका नाम—लिखा है, इस  
कारण—प्रमाणिक नहीं है ॥ यहभी विचारशून्या दूढ़नीजीका लेख  
विचारने, जैसाही है, क्योंकि—प्रथम—जितने जैनके विशेष प्रकार  
करके—सूत्रों है, सोभी—भगवान् महावीर स्वामीजीके पीछे—९८०  
वर्ष, “ देवद्विगणि क्षमाश्रमण ” महाराजा वगैरह—अनेक आचा-  
र्योंने, एकत्र मिलकेही—लिखे हैं. तो साल, संवत्, तो सभी सूत्रों पै  
प्रगटपणे है, और उस वस्तुही—अनेक आचार्योंने, मिलकर—एक  
कोटी, पुस्तकोंको लिखवाके—उद्धार, कराया है. उन सबको जब—  
निरर्थक माने जावे, तब तो जैनमतकाही—निरर्थकपणा, हो जा-  
यगा. इसवास्ते यह लेखभी विचार शून्यपणेकाही है ? ॥ और  
अपना लेख जो—मूढपणे लिखा, सो तो—प्रमाण, और महा पुरुषों-  
का लेख—प्रमाण नहीं, वेसा लेख लिखनेवालोंका झुटका कौनसी  
गतिमें होगा, जो महा पुरुषोंका अनादर. करके, सर्व जगेपर अप-  
नीही पंडितानीपणा दिखाती है ॥ फिर लिखती है कि—जिस २  
सूत्रमेंसे, पूर्वपक्षी—चेइय, शब्दको ग्रहण करके, मूर्त्ति पूजाका पक्ष—  
ग्रहण करते है, उस २ का मैंने, सूत्रके संबंधसे—अर्थ, लिख दिखा-  
या ॥ पाठक वर्ग ! यह हमारी किई हुई समीक्षासे—विचार किजीये  
कि, सूत्रसे संबंधवाला, दूढ़नीका किया हुआ—अर्थ है कि—सर्व  
महा पुरुषोंसे निरपेक्ष होके, केवल अपनीही पंडिताईको—प्रगट  
किई है ? ॥ फिर लिखती है कि—अपनी जूठी कुतकोंका—लगाना.  
और निंदा गालियोंका—देना, नहीं किया है ॥ देखिये इसमेंभी दूं-  
ढनीका भलाइपणा कितना है कि—वीतराग देवके तुल्य—वीतराग

देवकी मूर्त्तिकी अवज्ञा करके-कभी तो लीखती है-जड पूजक. और कभी तो-पाषाणोपासक, और सर्व महापुरुषोंका लेख तो-गपौडे, ठहराकर, कहती है कि-मैंने निंदा गालियां देना, नहीं स्वीकारा है, सो क्या इतने कहने मात्रसे-इनका भलेपणा हो जायगा ? ॥ फिर लिखती है कि-जूठ बोलनेवाले, और गालियां देनेवालेको, नीच बुद्धिवाला समजती हूं ॥ अब विचार करो कि-सर्व महा पुरुषोंका वचनको-गपौडे गपौडे, कहकर-पुकारा यह तो सब दूढनीने सत्यही कहा होगा ! और सिद्धांतसे सर्वथा प्रकारसे विपरीतपणे-कुछका कुछ लिख मारा, सो भी इस दूढनीकासत्यपणा ? और कलि कालमें, शासनके आधार भूत-पहान् २ आचार्योंको-हिंसा धर्मी लिखे, सोभी इस दूढनीकाअमृत वचन ? और गणधर महा पुरुषोंनेभी-सूत्रोंमें ठाम ठाम-सैंकड़ो पृष्ठोंपर, एसा लिखा है कि-जिससे दूढनीका आत्मीय स्वार्थभी सिद्ध नहीं होता है, सोभी दूढनीका-परम सत्य वचन ! इनका साध्वीपणा तो देखो ? । हमकोतो यह मालुम होता है कि-दूढनीने, जो बात नहीं करनेकी-लिखी है, सोही बात-करकेही दिखलाई है क्योंकि-नतो वीतराग देवकी, परम मिथ मूर्त्तिकी-अवज्ञा करनेसें हटती है । नतो गणधरादिक, महा पुरुषोंकी-अवज्ञा करनेसें-हटती है ? मात्र कोइ एक प्रकारका उन्मत्तपणा हो जानेसें-बकवादही करती चली जाती है । सोतो-हमारा लेखसें, वाचकवर्ग आपही-विचार कर लेवेंगे. हम बारबार-क्या लिखके दिखावेंगे ? ॥

॥ इति सावद्याचार्य-और ग्रंथोंका विचार समाप्तः ॥

॥ अब दूढनी-जिन मूर्त्तिके निषेधमें, सूत्र पाठोको-दिखाती है ॥

दूढनी—पृष्ठ. १४२ से-लिखती है कि-सूत्रोंमें तो, धर्म प्रवृत्तिमें-मूर्त्तिपूजाका, जिकरही-नहीं। परंतु तुम्हारे माने हुये-ग्रंथों-मेंही, निषेध है, परंतु तुम्हारे बड़े सावद्याचार्योंने-तुमको मूर्त्ति पूजाके पक्षका, दृढ रूपी-नशापिला रखा है। फिर. ओ. १० से, भद्रबाहु स्वामीकृत-सोला स्वप्नके अधिकारसे-पंचम स्वप्नके फलमें-प्रथम पाठ लिखा है, इति प्रथमः ॥ फिर. पृष्ठ. १४४ ओ. ११ से-महानिशीथ अध्ययन (३) तीसराका पाठ, इति द्वितीया॥ फिर, पृष्ठ. १४७ विवाह चूलिया सूत्र, ९ वां पाहुडा, ८ वां उदेशाका पाठ, इति तृतीयः ॥ फिर. पृष्ठ. १५० में-जिनदत्तसूरिकृत, संदेह दोलावली प्रकरणकी गाथा षष्ठी, सप्तमीका, पाठ. इतिचतुर्थः ॥ पृष्ठ १५१ में, दूढनीका २४ अधिकारकी समाप्ति हुई. ॥

समीक्षा—दूढनी लिखती है कि-सूत्रोंमें तो, धर्म प्रवृत्तिमें-मूर्त्ति पूजाका जिकरही नहीं ॥ सोतो यहां तक किइ हुई हमारी समीक्षासेही विचारलेना। और विशेष यह है कि-जो अब बुद्धिमान् गिने जाते हे, सो अंग्रेजों तो, जगे जगेपर यही लिखते हैं कि-अपना ईश्वरोंकी-मूर्त्तिपूजाका मान, जो-जैनोने, और बौद्धोंने दियाहै, वैसा किसी भी मत वालोंने-नहीं दिया है। और आर्य समाजका संस्थापक-जो दयानंदजी है, सोभी-अपना प्रथम सत्यार्थ प्रकाशमेंभी, लिख चुकेथे कि यह-मूर्त्तिपूजा, जैनोसेही चली है, और उनके मानने मुजब-उनकी मूर्त्ति, सिद्धभी हो सकती है. परंतु दूसरोंकी-सिद्ध, नहीं होती है ॥ वैसा हमने गुरुमुखसेही-सुनाथा। और यह दूढनी है सो-केवल अपना परम पूज्य, वीतराग देवसेही द्वेष भाव धारण करके-? श्री महानिशीथ, २ उवाई,



३ उपाशकदशा, ४ ज्ञाता, ५ भगवती, आदि सूत्रोंके-जिनमांदिर, मूर्ति-का, संक्षिप्तरूप मुख्य पाठार्थका, तदन विपरीतार्थ-लिखताहुई, किंचित् मात्रभी विचार नहीं करतीहै कि-मैं अपना थोथा पोथामें, अपनेही हाथसे-पृष्ठ. ६१ में-लिखती हूं कि-हमनेभी बड़े बड़े पंडित, जो विशेषकर-भक्ति अंगको, मुख्य रखते हैं, उन्हींसे-सुना है कि-यावत् काल-ज्ञान नहीं, तावत्काल-मूर्तिपूजन है । और कइ जगह लिखाभी देखनेमें आया है ॥ तो अब-वीतराग देवकी, मूर्तिपूजनका विपरीतार्थ-में कैसे करती हूं ? क्या हमारे दूढक भाईयोंके-हृदयमेंसे, वीतराग देवकी-भक्ति, नष्ट होगइ है ? जो ऐसे विपरीतार्थ करती है ? ॥ फिर पृष्ठ. ७३ में-पूर्णभद्रादिक यक्षोंकी, पथथरसें बनी हुई-मूर्तिपूजाको, सिद्ध करके-अपने, भोंदू दूढकों, को-धन, दौलत, पुत्र, राज्य ऋद्धि सिद्धिको-प्राप्त, करवा देती है । तो पिछे जैनके मूल सिद्धांतोंके-जिनपडिमा, अरिहंत चेइयाई, बहवे अरिहंत चेइय, आदि पाठोंसे-तीर्थकरोंके मांदिर, मूर्तिका, शुद्ध अर्थ करके, तीर्थकरोंके-यक्ष यक्षणीकेही पाससे-धन, दौलत, पुत्रादिक, की इच्छा-वाले दूढकोंको-वीतरागकी मूर्तिकी भक्ति करवायके, क्यों नहीं दिलाई देती है ? क्या दूढनीको-तीर्थकरोंकी मूर्तिसें, कोई वैरभाव हुआ है ? ॥

और वीतराग देवके, परमभक्त श्रावकोंकी, नित्य-देवसेवा करनेका पाठ जो-“कयबालि कम्म” केसंकेतसें, जैन सिद्धांतोंमें जगेंजगें आता है, उसमें अनेक प्रकारकी कुतकों करके, छेवटमें-भूत, यक्ष, पितर, दादेयांका-अर्थ, करती है, और ते महाश्रावकोंकी पाससें भी, वीतराग देवकी मूर्ति पूजाकी भक्तिको,

छुडवायके, भूतादि पूजनेका कलंक भी चढाती है, और उन श्रावकोंके पर-मिथ्यात्वपणेका, आरोप रखती है, तो न जाने क्या इस दूढनीके-अंगमें, कोई महामिथ्यात्व भूतका—प्रवेश हुवा है ? अथवा भूत, यक्ष, पितरादिकोंमेंसे—किसीने, प्रवेश किया है ? कारण यह है कि—जैनके मूल सूत्रोंमें—जिनमूर्ति पूजनका पाठ, संक्षेपसे—किसी जगे—जिन पडिमा—किसी जगे—अरिहंत चेइयाणि ॥ के नामसे आता है उनका अर्थ, तदन विपरीत करके कोई जगे तो—ज्ञानका, ढरको बतलाती है, और कोई जगे परित्राजकका अर्थ करके दीखलाती है ॥ और कोई जगे पर—कामदेवकी मूर्तिकी—सिद्धि करके, दिखलाती है । और छेवटमें—भगवानकी हैयातीके वस्तुके, भगवानके परम श्रावकोंकी पाससे, वीतरागदेवकी—मूर्तिपूजारूप नित्य सेवा, छुडवायके, भूतादिक देवोंकीही, नित्य पूजा करवाती है, इससे सिद्ध होता है कि—दूढनी है सो जरूरही किसी भूतादिकके वशमें हुई है ! इसी लियेही कुछ विचार नहीं कर सकी है ॥ फिर भी कहती है कि—मूर्ति पूजाका—जिकर ही सूत्रोंमें, नहीं सो अब इनको—कौनसे दरजेपर, गिनंगे कि—जिनको अपना घरकीभी खबर नहीं है ॥ फिर लिखती है कि—तुम्हारे माने हुये ग्रंथोंमेंही निषेध है, परंतु तुम्हारे बड़े-सावधाचार्योंने, तुम्हे मूर्ति पूजाका—नशा पिला रखा है ॥ इसमें कहनेका इतनाही है कि—तुम दूढको, जब सनातनपणेका—दावा, करनेको जाते हो तब तुम्हारे बड़े दूढकों कौनसी—कोटडीमें, छूपके बैठे थे, जो हमारे—बड़ेको निषेध करनेके लिये, एकभी खडा न रहा । और जो आज थोडे दिनसे, जन्मा हुवा—जेठ मल्ल दूढककी पिलाइ हुई नशामें चकचुर बनके, मनमें आवे सोही बकवाद कर उठते हो ? ॥ और जो—व्यवहार चूलिका सूत्र संबंधी

भद्रबाहु स्वामीकृत, सोला स्वप्नमेंसे-पंचम स्वप्नके पाठका अर्थ, लिखा है सो भी, उनका परमार्थ समझे बिना कुछका कुछही लिखा है, क्योंकि-चैत्य द्रव्यका आहारक, भेषधारीको तो-हम भी नालायकही गिनते हैं, । इसमें तुम-मूर्ति पूजनका-निषेध, क्या दिखाते हो, ? जिसको जितना अधिकार शास्त्रकारने-दिखाया होगा, सोही करना उचित होता है ॥ अब इसमें-तुम्हाराही लिखा हुवा-सूत्र पाठ, और उनका-अर्थ, लिखके, और इनकेपर समीक्षाभी करके, तुम्हारी-अज्ञानता दूर करते हैं, सो तुमको जो वीतराग देवके वचनका, विपरीत श्रद्धानसे-संसारका भय हो तो, विचार करके-शुद्ध श्रद्धानपर आजावेंगे, नहीं तो तुम्हारा किया हुवा कर्त्तव्यका फल, तुमही पावोगे, और हमको तो, सदाही-भगवंत भक्तिसे, परम कल्याणकी प्राप्तिही होनेवाली है.

॥ इति मूर्ति निषेधमें किंचित् विचार ॥

अब भद्रबाहु स्वामीकृत सोला स्वप्नमेंसे-पंचम स्वप्नका पाठ, और अर्थ, पृष्ठ. १४२ से,-दूढनीकाही-प्रथम लिख दिखाते हैं, ॥

यथा-पंचमे दुवालस्स फणी संजुत्तो, कण्ह अहि, दिट्ठो, तस्स फलं, तेणं दुवालस्स वास परिमाणे-दुकालो, भविस्सइ, तत्थकालीय सुयपमुहा सुयां, बोळिज्जसंति, चेइयं ठयावेइ, दब्बा हारिणो मूणी भविस्सइ, लोभेन मालारोहण, देवल, उवहाण, उज्जमण, जिनविंभ पइठावण, विहिउमाएहिं, बहवे तव पभावा पयाइस्संति, अविहि पंधे पडिस्संति

दूढनीकाही- अर्थ-पांचवे स्वप्नमें-वाराफणी, काला सर्प देखा, तिसका फल-वारा वर्षी दुःकाल पडेगा । जिसमें कालिक सूत्र आदिमेंसे, और भी बहुतसे सूत्र विछेद जायेंगे, तिसके पिछे 'चैत्य

१ 'स्थापना' करवाने लग जायेंगे, द्रव्य ग्रहणहार--मुनि हो जायेंगे, लोभ करके मूर्तिके गलेमें--माला गेरकर, फिर उसका ( मोल ) करावेंगे, और- तप, उज्जमण, कराके--धन इकट्ठा करेंगे, जिन विंश ( भगवानकी मूर्तिकी ) प्रतिष्ठा करावेंगे, अर्थात् मूर्तिके कानमें--मंत्र सुनाके, उसे पूजने योग्य करेंगे, ( परंतु मंत्र सुनाने वालोंको, पूजे तो ठीक है क्योंकि-मूर्तिको मंत्र सुनानेवाला--मूर्तिका गुरु हुआ, और चैतन्य है, इत्यादि ॥ और होम, जाप, संसार हेतु पूजाके--फल आदि बतावेंगे, उलटे पंथमें पड़ेंगे. ॥ इत्यादि कहकर, मण्पदीपिकामें, विस्तार लेखका प्रमाण दिया है.

॥ इति दूढनीका लिखाहुवा सूत्र और पाठार्थ ॥

समीक्षा—यद्यपि इस लेखपै--गण्पदीपिका समीरमें--उत्तर, हो गया है, तो भी--पाठक वर्गकी सुगमता के लिये, जो कुछ फरक है सो-लिख दिखाता हूं । देखिये कि--सिद्धांतमें जहां जहां " चैत्य " शब्द आता रहा उहां उहां तो, मंदिरका अर्थ--छोडनेके लिये दूढनीने उलट पलट करके, बेसंबंध-वक्तवाद करना, सरु किया । और इहापै शीघ्रही " चैत्य " शब्दसे, मंदिरका अर्थ इनको मिल गया, हमतो योग्यही--समजते है, परंतु दूढनीजीका धिठाईपणा कितना है । खेर अब इस पाठमें, विचार यह है कि-मंदिर, मूर्तिको-बनवानेका, और पूजनेका--अधिकारी--केवल श्रावक वर्ग है । और साधु है सो--केवल भाव पूजाका अधिकारी है । परंतु यह निकृष्ट कालके प्रभावसे, अपनी साधुवृत्तिको -छोडके,

१ दूढनीको—चैत्य शब्दका अर्थ, ११२ से भी अधिक, जूठा मिल गया । मात्र मंदिर मूर्तिका अर्थ नहीं मिला । परंतु यहां पर, चैत्य स्थापना कहनेसे " मंदिर स्थापना " दूढनीको—हम दिखा देते है, सो ख्यालकरके देख लें ॥

कितनेक भेषधारी-पतित होके, यह नहीं करनेका भी काम-कर-  
नेको लग जायगे, सो कालकाही-प्रभाव दिखाया है । जब निः  
पक्षपात से-विचार करोंगे तबतो-ढूंढकोमें क्या, और मंदिर मा-  
गियोंमें क्या-यह दोनोंही पक्षमें, पतित भेषधारी, जितने चाहते  
होंगे-इतनेही मिल-सकेंगे ? मात्र फरक इतना है कि-ढूंढको को  
दुकानदारी, अथवा दूसरी दूसरी प्रकारकी-उगाईयां करनी पडती  
है । और मंदिर मार्गियोंमें, जो इस स्वप्नके पाठमें-कहा है सो,  
करना पडता है । परंतु जो सबके वास्ते कलंक देते हो सो तो तुम  
ढूंढको,केवल महा प्रायश्चित्तकाही-अधिकारी बनते हो ? ॥ अब पा-  
ठार्थसे भी कुछ तात्पर्य दिखाव ते हैं, देखो कि-यह पंचम स्वप्न,जो  
सर्पका हुवा है, इससे बारां वर्षी दुःकाल पडेगा, और कालिकादि  
सूत्रोंमेंसे विच्छेद होंगे, और-चैत्यकी स्थापना, करवाके-द्रव्य ग्रह-  
णहार, मुनि होंजायगे, और लोभ करके-मालारोहण, देवल, उ-  
पधान, उज्जमण, जिन बिंब प्रति स्थापन, विधिओ आदि करके,  
बहुतसे भेष धारीओ-तप प्रभावोंको प्रकाशेंगे, और ऐसे-आविधि  
पंथमें, पड जायगे ॥

॥ अब इसमें विचार यह है कि-जो भेषधारी, लोभके वश  
होके-मालारोपण, देवल, उपधानादि-विधिओमें पडेंगे, सो अ-  
विधि पंथमें पडे हुये-गिने जायगे कि, सभीही दोषित गिने जा-  
यगे ? जैसेकि-जो साधुपणासे भ्रष्ट होंगे, सोई भ्रष्ट गिने जायगे  
कि-सभी भ्रष्ट गिने जायंगे ? ॥ अब इस लेखसे ढूंढकोंकी-सिद्धि  
हुई के, ढूंढकमतका पोकल जाहिर हुवा । जरा अंखियां खो-  
लके देखो कि-जो मालारोपण, देवल, उपधान, उज्जमण, जिन  
बिंब ( मूर्ति ) (प्रतिमा स्थापना,) विगेरे-कार्योंका विधिसे करना

चला आता है, उसको-लोभके बस होके, करनेकी-मना, किई है परंतु-धर्मकी बुद्धिसे तो करना उचितही दिखाया है । और विधिसे तो करना-शास्त्रसे सम्मतही है । केवल तुम दूढकोही अपने आप जैन धर्मसे विपरीत होके विधिओं का भी विपरीतपणा करनेको चाहते हो परंतु यह सर्व प्रकारकी विधिमार्गका तो, तीन कालमेंभी विपरीतपणा होनेवाला नहीं है, और वर्तमान कालमें भी, जब तक वीर भगवान्का शासन रहेगा, तब तक यह विधिमार्ग भी रहेगा । विशेष इतनाही है कि-जो भेषधारी-पतित होगा, सोही-पतित, गिना जायगा । इसी वास्ते मूलपाठमें भी-( बहवे ) अर्थात् बहु-तसे-पतित होंगे, वैसा कहा है, परंतु सभी ऐसा आविधि पंथमें कभी न पढ़ेंगे । अगर तुम दूढको-अपने आप मनमें मान लेते होंगे कि-सब विधिवाले हमही रहें है, परंतु तुम तो मालारोषणही-नही समजतेहो, इसी वास्तेही मूर्त्तिके गलेमें, गेरना लिखते हो ? ॥ और न तुम्हारेमें-देवल है, न उज्जमण है, न जिन विंवकी स्थापना है, तो फिर तुम, विधिवाले कैसे बन सकोगे ? । केवल जैनाभास स्वरूपके बने हुये हो ? क्योंकि-जहां यह विधि करने वाले है, उ-हांही-अविधिवाले होते है, परंतु तुम दूढको तो-कोईभी, रीतिसें विधिवाले नहीं बनते हो, इसी वास्ते कहते है कि-तुम जैनाभास स्वरूपके बने हो ! ॥ और जो यह कुतर्क किई है कि-मंत्रका सुना-नेवाला-मूर्त्तिका गुरु, हुआ, सोभी अज्ञपणेही कीई है ! क्योंकि-तुम दूढकोको, व्याकरण पढानेवाला ब्राह्मणभी होता है सो और सूत्रादिक पढानेवाला श्रावकभी कभी होता है सो, तुम्हारा गुरु बन जायगा ! जबतो तुमको, और तुम्हारे सेवकोंकोभी, इच्छामि स्वमा-समणकी साथ, बंदना उनकोंही करनी पड़ेगी ? तुमको किस वा-

स्ते करते है ? क्योंकि तुम्हारमें, ज्ञानकी योग्यता करानेवाला वही हुवा है,। ऐसी कुतर्को करनेसे कुछ तुमेरी सिद्धि नहीं हो सकती है. जो जिसका अधिकार होगा, सोही व्यवहार योग्य रहेगा. इत्थलमधिकेन.

इति प्रथम पंचमस्वप्न सूत्रपाठार्थका विचार ॥

अथ द्वितीय, महा निशीथ तृतीय अध्ययन संबंधी, पृष्ठ. १४४ सैं, ढूंढनीका लिखा हुवा सूत्र, और अर्थ-यथा सूत्र-  
तहाकिल अम्हे, अरिहंताणं, भगवंताणं, गंध, मल्ल, पदीव, समद्यणोव लेवेण, विचित्त वत्थ बलि धुपाइ एहिं, पुजासक्कारेहिं, अणुदियहं, पद्यवणं पकुवण, तित्थुप्पणं करेमि, ! तंच णोणं तहत्ति, गोयमा सम-  
णु जाणेज्जा, । से भयवं केण अठेणं एवं बुच्चइ, ज-  
हाणं तंच णोणं तहत्ति समणु जाणेज्जा, । गोयमा तयत्याणु सारेणं, असंयम बाहुल्लेणंच, मूल कम्मासवं, मूलकम्मा सवाउय अज्जवसायं पडुच बहुल्ल सुहा सुह कम्म पयडीबंधो, सब्ब सावज्ज विरियाणंच वय-  
भंगो, वयभंगेणच आणाइकम्मं, आणाइकम्मेणंतु उ-  
मग्ग गामित्तं, उमग्ग गामित्तेणंच सुमग्ग पलायणं, उ-

१ पज्जु वासणं पकुव्वमाणा ॥ ऐसा पाठ होना चाहिये. ॥

२ करेमो ऐसा पाठ होना चाहिये. ॥

मग्ग पवत्तणं । सुमग्ग विप्पल्लोयणेणं च वद्धइणं म-  
हति आसायणा, तेण अणंत संसारय हिंडणं । ए एणं  
अठेणं गोयमा एवं वुच्चइ, तंच एणं तहत्ति समणु  
जाणेज्जा ॥

दूढ़नीकाही अर्थ लिखते हैं-तिम निश्चय कोइ कहे कि-मैं  
१ अरिहंत भगवंतकी मूर्त्तिका, गंध, माला, विलेपन, धूप, दीप, आ-  
दिक विचित्र वस्तु, और फल, फूल, आदिसे, पूजा, सत्कार, आ-  
दिकरके-प्रभावना करूं तीर्थकी उन्नति करता हूं, ऐसा कहनेको-  
हे गौतम ! सच नहीं जानना, भला नहीं जानना ॥ हे भगवंत  
किस लिये आप ऐसा फरमाते हो कि-उक्त कथनको, भला नहीं  
जानना, हे गौतम ! उस उक्त अर्थके अनुसार, २ असंयमकी वृद्धि  
होय, मलीन कर्मकी वृद्धि होय, शुभा ३ शुभ कर्म प्रकृतियोंका  
बंध होय, ४ सर्व सावद्यका त्याग रूप, जो व्रत है उसका भंग होय,

१ यहांपर खयाल करनेका है कि-महावीर भगवंतके विद्य-  
मानमें भी, गंध मालादिकसे-अरिहंत भगवंतकी 'मूर्त्तिपूजाकी' प्र-  
वृत्ति-हो रहनेपरही, गौतम स्वामीने-अपनी पूजाका (अर्थात् साधु  
पुरुषोंकी पूजाका) खुलासा कर लेनेके वास्ते, यह प्रश्न पुछा है ।  
परंतु श्रावक तो सदा 'जिन पूजन' करतेही चलेआते हैं ॥

२ साधुओंकोही असंयमकी वृद्धि होय ॥

३ जिनमूर्त्तिपूजामें शुभकर्मका बंध विशेष रहा हुवा है ।

४ सर्व सावद्यका त्यागी जो साधु है उनकाही व्रतका भंग-  
माना है परंतु श्रावकको निषेध नहीं ।



व्रतके भंग होनेसे तीर्थकरजीकी आज्ञा उलंघन होय, आज्ञा उलंघनसे, उलटे मार्गके जानेसे, सुमार्गसे विमुख होय, उलटे मार्गके जानेसे, सुमार्ग विमुख होनेसे, महा आसातना बढे, तिससे अनंत संसारी होय । इस अर्थ करके गौतम ऐसा कहताहूँ कि, तुम पूर्वोक्त कथनको सत्य नहीं जानना, भला नहीं जानना, इति । अब कहो पापाणोपासको—मूर्त्तिपूजाके निषेध करनेमें, इस पाठमें कुछ-कसर-भी छोड़ी है जिसके-उपदेशकोकोभी, अनंत संसारी कह दिया है॥

समीक्षा—पाठक वर्ग ! हम यहांतक जितना लिखान करके आये, उसमें अनेक प्रकारकी अशुद्धियांभी देखते आये, परंतु केवल तात्पर्य तरफ लक्ष देके, कुयुक्तियांकाही विचार किया है, परंतु इस जगोपर सूत्रका पाठ, और अर्थ, प्रथमसेही बेढंगा देखके, विचार करना पडता है सोभी तात्पर्यकेही लिये करके दिखाताहूँ, परंतु दोष दृष्टिसे विचार करनेको फुरसद नहीं लेताहूँ.

तहाकिल्ल अम्हे, इहां-अम्हे, जो पद है सो अस्मद्का बहु वचन है । तथाच हैमसूत्रं-[ अम्ह<sup>१</sup> अम्हे<sup>२</sup> अम्हो<sup>३</sup> मो<sup>४</sup> वयं<sup>५</sup> मे<sup>६</sup> जसा. ] वृत्तिः--अस्मदो जसा सह-एते षडादेशा भवन्ति ॥ प्राकृत व्याकरणका तृतीय पादे, सूत्र १०६ नंबरका है ॥ अब इस कर्त्ताकी क्रियाभी बहु वचनमेंही होनी चाहिये सो-करेमि, एक वचन रूपसे है, क्योंकि-अस्मद् प्रयोगका बहु वचनमें-करेमो, क्रिया होवे-तवही वाक्यार्थ हो सकता है । इसवास्ते-तित्थुपणंकरेमो, ऐसा पाठकी जरूरी है, क्योंकि-अम्हे, यह कर्त्ता बहु वचन रूप होनेसे, इनकी क्रियाभी बहु वचन रूप—करेमो,<sup>१</sup> ही होनी चाहिये । तो अब सूत्रार्थसे जो संबंध

१ तथाचसूत्रं--तृतीयस्य मो, मु, माः ॥ त्यादीनां परस्मैपदात्मने पदानां, तृतीयस्य त्रयस्य संबंधिनो, बहुषु वर्त्तमानस्य वचनस्य

लगता है, सो हम लिखके दिखावते हैं, ॥ यहां गौतम स्वामी—भगवंतको प्रश्न करते हैं कि—हे भगवन् तथा, अर्थात्—जैसे गृहस्थ—श्रावक वर्ग, जिनपूजा करते हैं तैसे, निश्चय करके हम—साधु है सो, अरिहंत भगवंतोंकी मूर्तिको—गंध,माला, प्रदीप, विलेपन, विचित्र वस्त्र, बलि, धूपादिकसे—पूजा, सत्कार, करके दिन दिन प्रतं पर्युपासना करते हुए—तीर्थ प्रभावना करें! । भगवंत जवाब देते हैं कि—हे गौतम ! यह बात साधुको योग्य नहीं समजनी । फिर गौतम स्वामी पुछते हैं कि—हे भगवंत ! किस वास्ते यह बात योग्य नहीं ? । फिर भगवंत कहते हैं कि—हे गौतम ! तदर्धानुसारमें असंयमकी बहुलता और उनकी बहुलता करके मूल कर्मका—आश्रव होता है, ? और मूल कर्मका आश्रवसे—और अध्यवसायके योग मिलनेसे, बहुत—शुभाऽशुभ कर्म प्रकृतिका बंध होता है । तीनमें सर्व सावद्य-व्रतका भंग होय, अर्थात् साधुपणेके-व्रतका भंग होय । और साधुपणेके व्रतका भंग होनेसे—आज्ञाका अति क्रमण होय । और आज्ञाका अतिक्रमणसे उन्मार्गपणा हुवा । और सर्व सावद्यका त्यागरूप उन्मार्गपणेसे, सुमार्गका नाश होय । और ते साधु धर्मका उन्मार्ग प्रवर्त्तनसे, और ते साधु रूप—सुमार्गका प्रलोपन करनेसे, महा आसातना बढें, तिससे अनंत संसार फिरना पडे ॥ इस वास्ते हे गौतम ? साधुओंको यह काम अच्छा नहीं समजना ॥

इसमें विचार यह है कि—जहां—अम्हे का अर्थ, हम साधु करना था, उहां दूढनीने—कोइ कहे, यह विपरीत अर्थ किया है । परंतु ऐसा अर्थकरनेका है कि—है भगवन्—हम साधुओं, गंधादिक-स्थाने, मो, सु, म, इत्येते आदेशा भवति ॥ इस वास्ते “ करेमि कभी न बनेगा.

से—अरिहंत भगवंतकी पर्युपासना करके ? तीर्थकी प्रभावना करें ! (इस सूत्रमें—प्रतिमाका बोध अरिहंत भगवंतका शब्दसेही कराया है परंतु पथथर पहाड कहकरके नहीं कराया है—देखो ख्याल करके) तब भगवंतने साधुओंकोही—यह कार्य करणेका निषेध किया है। क्योंकि—गंध, मालादिकसे, मूर्तिकी उपासना करनेसे, साधुओंको—असंयमकी वृद्धि होय। और जो सर्व प्रकारसे—प्राणातिपात विरमण व्रतसे मूल कर्मका—त्याग किया है, उस मूल कर्मका—आश्रवकीभी प्राप्ति होय। और यह मूल कर्मका आश्रवसे—और अध्यवसायके-योगसे (अर्थात् परिणामकी धारासे) बहुत प्रकारकी—शुभ प्रकृतियोंका, और अशुभ प्रकृतियोंकाभी बंध होय, इस वास्ते, सर्व सावद्यका त्यागीयोंको—व्रतका भंग होय। क्यों कि—साधुओने, शुभ, और अशुभ, दोनों प्रकारकी, कर्म प्रकृतियोंका नाश करनेको, व्रत लिया है, उस व्रतका भंग होता है। जैसे कि—अनेक प्रकारका दान धर्म—गृहस्थ करते है तैसे साधु—नही करते है, इसी प्रकारसे साधुओंको पूजाका भी निषेध है ॥ और यह—सर्व प्रकारका त्याग रूप व्रतका भंग करनेसे—भगवंतकी आज्ञाकाभी, उलंघन होता है। और भगवंतकी आज्ञाका उलंघनसे—उलटे मार्गमें जानेका होता है। क्यों कि—जो सर्व सावद्यका त्याग करके—साधु व्रत, अंगाकार कियाथा, उसको छोडके—फिर—देश वृत्तिका, अधिकारको पकडना, यही—उलट मार्ग होता है। और यह—उलट मार्ग चलानेसे, जो साधु व्रत रूप—सुमार्ग है, उसका नाश होता है, और उलटेही मार्गकी प्रवृत्ति हो जाय। और सुमार्गका अर्थात् साधुमार्गका सर्वथा प्रकारसे—नाश होय, और यह साधु व्रत रूप—सुमार्गका नाश करनेसे महा आशातना प्राप्त होय ! ऐसा उलट मार्ग चलानेसे—साधुओंको अनंत संसार—भ्रमण करना पड़े

इस वास्ते यह गंधमालादिसें, मूर्त्तिकी पूजा करनी साधुओंको उचित नहीं समझनी.

पाठक वर्ग ! देखिये—इस सूत्र पाठसे—श्रावक वर्गकी पूजाकी सिद्धि हुई के निषेध हुआ ? जो कभी श्रावक वर्गकी पूजाका--निषेध करना होता तो, सर्व सावयका व्रतवालोकोही क्यों ग्रहण करते, ? और शुभाशुभ कर्म प्रकृतिका--बंध है सो, साधुओंकोही इच्छित नहीं है, क्योंकि--शुभ और अशुभ, यह दोनों प्रकारकी-कर्म प्रकृतियांका नाश करनेकोही साधु उद्यत हुआ है, इस वास्ते--गंध, मालादिकसे, पूजाका अधिकारी--साधु नहीं बन सकता है ॥ और गृहस्थ है सो--छकाय जीवोंका आरंभमेंही सदा रहा हुआ है, इसकारणसे--सदा अशुभ बंधनकोही बांध रहा है, उन श्रावकोंको--जिन मूर्त्ति पूजनसे, बहुत प्रकारकी--शुभ कर्मकी प्राप्ति, करने काही मार्ग योग्य है। क्यों कि--इस जिन पूजासें शुभ कर्मकाही बंध अधिक होता है, इस वास्तेही सूत्रमें--प्रथम बहुत शुभ पदको रखके, पिछेसे--अशुभ पदको ग्रहण किया है। और जो गृहस्थाश्रममें रह करके--जिन मूर्त्ति पूजनका त्याग करता है, सो तो सर्वथा प्रकारसे मलीन रूप हुआ, जो कुछ वीतराग देवकी भक्ति करनेसे--शुभ कर्मकी प्राप्ति होनेवाली थी, उसीकाही त्याग करता है ॥ और साधुओंको--पुण्यादिक पूजन करनेसे, जितना कर्मका बंध, अर्थात् संसारका भ्रमण रूप होता है, उतनीही श्रावक वर्गको, मूर्त्ति पूजाकी--अवज्ञा करनेसेही कर्म बंधकी अधिकता होगी, । क्योंकि श्रावकका-धर्म, और साधुका धर्म, यह दोनों--भिन्न भिन्न प्रकारके हैं । जैसे कि--धर्मके स्थानक बंधाने, समरावने, मृतक साधुको--गत करना, साधु वृत्ति ग्रहण करनेवालेका--महोत्सव करना, साधुमीक भाईयांका--स्नान पांनसे आदर करना इत्यादि अनेक प्रकारके--गृ-

हस्त संबंधी धर्मके कार्यमें-साधु अधिकारी नहीं है, और वह साधु अनेक प्रकारके आरंभ समारंभवाले कार्यको करें तो-मार्ग भ्रष्टभी गिने जायगा । परंतु श्रावक है सो तो-शक्तिमान हुवा ते कार्यको नहीं करनेसे ही निन्धाकापात्र गिना जाता है ॥ इस वास्ते, जो जिसका अधिकारी होगा-सोई व्यवहार योग्य माना जायगा, और लाभकी प्राप्तिभी-उसीसे ही होगी, परंतु विपरीत विचारसे तो कभीभी लाभकी प्राप्ति हो सकती नहीं है । शरीरकी शोभादायक गहना है सोभी, योग्य स्थानपै पहना हुवाही शोभादायक होगा, और अयोग्य स्थानपै पहन लेंगे सो तो, केवल सर्व व्यवहारसे अज्ञ, हांसीकाही पात्र बनेगा, तैसें, तुम दूढको जिन मूर्त्तिको त्यागके इस भवमें, और परभवमेंभी हांसीके पात्र मत बनो ॥ और यह मूर्त्तिपूजन-निषेधका पाठ, क्या इस दूढनीकोही हाथ लग गया है, ? क्या और किसी आचार्यने पढा नहीं होगा ? हां बेशक, पाठ तो पढाही होगा परंतु तुमरे दूढकोकी तरां विपरीत अर्थ नहीं समजे होंगे ? इस वास्ते इस पाठको जूठा चर्ची अपना और अपने आश्रितोंके धर्मका नाश करनेका उद्यम नहीं किया है ? तुमने इतना विशेष किया है ॥ और निर्युक्तिका अर्थमें, जो दूढनीने पृष्ठ. १३५ से-मन कल्पित अर्थ करनेका दिखाया है, सोभी अपना, और अपने आश्रितोंके धर्मका नाश करनेकाही दिखाया है । इसी कारणसेही बार्बास टोलेमें-अनेक प्रकारका तो प्रतिक्रमण, । और विचित्र प्रकारकी-क्रियाओ, । और विचित्र प्रकारकाही-उपदेश करनेकी पद्धतिआं, हो रही है । और कोई पुल्ले तब-उत्तरमें, परंपरा बताना । और सूत्रसे भीलती २ बात हम मानते है बैसा कहकर, कोईभी प्रमाण बताना नहीं । और यद्वा तद्वा कहकर-लोकोंको बहकाना । और मनः कल्पितही अर्थ-ठोकते चले जाना ।

और सब पंडितोंको कुछ नही समजके—अपने आप पंडित मानी बन जाना । ऐसैं विपरीत विचारवालोको तो साक्षात् तीर्थकरभी न समजा सकेगे । कहा है कि—ज्ञान लव दुर्विदग्धानां ब्रह्मापि तं-नरं न रंजयति—तैसैंही हमारे दूंदकोंके हाल हो रहे हैं ॥ और दूंदनीने—इस पाठमेंसैं, उपदेशकोंको—अनंत संसारी ठहराया सो तो सूत्रमें—एक अक्षरका गंध मात्रसैंभी नही है, तो पीछे दूंदनी कैसे लिखती है ? परंतु जिसनेजो मनमें आवे सोइ बकना. ऐसैंको कहनाही क्या ? ॥

॥ इति महा निशीथका—द्वितीय पाठः ॥

॥ अथ तृतीय विवाह चूलियाका, ९ वा पाहुडा, और ८ वां उद्देशाका, पाठ जो दूंदनी पृष्ठ. १४७ से—लिखती है, सोई हमभी लिखके दिखावते हैं—

॥ कइ विहाणं भंते, मनुस्स लोए—पडिमा, पण्णात्ता, गोयमा अणोग विहा पण्णात्ता । उसभा दिय वद्धमाण परियंते, अतीत, अणागए, चौवीसंगाणं ति-त्थयर पडिमा । रायपडिमा । जरक पडिमां । भूत पडिमा । जाव धूमकेउ पडिमा, ॥ जिन पडिमाणं भंते—बंदमाणे, अच्चमाणे । हंता गोयमा वंदमाणे, अच्चमाणे ॥ जइणं भंते जिण पडिमाणं—वंदमाणे, अच्चमाणे—सुय धम्मं, चरित्त धम्मं, लभेज्जा, गोयमा णोण्णठे समठे । से केण्ण-ठेणं भंते एवं वुच्चइ, जिन पडिमाणं—वंदमाणे अच्चमाणे—सुय धम्मं, चरित्त धम्मं, नोलभेज्जा । गोयमा पुढविकाय

हिंसइ, जाव तस्सकाय हिंसइ, आउकम्म वज्जा सत्त-  
कम्म पगडीउ सट्टिल बंधणाय निगड बंधणं करित्ता,  
जाव चाउरंत कंतार अणु परियट्टयंति, असाया वेयणि  
उजं कम्मं भुज्जो २ बंधइ, । से तेणठेणं गोयमा—जाव  
नोलभेज्जा ॥—

अब दूढनीकाही अर्थ—लिखते हैं—हे भगवन् मनुष्यलोकमें, कि-  
तने प्रकारकी “ पडिमा ” ( मूर्ति ) कही है । गौतम अनेक प्रका-  
रकी कहीं हैं ऋषभादि महावीर ( वर्द्धमान ) पर्यंत, २४ तीर्थक-  
रोंकी । अतीत, अणागत, चौबीस तीर्थकरोंकी पडिमा । राजा-  
ओकी पडिमा । यक्षोंकी पडिमा । भूतोंकी पडिमा । जाव धूमके-  
तुकी पडिमा ॥ हे भगवन् जिन पडिमाकी—बंदना करे, पूजा करे,  
हां गौतम—बंदे, पूजे ॥ हे भगवन् जिन पडिमाकी—बंदना, पूजा, क-  
रते हुए—श्रुत धर्म, चारित्र धर्मकी, प्राप्ति करें, गौतम नहीं, किस  
कारण ? हे भगवन् ऐसा फरमाते हो कि—जिन पडिमाकी बंदना  
पूजा करते हुये, श्रुतधर्म, चारित्रधर्मकी प्राप्ति नहीं करे । गौतम  
पृथ्वी काय आदिलः कायकी हिंसा होती है, तिस हिंसासे, आयु  
कर्मवर्जके, सात कर्मकी प्रकृतिके ढीले बंधनोंको, करडे बंधन करें,  
ता ते ४ गतिरूप संसारमें—परिभ्रमण करे, असाता वेदनी वार-  
वार बांधे, तिस अर्थ करके हे गौतम—जिन पडिमाके पूजते हुए  
धर्म नहीं पावे. इति ॥ इसमेंभी “ मूर्ति पूजा ” मिथ्यात्व, और  
आरंभका कारण होनेसे—अनंत संसारका हेतु कहा है. ॥

॥समीक्षा—पाठक वर्ग! यही दूढनी—वीतराग देवकी—वैरिणी बनी  
हुइ, अपनी थोथी पोथीमें—जो मनमें आया सोही लिखती चली  
आई देखो. पृष्ठ. ४८ में तो—लिखा कि—मूर्तिको—बंदना करना,

कदापि योग्यही नहीं ॥ फिर पृष्ठ. ६९ में—लिखती है कि—सम्यक्क दृष्टिभी पूजतेहै मिथ्या दृष्टि भी पूजते है॥फिर.पृष्ठ. ७१में—लिखती है कि—सूत्रोंमें मूर्तिका पूजन—सम्यक्क व्रतादिमें—कहीं नहीं चला॥फिर पृष्ठ. ७५ में—मंदिरका पूजन—सम्यक्क धर्मका लक्षण होता तो सुधर्मा स्वामी—अवश्यही लिखते ॥ फिर पृष्ठ ७६ में—देश, नगर, पुर, पाटनमें—कत्रिम प्रतिमाका अधिकारही नहीं ॥ फिर पृष्ठ ९६ में—तीर्थ-कर देवकी मूर्तिका—पाठही नहीं ॥ फिर पृष्ठ १२० में—जिन मूर्तिको—मस्तक जूकाना, मिथ्यात्व है ॥

फिर पृष्ठ १२८ में—मस्त हुई लिखती है कि—क्या मंदिर, मूर्ति पूजा जैन सूत्रोंमें—सिद्ध हो जायगी ॥ वैसें वैसें, जो मनमें आया सोई बकवादही करना सरु किया, परंतु एक लेशमात्रभी विचार करनेमें नहीं उतरी है । सो न जाने इनके आत्म प्रदेशमें मिथ्यात्व कैसें गाढपणे व्याप्त हुवा होगा ? जो सिद्धांतका—एक अक्षर मात्रकाभी, विचार नहीं कर सकती है ? ॥ खेर, जैनका सिद्धांत यह है कि—प्रथम—सम्यक्त्वकी प्राप्ति होये बाद, पिछे ज्ञानकी प्राप्ति, और पीछे चारित्रकी प्राप्ति, उनके बाद जीवोंको—मोक्षकी प्राप्ति होती है । यथाच सूत्रं.

सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः इति तत्त्वार्थ महा सूत्रं । इहां कहनेका प्रयोजन यह है कि—सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति करानेका—निमित्त भूत, भव्य जीवोंको—वीतराग देवकी मूर्तिभी है ? और अभयकुमारने अनार्थदेशमें मूर्तिको, भेजकरके—आर्द्रकुमारको—सम्यक्त्वकी प्राप्ति करानेका लेखोभी है, सोई हेतु शास्त्रकार—जगें जगें दिखातेभी आते है । और यह दूढ़नीभी—लिखती ही है । परंतु विशेषमें यह है कि—बेभानमेही बकवाद करती चली जाती है देखो पृष्ठ १३१ में—दूढ़नीभी लिखती है कि—मूर्ति



पूजकोने-मंदिर, मूर्त्तिका-पूजना, सम्यक्त्वकी पुष्टि मानी है, और जिनाज्ञा मानी है । सोई बात इस विवाह चूलियाके पाठसे-संपूर्णपणे सिद्ध है । परंतु हमारे ढुंढक भाईयांकी मतिही मूढ बन जाती हैं, सो विचार नहीं कर सकते है ॥

अब सूत्र, और अर्थके साथ, विचार करके दिखावते है ॥

प्रथम केवल मूर्त्तिके विषये ही-गौतम स्वामीजीने-भगवान्को पुछा कि-हे भगवन् 'मूर्त्ति' कितने प्रकारकी होती है । उनके जूवा-वमें-भगवान् अनेक प्रकारकी मूर्त्ति कहकर-प्रथम, ऋषभदेव आदि २४ तीर्थकरोकी-मूर्त्तियां वर्त्तमानकाल आश्रित होके दिखाई । और अतीत काल आश्रितभी २४ तीर्थकरोकी "मूर्त्तियां" दिखाई । और जो अनागत कालमें होनेवाले २४ तीर्थकरो है, उनकीभी "मूर्त्तियां" दिखाई । पिछे राजादिककी-मूर्त्तियांभी दिखाई ॥ अब विचार करो कि-तनोही कालमें, वीतरागदेवकी "मूर्त्तियां" की-स्थापना सिद्ध हुई या नहीं ! ॥ फिर, तीर्थकरोकीही प्रतिमा ओंके वंदना, पूजाका, प्रश्न किया कि-हे भगवन्, जिन पडिमाको-वंदन, और पूजन, करना । उसके उत्तरमेंभी भगवन्तने-यही जूबाव दिया कि-हंता गोयमा, वंदेभी, और पूजेभी । और ढुंढनीभी इसका अर्थ यही लिखती है, परंतु मिथ्यात्वके नशेमें विचार नहीं आया है ॥ इसमें विचार यह है कि-जब भगवन्तने, तीर्थकरोकी मूर्त्तियोंको वंदना, करनेकी, और पूजन, करनेकी आज्ञा फरमाई तो चतुर्विध संघके विना-वंदन, और पूजन, दूसरा कौन करेगा ? और पिछे श्रावकोंके विना, वीतराग देवकी मूर्त्तियांका "पूजन" भी दूसरा करनेवाला कौन होगा ? ॥ और द्रौपदीके पाठमें, "जिन मूर्त्तिको" उठानेके लिये जो मरहामरदी करके-कामदेवकी मूर्त्तिकी सिद्धि करनेको गई हैं सो, उन्मत्तपणा

किया है या नहीं ? क्यों कि-यह विवाह चूलियाके पाठसे तो “जिन” अर्थात् ऋषभादिक चोवीस तीर्थकरोंके नामसे “मूर्त्तिया” का कथन होनेसे, दूसरा-कामदेवका अर्थ, कभी नहीं सिद्ध हो सकता है और सूत्रका अर्थके अंतमें, ढूंढनी लिखती है कि जिन पडिमाके पूजते हुए-धर्म नहीं पावें, इति हसैंभी-मूर्त्तिपूजा, मिथ्यात्व, और आरंभका, कारण-होनेसे, अनंत संसारका हेतु कहा है ॥ अब इसमें-भी देखीये-ढूंढनीजीकी-पांडितानीपणा-जब-ऋषभादिक ७२ तीर्थ-करोंकी-प्रतिमा होनेका, प्रश्न-गौतम स्वामीने किया तब तीर्थकर महावीर भगवंतने, भी यही कहाके-हा गौतम होती है ॥ फिर तीर्थ-करोंकीही प्रतिमाको वंदन, पूजनका-दूसरा प्रश्न किया, तबभी भगवंतने-यही उत्तर दिया, कि-हा-गौतम-वंदें, और-पूजें । तोपिछे यह ढूंढनी-मिथ्यात्व, और अनंत संसारका हेतु-कैसे कहती है ? ॥ क्योंकि, धर्म है सोतीन प्रकारका है-? सम्यक्त्व धर्म, श्रुत धर्म, और ३ चारित्र धर्म ॥ इनतीनो धर्ममेसे, जो प्रथमका सम्यक्त्व धर्म हे उनकी प्राप्ति हेतुमें मूर्त्तिका, वंदन, और पूजन, विषये प्रश्न करनेका प्रगटपणे मालूम होता है, उसकी तो भगवंतने हाही कही है, और जो तीसरा प्रश्न-श्रुतधर्म चारित्र धर्मकी प्राप्तिके विषयका था उसकी ही प्राप्ति होनेकी जिन मूर्त्तिका वंदन पूजनसे ना कही है, कारण-श्रुत धर्म, और चारित्र धर्मका, अधिकारी-साधु पुरुष है, और साधुको मूर्त्ति पूजनका-सर्वथा, निषेध है । वही इस पाठसे दिखाया है तो पिछे ढूंढको मिथ्यात्वी है कि-मूर्त्तिको-वंदन, पूजन, करनेवाले मिथ्यात्वी है ? हे ढूंढनी तू अपनाही लेखका वि-

\* श्रुतधर्म-गुरुमुख सिद्धांतोंका पठन करनेसे, और चारित्र-धर्म-अनेक प्रकारकी इच्छा वृत्तिको, रुकनेसे ही-प्राप्त होता है, इस वास्ते इनका अधिकारी मुख्यत्वे-साधु पुरुष ही, होता है ॥

चार कर कि—जब वीतराग देवकी प्रतिमाका वंदन, पूजन, मिथ्या त्वका हेतु होता तो, भगवंत वंदन पूजन करनेकी हा—किस वास्ते कहते ? हां जो साधु पणासे भ्रष्ट हो के, यूं कहें कि—मैं तो इस मूर्त्तिका, वंदन, पूजनसे, मेरा—धुत धर्म, और चारित्र धर्म, की आराधना करता हूं, तब तो बेशक, सो साधु भवभवके आंटेमें पडसकता है । नहीं तो तुम दूढकों ही, वीतराग देवकी, आज्ञाके भंगसें, और सम्यक्क धर्मकी प्राप्तिका हेतुरूप वीतरागी मूर्त्तिकी अवज्ञा करनेसे अनंत संसारके भ्रमणमें पडे हुये है ॥ परंतु सम्यक्क धर्मकी प्राप्तिका कारण रूप अथवा आत्माकी निर्मलताका कारणरूप “जिनमूर्त्तिका” वंदन, और पूजन, अपनी अपनी योग्यता मुजब, करनेवाला—चारो प्रकारका संघ तो, संसार समुद्रके—किनारेपर ही, बैठा है । क्योंकि—जीवोंको प्रथम—सम्यक्क धर्मकी—प्राप्ति होनी, सोई संसार समुद्रका किनारा, शास्त्रकारोंने—वर्णन किया है । जिसको सम्यक्की प्राप्ति नहीं, उनको—एकभी धर्मकी प्राप्ति नहीं, और उनको मोक्षभी नहीं । क्योंकि—तीर्थकरोंका जीवोंकोभी—जहांसें सम्यक्ककी प्राप्ति हुई, उहांसेंही भवोंकीभी गिनती हुई है ॥ इस वास्ते दृढवाद छोडके, तुम तुमेराही लेखका विचारकरो और रस्तैपर आ जावों केवल कुतकों करके, और अपना जन्म जन्मका विगाडा करके, अपना आत्माको, अनंत दुःखकी जालमें, मत फसाओ. इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति तृतीय विवाह चूलिया सूत्रपाठकी समीक्षा ॥

॥ अब चतुर्थ जिनदत्त सूरिकृत

संदेह दोलावली प्रकरण ग्रंथकी—षष्ठी, सप्तमी, गाथाकाभी विचार करके दिखावते है ॥ प्रथम दूढनीजीकाही लिखा हुवा पाठ और अर्थ लिखते है पृष्ठ. १४९ में से—१५१ तक देखो—तद्यथा ।

गडडरिय पव्वाहओ, जे एइ नयरं दीसए बहुजणेहिं ॥  
जिणगिह कारवणाइ सुत्त विरुद्धो असुद्धोय, ॥ ६ ॥ अस्यार्थः  
भेडचालमें, पडेहुये लोग, नगरोंमें-देखनमें आते है कि, ( जिनगिह )  
मंदिरका बनवाना, आदि शब्दसे-फल, फूल, आदिक से पूजा  
करनी, यह सब सूत्रसे विरुद्ध है, अर्थात् जिनमलके नियमोंसे-बाहर  
है, और ज्ञानवानोंके मतमें-अशुद्ध है ॥ ६ ॥

सोहोई द्रव्यधम्मो, अपहाणो अनिव्वुई जणाइ सद्धो  
धम्मो बीओ, महिओ पडिसोय गामीहिं. ॥ ७ ॥

अर्थः-द्रव्यधर्म, अर्थात् पुर्वोक्त द्रव्य पूजा, सोप्रधान नहीं  
कस्मात् कारणात् किस लिये कि-मोक्षसे परांग मुख, अनुश्रोत्र  
गामी, संसारमें भ्रमाणे वाला है, आश्रवका कारणसे ॥ दूजा भा-  
वधर्म, अर्थात्-भावपूजा, सो शुद्ध मोटा धर्म है. कस्मात् कारणात्,  
प्रतिश्रोत्रगामी, अर्थात् संसारसे विमुख, संवर होनेते ॥ अब कहाजी,  
पहाड पूजको, जिनदत्त सूरिने-मूर्त्तिपूजाके, खंडनमें, कुच्छ बाकी  
छोडी है । इत्यादि.

समीक्षा-पाठक वर्ग ! इस दूंदनीजीको-जो कुच्छ दिखता है,  
सोई-उलटा दिखता है, नजाने इनके हृदयपरभी, क्या पाटा चढ गया  
होगा ! जो कुच्छभी दिखता ही नहीं है ॥ कथौकि-जो जिनदत्तसूरिजी  
महाराज, दादाजीके नामसे-सर्वजगों प्रसिद्ध है, और अनेक स्थलमें,  
दादाजीकी वाडी, दादाजीकी वाडी, इस प्रसिद्ध नामसे, स्थानभी  
बने हुये है, और जिनकी पादुकाको अभीतक अनेक भक्तजन  
पूज रहै है, और जिनोने मारवाड आदि अनेक देशोंमें फिरके  
और रजपुत आदि अनेक जातों को प्रतिबोध करके, लाखों मनु-

१ इस गायामें, अशुद्धपणा है, जैसी है वैसी लिख दिई है

ष्योकों, श्रावक धर्ममें, दाखल किये है । और अनेक जिन मंदिरों की, स्थापना करवाय के, प्रतिष्ठाओ भी करवाई है सो, तैसें प्रभाविक जिनदत्तसूरिजी महाराजकी दो गाथा, लिखके, यह दूढ़नीजी अपना दूढ़क धर्मको—स्थापित करनेको जाती है, सो यह कैसें बन सकेगा ! क्यों कि, जो पिछे के, तीन पाठोंमें विचार दिखाया, सोई विचार इस गाथामें दर्शाया है, तो अब इसमें दूढ़नीजीकी सिद्धि कहाँसे हो गई ? जो पहाड पूजकोंका संबोध न देके—उपहास करती हुई, अपनी तुच्छताको दिखाती है ? और कुछ भी अपनी मर्यादाको समालती नहीं है ? क्योंकि—सिद्धि तो जो होनेवाली है सोइ होगी, कुछ तुमेरा निंदनिक मार्गकी सिद्धि—नहीं होनेवाली है, किस वास्ते जूठा, तरफडाट करती है ? ॥

॥ अब जो गाथाका तात्पर्य है, सो हम लिख दिखावते हैं बहुत लोकोंकी साथ, भेड चालसें, जो चलनेवाले हैं—सो भी नगरमें दिखनेमें आते हैं । मंदिरका बनवाना आदि, सूत्र विरुद्ध और अशुद्ध है ॥ ६ ॥

॥ अब सप्तमी गाथाका अर्थ—जो मंदिरका बनवाना आदि है, सो—द्रव्यधर्म है, अप्रधान है, निश्चेत्ति जो—भोस, उसका देनेवाला नहीं है ॥ और—शुद्धरूप दूसराजो—भाव धर्म है सो, प्रति श्रोत्रगामि भिः साधुभिः । अर्थात् द्रव्य धर्मसें उलट जानेवाले, साधुओंने—सेवित किया है ॥ ७ ॥

॥ अब इसमें विशेष यह है कि—तीर्थकर भगवानकी पूजा, दो

१ इस गाथाके अर्थमें, दूढ़नी, प्रति श्रोत्रगामिहिं, कर्त्ता है, उनको, भाव धर्मरूप कर्मका, विशेषण करके, विपरीत अर्थ करती है.

( १७० ) संदेह दोलावलीमें-पहा निशीथ साक्षी.

प्रकारसे, महानिशीथ सूत्रमें-दिखाई है। तथाच सूत्रं-ते सिय तिलोग महियाण, धम्मं, तिष्ठयंकराणं जग गुरुणां, १ भावच्चण, २ दव्वच्चण, भयेण-दुहच्चणं, भणियं ! १ भावच्चण चारित्ताणुठाण, कठुग्ग घोर तव चरण ॥ २ दव्वच्चण, विरयाविरय शील पूया सकारदाणाइ । तो गोयमा एसथ्ये परमथ्ये । तंजहा, १ भावच्चण मुग्गविहारयाय । २ दव्वच्चण तु जिन पूया, । पढमा जईण । दोन्निवि गिहीण । पढमच्चिय पसथ्या ॥

भावार्थ-तीनलोकसे पूजित ऐसे धर्मतीर्थकर, जगत् गुरुका “ अर्चन ” दो प्रकारका कहा है ॥ एक-भावार्चन । दूसरा-द्रव्यार्चन ॥ १ भावार्चन यह है कि-चारित्रानुष्ठान, कष्ट, उग्र घोर तप चरण । और २ द्रव्यार्चन यह है कि-श्रावकपणा शील, पूजा, सत्कार, दानादिक, इस हेतुसे, हे गौतम यही अर्थ परमार्थ है कि सो ? भावार्चन-उग्र विहारियोंके तांड । अर्थात् कष्ट करनेवालोंके तांड करनेका है २ द्रव्यार्चन-जिन पूजा है । प्रथमा अर्थात् भावपूजा-गतिको । दोनोंभी गृहीकों । पहिली प्रशस्त है ॥

अब इस पाठसे, समझनेका यह है कि-जो द्रव्यार्चन-(अर्थात् द्रव्य पूजा ) जिन मंदिरका-वनवाना और फल फूलादिकसे जिन मूर्त्तिको पूजना, और दानादिक धर्मको सेवन करना । यह सर्व कर्त्तव्य, मुख्यतासे श्रावक धर्मको, अंगीकार करने वालेका है ॥ और चारित्रानुष्ठान, कष्ट घोर तपसा, विगरे कर्त्तव्य है सो-भावार्चन रूप मुख्यतासे साधुका कर्त्तव्य है ॥ और यह साधुका-

भावाचन, रूप कर्त्तव्यको छोडके, जो गृहस्थका—द्रव्याचन, रूप जिनमंदिर आदि करवानेको लगजाय, उसका व्रतको घातक हो ता है । इसवास्ते जिनमंदिरको बनाना—यह साधुको, अपशस्त है ॥ और इसी साधुकोही मूर्ति पूजा करनेका निषेध रूप, प्रथम, भद्रबाहु स्वामीजीका—पंचम स्वप्नकाभी पाठ है, देखोकि, चेड्यं ठ यावेइ दव्वहारिणो मुणीभविस्सइ ।लोभेन माला रोहण, आदि कहा है ॥ और दूसरा महा निशीथका पाठ है—सोभी, सर्व सावद्य त्यागी साधु है, उनकोही मंदिरादिकका कराना—अनुचितपणे दिखाया है ॥ और तिसरा विवाह चूलिया सूत्रका पाठमेंभी, श्रुतधर्म, चारित्रधर्म, का अधिकारी साधु है, उनकाही निषेधपणा किया है, परंतु सर्व श्रावकोके वास्ते जिनपूजाका निषेध पणा तो एकभी पाठमें नहीं है, ॥ अब यह हमारी किई हुई समीक्षासे, दूढनीजीकाही लिखा हुआ पाठका विचारकरोंकि, हमारे दूढकोको जैनमतके एक अक्षरकाभी यथार्थ ज्ञान है ! केवल आप जैन मतसे, और जैन के तत्त्वसे, सर्वथा प्रकारसे मूढ बने हुयें, औरभी भव्य जीवोको, भ्रष्ट करनेका दुध्यान में ही कालको व्यतीत करते है । परंतु जो धर्मका अभिलाषी जीव होगा, सोतो हमारी किई हुई समीक्षाको अमृत तुल्य मानके, अवश्य पान करेगा और जौ हठीले बने हुये है, उनकोतो असाध्य रोगके उपर जैसे कोईभी उपचार नहीं लगता है, तैसें यह हमारी किई हुई समीक्षाका, एकभी वचन गुणदायक न होगा । सो तो उनकी भवितव्यत काही मुख्य कारण रहेगा ।

अबीभी इस विषयमें हमको, कहनेकातो बहुत कुछ है, परंतु पाठक वर्गको वाचन करते कंटाला करनेको भयसे, केवल मुख्य वा-

( १७२ ) ढूँढनीजीकी-मूर्ति पूजाका, विचार.

बताकीही समझा करके, अधिक लिखना तहकुबही करते चले आयेहै. । जिससे पाठक वर्गको वांचतेभी कंटाला रहेगा नही. इतपले बलवितेन.

ढूँढनी—पृष्ठ. १५१ से-मूर्ति पूजा कहांसे चली ऐसा प्रश्न उठाके उनकी हद, दिखानेको प्रवृत्तमान हुई पृष्ठ. १५२ ओ, ४ से लिखती है कि-जो बारावर्षी कालसे-पीछे कहते हैं, सो तो प्रमाणोंसों-ठीक मालूम होता है । हम अभी ऊपर, मूर्ति पूजा निषेधार्थमें-चार ग्रंथोंका पाठ, प्रमाणमें लिखचुके हैं, जिसमें-प्रथम स्वप्नाधिकारमें-१२ वर्ष ? काल पीछेही, मूर्तिपूजाका आरंभ, चलाया लिखा है ॥ औरजो महावीर स्वामीजीके समयमें-कहते है, सोतो सिद्ध होती नहीं-वैसाकहकर, भगवती शतक १२, उद्देशा २ सें जयंति श्रमणो पासकका, और ज्ञाता धर्म कथासे, नंदमणियारका उदाहरण दिया है ॥ फिर. पृष्ठ. १५३ ओ. १४ से-औरजो कहते हैं कि-पहिले हीसे, चली आती है, सो इसमें, कोई पूर्वोक्त कारणोंसे, प्रमाण तो है नहीं ॥ परंतु पहलेभी-मूर्ति पूजा, होगी तो आश्चर्य हीक्या है ? । क्योंकि ऐसे हीं-जिन साधुओंसे, संयम नहीं पलाहोगा, उन परिग्रहधारियोंने-अपना पोल, लुकानेको, और ज्ञानभंडारा नामसे--धन इकठा करनेको, थापली होगी ॥

समीक्षा—पाठक वर्ग ! इस ढूँढनीजीने-हृदय उपरभी कोई नवीन प्रकारका पाठा, चढालिया होगा, ? जो अपना लिखा-हुवाका विचार आपभी नही कर सकती है ? केवल मिथ्यात्व के नशे में बकवाद ही करती हुई चलीजाती है, क्यों कि, १ भगवती सूत्र, २ ज्ञातासूत्र, ३ राज प्रश्रीय सूत्र, ४ जंबुद्वीपपन्नती सूत्र, ५ उपाशक दशा सूत्र, ६ उवाई सूत्र, ७ महा



निशीथ सूत्र, < जीवाभिगमसूत्र, आदि सूत्रोंका मूलपाठोंमें, जो साक्षात्पणे, किसीजगें “ शास्वती प्रतिमा ” ओंका पाठ । किसीजगें-अरिहंत चेइयाइं, करके पाठ । और किसिजगें, “ जिनपडिमा ” करके पाठ-प्रगटपणे शास्त्रकारों लिख गये है । और शास्वती प्रतिमाओंका तो-अंगो अंगका, भिन्न भिन्नपणे, सविस्तर वर्णन, प्रमाण सहित-लिख गये है । और अशाश्वती प्रतिमाओंका भी-आकृति, उनके ही अनुसारसे बनाई गई है । सो जिनमूर्त्ति सिद्धांतसे भी-सम्मत, और यह धरतीमाताकी साक्षीसे भी-सम्मत, ते सिवाय परमतके शास्त्रोंसे भी, यह वीतराग देवकी मूर्त्ति-सम्मत ॥ उस विषयमें, यह दूढ़नी, कभी तो कहती है कि-सूत्रोंमें-मूर्त्ति, चली ही नही है । कभी तो कहती है, मूर्त्तिका जिकरही नहीं है, ॥ तो हम दूढ़कोंको, पुछते है कि-जब जिन मूर्त्तिका, सूत्रोंमें-जिकरही नही होता तो पीछे, दूढ़नीको, सूत्रोंका पाठको-लिख लिखके, जूठा खंडन करनेका-प्रयत्न ही, किस वास्ते करना पडां ॥

हे दूढ़कभाइयो । हृदय उपर अज्ञानका जो पाटा चढाया है उनको छोडके, विचार करो ? कि, हम लिखके क्या आते है, और पीछेसे क्या कहते है । केवल तुम अपना ही लिखा हुवाका-विचार करोकि-जिससे तुमको कल्याणका मार्ग हाथ लगजाय ? ॥

देखो सत्यार्थ पृष्ट. १४७ में-विवाह चूलियाका पाठमें, वर्त्तमान २४ तीर्थकरोंकी मूर्त्तियां । और अतीकालकी २४ तीर्थकरोंकी भी प्रतिमाओं । और अनागत २४ तीर्थकरोंकी भी प्रतिमाओं होती है । और. बंदने, पूजने, भी योग्य है ॥ वैसा भगवंत महावीर स्वामी, गौतस्वामी महाराजको फरमा रहै है । तो पीछे तू

( १७४ ) दूँदनीजीकी-मूर्त्तिपूजाका, विचार.

दूँदनेवाली दूँदनी कैसे कह सकती है कि-बारां वर्षी कालके पीछे-से, जिनमूर्त्तिका-बंदन, पूजन, चला है । और भगवती सूत्रका, और नंदमणियारका, उदाहरण देती है, सो किस उपयोग वास्ते होगा ? सो तो प्रसंगही दूसरा है, इस जिनमूर्त्तिका खंडनमें क्या उपयोग होनेवाला है ? ऐसे तो हजारो प्रसंग शास्त्रोंमें आते है ॥

और फिरलिखती है कि-जो कहते हैं कि, जिनमूर्त्ति पहिले-से ही चली आती है, इसमें कोई प्रमाण तो हे नहीं, ॥

तो अब इसमें कहने का-ग्रह है कि, तुमराही लिखाहुवा, विवाह चूलिया सूत्र पाठका-प्रमाण, क्या तुमको दिखा नहीं, ? जो कहती है कि-प्रमाण है नहीं.

फिर लिखती है कि-पहलेभी-मूर्त्ति पूजा, होगी तो आश्चर्यही क्याहै. ॥

इसमें आश्चर्य तो-इतनाही हुवा है कि, तुम दूँदको-अपना और अपने आश्रितोंका, धर्मके बिगाडा करनेवाले-अभीथोडे ही दिनोंसे-जन्म पडे.

फिर लिखती है कि-जिन साधुओंसे, संयम नहीं पला होगा-उन परिग्रह धारियों ने, अपना पोल लुकानेको, और ज्ञानभंडारा नामसे-धन इकठा करनेको, थापली होंगी.

हे दूँदनी भद्रबाहु स्वामीसें पूर्वकें महाऋषियोंकोभी, कलंकित करनेका-प्रयत्न करती है कि-जिन साधुओंसे, संयम नहीं पला होगा, उन साधुओंसे-मूर्त्तिपूजन, स्थापली होगी ? परंतु इतना विचार नहीं करती है कि-जो भद्रबाहु स्वामी के पूर्वमें साधु वि-चरतेथे, सो सबीभी निस्कलंकितहीथे, और श्रावकोंमें मूर्त्तिका पू-जन भी चला आताहीथा । परंतु चंद्रगुप्तने जबसे अनिष्ट स्वप्न

हुवा, तबके पीछेसे, कोइ कोइ भेष धारीमें, अनिष्ट कालके प्रभावसे, पतितपना होनेका-सरु हुवा, ऐसा तेरा लेखही दिखा रहा है परंतु सभी मुनिमें कुछ पाते तयना नहीं हुवा है, जो तुमेरा कल्पित पंथकी सिद्धि हो जायगी ? ॥ हे दूंडको ! तूम आचारसे, और विचार आदिसे, भ्रष्ट होकर, पूर्वले महान् महान् पुरुषोको भी, दूषित करनेको जाते हो ? । और अपने आप निर्मल बननेको चाहते हो ? क्या तो तुमेरी चातुरी, और क्या तो तुमेरी स्वजनता, हम भी तुमको शिक्षा कहां तक देंगे ? अब तो तुमेराही भाग्यकी कोइ प्रबलता होनी चाहिये, नहि तो हमारा योग्य कहना भी तुमको विषपनेही परिणमन होगा ? इस वास्ते अधिक कहना भी छोड देते है. ॥

दूंडनी—पृष्ठ. १५४ से-? जैनतत्त्वा दर्श । २ सम्यक्क शल्योद्धार । ३ गण्पदी पिका समीर । यहतीन ग्रंथोका प्रश्न उठाके कहती है कि ? जैनतत्त्वा दर्शका स्वरूपतो मैं-ज्ञान दीपिका में, लिख चुकी हूं ।

और २ सम्यक्क शल्योद्धार, और ३ गण्प दीपिका समीरको तुमही देखलो, कैसं अर्थके अनर्थ, हेतुके कुहेतु, जूठ, और निंदा, और गालियें, अर्थात् दूंदियोंको किसीको दुर्गतिमें पडनेवाले, आदिकरके पुकारा है ॥ और प्रश्नोके उत्तर दिये है, और जो देते हैं, सो ऐसेहै कि-पूर्वकी पुलो तो, पश्चिमको दौडना, कुपत्ती रत्न ( लुगाई ) कीतरह, वात्तको-उलटी करके, लडना.

फिर. पृष्ठ. १५६ ओ. ११ से-भ्राता ! साधु, और श्रावक, नाम धराकर-कुछ तो लाज, निवाहनीचाहिये, क्योंकि-जूठ बोलना, और गालियोंका देना, सदैव बुरा माना है,

समीक्षा—पाठकवर्ग ! दूढ़नी लिखती है कि—! जैनतत्त्वादर्शका स्वरूप तो मैं—ज्ञान दीपिकामें, लिख चुकी हूं, वैसा लिखती वखत कुछ भी विचार नहीं किया होगा ! क्योंकि—इनकी ज्ञान दीपिका तो, गण्य दीपिका समीरके ( अर्थात् पवनके ) जपाटेमें, सर्वथा प्रकारसे बुज गइ है कि, न तो रहीर्था बत्ती, और न तो रहने दियाथा—तैल, तो पिछे अपनी ज्ञानदीपिका—दिखाती ही कैसे है ? । अगर जो उसमें, तैल, और बत्ती. रह गई होती तो, क्या ! फिर जगाई न लेती ? परंतु जगावे क्या कि जिसमें कुछ रहा ही नहीं ॥

॥ और लिखती है कि, अर्थके अनर्थ, हेतुके कुहेतु, कैसे किये है ? । जब तेरेको उसमें अर्थके अनर्थ, और हेतुके कुहेतु दिखा-तबतो प्रथम ही हमको भी दिखा देती, जो हम भी देख-लेते । अगर जो यह तेरा कहना—ठीक ही ठीक, होता तो, प्रथम उनका उत्तर देके, पिछेसे ही यह नवीन धत्तंग खडा करती, तो योग्य ही गिना जाता ? परंतु सो तो तूने किया ही नहीं है । इस वास्ते सिद्ध है कि—जो जो उसमें लिखा है सो, सभी ही सत्यही सत्य लिखा गया है, । क्योंकि—जो जो तुमरा जैन मतसें विपरीत कर्त्तव्य, और केवल जुठा बकवाद है, उनकाही उसमें केवल दिग्दर्शन मात्र किया गया है, ओर जूठका फल दु-र्गतिरूप ही होता है, सोई कहा है, किस वास्ते जूठ लिखते हो ?

॥ और तूने जो उनका उत्तर देना छोड देके, यह नवीन जूठा वचनोका—पूज इकट्ठा किया है, सोई तेरा उदाहरण जैसा तूने ही किया है ! अगरजो सम्यक्क शल्योद्धारका, और गण्य दीपिका समीरका, लेख अनुचित होता तो तूं प्रथम उनकाही उत्तर देनेमें प्रवृत्ति करती ? परंतु यह कुपत्ती रत्नके जैसा आचरण

कभी न करती ? ॥ और सम्यक्क शल्योद्धार, मण्य दीपिकासमीरके कर्त्ताने तो, तुम दूढकोंको, केवल हित शिक्षाके वास्तेही कहा है, परंतु उसबातकी जो रुची तुमको नहीं हुई है सो तो, तुमरा आज्ञानपणेकी निशानी है, उसमें कर्त्ताका कुच्छ दोष नहीं है.

फिर लिखती है कि-भ्राता ! साधु और श्रावक नाम धरा-कर कुछतो लाज निबाहनी चाहीये ॥ हे दूढकों ? तुमको साधुपणेकी, और श्रावकपणेकी लज्जा होती तो, अपना ही महान महान पुरुषोंका अपवाद ही क्यों बकते ? और वीतराग देवकाही-महोत्सव देखके, मारामारीही किस वास्ते करते ? परंतु तुमतो आप ही जैनधर्मसे-विपरीत होके और दूसरांको भी विपरीत करनेकी चाहना कर रहे हो, तुमको साधु, और श्रावक, पणेकी लज्जाही कहाँ रही है ? जो अपना साधुपणा दिखाते हो ? । हां कभी, कृष्णका, महा देवका, पीरका, फकीरका, महोत्सव होवें, जब तो तुम राजी, और वीतरागदेवका-महोत्सव देखते ही तुमरा हृदय फिरजाय, तो पिछे तुम अपने आप साधु, और श्रावकपणा ही कैसे प्रगट करते हो ? तुमतो केवल साधु, और श्रावकका आभास रूप बनेहुये हो.

॥ और नीचे लिखती है कि-जूठ बोलना, और गालियां देना, सदैव बुरा माना है, ॥

॥ अगर जो तुमको इतना ज्ञान होता तो, यह केवल जूठका ही पूंजरूप, थोथा पोथा लिखनेकी प्रवृत्ति ही क्यों करते ? तुमरा दूढक पंथमें जूठ बिना तो, दूसरी गति ही नहीं है ? तुमरा कितना जूठपणा है, सो तुमको देखनेकी इच्छा होती होवें तो, देखो समाकित सारका, उत्तररूप " सम्यक्क शल्योद्धार " जिससे तुमको मालूम हो जावें.

॥ और यह भी तेरा किया हुवा, सत्यार्थ चंद्रोदय है कि, केवल जूठार्थका उदय है, सोभी यह हमारी किई हुई समीक्षासे, विचार कर ?

। केवल मुखसे साधुपणा दिखानेसे तो कुछ साधु नही बन सकेंगे ? साधुपणा बनेगा तो आचरणसे ही बनेगा ।

केवल कथनरूप तुमेरा सत्यवादीपणा है सो तो, तुमेरा आत्माका निस्तार करनेवाला कभी नहोगा ॥

दूँढनी—पृष्ठ. ११७ ओ. ४ से. प्रश्नके विषयमें लिखती है कि—जैनियोंमें जो—सनातन दूँढीये जैनी हैं, वह मूल सूत्रोंको ही मानते है, पुराणवत्-ग्रंथोंके गपौडे, नहीं मानते है, और जो यह—पीले कपडोंवाले, जैनी हैं, यह पुराणवत्-ग्रंथोंके गपौडोंको, मानते हैं, क्यों जी ऐसे ही है ॥ उत्तर—और क्या ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग । दृष्टांत होता है सो, एक देशीय ही होता है । यह दूँढको नतो तीनमें, और न तो तेरमें, और नतो छपनके भी मेलमें, तो भी अपने आप सनातन बन बैठे है ? । जैसे कि—एक मूढ । धनाढय, विचक्षण—वेश्याका, भावको समजे विना, अपनी मानके, और सर्व धन गमादेके, परदेशसे—मित्रकी साथ, धन भेजनेलगा । उस मित्रने उसी वेश्यासे—प्यारेका, नाम पुछा तो वह मूढ धनाढय न तो तीनमें, न तो तेरमें, और न तो छपन के भी मेलमें, तैसे ही यह दूँढको चोरासी गछमेंसे एक भी गछकी शाखा विनाके, एक गृहस्थसे अभी सन्मूर्च्छन रूप उत्पन्न होके अपने आप जैनमतकी चातुरी समजे विना सनातन बननेको जाते है ?

सो कैसे बन जायगें ! क्योंकि जिन दूँढकोका प्राचीनपणेका

एकभी निशान नहीं है ॥ कभी दिगंबर वारसा करनेको जावे तब तो, कुछ विचारभी करना पड़े, परंतु तुमेरा-न तो गाममें घर, और नतो सीममें-खेत, किस कर्तुतसे-सनातनपणेका, दावा करनेको जाते हो ? ॥

फिर लिखती क्या है कि-जूट बोलना तो-सदैव बुरा, माना है । वैसा साध्वीपणाभी दिखाना, और गड्डे के गड्डे भरजावे इतना तो जूटा गप्प मारना ? तो क्या केवल वचन मात्रसे साध्वीपणा होजाता है ? ॥

फिर लिखती है कि-हम पुराणवत्-ग्रंथोंके गपौडे, नहीं मानते ॥ हे दूढनी ? तूने क्या जैनोंके ग्रंथोंको, पुराणवत् गपौडे समजे ? जो जूठा बकवाद करके जैनके लाखो सिद्धांतोंको कलंकित करती है ? । तूने इतनाभी ज्ञान नहीं है कि-जो सर्वज्ञ पुरुषोंका ज्ञान-अनंत रूपमें था, उनकाही वीजरूप खतबनीके प्रकारसे-सूत्रोंमें गूथन करके, मेल आदि बहियांके प्रकारसे-प्रकरण ग्रंथोंमें विस्तार किया गया है, उनको पुराणकी तरां गपौडे लिखती हुई तेरेको जरासी भी लज्जा न आई ? जो सर्वज्ञोंका वचनोंको-अल्पज्ञकी साथ जोड़ देती है ? । क्यों कि-द्रव्यानुयोगमें, जो कर्म प्रकृतियोंका विस्तार, जैन मतका मूल भूत है सो-प्रकरण ग्रंथोंके विना, मूल सूत्रोंमें-कभी न मिल सकेगा, सो क्या पुराणकी तरां गपौडे हो जायगे ? । और कथानु योगमें-२४ तीर्थकरो काचरित्र, और चक्रवर्त्तियोंका चरित्र, बलदेव, वासुदेव, आदिका चरित्रोंका विस्तार भी-मूल सूत्रोंमें, कभी न मिल सकेगा ॥ सो क्या गपौडे कहती है ? तो पिछे तेरेही दूढके जैन रामायण, ढाल सागर, आदि वाचके किसवास्ते अपनी पेट भराई करते है ? । अ-

गर बांचते है तो-सर्वज्ञके अनुयायियांका वचनको, पूराणके-गपौडे की साथ कैसे जोडदेते हो ? तुम दूढकोको हम कहां तक शिक्षा देंगे ?

और जिस ग्रंथोंके विना, तुमेरी भी पेट भराई होती नही है, तैसें अलौकिक तत्त्वरूप ग्रंथोंको गपौडे कैसे कह देती है ? । हम तो यही समजते है कि-तेरी तुछ स्त्री जातिको, कोई दो अक्षर-टूं-टां-कर ने मात्र आनेसे, उनका गर्व-तेरे हृदयमे, नही समाता हुवा-महा पुरुषोंकोभी, यद्वा तद्वा करनेको, बहार निकल पडा होगा, नही तो इतना-असंजम, क्यों बकती ? । अबीभी अपना आत्माका निस्तारका मार्गकी, दूढकर कि जिससें तेरेकुं, और तेरे आश्रितोंको, वीतराग देवका मार्गकी, अवज्ञा करने रूप, महा प्रा-यश्चितसे, अनंत संसारका भ्रमण करना-न पडें ? । हम तो तुमेरा हितकेही वास्ते कहते है, आगे जैसी तुमेरी इच्छा ॥ इत्यलं

दूढनी—पृष्ठ. १५७ से-साढेचारसो, और अढाईसो वर्ष, १ लौका, २ लवजीको, होनेका प्रश्न उठाके-। पृष्ठ. १५८ में, लिखती है कि-१ लौकेने तो, पुराने शास्त्रोंका उद्धारकिया है, नतो नयामत निकाला है, न कोई नया कल्पित ग्रंथ-बनाया है.

और २ लवजीनेभी-स्थिलाचारी यतिगुरुको छोडके, शास्त्रोक्त क्रिया करनी-अंगीकार किई है । न कोई नया मत निकाला है, न कोई पीतांबरियांकी तरह, अपने पोललकोनेको, चालचलन के अनुकुल, नये ग्रंथ-बनाये हैं ॥ हां यह संवेग पीतांबर, (लाच्छापथ) अढाईसो वर्षसे निकला है ॥ वैशा लिखके, चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग २ के अंतिमकी, पृष्ठ १५४ में-श्रीयशोविजयजी, और सत्य विजयजीने किसीकारणके वास्ते रंगे है. वैशा प्रमाण देती है ॥ फिर. पृष्ठ. १६० ओ. २-सो कारण कोई वैसाही पुरुष दूर करेगा, एक



मैथुन वर्ज, कारणे करनेका निषेध नहीं है । उसमें तर्क करती है, कि, जूठ बोलना, चौरी करना, कच्चापानी पीना, भी सिद्ध हो गया, धन्य निशीथभाष्य, धन्य आप ॥

फिर. पृष्ठ. १६१ से—पीतांबरियोंका—कल्पित नया मत निकला है, जिसको २५० वर्षका अनुमान हुवा है, कई पीढियें एलियारंग वस्त्र धारी रहे है, कई कत्थेरंग वस्त्र धारी रहे है, मन माना जो पंथ हुवा ॥

फिर. पृष्ठ. १६२ से—आत्मारामजी, पहिले सनातन दूढक मतका, श्वेतांबरी साधुथा, जब सूत्रोंक्त क्रिया ना सधाई, और रेल में चढनेको, दुशाले, धुस्से, ओढनेको, मोलदार औषधियोंकी डब्बियों मंगाकर खालेनेको, माल असबाब रेलोमें मंगालेनेको, दूढकमत छोडके, गुजरात में जाके, रंगे वस्त्र धारे.

फिर. पृष्ठ. १६३ तक—यही बातमें गप्पदीपिकासमीरका प्रमाण दिया है.

फिर धनविजयकी पोथीका प्रमाणसे । और बूटे रायजीका प्रमाण देके, सर्व गुरुओंको असंयमी ठहराये है.

समीक्षा—हे दूढनीजी लोंकेने, पुराना शास्त्रोंका उद्धार किया है, ऐसा तू कहती है, तो हमपुछते है कि—पुराना शास्त्रोंका उद्धार किसरीतिसे कियाथा ! क्या मच्छावतार धारणकर कृश्रजीने जैसे, समुद्रमेंसे वेदोंको दूढलाके, उद्धार कियाथा वेशें लोंकेने—शास्त्रोंका उद्धार कियाथा ? १ ॥

अथवा तेरीही ज्ञानदीपिका के लेख प्रमाण जैसे कि—दूढत २ दूढलिया, सब वेद पुराण कुरानमें जोई । ज्यू दही माहेंसे मखन दूढत, त्यू हम दूढियोंका मत होई ? ॥ तैसैं वेद, पुराण, कुरान, आदि बातोंका संग्रहकरके शास्त्रोंका उद्धार कियाथा ? २ ॥

अथवा देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण महाराजने, जैसे सर्व मुनियों का मुखाग्रपाठका संग्रहकरके, शास्त्रोंका उद्धार कियाथा, तैसें यह-लौकेने शास्त्रोंका उद्धार कियाथा ? ३ ॥

किसविधिसे शास्त्रोंका उद्धार किया दिखाती है ? ॥ न तो प्रथम प्रकार बनसकता है क्योंकि, जैन सिद्धांतको, कोई समुद्र में लेके नहीं गयाथा, जो प्रथम प्रकार बनसके ?

और न तो तिसरा प्रकारभी बनसकता है, क्योंकि—लौका तो केवल गृहस्थही था, तो पिछे साधुके मुखाग्रका पाठका—संग्रहही कि सतरां करनेवालाहो सकता है ?।

हां दूसरा जो, वेद, पुराण, कुरान, आदि बातोंका, संग्रह करके शास्त्रोंका उद्धार किया होगा तो, ते बात तो तूही जानती होगी ! हमको तो मालूमही नहीं है ॥

॥ फिर लिखती है कि—न तो नया मत निकाला है, न कोई नया कल्पित ग्रंथ बनाया है । जब लौकेने, नयामत नहीं निकाला है तो, किस गुरुका पाठको पकड कर चलाथा ? सो तो दिखानाथा ? । इस बातमेंभी तूं क्या दिखा सकेगी ? सो तो (लौका ) कोरा गृहस्थही था, और कोरा गृहस्थ होनेसे—उतना ज्ञान ही कहांथा, जो ग्रंथ बनासके ! इस वास्ते यह तेरा लेख ही विचारशून्यपणेका है ॥ और जो आत्मारामजी महाराजने—जिन प्रतिमाजीको उत्थापकका बीजरूप, लौकेको हुये, साढाचारसो वर्षका अंदाज लिखा है, सो सत्यही लिखा हुवा है । देख काठियावाड तरफसे, प्रसिद्ध हुयेला तेरा दूढक मत वृक्षमें । और देख जैनहितेच्छुपत्र वाला तेरा वाडोलाल दूढकनेभी सो पत्रिकाओ, गाम गाममें भेजके, दूढक मतकी हकीकत मंगवाके, चोकसपणे “ स्थानकवासी डिरेक्टर ” वहार पाडी है उममें, और तेरें दूढकोकी

पटावलीमेंभी यही लिखा है । और पीछेसे लौकेकीही परंपरामें— यह लवजीभी अंदाज अढाईसोही वर्ष पहिले हुवा है, और यह मुखपर मुहपत्ति चढाना सरु किया है, सो तो तूंभी अपनी ज्ञान- दीपिकामे कबुल ही कर चुकी है, किस वास्ते अब अपनी पोलको लुकातो फिरती है ? और जो लवजीने, नयामत नही निकाला क- हती है सो ठीक है, क्योंकि लौकेकीही परंपरामेथा, और क्रोधी होनेसे, गुरुके साथ लडपडा, और अलग होके, मुखपर मुहपत्ति च- ढाने मात्रकाही अधिकपणा किया है. ॥

और जो तूं कहती है कि--न कोइ पीतांबरियोंकी तरह, अपने पोल लकोनेके वास्ते, अपने चाल चलनके--अनुकूल, नये ग्रंथ बनाये है ॥ सो भी तेरा कहना ठीकही होगा, क्योंकि क्रोधीला स्वभाववाले लवजीको, प्रथमसे ही अयोग्य समजके उनको, उनके गुरुजीने प- ढाया ही--नही होगा, तो पिछे नया ग्रंथ ही क्या बना सकनेवाला था ? यह तो तुमेरी परंपरा ही--वैशी चली आती है । आज वर्त्त- मानकालमें भी देखले तेरे दूढकोंमे, तूं ही थोथा पोथाको मगट करवायके, पंडितानी पणाको दिखारही है ? और अपनी अनेक प्रकारकी पोलको भी, लुकानेका प्रयत्न कर रही है ? ॥ परंतु-अ- ढारे बल्याउंटना अंग वांका, कहो ढांकीये तो रहे केम ढांकयां । तैसैं तुम दूढकोंके भी, सर्व प्रकारके अंगोअंग वांके होनेसैं, तूं एक स्त्री जाति मात्र होके, किस तरांसे ढक सकेगी ? सोतो उघड पडे विना कबी भी नही रहनेवालें होंगे ? ॥

॥ और लिखती है कि—यह संवेग, पीतांबर, ( लढा पंथ ) अढाईसो वर्षसैं--निकला है ॥ अब इसमें दूढनीको, न तो पंथकी, और नतो मतकी खबर है कि, पथ किसको कहते है, और मत भी किसको कहते है । क्यों कि, यह संवेगीयोंने तो, जो जो पूर्वमें म-

हान् महान् आचार्यो हुये है, उन सभी आचार्योंका-बचनको, शिरसा बंध मानके, उनके ही अनुयायी हुये है, इस वास्ते मतवादी, या पंथी, कभी नही बन सकते है, और तुम दूढक है सो तो, मनमें आवे सोई, एक बखत तो मानलेना, और वही बात दूसरी बखत नही मानना, वैशं ढोंगी होनेसे, मताग्रही, हठीले, कुमार्गी, आपां पंथी, सभी प्रकारके रूपको धारण करनेवाले बने हुये है ? परंतु संवेगी तैसे नही है ॥ इस वास्ते लाट्टा पंथ विगरे कहकर जो उपहास्यपणा करती है, सोतो अपना कलंक दूसरेको चढानेका ही प्रयत्न कररही है ? परंतु यह जूटा कलंक कभी न चढ सकेगा अगर जो तूं, एक पीतवस्त्र मात्रका कलंक देके-कलंकित करनेको चाहती होगी तो, उसको तो हम कह चुके है कि, कारण वास्ते किया हुआ है, जो कारणके लिये किया है सो दूर होजावे तो, अबीभी छोड देनेको तैयार है ॥ इस वास्ते नतो मत गिना जावेगा नतो हठ भी कहा जावेगा ॥ अगर जो हठ या मत, कहती होंगी तो, तेरे दूढकमें तो, सैकडो ही मतकी, गिनती करनी पड़ेगी, क्यों कि-तेरे दूढक तो, केवल हठ पूर्वक ही, कोई तो नील वस्त्र-धारी बना है, कोई तो अघोर पंथी बना है, और कोई तो महा अघोर पंथकारूप धारण करके फिरता है, । और प्रतिक्रमण क्रिया विगरेमें अनेक प्रकारका हठ ही पकडकर अपने आप मोक्षकी मूर्त्तियां बन बैठे है, तैसे संवेगी कुछ हठकरके-पीतवस्त्रको, नहीधारण करते है, जो तेरे दूढकोंके, सैकडों मतकी साथ, संवेगीको भी, कलंकित कर सकेगी ? ॥ क्यों कि-यह पीतवस्त्र किया है सो, आचार्योंकी सम्मतीसे ही-किया गया है, और आचार्योंकी सम्मतासे-दूरकरनेको भी, तैयार ही बैठे है । इस वास्ते तेरी खीचही कुछ इसमें-नही पकनेवाली होगी । और पीतवस्त्र वास्ते जो तूने

प्रमाण दिये है, सोतो हमारा गुरु बर्यका लिखाहुवा हमको मंतव्य है, इसमें तेरी सिद्धि क्या होगी ? ॥

और जो मैथुन बर्जके, कारणसर-वस्त्रादि, रंगनेकी-आइ दिखाई है, सो भी योग्य ही है, क्यों कि, जिसको-ब्रह्मव्रत, पक्का होगा, उनको दूसरा कोई भी अनुचित कार्य, करनेकी-जरूर ही नहीं रहती है, इसी वास्ते शास्त्रकारने भी, उसबातकी ही सक्ताई दिखाई है, तुम दूढकों तत्त्वतो समजते है नहीं, और जूठा बकवाद ही करउठते हो ? ॥

अब इस बातमें, ज्यादा तपास करना होवें तो, तू ही तेरा जन्मके आचरणको देखके, अनुभव करले, हमारे मुखसे किस वास्ते कहाती है ? और अधिक तपास करनेकी मरजी होंवे तो, मारवाड, मालवा, काठियावाड, दक्षिण, आदिमें फिरके देखले कि, मुखसे दया, दया, पुकारनेवाले, इस चौथे व्रतमें, कितने पके है ॥ इसवास्ते जो जूठी कुतकों करनी है, सोई-कुपत्तीरनपणेका, स्वभाव ही प्रगट करना है, ॥

॥ और जो एलिया रंग दिखाती है, सो तो तेरे ही दूढक मतमें हुये है, देखनेकी इछा होवें तो, देखलें मालवा, मारवाड देशमें ॥

और आत्माराजी महाराज-प्रथम दूढियेहीथे, सोतो तेरा कहना-ठीकही है, परंतु दूढियोंको-सनातनपणे, नहीं समजा, केवळ मूढ पणे का-मत, समजके, छोडदिया--किन तो जिसका सपडामूल, और नतो सपडीडाल, विनामाबापके लडकेकी तरह, यह दूढक मतभी विना गुरुका समजके ही छोडा है ? ॥ अगर तुमभीविचारपर आजावोंगे तो, तुम कोभी श्रृंग, और पुंछ, विनाकाही दूढकमत-मालूम होजायगा ॥

और जो तूने, लिखा है कि—सूत्रोक्त क्रियाना सधाई, और रेलमें-चढनेको, दुशाले, धुस्मे—ओढनेको, मौलदार औषधियों—खानेको, दूढकमन छोडके रंगेवस्त्र धारे ॥

अबइसलेखमें, तूने केवल कुपत्तीपणे काही स्वभाव प्रगट किया है, प्रथम तुमेरे दूढकोंमें—सूत्रोक्त क्रियातो एकभीनही है, जितना तुमेरा चालचलन है, सो केवल—मनकालिपतही है, देखना होवे तो देखलो सम्यक्कशल्लयोद्धार पृष्ठ. १८ सेलेके २८ पृष्ठ तक, यहजूठी चातुरी तुमेरी कहांतक चलेगी ?॥ और रेलपर चढनेका जो कलंकदिया है सोभी तूने, कुपत्ती रत्नपणे काही आचरण किया है, क्योंकि इस महात्माने नतो कभी रेलपर चढनेकी इच्छा किई है, और नतो इच्छा पूर्वक कभी रेलपर चढनेकोभी गये है, तो पिछे तेरा जूठा कलंक चढानेसे—कुछ कलंकित नहोसकेंगे.

और तूने जो एकाद असंयमी कीटीका करके, सबको असंयमी ठहरानेका प्रयत्न किया है, सो भी मूढपणाही किया है, क्योंकि तेरे दूढकोंमेभी असंयमी, तेरेको जितना चाहीताहोगा, उतनाही हर्मानकाल देते है, प्रथम तो तेरीही चर्या तू अपने आप निहाल कर देखलें, पीछें दूढकोंमें दूषितकरनेका प्रयत्नकर ? धन्य तो उनको है कि—अपने गुणमें मग्नहोके, दूढकोंकोभी गुण में वासितकरनेका प्रयत्न करें ? बाकी कुपत्ती रत्नपणाकरने वाले तो, बहुतही दूनीयामें पडे हुये है. इत्पलं प्रपंचेन.

दूढनी—पृष्ठ. १६४ से लेके, पृष्ठ. १६६ तक, वस्त्रकाही विचारमें, चातुरी दिखाई है कि—आचारांग सूत्र अध्ययन सातमे वस्त्रका रंगना, साफ मना है ॥

समीक्षा—आचारांगकी जो साक्षी दीई है, उसमें तो न

धोयेजा, न रंगेजा, " दोनोकीही मनाई है, तो तुं धोयेला वस्त्र पहनेके क्युं फिरती है ? केवल अपना छिद्र ढकना, और दूसरमें नही होवे उसमें छिद्र देखनेका प्रयत्न करना ? और पाठका अर्थ, और उनका तात्पर्य समझे बिना केवल जिनको तिनको, दूषित ही करना और अपना चलनको छुपाना, इसमें तुमेरी क्या सिद्धि, होनेवाली है ? ॥ इस विषयका विवेचन करके ही आये है, इसवास्ते पिष्टपेषण नही करते है.

दूढनी—पृष्ठ. १६६ ओ ७ से सम्पर्क शल्लषौद्वारादि बनाने वाले, मिथ्यावादी है, क्योंकि—उसमें लिखा है कि—दूढिया मत, अठईसो वर्षसे निकला है, और चर्चामें सदा पराजय होते है.

परंतु हमने तो पंजाब हातेमें, एक नाभामें, संवत् १९६१ में चर्चा, देखी, उसमें तो पूजेरोकीही—पराजय हुई ॥ फिर. पृष्ठ. १६९ से—लिखा है कि, शिवपुराण बनानेवाले, वेद व्यासको हुयें ५ हजार वर्ष कहते है, जब भी जैनी—दूढिये हीथे, क्योंकि, शिव पुराण—ज्ञान संहिता, अध्याय २१ के श्लोक २-३ में लिखा है—

मुण्ड मलिन वस्त्रच, कुंडिपात्र समन्वितं ।

दधानं पुञ्जिकहाले, चालयंते पदेपदे । २ ।

अर्थ—सिर मुंडित, मैले ( रज लगे हुये ) वस्त्र, काठके पात्र, हाथमें—ओघा, पग २ देखके चलें, अर्थात्—ओघसे कड़ी आदि जंतुओंको, हटाकर पग रखें ॥ २ ॥

वस्त्र युक्तं तथा हस्तं, क्षिप्पमाणं मुखे सदा ।

धर्मेति व्याहरंतं तं, नमस्कृत्य स्थितं हरे । ३ ।

अर्थ—मुख वस्त्रका ( मुखपत्ती ) करके ढकते हुए—सदा मुखको, तथा किसीकारण मुख पत्तीको—अलग करें तो, हाथ मुंहके अगा-

ही देलें, परंतु उघाडे मुख न रहें ( न बोले ) इत्यादि ॥ लिखके—  
फिर. पृष्ठ. १७१ ओ. १२ से—अब देखो जैन साधुका, वेद व्या-  
सके समयमेंभी—यही भेष था । तो सिद्ध हुवा कि दूँडक मत, प्रा-  
चीन है, २५० वर्षसे निकला, मिथ्यावादी—द्वेषसे, कहते है ॥

समीक्षा—अरे इठीली, अभीतक अपना जूठा हठको भी-  
छोडती नही है ! तूँही तो तेरी, ज्ञान दीपिकामें—लिखती है कि,  
प्रथम मुखपरं मुहपत्तीको चढानेवाला, ' लवजी ' को हुये अ-  
ढाईसो—वर्ष, हुये है, और पंजाबी दूँडियें श्रावक व्याख्यान उठ-  
नेके अंतमें, भजनमें भी कहतेथे कि—प्रथम साध लवजी भया, द्वि-  
तीय सोमगुरु भाय ॥ ऐसैं कहनेका परिपाटहीथा, अब इहांपर,  
अपना पोल लकोनेके वास्ते, सत्य शिरोमणि पणा—प्रकट करती  
है ? । और सम्यक्क शह्योद्वारवाले महात्माको, मिथ्यावादी कहती  
है ? । बाहरे तेरी चातुरी ? जगेंजगें पर स्त्रीजातिका, जूठा स्वभा-  
बको ही दिखाती है ?

और दूँडिये, चर्चामें—सदा पराजय होते है, वैशा जो—सम्यक्क  
शह्योद्वारमें लिखा है, उसमें भी क्या जूठ लिखा है । जो तूं म-  
हात्माको जूठपणेका—कलंक देती है ? क्यौंकि—पांच सात जगें तो  
मेरी ही समक्ष, दूँडिये साधु, चर्चाके समयमें, भगजानेका बनाव  
बन चूका है, तो न जाने उस महात्माके वखतमें, क्या क्या बनाव  
हुवा होगा ॥ देख प्रथम, टांडा अहियापुरमें, तेराही—सोहनलाल  
कि जो आजकाल पूज्य पदवी लेके फिरता है, सो हमारें पूज्य—क-  
मल विजयजीके इस्तिहार निकालनेपर अपने इस्तिहारसें सभामें—  
आनेका कबुल होके, और अमृतसरसे—पंडितको भी बुलवाके, स-  
भाके समय—अनेक तेडे करने परभी, हाजर न हुवा, और खिड-



कीमेंसे—सभाकी कारवाई भी देखता रहा । जबमें भी उहां हा-  
जरहीथा, और एक हाजर कविने,

गजलमें कविता भी, सभाके अंतमें गान करके सुनाईथी सो  
नीचे लिख दिखाता हूं.

गजल.

अरे दूंदीयो तुम, गजब क्या किया;  
जो शास्त्र भूलाकर, बता क्या दिया । १ ।  
तुमे अकलके डोर, नहि जानते;  
जो शास्त्र उलट, अर्थ पेछानते । २ ।  
मुनि कमलविजकी, सभाथी सोहनलालसें;  
एतकरार पायाथा, टांडेमें इस्तिहारसे । ३ ।  
संवत् १९४७ फाग, चउदशके दिन;  
सभा बीच बैठेथें, पंडित महासन । ४ ।  
मुनिजीने नोट बेट सभामें दिया;  
सोहनलालने आनेसें, इनकार बिलकुल किया । ५ ।  
सभाका बियान, मुजसें होता नहीं;  
बडीबात है, मुख कहता नहीं । ६ ।  
मुनिने जो शास्त्र, अर्थथा किया;  
उसी बरत परवान, सभाने किया । ७ ।  
सभामें न आये तो, समजा गया;  
सबो पोल तुमरा, जहार हो गया । ८ ।  
अपना अगर, कुशल चाते हो तूंम;  
श्री जिन प्रतिमाकी, लेलो शरण । ९ ।  
किसीके बकाने से, तूंम ना बको;  
पत्ती खोलकर, हाथमें तूंम रखो । १० ।

यथा योग शास्त्र, जब आचार हो;  
 तब उपदेश करनेको, अधिकार हो । ११ ।  
 भूले हो आप, भूलते हो लोक;  
 भगवानको छोड, चाइ ते हो मोख । १२ ।  
 महबत ल्यों, शरण भगवानकी;  
 तो सोबत करो, साधु विद्वानकी । १३ ।

और सभाके हूँये बाद, दूसरे दिन-किसी पुरुषने, बजारमें  
 एक इस्तिहार लगायाथा, उसकी नकल नीचे. मुजब--

अरे दूँदियों, क्यूँ तडफ तेहो तूम, तुमारा गुरु, सोन्हलाल  
 हेजी कम, मुनिकमल विजयजीने, चर्चा करी, ईश्वरकी बरक-  
 तसेँ, महिमापरी १ ॥

“ अलराकम हूसियार मरद. ”

यहनीचिं संकेतमे लिखके, अपना नामभी दिखायाथा ॥

इति प्रथम बनाव.

अब दूसराभी बनाव सूनलों कि--सेहर हुस्यार पुरके पास जेजो  
 गाममें--यही दूँदक साधु सोहनलालने, एक आत्मारामजी महाराज-  
 जी काविश्वासी--ब्राह्मणकी साथ, आत्मारामजी महाराजजीका ले-  
 ख-जूठा ठहरानेको, प्रतिज्ञापत्र लिखाकि--मैं जूठा पडजाउं तों,  
 साधु पणा--छोडदउं, नही तो मैं तेरेको--शिष्य बना लउं, अब ते  
 जेजो गामसेँ उस ब्राह्मणकी पत्रिका, हुस्यारपुरमें हमारेँ गुरुजीकी  
 पास आनेसे, गुरुजीकी आज्ञालेके, उद्योत विजयजी, कांतिविजय-  
 जी--आदि हम ९ साधु ते जेजो में गये, कई दिन तकरार चलतेँ २  
 छेवट, सभाकरनेका--मुकरर, हुवा, सभा के वरत अनेक सभ्यके  
 बुलानेपरभी--तेरा पूज्य न आया, तब हमारे बडे साधु सभा बुला-

ने विगेरेका मतलब सुनाके-स्थानपर आ गये जबभी मैं हाजर हीथा. इति दूसरा बनाव.

॥ अब तिसरा वंगीयां सहरकाभी सुनलो कि-जिहां एक मास तक, यही पांच साधुओंकी-तेरा सोहनलाल पूज्यके साथ, तकरार चलीथी, उसमें-फोजदार, कलेकटर साहेबभी, देखनेको आयें, और हूस्यार पुरका संघभी आया, और मुदतपर हाजर नही होनेवालेके दो, दो, हजार रूपैयेकी जापीनगिरीके साथ, सरकारी ' स्टांपपर ' लेख लिखनेकाभी सरु करायके, यही तेरा-सोहनलालने, और उदयचंदने, रद करवाया, जबभी मैं हाजर हीथा ॥

॥ इति तिसरा बनाव ॥

॥ अब सुनलो चौथा बनाव--अमृतसर सहरका-संबत्. १९४८ काकि, जहां सोहनलालका, और हंसविजय आदि-हम चार साधुओंका, चौमासा था, उहां तेराही पूज्यने, एक दिन अपना व्याख्यानमें, आत्मरामजी महाराजजीको बकरा होम कराने का लेखका, जूठा कलंक देनेपर, सातसो सातसो इस्तिहार दिया गयाथा, और \*अहिंसा परमो धर्म: इस मथालेका लेखसे, उत्तर देने पर, सर्व सहरके पंडितोंसे, फिट् फिट्के फटकारेसँ छेवट तीन कोशका, आंटा लेके, और मुख छुपा करके-भागनाही पढाथा, जबभी मैं हाजर हीथा ॥

॥ इति चतुर्थ बनाव ॥

अब सुनलो, दक्षिण देश, अहमद नगरमें-चंपालाल दूंडक

\* अहिंसा के स्थानमें, आहिंसा, अर्थात् हिंसामेहिधर्म एसा-मथालाका लेख, जाहिर करवायाथा.

साधुके साथका पंचम, बनाव-कि, हम संवेगी साधुको-नवीन देखके, यद्वा तद्वा कहना सरु किया, छेवट निर्नापसें-संवेगीकी निंदा रूप गुप्त पत्रिकाओ-छपवाई, उनके उत्तरमें वारंवार, सभा करनेका आवाहन करनेपरभी, एकभी उत्तर न छपवाया, केवल मुखसे-बकवाद, भेजता रहा कि, हम सभामें आवेंगे, छेवट हमने उनके कहने परही, दो चार पंडित बुलवाके-दोचार दफे, सभाओभी भरवाई, परंतु अपनी कोटडीसे बहार ही नहीं निकला, यह बनाव मेंराही अग्रेसर पणमे हुवा ॥

॥ इति पंचम बनाव ॥

और प्रथम अमदावाद सहरमें-सरकारी बंधोबस्तके साथ, जेठमल दूँडिया आदि । और वीरविजयजी संवेगी आदिके मुख्यपणे । चर्चा हुईथी, जबभी दूँडिये भगही गयेथे ॥ और अमृतसर सहरमें, पटीवाला पंडित, अमीचंद घसिटाभल्लकी साथभी चर्चा हुई सुनते है, जबभी तेरे दूँडिये, भगही गयेथे, फिर खानदेशके 'शूलिये' सहर मेंभी, यही अमीचंद पंडितकी साथ-चर्चा हुईथी, जब भी तेरे दूँडिये, भगही गयेथे ॥ तो पिछे सम्यक्क शल्योद्वारवाले महात्माके लेखको, जूठा ठहरानेवाली, तूही जूठका पुतलारूप बनी हुई, कि सवास्ते महात्माको जूठा कलंक देती है ? और जो तूं लिखती है कि हमने तो नाभेमे ही एक चर्चा देखी है, तो हम पुछते है कि, जब पंजाबमें ही, तेरे पूज्य सोहनलालकी, पांच सातवारी खराबी हुईथी, तब तूं कौनसे पहाडकी गुफामें, बैठीथी ? जो तूने कुछ मालूम ही न रहा क्या यूँही महात्माओंको, जूठा कलंक देनेसे, तुमेरा पाप छुपेगा ? कभी न छुपेगा । और जो तूं लिखती है कि, नाभामे तो, पूजेरांकी ही पराजय हुई, सो भी कैसे समजेंगे,

मुनिश्री वल्लभविजयजीने यथायोग्य लिखके दिखाभी दि-

या है, तोभी हम यह कहते हैं कि-जूठा पंथका जयतो, तीनकाल मेंभी नही होसकने वाला है ? अगर फिरभी जो निश्चयकरनेकी इच्छा होतो, एक जगो मध्यकी नीयतकरके, चार मध्यस्थ पंडितोको बुलवाके, निर्णय करलो कि, तुमेरे दृढक पंथमे, सत्यपणा कितना है, सो मालूम होजायगा.

हमने तो यह भी-लोकोके मुखसे, सुनाथा कि-सोहनलालको जब साधु, श्रावकोंने मिलकर पूज्य पदवी दिई, तब लेख करा लियाथा कि, पूजेरोंकी साथ चर्चा करनेको जावोंगे, तब तुमेरी पूज्य पदवी हम न रहनेदेंगे, सो तेरे लेखसे भी यही मालूम होता है कि, यह भी बात सत्यही होगी ? क्योंकि नाभाकी चर्चाके समयमें सोहनलाल पूज्य आप नही जाता हुवा. पोते चेलेको भेजा अथवा, तुमेरी बात-तुमही जानो, हम निश्चयसें नही कह सकते है,

॥ और विहारीलाल आदि दृष्टियें साधुओंको, में, में, करनेवालें लिखके, बकरें बनाये है, सोभी तेरी अत्यंत उन्मत्तता ही तूने दिखाई है, इसमें केवल अनुचितपणा देखकेही लिखना पडा है, नही तो हमारा कोई भी संबंध नही है, परंतु तेरी स्त्री जातिमें तुछता कितनी आगई है ?

॥ फिर, लिखती है कि, वेदव्यास हुयें जब भी-जैनी दृष्टिये ही थे, हम पुछते है कि-तुमेरा गाममें तो घर न था, और सीममें खेत न था, तो पीछे क्या तुम दृष्टियोंने-पातालके, विलमें-वास कियाथा ? जो वेदव्यासके समयमें भी तुमही थे ? लेखतो साध्वी-पणेका और चलन तो चोर चंचलोंका, जूठ बोलना तो बुरा, और जूठका तो पारावार ही नही, तुमेरी गति क्या होगी ॥

॥ फिर, शिवपुराणका-श्लोक, लिखा है-सोभी जुठा, और

( १९४ ) वेदव्यासके-दृढियोंका, विचार.

अर्थ किया है, सो भी-जूठा, जहां देखो उहां जूठ ही जूठ ॥  
देखिये शिवपुराणके श्लोकोंकी हालत, और अर्थ करनेकी  
भी चातुरी

मुंडं मल्लिनवस्त्रं च, कुंडिपात्रसमन्वित ।

दधानं पुंजिकं हस्तं चालयं ते पदे पदे ॥ २ ॥

॥ वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं, सिष्पमाणं मुखे सदा ।

धर्मेति व्याहरंतं तं, नमस्कृत्य स्थितं हरेः ॥ ३ ॥

अब देखिये दूढनीजीके श्लोकके-मुंडं, चाहिये उहां तो  
किया है-मुंड । पुंजिकं हस्ते, चाहिये उहां तो किया है-पुंजिका  
हाले. ॥ २ ॥ । मुखके, स्थानपे-मुख ॥ ३ ॥

॥ अब देखिये अर्थका हाल--पगपग देखके चलें, अर्थात् ओ-  
घेसे-कीडी आदि जंतुओंको, हटाकर-पग रखे। पाठक वर्ग! ऐसा  
कौन जैनका साधु देखाकि, जाहेर रस्ता पर, ओघेसें-पुंज पुंजके,  
पांडको-धरता है ? और कब एसी भगवंतने भी-आज्ञा दीई है ?  
कि जाहेर रस्तेपर-पुंज पुंजके, पग धरो ? क्यों कि-शास्त्रकी तो,  
यह आज्ञा है कि-युग प्रमाण जमीनको देखके-चलना, ( अर्थात्  
चार हाथ जमीन तक-निगा करके चलना ) तो पीछे यह दूढनी,  
कहांसें दूढके लाई कि, जाहिर रस्तेपर भी, ओघेसें-कीडी आदि  
जंतुओंको हटाकर, पग रखे ? यह क्या दया हुईके, दया मूढता ?  
सो पाठकवर्ग ही विचार करें ? ।

अब तिसरा श्लोकके, अर्थमें-देखो-मुखवस्त्रिका करके-ठकते  
हुए सदा मुखको, यहतो ठिक है, परंतु तथा शब्दसें-किसीकारण  
मुखपत्तीको, अलग करें तो, यह तथा शब्दका अर्थ-कैसें होगा ? औ-  
र इहां जाहिर बातका-प्रतिपादनमें, किसीकारणका-प्रयोजनही,

क्याहै, ? और आधाही श्लोकका अर्थ करके-धर्मोति व्याहरंतं इसपदका अर्थतो-कियाही नहीं, क्योंकि-दूढक मतमें, धर्मलाभ, ही देनेके वास्ते नहीं है तो, फिर अर्थही करेंगे क्या ? तो भी दूढनी, अपना दूढक मतको-बेदव्यासतक, पुहचानेका प्रयत्न करती है ? हे दूढनी ऐसे अघटित प्रमाण देती वखते तूं कुच्छभी बिचार करती नहीं है ? तुमजो बने हुये है सो बनेही है, किस वास्ते ऐसे जूठे प्रमाण दके, अपना उपहास्य करातेहो ? जो सत्य है सोई सत्य रहेगा, कुच्छ पीतलका सोना नहीं होजाता है. ३ ॥

दूढनी—पृष्ठ. १७२ ओ. ५ से-निंदा, जूठ, दुवर्चन, आदि सहित, पुस्तक छपनेमें, पाप लगता होगा ? वैशाभश्च उठायके, उत्तरमें लिखती है कि अवश्य लगता है, क्योंकि लिखने वालेका, और वांचने वालेका, अंतःकरण मलीन होनेसे ॥

॥ फिर. पृष्ठ. १७३ ओ. ६ से-अपने साधु स्वभावसे, विचारें कि-निरर्थक, निंदारूप, आत्माको-मलीन करने वाली, पुस्तक बनानेमें, व्यय करेंगे, उतना समय, तत्व के विचार, व, समाधिमें, लगायेंगे । जिससे पवित्रात्मा हो । मौनही श्रेष्ठहै ॥

दोहा-

मूर्खका मुख बंबहै, बोले वचन भुजंग ।

ताकी दारू मौनहै, विष न व्यापे अंग । १ ।

यह समज कर-न लिखे, परंतु वांचतेही-क्रोध आनेसेभी तो, कर्मबंधे ॥

॥ फिर. पृष्ठ, १७४ ओ. २ से-परंतु मेरी तो सब भाइयोंसे, प्रार्थना है कि-न तो ऐसे पुस्तकें छापो, न छपाओ, क्योंकि-जैनकी निंदा करनेको तो-अन्यमतावलंबी ही, बहुत हैं, तुम जैनी ही-परस्पर निंदा, क्यों करते कराते हो ॥

( १९६ ) जूठ आदिकसें—मनेका मलीनताको, विचार,

॥ फिर. ओ. १३ से—विधिपूर्वक, धर्म प्रीतिसे, परस्पर मिलके, शास्त्रार्थ किया करें । मनुष्य जन्मका यहही फल हैकि—सत्या सत्यका, निर्णय करे, इत्यादि । यदि इस पुस्तक के बनानेमें—जानते, अजानते, सूत्र कर्त्ताओ के—अभिप्रायसे, विपरीत लिखा गया हो तो—( मिच्छामि दुकडं )

समीक्षा—पाठकवर्ग ! निंदा, जूठ और दुर्बचन, सहित पुस्तक लिखने वालेको, और वांचने वालेको—अंतःकरण मलीन होनेसें, पाप लगता है, यह बात तो सत्यही है, परंतु हमको तो इस लेखकी लिखने वाली ही, प्रथमयही कार्य करने वाली दिखती है, क्यों कि—जिस जिनेश्वर देवकी—प्रतिमा को, जिनेश्वर सरस्वी मानके, लाखोभक्त, अपना आत्माका मलीनपणा दूर करने को भक्तिभावसें पूजन कर रहै है, उन सर्व पुरुषों का—अंतःकरण मलीन करनेके वास्ते, इस दूंदनीने जान बूजके, कई वर्षोंतक, प्रथम अपना ही अंतःकरण महा मलीनरूप बनाके, यह महा पापका थोथा पोथा रूपकी—रचना किई, तो पिछे इनके जैसी ते दूसरी मलीन अंतःकरणवाली कौन ?

अगर जो यह दूंदनी—महा मलीन अंतःकरण करके जूठा थोथा पोथाकी रचना, करनेकी प्रवृत्ति न करती, तो हमकोभी—हमारा तत्वका विचार, और ध्यान समाधिको—छोडकर, इनका पाप, दूर करनेकी—कोईभी आवश्यकता नहीं रहती, परंतु यह दूंदनीही पापको दूंदती है और लोकोंको—उपदेश देके, अपना साध्वीपणा दिखा रही है ॥

अब इनका साध्वीपणा देखोंकि—प्रथम जिनप्रतिमाकोतो—जड, पाषाण, पहाड,—आदि दुर्बचनसे तो, उच्चार करती है । और जिनशासनके आधारभूत महान् महान् आचार्यों कोतो, हिंसाधर्मों



कभीतो मिथ्यावादी । कभीतो कहतीहै कि--अनघटित गपौड़े, मारनेवाले । और कभीतो-सावद्याचार्य । और कभीतो-स्थिलाचारी । और कभीतो-लाठापंथी ॥ जो मनमें आवे सोही बकवाद करनेको अपना मुखको तो, बंवाही-वनारखा है, और दूसरोंको सूखे बनानेका, प्रयत्न करती है । क्या पर्वत तनयाका स्वरूपको धारणकरके, सब दुनियाका-उद्धार करनेको, जन्मी पड़ी है ? जो सर्व आचार्योंकोभी, कुछ नहीं समजके-जो मनमें आवे सोही बक रही है ! अरे दूढ़नी बिचार करके,

जैनशासनके आधारभूत, महान् २ आचार्य ते कौन ? और तू एक तुच्छ स्त्रीकीजाति मात्र ते कौन ? क्यों अत्यंत बहकी हुई अपना तुच्छपणाको प्रगटकर रही है ? तेरी स्त्रीजातिकी बुद्धि ते कितनी ? क्या उन महान् आचार्योंकी-बरोबरी करनेको जाती है ? बसकर तेरी चातुरी ।

फिर, लिखती है कि-जैनकी निंदाकरने वालेतो, अन्यमता-बलंबी ही-बहुत है, तुम जैनीही परस्पर-निंदा क्यों-करते, कराते-हो ॥ अगर जो तुम दूढ़कों-अपने आप, जैनरूप समजते होतें तो, प्रथम तो यह पापका पोथाकोही प्रकट करवाते नहीं, अगर करवा या तोभी-जैनके महा शत्रुभूत बनके,जिस आर्यसमाजियोंने-जैन समाजा की पोथी प्रकटकरके, तीर्थकरोंकी, गणधरोंकी, और महान् आचार्योंकी, निंदा किईथी सो आर्य समाजियों, सरकार मारफते, दंडकापात्र भी बनचूके थें, और उनका पुस्तक भी रद्द करवाया गयाथा, सो तो जग जाहिरपणे ही जैनके वैरी हो चुके थें उनकी पाससे जूटी प्रशंसापत्रिकाओं लिखवाकर-कबीभी अपनी थोथी पोथीमें, प्रकट करवाते नहीं ? परंतु बिना गुरुके तुम

दूढ़कोंको, कोई भी बातकी लज्जाही नहीं है तो, हम तुमको कहेंगे ही क्या ?

॥ फिर लिखती है कि-विधिपूर्वक परस्पर मिलके, सत्यासत्यका निर्णय करें, यह तेरा कहना तो ठीक ही है परंतु जो मनमे आवे सोही, आधार बिना, बकवाद करनेको तो, तुमेरा मुख-बंबा रूप बना हुवा है, तो पिछे निर्णय, किस विधसे करसकेंगे ! अगर जो विधाताने—तुमको, सत्यासत्यका विचार करनेको, मति दिई होवें तो, यह हमारी किई हुई, समीक्षासैं भी, करसकेंगे ! और यह भी मालूम हो जायगा कि—तुमको सूत्र सिद्धांतका भी कितना ज्ञान है ? परंतु तुमको तो केवल हठ ही प्यारा मालूम होता है ? नहीं तो गणधरोका वचनसे-विपरीतही, क्यों लिखते ? ॥

॥ फिर लिखती है कि इस पुस्तकमें, जानते अजानते, सूत्र कर्त्ता-ओंके अभिप्रायसे-विपरीत लिखा गया हो तो, मिछामि दुक्कड ॥ बाहरे तुमेरा मिछामि दुक्कड वाह ! क्या जानके, जो तूने-१ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, और ४ भाव, यह चार निक्षेप मात्र है-उनका सूत्रके अभिप्राय बिना आठ रूपसे लिखा है उनका ? अथवा चैत्य शब्दसे-जिनमंदिर, और जिनप्रतिमाका, साक्षात् पाठ है उनको टीका, टब्बाकारों से भी विपरीत लिखा उनका ? अथवा-द्रौपदी परम श्राविकाको जिन प्रतिमाके स्थानमें-कामदेवकी प्रतिमा पूजनका कलंक दिया उनका ? अथवा महावीर स्वामीके परम श्रावकोका-कयबालि कम्माके पाठसैं, जिन मूर्त्तिकी भक्तिको छुड-वायके दररोज पितर-दादेयां-भूतादिक मिथ्यात्वी देवोंकी पूजाका कलंक चढाया उनका ? अथवा-अंबड श्रावकका जिन मूर्त्तिके वंदनादिकमें गपड सपड अर्थ करके दिखाया उनका ? अथवा

जंघाचारण मुनियोंकी पाससें शाश्वती जिन पतिमाकी स्तुतिके स्थानमें नंदीश्वर द्वीपादिकमेभी ज्ञानना ढेरकी स्तुति करवाई उनका ? अबमिछामि दुकडं देती है तो क्या यह जानके किया हुवा सूत्रोंका उत्थापनारूप अघोर पापसे, एक मिछामि दुकड मात्रसे छुटसकेगी ! जो लिखती है कि, जानते किया हुवाकाभी मिछामि दुकडं ॥

हांजो कोई अजानपणे, दृष्टि दोष हुवा होतो, पश्चात्ताप करने सेभी छुटसके, परंतु तूतो टीका, टव्वाकार, विगरे सर्वमहापुरुषोंसे, विपरीतपणे तो लेखलिखनेको तत्पर हुई है, तो पीछे एक मिछामि-दुकडदेने मात्रसे कैसे छुटसकेगी ? ॥ और यह तेरा उत्सूत्र प्ररूपण-रूप लेखको, अनुमोदन देनेवालेंभी तेरेहीसाथी क्योंन होंगे? क्यों-कि सूत्रका एकभी अक्षरका लोपकरने वालोको, अनंत संसारी कहा हुवा है, ऐसा मुखसें तो तुमभी कहतेहो और तुमतो सैकडें शास्त्रोंका, और सैकडों पृष्ठोपर-मूल सूत्रोंका लेखकोभी, और हजरो महान् जैनाचार्योंकाभी-अनादर करके, अपना मूढ पंथकी सिद्धि करनेके वास्ते-तत्पर हुयेहो, तो पीछें कल्याणका मार्ग ते कहांसें हाथ लगेगा ? हमने जो यह कहा है सोकुछ-द्वेषभावसें नहीं कहाहै, जो शास्त्रकारोंका अभिप्रायसें मालूम हुवा सोही कहा है ॥ इत्यलमधिकेन ॥

## ॥ अब ग्रंथकी पूर्णा हूति ॥

॥ किं विश्वोपकृतिक्षमोद्यममयीं किं पुण्यपेटीमयी, किं वा-त्सल्यमयी किमुत्सवमयी पावित्र्यपिंडीमयी । किं कल्पद्रुमयी म-रुन्मणिमयी किं काम दोग्धीमयी, मूर्त्तिस्ते मम नाथ कां हृदि गता धत्ते न रूपश्रियं ॥ १ ॥

अर्थ—हे नाथ यह तुमेरी अलोकिक भव्यस्वरूपकी—ज्ञात मूर्ति हैसो, क्या विश्व जे जगतहै उनका उपकार करनेका सामर्थ्यवाली है ? अथवा क्या जगतका पुण्यकी रक्षा करनेके वास्ते एक पेट्टीके स्वरूपकी है ? अथवा क्या जगतकी सर्व प्रकारसे वत्सल्यताके करनेका स्वरूपकी है ? अथवा क्या जगतको पवित्रता करनेका एक पिंडके स्वरूपकी है ? अथवा क्या जगतका दालिद्र दूर करनेके वास्ते कल्प वृक्षके स्वरूपकी है ? अथवा क्या जगतका चिंतित अर्थकी संपत्तिको देनेके वास्ते चिंतामणि रत्नके स्वरूपकी है ? अथवा क्या जगतको इच्छित वस्तुकी प्राप्ति करनेके वास्ते कामधेनुके स्वरूपकी है ? हे भगवन् मेरा हृदयमें प्रकाशमान हुई किस किस रूपकी लक्ष्मीको धारण नहीं करती है ? अर्थात् जगतमें लोकोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाली जो जो सिद्ध वस्तुओं है उनकाही स्वरूपसे प्रगटपणे भासमान हो रही है ॥ १ ॥

॥ इति श्री विजयानंद सूरीश्वर लघुशिष्येन अमरविजयेन सत्यार्थ चंद्रोदयजैनोत्तररूपं, दूढक हृदयनेत्रांजनं संयोजितं तस्य प्रथम विभाग स्वरूपं समाप्तं ॥

॥ इति दूढक हृदयनेत्रांजनस्य प्रथमो विभागः समाप्तः ॥

॥ अथ ग्रंथका तात्पर्य प्रकाशक दुहा बावनी ॥

लिख्यो लखणा निखेपको, फिर लिख्यो है पाठ ।  
ढूँढनिने उस पाठमें, किइ हैं नाठा नाठ ॥ १ ॥

तात्पर्य—हमने जो यह—नेत्रांजन ग्रंथ, बनाया है, उसमें प्रथम मंगलाचरण लिखा है । और ग्रंथ करनेका प्रयोजन लिखके, पिछे पृष्ठ. २ से १४ तक—चार निक्षेपका लक्षणके—चार श्लोक, लिखे है । पिछे पृष्ठ. १७ से २६ तक—श्री अनुयोगद्वार सूत्रका पाठ, लिखा है । पिछे पृष्ठ. २६ से ३० तक—ढूँढनीजीके तरफका—लक्षण, और त्रुटक सूत्रका पाठ, लिखा है ॥ १ ॥

अरस परस के मेलसें, किई समीचासार ।

जूठ कदाग्रह छोडके, चतुर करोनि विचार ॥ २ ॥

तात्पर्य—ढूँढनीजीका लेख, और सिद्धांतकारोंका लेख, इन दोनोंका अरस परसके मेलसें—पृष्ठ. ३१ से ४१ तक—चार निक्षेपके विषयमें, विचार करके दिखलाया है । उसका विचार—हे चतुर पुरुषो, तुम अपने आप करके देखो, तुमको भी यथा योग्य मालूम हो जायगा ॥ २ ॥

चार निखेप हि सूत्रमें, कहें ढूँढनी आठ ।

केवल किई कुतर्क हैं, नहीं सूत्रमें पाठ ॥ ३ ॥

तात्पर्य—एकैक वस्तुमें, चार चार निक्षेप, सामान्यपणमें करनेका, सिद्धांत कारोंने कहा है, परंतु उसका परमार्थको—समझे बिना, ढूँढनीजीने स्व कल्पनासें, दो दो विभाग करके आठ वि-

कल्प, खडे किये है । सो केवल कुतर्क ही किई है । परंतु जैन सिद्धांतोंमें कोई ऐसा पाठ नहीं है । देखो इसका विचार पृष्ठ. ४१ से ४७ तक ॥ ३ ॥

तीर्थंकर भगवानमें, कल्पित किया निखेप ।

उलट तत्त्व कथने करी, किया कर्मका लेप ॥ ४ ॥

तात्पर्य—दृढनीजीने ऋषभदेव भगवानमें भी-चार निक्षेप, कल्पित दिखाके, प्रथमके त्रण निक्षेप-निरर्थक, और उपयोग बिना के ही ठहराये है । परंतु चार निक्षेपमेंसे—एक भी निक्षेप निरर्थक नहीं है । यह तो विपरीत लेखको लिखके दृढनीजीने—अपना आ-त्माको, कर्मसें लेपित किया है । देखो इसका विचार. नेत्रां. पृष्ठ. ४७ से ५२ तक ॥ ४ ॥

मूर्तिमेंहि भगवानको, करावें चार निखेप ।

वस्तु भिन्न जानें बिना, भया हि चित्त विखेप ॥ ५ ॥

तात्पर्य—दृढनीजी भगवानकी, आकृति मात्रमें ही, भगवानके—चारों निक्षेप, हमारी पाससें करानेको चाहती है, परंतु इतना विचार नहीं कर सकी है कि-मूर्तिमें, पाषाण रूपकी वस्तु ही-भिन्न प्रकारसें, दिख रही है ॥ तैसें ही इंद्रसें—गूजजरका पुत्र रूप वस्तु भी, अलग स्वरूपकी ही है ॥ और खानेकी मिशरीसें-कन्यारूप वस्तु भी, अलग है ॥ इस वास्ते इन सब वस्तुओंका-चार चार निक्षेप भी, अलग २ स्वरूपसें ही, किये जाते है । देखो इस बातका विचार, नेत्रां. पृष्ठ. १३ से ७१ तक ॥ ५ ॥

मूर्ति स्त्रीकी देखके, जगें कामिको काम ।

जिन मूर्ति स्युं क्यौं नहीं, भक्तको भक्ति ठाम ॥ ६ ॥

तात्पर्य—जब स्त्रीकी मूर्तिसें, कामी पुरुषोंको—काम जागता है, तो पिछे—तीर्थकर देवके भक्तोंको, तीर्थकरोंकी—मूर्तियांको देखके, भक्तिभाव, क्यों न होगा ? अपितु अवश्य मेव होनाही चाहिये । देखो इस बातका विचार नेत्रां. पृष्ठ. ७१ सें ७२ तक ॥६॥

मूर्ति स्युं ज्यादा समज, नामसें नहि तादृश ।

तो तीर्थकर मूर्तिसें, टूँडकको क्यों रीस ॥ ७ ॥

तात्पर्य—टूँडनीजीने लिखा है कि—नाम सुननेकी अपेक्षा, आकार देखनेसें—ज्यादा, और जल्दी, समज आती है । तो पिछे तीर्थकरोंका—नाम मात्रको श्रवण करनेसें, आनंदित होनेवाले तीर्थकरोंके भक्तोंको, तीर्थकरोंकी ही भव्य मूर्तियांको देखनेसें, क्यों रीस आती है ? । क्यों कि—पशु, पंखी भी—आकार देखनेसें, विशेषपणे ही—समजुति, करलेते हैं । तो पिछे जो मनुष्यरूप होके, समजे नहीं, उनको क्या कहना ? । देखो इसका विचार. नेत्रां. पृष्ठ. ७२ सें ७४ तक ॥ ७ ॥

अपनी स्त्रीकी मूर्तिसें, लाज्यो मल्लदिन तेह ।

जिन मूर्तिसें हि टूँडको, न धरें किंचित नेह ॥ ८ ॥

तात्पर्य—टूँडनीजीने—लिखा है कि, मल्लदिन कुमारने, चित्रशाळीमें मल्लि कुमारीकी मूर्तिको देखके लज्जा पाई, और अदब उठाया । तो पिछे वीतराग देवके भक्त होके, जो वीतरागी मूर्तिसें—प्रेम, नहीं करते हैं, और अदबभी नहीं उठाते हैं, उनको तीर्थकरों के—भक्त, किस प्रकारसें कहेंगे ? । देखो इसका विचार. नेत्रां. पृ. ७४ सें ७६ तक ॥ ८ ॥

मुद्रिकामें जिन मूर्तिकु, राखी दरसन काज ।

करणी वज्रकरणातणी, ते तो कहैं अकाज ॥ ९ ॥

तात्पर्य—सम्पन्न धर्मका पालन करनेके वास्ते—व्रज करण राजा, अपनी अंगूठीमें—बारमा वासु पूज्य स्वामी तीर्थकरकी, मूर्त्तिको रखके—हमेशां दर्शन करता रहा, उस बातमें दूढनीजी कहती है कि—करनेके योग्य नहीं। तो क्या दूढनीजीने—पितर, दा देयां, भूत, यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी क्रूर मूर्त्तियांकी पूजा कराके, तीर्थकर देवोंकी—निन्दा करनी, योग्य समजी ?। फिरभी एक कुतर्क कीइ है कि—मूर्त्तिके आगे, मुकद्दमें—नहीं हो सकते है। तो पिछे दूढनीजी भगवानका—नाम मात्रके आगे, मुकद्दमें—कैसे चलाती है ?। क्या तीर्थकरोंका नामको जपनेका निरर्थक मानती है ? ॥ देखो. नेत्रां. ७६ से ७७ तक ॥ ९ ॥

मूर्त्ति मित्रकी देखकर, दूढक जनको प्रेम ।

देखी प्रभुकी मूर्त्तिको, क्यों बंदनमें वैम ॥ १० ॥

तात्पर्य—दूढनीजीने लिखा है कि—मित्रको मूर्त्तिको देखके—प्रेम, जागता है। परंतु भगवानकी—मूर्त्तिको देखके तो, कोई खुश हो जाय तो हो जाय। परंतु भगवानकी पूजा कभी नहीं करनी—देखो. नेत्रां. पृ. ७८ से ८१ तक ॥ परंतु सत्यार्थ. पृ. १२४ से १२६ तक—कयब लिकम्मा, के पाठमें, वीर भगवानके परम श्रावकोंकी पाससें—कोईभी प्रकारका लाभ के कारण बिना, तीर्थकर भगवानके बदलेमें—पितर, भूतादिकोंकी क्रूर मूर्त्तियां पूजानेको तत्पर हुई ॥ और सत्यार्थ. पृ. ७३ में—धन पुत्रादिककी लालच देके, यक्षादिकोंकी—भयंकर मूर्त्तियांको, पूजानेको तत्पर हुई ॥ कैसी कैसी अपूर्व चातुरी प्रगट करके दिखलाती है ? ॥ १० ॥

गौ गौ केहि पुकारसें, मिलावें दुध मलाइ ।

गौकी मूर्त्ति स्युं नहीं, दूढनीने कल्लुपाइ ॥ ११ ॥



तात्पर्य—दुधकी इछा वालेको जैसे पथरकी गौसें, दुध न मिलेगा । तैसें ही-गौ गौ के पुकार करने मात्रसें भी, दुध न मिलेगा । तो पिछे दूढनीजी भगवान् २ ऐसें, नाम मात्रका पुकार करनेसें भी-अपना कल्याण, किस प्रकारसें, कर सकेगी ? ॥ तर्क-अजी नामके अक्षरोंमें, हमारा-भाव, मिला लेते है । हम पुछते है कि-नामसेंभी विशेषण, तीर्थकरोंके स्वरूपका बोधको करानेवाली, बीतरामी मूर्तिमें से-तुमेरा भाव, कहां भग जाता है ? क्या-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिकोंकी-भयंकर स्वरूपकी मूर्तिमें, फस जाता है ? । देखो. नेत्रां. पृ. ८१ से ८४ तक ॥ ११ ॥

मानो किस विध भूलसें, अखरसें हुये ज्ञान ।

दूढनी हमको कहत है, द्वेषसु बनी बेभान ॥ १२ ॥

तात्पर्य—दूढनीजीका मानना यह है कि-साक्षात् स्वरूपका बोधको करानेवाली, तीर्थकरोंकी तो-मूर्तिसें । और ऋषभ देवादिक-नामके अक्षरों सेंभी, तीर्थकरोंका-बोध, होता नहीं है । तो क्या हमारे दूढक भाइयांको-तीर्थकर भगवान, साक्षात् आके मिलजाते है ? । अथवा एक अपेक्षासें दूढनीजीका कथन कुछ सत्यभी मालूम होता है, क्योंकि-गुरुज्ञान विनाके, हमारे दूढक भाइयां को-अपने आप जैन सूत्रोंको वाचनेसें, विपरीत ही विपरीत-ज्ञान होता है । देखो. नेत्रां० पृ. ८४ से ८८ तक ॥ १२ ॥

पंडितोंसें सुन लीई, देखि सूतर माही ।

तोभी दूढनी कहत है, मूर्ति पूजा कछु नाहि ॥ १३ ॥

तात्पर्य—दूढनीजीने ही-जिन मूर्तिका पूजन, पंडितोंसें सुना । और जैन सिद्धांतोंमें-लिखा हुआ भी, देखा । तोभी दूढनीजी

कहती है कि—मूर्ति पूजाका, सूत्रों में जिकर ही नहीं। क्या ज्ञान-  
की खूबी है ? देखो नेत्रां० पृ. ८८ से ८९ तक ॥ १३ ॥

दो अक्षरके नाममें, दिखें प्रत्यक्ष देव ।

नहीं तिनकी मूर्तिमें, कैसी पडी कुटेव ॥ १४ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ५० में—भगवानके दो अक्षरका—नाम  
मात्रको, गुणा कर्ष कह करके, उममें दूढनीजी—भावको. मिलानेको-  
कहती है । तो पिछे तीर्थकरों के स्वरूपका—तादृश बोधको कराने  
वाली, तीर्थकरोंकी भव्य स्वरूपकी मूर्तियां, लाखोकी गिनतीसें,  
विद्यमान होतेहुयें भी उनको छोडकरके, दूढनीजीका—भाव, मिथ्या  
त्वी यक्षादिकोंकी—क्रूर स्वभावकी मूर्तियांमें क्यों फसजाता है ? ।  
क्या तीर्थकरोंके साथ, हमारे दूढक भाइयां को—कोइ पूर्वभवका बैर  
जागदा है ? ॥ १४ ॥

श्रुति मात्र हि जिन मूर्तिमें, दूढनी करें निषेध ।

यक्षादिकमें आदरे, यही बडा हम खेद ॥ १५ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ६७ में—दूढनीजी, मूर्तिमें—श्रुति मात्रभी  
लगानेका, निषेध करती है । और छष्ट. ७३ में—पूर्णपद्म यक्षादि-  
कोंकी, मूर्ति भोंका । और पृष्ट. १२६ में—पितर, दादेयां, भूता-  
दिकोंकी—मूर्तिओं का, फल फूलादिक—महा आरंभसें, पूजा  
को कराती हुई, सब कुछ करानेको तत्पर हुई है । दूढनीजीका इस  
लेखमें, हमको यह विचार आता है कि—भाजतक हमारे दूढकभा-  
इभो, जो जैनधर्मसें, आधेभ्रष्ट हो गये हैं, उनको सर्वथा प्रकारसें-  
भ्रष्ट करनेके वास्ते, दूढनीजीने—इस लेखको, लिखा है ! क्योंकि  
जो पुरुष, जिस देवताकी मूर्तिका पूजन करेगा, सो पुरुष उस दे-  
वताका—१नामभी जपेगा, और उस २मूर्तिमें—अपनी ३श्रुतिभी,

लगावेगा, और साथमें—अपना ऋभावभी, मिलावेगा । तबही अपना इच्छित फलको—मिलावेगा, यह बाततो अनुभवसे सिद्ध रूपही है ॥ हमारे दूढ़कभाइओ, जैनधर्मका सनातनपणेका तो दावा करनेको जाते है । और तीर्थकरोंकी भक्तिको—सर्वथा प्रकारसे छुडवायके, केवल यक्षादिकोंकी ही सर्वप्रकारसे भक्ति करानेको, तत्पर होते है ? अहो चिंतामणि रत्न तुल्य, जो वीतराग देवकी भक्ति है, उनको छुडवायके—काच तुल्य जो यक्षादिक देवताओ है, उनोंकी तुल्यभक्तिमें, फसाकरके, भोले श्रावकोंको—जैन धर्मसे भ्रष्ट करते है ? यही हमको बडाखेद होता है ॥ १५ ॥

धन पुत्रादिक कारणो, दिखे मूर्त्तिमें देव ॥

दिसें नहीं जिन मूर्त्तिमें, निदे जिनवर सेव ॥ १६ ॥

तात्पर्य—केवल संसारकी ही, वृद्धिका कारण रूप—जो धन पुत्रादिक है उसको लेनेके वास्ते तो हमारे दूढ़कभाइयांको—मिथ्यात्वी यक्षादिक देवोंकी, भयंकर स्वरूपकी—मूर्त्तियांमें, साक्षात्पणे देव दिखपडता है । इस वास्ते तो, उनोंकी पथरकी मूर्त्तियांकोभी—पूजानेको, तत्पर होजाते है ? और वीर भगवानके परम श्रावकोंकी पाससे—वितर, दादेयां, भूतादिकोंकी, मूर्त्तियांकी—प्रयोजनविनाभी पूजा करानेको, तत्पर होजाते है ? मात्र वीतरागी ही—मूर्त्तिको देखके, तन मनमें जलते हुये—निंदाही करनेको, तत्पर होजाते है । नजाने किस प्रकारका, अघोर पापका—उद्य, हुवा होगा ? ॥ १६ ॥

भक्त बनें अरिहंतके, उसी मूर्त्तिसें द्वेष ।

यक्षादिककी पूजना, करत विचार न लेश ॥ १७ ॥

तात्पर्य—हमारे दूढ़कभाइओ, तीर्थकरोंके तो परम भक्त बन-

नेको जाते हे । और तीर्थकरोंकीही-मूर्त्तिसें, द्वेषभाव करते है । और जो मिथ्यात्वी देवताओंकी क्रूर मूर्त्तियां है, उनकी पूजा-महा आरंभ के साथ, करते हुये, और करावते हुयेको, एक लेश मात्र भी—विचार नहीं आता है । तो अब उनोंको ( अर्थात् हमारे दू-ढक भाइयांको ) किस प्रकारका—विपरीत बोध हुवा, समजना ? सो कुछ समज्या नहीं जाता है ॥

नाम सु मूरतिमें कहैं, दूढनी बोध विशेष ।

भाव मिलावे नाममें, करत मूर्त्तिसें द्वेष ॥ १८ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृष्ठ. ३६ में, दूढनीजी लिखती है कि-नाम सुननेकी अपेक्षा, आकार ( मूर्त्ति ) देखनेसे-ज्यादा, और जल्दी, समज आती है । ऐसा प्रगटपणे लिखके, तीर्थकरोंका केवल नाम मात्रमें ही भाव मिलाके-नामको, जपाती है । और यक्षादिक मिथ्यात्वी क्रूर देवताओंका, नामको भी-भाव मिलाके जपाती है ? । और उनोंकी-मूर्त्तियां भी, भावके साथ, पूजाती है ? । और उनोंकी-क्रूर मूर्त्तियांमें, श्रुति लगानेका भी—सिद्ध करके दिखलाती है ? । केवल तीर्थकरोंकी ही-भंग्य मूर्त्तियांको, देखके, द्वेषसे-प्रज्वलित हो जाती है । हमारे दूढक भाइयांको, हमने किसके—भक्त, समजने ? ॥ १८ ॥

मूर्त्ति आगे न मुकदमें, कहत दूढनी एह ।

नाम मात्रसें मुकदमें, कैसें चलावें तेह ॥ १९ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ४२ में, दूढनीजीने, लिखा है कि-मूर्त्तिके आगे, मुकदमें—नहीं हो सकते है । अर्थात् भगवानकी—मूर्त्तिके आगे, अपना पापादिककी—आ लोचना, नहीं हो सकती है ।

तो पिछे हमारे ढूढकभाइओ, तीर्थकरोका नामके—अक्षरोका, उच्चारण मात्रसें—अपने मुकद्दमें, कैसे चलाते है ? । अर्थात् अपना पापकी आलोचना कैसे करते है ? । जैसे—मूर्त्तिमें, साक्षात् तीर्थकरो—नहीं है, तैसे ही—नामके दो अक्षर मात्रमें भी, साक्षात्पणे—तीर्थकरो, नहीं है ? ।

जब नाम मात्रसें—मुकद्दमा चलानेका, सिद्ध होगा । तब तो उनकी—मूर्त्तिके आगे, विशेषपणे ही मुकद्दमा चलानेका, सिद्ध होगा । जैसे ढूढनीजीने, यक्षादिकोंका नामकी—उपेक्षा करके, उनोंकी मूर्त्तियांकी आगे—मार्थना कराके, धन पुत्रादिक दिवायाथा । तैसें जिनमूर्त्तिके आगे, विशेषपणे—मुकद्दमा चलानेका, सिद्ध क्यों न होगा ? ।

इसमें तो हमारे ढूढकभाइयांकी—मूढताके शिवाय, दूसरा कुछ भी विशेष नहीं है ॥ १९ ॥

यत्नादिकने पूजतां, ढूढक स्वारथ सिद्ध ।

तीर्थकरकी पूजना, करतां धर्म विरुद्ध ॥ २० ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ७३ में, ढूढनीजीने लिखा है कि—यक्षादिकोंकी, जडरूप पथरकी मूर्त्ति पूजासें—स्वार्थकी सिद्धि होती है ॥ तो पिछे जिस तीर्थकरोके—एक नाम मात्रका, अक्षरोको उच्चारण करनेसें, हम हमारा—आत्माका, स्वार्थकी सिद्धि, मानते है । उनोंकी मूर्त्ति पूजासें, हमारा आत्माका—स्वार्थकी सिद्धि, क्यों न होगी ? तर्क—साधु पूजा क्यों नहीं करते है ? । उत्तर—साधु भी तो सदा भाव पूजा, करते ही है । मात्र—द्रव्यका अभाव होनेसें ही, द्रव्य पूजा करनेकी, मना किई गई है ॥ २० ॥

मूर्तिको मूर्ति हम कहैं, नहि करें नमस्कार ।  
 तीर्थकर तामें नहीं, टूटनी कहत विचार ॥ २१ ॥  
 नामके अक्षर मात्रसु, करत हो नमस्कार ।  
 तीर्थकर तामें दिसैं, किस विध तुमको यार ? ॥ २२ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. १७ में, टूटनीजी लिखती है कि-मूर्तिमें, भगवान नहीं है, यह तो अज्ञानीयोंने भगवान् कल्प रखा है, हम तो भगवानका-आकार, कहदेवे, परंतु-नमस्कार तो, नहीं करें, और लड्डु पेहे, नहीं धरें ॥ २१ ॥

इसमें हमारा प्रश्न—हे टूटकभाइओ ! ऋषभादिक नाम मात्रका, उच्चारण करके—तुम भी दररोज ही, नमस्कार करते हो । उस अक्षर मात्रमें—तीर्थकर भगवान, तुमको-किस प्रकारसे, दिख पडा ? ।

जब तुमको—नाम मात्रमें ही, देव दिख पडते हैं, तो पिछे टूटनीजीने यक्षादिक देवोंका, नाम मात्रको—पढायके, हमारे टूटकभाइयांको—धन पुत्रादिक, क्यों न दिवाये ? किस वास्ते यक्षादिकोंकी पथरकी मूर्तियांके आगे, उनोंका मध्या—चारंवार, घिसाती हुई, और महारंभको करवाती हुई, धन पुत्रादिक लेनेका सिखाती है ? ॥ २२ ॥

नमस्कार करें नामसु, तासु मिलावे भाव ।

विशेष बोधकी मूर्तिसु क्यों ? भगजावे भाव ॥ २३ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. १० । ११ में, टूटनीजी-तीर्थकरोंका, नाम मात्रमें ही-अपना भाव मिलानेका, कहकर—तीर्थकरोंको,

नमस्कार—कराती है । और सत्यार्थ. पृ. ३६ में, लिखती है कि हां हां नाम सुननेकी, अपेक्षा-आकार देखनेसें, ज्यादा—और जल्दी, समज आती है ।

ऐसा लिखके परमपूज्य तीर्थकरोंकी भव्य मूर्तिके साथ—द्वेष भाव करके, उनोंका केवल—नाम मात्रमें ही, भाव मिलानेको—तत्पर हुई । और यक्षादिक महा मिथ्यात्वी देवोंकी, भयंकर मूर्ति है उसमें ही—हमारे दूढकभाइयांको भाव मिलानेका दिखाके, पूजा-नेको—तत्पर हुई ? । हे दूढकभाइओ ? अपना परमपूज्य तीर्थ-कर भगवानकी, भव्य मूर्तिमेंसें—तुमेरा भाव, क्यों भग जाता है ? उस बातका थोडासा तो-खयाल करके, देखो ? ॥ २३ ॥

अनेक वस्तुका होत है, नाम तो एक प्रकार ।

स्थिर कहां मन होत है, ताको करो विचार ॥ २४ ॥

तात्पर्य—हे दूढक भाइओ, थोडासा एक क्षणभर विचार करो कि—ऋषभ देवादिक—नाम तो, एकही है, और—सत्यार्थ. पृ. १५ में, दूढनीजीने—पुरुष, पशु, पंखी, स्थंभ, आदि—अनेक वस्तुओंमें, रख-नेका लिखा है । तो अब ऋषभ देवादिक—नाम मात्रका, उच्चारण करनेसें—तुमेरा मन, क्या पुरुषमें जाके, स्थिर होगा ? । अथवा पशुमें, वा, पंखीमें, कहां जाके स्थिर होगा ? उस बातका खयाल करो ? ॥ २४ ॥

समव सरणमें होत है, भाव तुम्हारा स्थिर ।

सोही आकृति मूर्तिमें, करो विचार तुम धीर ? ॥ २५ ॥

तात्पर्य—हे धीर पुरुषो ! विचार करो कि, ऋषभ देवादिक—नामका, उच्चारण करनेसें, न तो—तुमेरा मन, पुरुषमें जाके—मिलेगा,

और न तो-पशुमें, न तो-पंखीमें, और न तो-स्थंभादिकमें, जाके मिलेगा । सो तुमेरा मन है सो तीर्थकर भगवानकी इच्छाको करता हुवा तीर्थकरोंके समवसरणमें ही, जाके मिलेगा । उहांपर तो-जो यह विशेष बोधको करानेवाली, तीर्थकरोंकी-भव्य मूर्तियां है, सो ही तुमको-दिखनेवाली है । परंतु तीर्थकर भगवान के-नामका जाप करनेसे, तुमको तीर्थकरोंकी-आकृति के शिवाय, दूसरा कुछ भी तुमेरे दिखनेमें आनेवाला नहीं है । किस वास्ते तीर्थकरों की-भव्य मूर्तिकी भक्तिको छोड के, और-मिथ्यात्वी क्रूर देवताओंकी, भक्ति के वश हो के-अपना आत्माको, अधोर संसारका दुःख में डालते हो ? अबी भी क्षणभर सोचो ? ॥ २५ ॥

तीर्थकर के भक्तको, तीर्थकरका ज्ञान ।

नामको सुनते होत है, नहीं म्लेच्छको भान ॥ २६ ॥

तात्पर्य-देखो कि-ऋषभादिक नामका, श्रवण करनेसे, अथवा उच्चारण करनेसे, जो तीर्थकरों के भक्त होंगे सोही, समवसरणमें रही हुई आकृतिका, ( अर्थात् मूर्त्तिका ) ज्ञान करेगा । परंतु म्लेच्छ होगा सो तो, समवसरणमें रही हुई-तीर्थकरों की आकृतिका, विचार कत्री भी न करेगा । सो तो दूंदनीजीने दिखाया हुवा-पुरुष, पशु, पंखी, स्थंभादिक-वस्तुओंमेंसे, जिसको जानता होगा, उसीकी ही-आकृतिमें, अपना भाव मिलावेगा ? । किस वास्ते तीर्थकर भगवानकी-भव्य मूर्त्ति के विषयमें, जूठी कुतर्कों करके-अपना नाश, कर लेते हो ? ॥ २६ ॥

नाम गोत्रका श्रवणसे, बडाहि लाभकी आश ।

भक्त करे भक्तिवसे, तो क्यौं मूर्त्तिसे त्रास ॥ २७ ॥

तात्पर्य-देखो कि, सत्यार्थ. पृ. १५२-१५३ में, दूंदनीजी-



ने-भगवती आदि अनेक-सूत्रोंकी, साक्षी दे के लिखा है कि-  
महावीर स्वामिजीका, नाम गौत्र-मुननेसें ही, महा फल है । तो  
प्रत्यक्ष सेवा भक्ति करनेका जो फल है सो, क्या वर्णन करु ॥

हे दूढकभाइयो, इहांपर थोडासा ख्याल करोकि-तीर्थकरों-  
का-जो नाम, और गोत्र हैसो, आजतक लाखो बलकन करोडो-  
ही-सत्रियां के कुलमें दाखल होताही आया है । तोभी तीर्थकरोंके  
भक्त है सोतो उनोंका-नाम, और गोत्र, श्रवण मात्रसें ही, ती-  
र्थकरोंकी-आकृतिमें, भक्तिके बससें लीन होके, आनंदित हुवा-  
महाफलको ही प्राप्त कर लेता है । तो पिछे साक्षात्पणे-तीर्थकरों-  
की आकृतिका बोधकों कराने वाली, तीर्थकरोंकीही-भव्य मूर्त्ति-  
सें, हे दूढकभाइओ-तुमको किस कारणसें त्रास होता है ? ।

तुम कहोगेकि-फलफूलादिककी पूजा देखके, त्रास होता है ।  
सोभी तुमेरा कथन योग्य नहीं है । क्योंकि-तुमेरी स्वामिनीजी  
तो-वीर भगवानके परम श्रावकोंकी पाससेंभी, फलफूलादिककी  
विधिसे-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक जो मिथ्यात्वी देवो है,  
उनोंकी-पथथरसें बनी हुई मूर्त्तिका, पूजन-दररोज, करनेको त-  
त्पर हुई है । देखो. सत्यार्थ. पृष्ठ. १२६ में ॥ और-तुमको धन  
पुत्रादिककी लालचदेके, मोगरपाणी आदि यक्षोंकी-कूर मूर्त्तियां-  
की, फलफूलादिकसें-पूजा करानेको तो, अलगपणेही-उद्यत हुई है।  
देखो. सत्यार्थ. पृ. ७३ में ॥ ते दोनों प्रकारकी-भयंकर मूर्त्तियां-  
का, पूजन करानेसें, न तो तुमेरी स्वामिनीजीको त्रास हुवा । और  
न तो तुमको-पूजनेसेंभी त्रास हुवा । तो पिछे-वीतराग देवकी  
भव्य मूर्त्तिका, पूजनसें तुमको-क्यों त्रास होता है ? । क्या कोई  
संसारकी अधिकता रही हुई है ? । थोडासा तो सोच करो ? क्या  
केवल मूढ बनजाते हो ? ॥ २७ ॥

नामादिकसें वस्तुका, वस्तुहि तत्त्व विचार ।

नहीं नामादिक तत्त्वहै, ते तो भिन्न प्रकार ॥ २८ ॥

तात्पर्य—अब हम एक दुहामें, किंचित् तात्पर्य कहति है कि—न तो ऋषभादिक नामोंके, अक्षरोंमें साक्षात्पणे तीर्थकर भगवान् बैठे हैं, तोभी इहां परतो दूंदनीजी—अपना भाव मिलानेका, कहती है । और तीर्थकरोंका—गुणादिकको याद कराती हुई, नमस्कारादिकभी कराती है ।

और जो तीर्थकरोंका—विशेषपणे बोधको कराने वाली, तीर्थकरोंकी—भव्य मूर्तियां हैं उहांसें, वीरभगवानके परमश्रावको है—उनोंकाभी भावको हटाती हुई, यह विचार शून्या दूंदनीजी—जो पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी, भयंकर—मूर्तियां हैं, उसमें—भाव मिलानेका, सिद्ध करके दिखलाती है । और ते क्रूर देवताओंको—पूजानेकाभी, तत्पर हुई है ? । और तीर्थकरोंकी—भव्य मूर्तियां में, हमारे दूंदकभाइयांको—श्रुति मात्रभी लगानेका, निषेध करती है ॥

सारी आलम दूनीया तो—जिस देवताका नाममें, अपना—भाव मिलाकरके, जिसका—नामको, स्मरण करते होंगे, उनोंकीही—मूर्तिमें, अपना—भाव मिला करके, पूजन करेंगे । परंतु हमारे दूंदकभाइओ—नाम तो जपाते हैं तीर्थकरोंका, और पूजन कराते हैं—मिथ्यात्वी देवताओंकी क्रूर मूर्तियांका, कैसा अपूर्व धर्मका मार्गको दूंद दूंद करके निकाला है ? ॥

इहां पर थोडासा ख्यालकरोकि—तीर्थकररूप वस्तु—जैसें मूर्तिमें नहीं है, तैसेंही—उनोंके नाम मात्रमेंभी, नहीं है । तोभी दानोंभी प्रकारमें—तीर्थकर रूप वस्तुकाही विचारसें, नमस्कारादिक कर-

णा-योग्यपणे सेंही सिद्ध होता है । किस वास्ते तीर्थकरोकी-अव-  
ज्ञाकरके, अपना संसारकी वृद्धि करले ते हो ? ॥ २८ ॥

हित सुख मोक्ष के कारणों, पूजे शाश्वत बिंब ।

व्यवहारिक कर्त्तव्य कही, रोपें कडवा नींब ॥ २९ ॥

तात्पर्य—देवलोकमें, शाश्वती जिन प्रतिमाओंका पूजन, दे-  
वताओं अपना-हित, सुख, और परंपरासें मोक्षका कारण समझ  
के, सदा करते है । ते देवताओंका-जिन पूजनको, दूढ़नीजी केव-  
ल-लाभ बिनाका, व्यवहारिक कर्म कह करके-कडवा नींबका रोपा  
लगाती है । परंतु इतना मात्र भी विचार नहीं करती है कि-सम्य-  
क्क दृष्टि जीवोंकी करनीका लोप, मैं कैसें करती हुं ? देखो. नेत्रां०  
पृ. ९३ से ९४ तक ॥ २९ ॥

नमोष्ठ्युणं के पाठसें, करें वंदना देव ।

तामें कुतर्क करी कहैं, परंपराकी सेव ॥ ३० ॥

तात्पर्य—देवलोकमें, इंद्रादिक देवताओंने-जे शाश्वती जिन  
प्रतिमाओंका पूजन, अरिहंतों की भक्ति के वास्ते, और अपना  
भवोभवका-हित, सुख, और मोक्षका-लाभ की आशा करके, किया  
ते । और अरिहंतोंकी-स्तुतिरूप, नमोष्ठ्युणं, का पाठको पढ्या  
ते । दूढ़नीजीने-लाभ बिनाका, परंपराकी सेवारूप, सिद्ध करके-  
दिखलाया । और ते देवताओंकी तरां, अपना भवोभवका  
कल्याण कर लेने की इच्छावाली हुई-द्रौपदीजी परम श्राविका-  
ने, अशाश्वती जिन प्रतिमाओंका-पूजन किया । और वही  
तीर्थकरोकी स्तुतिरूप-नमोष्ठ्युणंका, पाठ तीर्थकरोकी मूर्तियांके  
आगे पढा ! उस पवित्र पाठमें-जूठी कुतर्कों करके, जिन प्रतिमाको

तो-काम देवकी मूर्ति ठहराइ, और तीर्थकरोंकी स्तुतिरूप-नमो-  
 श्रुणं, का पाठ, तदन अयोग्यपणे-मिथ्यात्वी काम देवकी, मूर्तिके  
 आगे-पढानेको तत्पर हुई, ऐसी जगें जगें पर-जूठी कुतर्कों करके,  
 आप नष्ट होते हुये-हमारे दूंदकभाइओ, दूसरे भग्यजनोंके धर्म-  
 का भी नाश करनेको-उद्यत होते है ? कैसे २ निकृष्ट बुद्धिवाले-  
 दूनीयामें, जन्म पडते है ? देवताओंकी समीक्षा. देखो. नेत्रां. पृ.  
 ९५ सें ९९ तक ॥ द्रौपदीजीकी-नेत्रां. पृ. ११० सें १४ तक ॥ ३० ॥  
 सैंकड पृष्ठोंपर कहैं, सूत्रमें पाठ अधिक ।

गुरु विना समजे कहां, परमारथको ठिक ॥ ३१ ॥

तात्पर्य—दूंदनीजीने, सत्यार्थ. पृ. ७५ में-लिखा है कि-हम  
 देखते है कि, सूत्रोंमें ठाम २ जिन पदार्थोंसे, हमारा विशेष करके  
 -आत्मीय स्वार्थ भी, सिद्ध नहीं होता है-उनका विस्तार, सैंकडे  
 पृष्ठोंपर [ सुधर्म स्वामीजीने ] लिख धरा है ।

ऐसा लिखके ज्ञाता सूत्रका, जीवाभिगम सूत्रका, और राय  
 प्रश्नी सूत्रका-सैंकडों पृष्ठों तकका, मूल पाठोंको-निरर्थक ठहराया  
 है । परंतु जिस सूत्रमें-एक चकार, अथवा-वकार, मात्र भी, गण-  
 धर महापुरुषोंने-रखा हुवा होता है, सो भी सैंकडो अर्थोंके-सू-  
 चक, होता है । ऐसैं महा गंभीरार्थ-सूत्रोंका, मूल पाठोंको भी-  
 सैंकडो पृष्ठों तकका, निरर्थकपणा-उहराती है ? । परंतु इतना मात्र  
 भी विचार नहीं करती है कि, जिस सूत्रका-एक अक्षर मात्र भी,  
 कोई पुरुष-आगा पाछा करैं तो, उनको-अनंत संसार भ्रमण  
 तकका, प्रायश्चित्त होता है, तो पिछे ऐसैं महा गंभीर सूत्रके मूल  
 पाठोंको सैंकडो पृष्ठों पर-निरर्थक, कैसे कहे जावेंगे ? । परंतु-गुरु  
 ज्ञान विनाके हमारे दूंदकभाइओ, गणधर महापुरुषोंका विचारको-  
 ठीक २ कहांसे समजेंगे ? ॥ ३१ ॥

चैत्यसें जिनप्रतिमा कहैं, जगें २ ग्रंथकार ।

ढूंढनी मन गमतो करें, अर्थ अनेक प्रकार ॥ ३२ ॥

तात्पर्य—चैत्य, पदका अर्थ—जिन प्रतिमा, जैन सिद्धांतकारोंने, जगें जगें पर-वर्णन किया हुआ है । परंतु ढूंढनी पार्वतीजीने, ते चैत्य पदका अर्थ, जैसें मनमें आया तैसें ही—भिन्न २ प्रकारसें, गणधरादिक सर्व सिद्धांतकारोंकी—अवज्ञाके साथ, करके दिखलाया है । सो ही हम क्रमवार सूचना मात्रसें, पाठक वर्गको—याद कराते हैं, सो ख्याल पूर्वक विचार करते चले जाना ॥ ३२ ॥

अंबडजीके पाठमें, कियो व्रतादिक अर्थ ।

लोपें अर्थ जिन मूर्त्तिका, कितना करें अनर्थ ॥ ३३ ॥

तात्पर्य—अंबड श्रावकजीके अधिकारमें—अरिहंत चेइय, पाठका अर्थ—अरिहंत भगवानकी मूर्त्तिका, सर्व जैन सिद्धांतकारोंने जगें जगें पर किया हुआ है । और ते अर्थ योग्यपणे ही होता है क्योंकि—अरिहंत, कहनेसें तीर्थकर भगवान, और—चैत्य, कहनेसें—प्रतिमा, अर्थात् अरिहंतकी प्रतिमा । इसका अर्थ ढूंढनीजीने सत्यार्थ. पृ. ७८ से ८६ तक, लंब लंबाय मान—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् व्रत, वा अनुव्रतादिक, बे संबंधका करके दिखाया । देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १०४ से, पृ. १०८ तक ॥ ३३ ॥

रुचक नंदीश्वर द्वीपमें, मूर्त्ति वादे सु पेर ।

जंघा चारण मुनिवरा, दिखावें ज्ञानकोटेर ॥३४॥

तात्पर्य—जंघा चारण विद्याचरणकी—उब्धि, जिस मुनियांको हो जाती है, ते मुनिओ—रुच द्वीपमें, नंदीश्वर द्वीपमें जाके—चेइ-

याइं, वंदइ, अर्थात् उहांपर रही हुई-शाश्वती जिन प्रतिमाओं-को, वंदना करते है ।

पिछे इस भरत क्षेत्रमें आके-बडे बडे तीर्थोंमें रही हुई, अशाश्वती जिन प्रतिमाओंको-वांदते है । इस विषयमें दूंदनीजी-सत्यार्थ. पृ. १०१ से १०६ तकमें, अनेक प्रकारकी जूठी कुतकों करके, और पृ. १०२ में-रुचकादिक द्वीपमें रही हुई, शाश्वती जिन प्रतिमा-ओंको-मान्य करके भी, छेवटमें उहांपर-ज्ञानका ढेरकी स्तुति करनेका, बतलाती है । दूंदनीजीको-वीतरागीमूर्त्तिसें, कितना द्वेषभाव हो गया है । देखो. नेत्रां. पृ. ११७ से २१ तक ॥ ३४ ॥

चमरेंद्रके पाठमें, लिखा अरिहंत चैत ।

पद विशेष जोडी कहै, चैत्यपद यह विपरीत ॥ ३५ ॥

तात्पर्य—चमरेंद्र उर्द्ध लोकमें गया, तब सक्रेंद्रे विचार किया कि-१ अरिहंतकी, २ अरिहंतकी प्रतिमाका, अथवा ३ कोइ महा-त्माका ।

इस तीन शरणमेंसें-एकाद शरण लेके, देवता उर्द्धलोकमें आस-कता है, ऐसा सक्रेंद्रे विचार किया है, इसमें दूसरा शरण-अरिहंत चेइयाणि, अरिहंत सो तो तीर्थकर भगवान, और चैत्य कहनेसें-प्रतिमा, अर्थात् अरिहंतकी प्रतिमाका, शरण लेनेका विचारा है । और अंबड श्रावकका पाठकीतरां, सर्व जैनाचर्योंने-एकही अर्थ करके दिखलाया है । तोभी दूंदनीजी-सत्यार्थ. पृ. १०९ से १३ तकमें, अनेक-जूठी कुतकों करके, और पद शब्दको, विशेषपणे जोडके-अरिहंत पद, का अर्थ करके दिखलाती है । अब लयाल करोकि-इस अरिहंत चेइयाइं, का अर्थ, अंबडजाके अधिकारमें

—सम्यक् ज्ञानादिकका करके दिखलाया । और इस चमरेंद्रके विषयमें—चैत्य पद, करके दिखलाया । दूंदनीजी वीतराग देवकी बैरिणी होके, जो मनमें आता है सो ही लिख मारती है या नहीं ? देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १२१ से १२५ तक ॥ १५ ॥

बह्वे अरिहंत चैतमें, पाठांतरसु विशेष ।

सिद्धि जिन प्रतिमा तणी, नहीं मीनने मेष ॥३६॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ७७ में, दूंदनीजीने, लिखा है कि—उवाईजी सूत्रके आदहीमें. चंपापुरीके वर्णनमें ( बह्वे अरिहंत चेइय ) ऐसा पाठ है, अर्थात् चंपापुरीमें बहुत जिनमंदिर है ॥ इसके उत्तरमें लिखती है कि—यदि किसी २ प्रतिमें, यह पूर्वोक्त पाठ है भी, तो वहां ऐसा लिखा है कि—<sup>१</sup>पाठांतरे ॥ ऐसा लिखके ते पाठको लोप करनेका प्रयत्न किया है । परंतु वहां—आयारवंत चेइय, का दूसरा पाठमें भी—चैत्य शब्दसे, दूपटपणे—जिनमंदिरोंकी सिद्धि होती है ! तोभी दूंदनीजीने—अंबडजीके विषयमें, इसी चैत्य शब्दका अर्थ—सम्यक् ज्ञानादिक करके दिखलाया । और चमरेंद्रके विषयमें—चैत्य पद, अर्थ करके दिखलाया । और इहांपर सर्वथा प्रकारसे—लोप करनेको, तत्पर होती है ? ।

परंतु चैत्यशब्दसे—जिनप्रतिमाकी सिद्धिमें, मीनराशिकी—मेष राशि होने वाली नहीं है । किस वास्ते वीतराग देवकी—आशातना

१ पाठांतरका अर्थ यह है कि, उसी अर्थका प्रकाशक, दूसरा पाठसे, स्पष्ट करना ॥ जैसे सत्यार्थ. पृ. १ ले में, निक्षेपने ( करने ) । पृ. ७० में. श्मश्रु ( दाडी मुछ ) इत्यादिक देखो, विशेष प्रकाशक है कि—लोपक है ? ॥

करके, अघोर कर्मका बंधन करते हो ? देखो. नेत्रां. प. १०३ से ४ तक ॥ २६ ॥

आनंदके अधिकारमें, पाठ छिपावें अबुज्ज ।

गुरुविना समजे नहीं, जिनमारगका गुज्ज ॥ ३७ ॥

तात्पर्य—आनंद श्रावकजीके अधिकारमें, दूंदनीजीने-सं. ११८६ के शालकी जूनीपरतमें, ऐसा देखाकि—(अण्णा उथियय परिग्गहियाइ चेइया ) परंतु ( अरिहंत चेइयाइ ) ऐसा नहीं देखा, ऐसा सत्यार्थ. प. ८९ में, लिखा ॥ और प. ८८ में, इसी पाठको-प्रक्षेपरूप, ठहराया । परंतु जो हमारे दूंदकभाइओं किंचित् विचार करेंगेतो, इस आनंद श्रावकजीके-सर्व प्रकारके पाठोंमें, सर्व जगेंपर-चेइय शब्द आनेसें, उनका अर्थ-जिनप्रतिमाकाही होगा ? ! तोभी दूंदनीजीने, अनेक प्रकारकी जूठी कुतकों करके, ते पाठका सर्वथा प्रकारसें-लोपकरने काही, विचार किया । जब दूंदनीजी, इतना सामान्य मात्रका विषयकोही-नहीं समजी सकती है, तोपि छे जैन मार्गका-विशेष गुज्जको, क्या समजने वाली है ? ॥ देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. प. १०८ से ९ तक ॥ ३७ ॥

जिनपडिमाकी पूजना, द्रौपदीकेरी खास ।

नमोऽथ्युगां के पाठसें, करी कुतर्क करें नाश ॥ ३८ ॥

तात्पर्य—द्रौपदीजी परम श्राविकाने, खास जिनपडिमाको पूजी और भक्तिके वस होके-धूपदीपादिकभी किया । और छेवटमें तीर्थकरोंकी स्तुतिरूप-नमोऽथ्युणं, का पाठभी पढया । और विधि सहित सत्तर प्रकारका भेदसे-शाश्वती जिनप्रतिमाओंका पूजन करने वाला, जो समकित दृष्टि-सूरयाभ देवता है, उनकी उपमाभी दीई



है । तोभी दूंदनीजीने, सत्यार्थ. पृ. ९० से ९९ तक—अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों करके, रूपका निधान, सोल सतीयामें प्रधान, ऐसी राजवर कन्या द्रौपदीजी परम श्राविकाको, वर नहीं मिलता-या ? सो प्राप्त करा देनेके वास्ते, दूंदनीजी, मिथ्यात्वी—काम देवकी पध्दरकी मूर्त्ति पूजा करायके, प्राप्त करादेनेको तत्पर हुई है ?। और बीतराग देवकी स्तुतिरूप—नमोऽध्युणं, का पाठभी—काम देवकी मूर्त्तिके आगे, पढानेको तत्पर होती है ?। परंतु दूंदनीजी, इतनामात्र भी विचार नहीं करसकती है कि—कहां तो, बीतराग देव, और कहां तो—मिथ्यात्वी कामदेव, उनके आगे तदन अयोग्य पणे—नमोऽध्युणं,का पाठ, मैं कैसे पढाती हूं ? परंतु शुद्ध बुद्धिवालोंको, योग्या योग्य का—विचारभी, कहाँसे आवेगा ? ॥ देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. ११० से ११४ तक ॥ ३८ ॥

तीन निक्षेप नहि कामके, दूंदनी कहैं प्रत्यक्ष ।

मूर्त्ति छुडावें जिनतणी, मूढ पूजावें यत्न ॥ ३९ ॥

तात्पर्य—बीतराग देवकी वैरिणी दूंदनीजी, तीर्थकर देवके-प्रथमके तीन निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके—ठहरानेके लिये, सत्यार्थ. पृ. ८ से—प्रथम इंद्रका, स्थापना निक्षेप रूप—मूर्त्तिको, सर्वथा प्रकारसे—निरर्थक, ठहराई । और उनकी पूजा करके—धन पुत्रादिक मागनेवालोंको, और उनका—मेला, महोत्सव, करनेवालोंको, अज्ञानी ठहरायके, पृ. १७ तकमें—जूठे जूठ लिखके, प्रथमके—तीन निक्षेप, निरर्थक, और—उपयोग विनाके लिखके, सिद्ध करके दिखलाया ॥

हम पुछते है कि—जब प्रथमके तीन निक्षेप, सर्वथा प्रकारसे—निरर्थक दिखलाती है, तो पिछे सत्यार्थ. पृ. ७३ में—यक्षादिकोंका,

मूर्तिकी स्थापना निक्षेपरूप, जड स्वरूपकी पूजा कराती हुई। और पूजा करनेवालोंको—धन पुत्रादिक, दिवावती हुई। ते निरर्थकरूप दूसरा निक्षेपसे—स्वार्थकी सिद्धि करानेको, क्यों तत्पर हुई ?।

जब स्वार्थकी सिद्धि कराती है तो पिछे—स्थापना निक्षेपरूप मूर्ति, निरर्थ क्यूं ?। इहांपर—यक्षादिकोंकी मूर्ति पूजासे, धनपुत्रादिक—दिवाती हुई। और अपना भवोभवका कल्याणके वास्ते—पूजा करनेवाली, परमश्राविका द्रौपदीजीके—जिन प्रतिमाका पूजनको छुडवायके, काम देवकी मूर्ति पूजाको कराती हुई। स्वार्थकी सिद्धि करानेको तत्पर होती है ?।

और जिस तीर्थकरोंके नामसे—पेट भराई करती है, उन्को भव्य मूर्तियांको—पथपर, पहाड करके, निंदती है ?। ऐसे निकृष्ट बुद्धिवाले ते दूसरे कौन होंगे ?। और हम भी कहांतक शिक्षा देवेगे ? ॥ ३९ ॥

कयबलिकम्मा पाठमें, पितर दादेयां भूत ।

तीर्थकरके भक्तको, नितपूजावे कपुत ॥ ४० ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. १२४ में, कयबलिकम्मा, का पाठ—दूढ. नीजीने लिखा है, और इस पाठके संकेतसे, वीर भगवानके परम श्रावकोंकी—जिन मूर्तिपूजा, दररोज करनेका—मतलब, सर्व जैना-चार्योंने—दिखाया हुवा है। उस विषयमें दूढनीजी, अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों कराती हुई। और तीर्थकरोंकी—भव्य मूर्तिका, सर्वथा प्रकारसे—लोप कराती हुई। ते परम श्रावकोंकी पाससे, सत्यार्थ. ए. १२६ में—पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक—मिथ्यात्वी देवताओंकी, भयंकर मूर्तियांको—दररोज पूजानेको, तत्पर हुई है ? कैसे २ जैन-

शासनमें-कपुत्त, पेदा हुये है ? । कदाच ते कपुत्तो-तीर्थकरोका उपकार, दूसरा प्रकारका न मानते, परंतु उनके नामसें रोटी खाते है, इतना मात्र तो उपकार मानते ? । और तीर्थकरोकी शांत मूर्त्तिकी पूजासें हटाके, यक्ष भूतादिकोंकी क्रूर मूर्त्तियांको तो न पूजाते ? । तो भी कुछ योग्यपणा रहता, परंतु तदन कपुत्तोको हम कहांतक शिक्षा देते रहेंगे ? ॥ देखो इनकी समीक्षा, नेत्रां पृ. १३३ से १३७ तक ॥ ४० ॥

भेजी अभय कुमारने, मूर्त्ति श्रीजिनराज ।

देखी आद्रकुमारने, पायो आतम राज ॥ ४१ ॥

सात्पर्य—सूयगडांग सूत्रकी टीकामें लिखा है कि—अनार्य देशवासी आद्र कुमारथा, उसने अभय कुमारकी साथ—मैत्रीभाव करनेकी इछासें, कुछ भेट भेजाई, ते भेट लिये बाद अभयकुमारने, बुद्धिबलसें विचार करके, उनको बोध करानेके वास्ते, भेटनेमें तीर्थकर देवकी मूर्त्ति भेजाई, और एकांत स्थलमें खोलनेकी सूचना किई, ते देखके उहापोहकरनेसें जाति समरण ज्ञान प्राप्त हुवा, छेवटमें दीक्षा ले के अपना आत्माका राज्यभी प्राप्त करलिया ॥ ऐसे अनेक भव्य प्राणियोंने, तीर्थकरोकी मूर्त्तियांके दर्शनसें अपना कल्याण किया हुवा है । इस वास्ते तीर्थकरोकी भव्य मूर्त्तियां—निन्दनिक, नहीं है ॥ यह प्रसंगिक बात लिखके दिखाई है ॥ ४१ ॥

शासन नायक मुनिवरा, ज्ञान तणा भंडार ।

निंदी टूढनी कहत है, ते सावद्याचार ॥ ४२ ॥

निर्युक्ति टूढनी बनी, बनी आपहि भाष्या

टीकाभी टूढनी बनी, करे सब ग्रंथका नाश ॥ ४३ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. १२९ से—१४० तकमें, दूढ़नीजोने—पूर्वके महान् २ सर्व जैनाचार्योंकी, और उनके बनाये हुये—सब ग्रंथोंकी, पेट भरकेही निंदा किई हुई है ! कभी तो लिखती है कि—सावद्या चार्य । कभी तो लिखती है कि—भोले लोकोंको बहका कर, माळ खानेको—मन मानें गपौडे लिखके धरने वाले । कभी तो लिखती है कि—उत्तम दया, क्षमा रूप, धर्मको—हानि पुहचाने वाले । कभी तो लिखती है कि—अन घटित कहानियेसे—पोथेको भरनेवाले । कभी तो लिखती है कि—जड पदार्थमें, परमेश्वरकी—बुद्धिको करानेवाले । इत्यादिक जैसा मनमें आया, तैसे ही निंदा करती हुई चली गई है ॥४२॥ और—निर्युक्तिभी, दूढ़नी अपने आप बन बैठी । और—भाष्य है सोभी दूढ़नीही अपने आप बन बैठी । और टीका सोभी, दूढ़नीजी कहती है कि—मैं हूं, ऐसा लिखके अपना गर्वको हृदयमें नहीं धारण कर सकती हुई, सत्यार्थकी जाहीरातमें प्रगटपणे लिखके दिखाती है कि—पीतांबर धारियों के, नवीन मार्गका मूल सूत्रों, माननीय जैन ऋषियोंके मंतव्यो, तथा प्रबल युक्तियोंसे—खंडन किया है । और युक्तियों भी ऐसी प्रबल दीहैं कि—जिनको जैन धर्मरूढ, नवीन मतावलंबियोंके सिवाय, अन्य सांप्रदायिकभी—खंडन नहीं कर सकते । बरंच बडे २ विद्वानोंनेभी, श्लाघा (प्रसंसा) कीहै । इस पुस्तकमें विशेष करके, श्री आत्माराम आनंद विजय संवेगी कृत—जैन मार्ग प्रदर्शक, नवीन कपोल कल्पित ग्रंथोंकी—पूर्ण आंदोलना कीहै ॥

इसका विशेष विचार प्रस्तावनामेंसे देख लेना । इहांपर हम विशेष कुछ नहीं लिखते है ॥

परंतु जैन तत्त्वरूप अगाध समुद्रका मार्गकी दिशा मात्र काभी श्रवण किये बिना, इस दूढ़नीजोने, एक गंदी खालकी भेडी (देडकी)

की तरां, गर्व कितना किया है, यही हमको आश्चर्य होता है ।  
हे दूंदनीजी !

जैनतत्वके विषयमें आगे बहुत ही कुछ देखनेका रहा हुआ है,  
परंतु बुद्धिकी प्रबलता होते हुये भी, परंपराका योग्य गु-  
रुकी सेवामें तत्पर हुये बिना, एक दिशा मात्रका भी भान होना  
बड़ाही दुर्घट है, किस वास्ते इतना जूठा गर्वको करती है ? ॥ देखो  
इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १३८ से १४७ तक ॥ ४२ । ४३ ॥

निषेध दिखावुं पाठसें, मूर्त्ति पूजाके खास ।

कहैं दूंदनी सिद्धिमें, फुकट करो क्यों आश ॥ ४४ ॥

तात्पर्य—इहां तक दूंदनीजी, यक्ष, भूतादिक-मिथ्यास्त्री देव-  
ताओंकी, भक्तानी होके, उनोंकी मूर्त्तियांका-पूजन, दूंदक श्रावकोंको  
सिद्धि करके दिखलाती हुई । और तीर्थकर देवकी वैरिणी होके,  
तीर्थकरोंकी-परम पवित्र, मूर्त्तिपूजाके-पाठोंका, अर्थको-जूठे जूठ  
लिखती हुई । और जैन धर्मके धुरंधर-सर्व महान् २ आचार्योंकी,  
निंदाको करती हुई । और जैन धर्मके मंडनरूप, तत्वके ग्रंथोंका  
लोपको, करती हुई । सत्यार्थ पृ. १४२ मे, लिखती है कि-जिन  
मूर्त्ति पूजाका पाठ, कोई भी जैन सूत्रमें नहीं है । परंतु तुमरे ही  
ग्रंथोंके पाठसें, जिनमूर्त्तिकी पूजाका-निषेधरूप पाठको, दिख-  
लाती हुं ॥ ऐसा उन्मत्तपणा करके, और महापुरुषोंके लेखका  
आशयको समझे बिना, और अपनी जूठी पंडिताइके छा-  
कमें आई हुई, जैन सिद्धांतोंसें-सर्वथा प्रकारसें, जिन मूर्त्ति पू-  
जाको निषेध करने रूप, पाठ दिखानेको तत्पर होती है ? । ऐसें  
निकृष्ट बुद्धिवालोंको, हम कहांतक समजावेंगे ? । देखो इनकी स-  
मीक्षा. नेत्रां. पृ. १४८ से १५१ तक ॥ ४४ ॥

यूं कही पंचम स्वप्नका, करें अर्थ विपरीत ।

लोभसें करनेकीमना, न समजे अवनीत ॥ ४५ ॥

तात्पर्य—प्रथम दूढनीजीने यूं कहाथाकि, जिनमूर्त्ति पूजाका निषेध, पाठसें दिखावुंगी । अब ते विषयमें प्रथम--पंचम स्वप्नका पाठ लिखके, अपनी अज्ञानता प्रगट की है । क्योंकि--ते पंचम स्वप्नके पाठमें, ऐसा लिखा है कि--दच्चा हारिणा मुनी भवि-स्सइ, लोभेन माला रोहणा देवल उवहाणादि, कको, प्रकाश करेगे । और ऐसे बहुतेक साधु पतित होके, आविधि पंथमें पड जावेगे । इस लेखमें साधु मात्रको-लोभके वश होके, करनेका निषेध किया गया है । परंतु सर्वथा प्रकारसें करनेका अभाव नहीं दिखाया है । तो भी गुरुज्ञान बिनाकी दूढनीजी, सर्वथा प्रकारसें-मंदिर मूर्त्तिका, निषेध करके दखलाती है ? परंतु एक बच्चे जितना भी विचार नहीं करती है कि--जगजाहिर, जिन मंदिर मूर्त्तिका-पूजन, सर्वथा प्रकारसें निषेध मैं कैसें करती हूं ? और ऐसी भरी मूढता कैसी चलेगी ? परंतु तुछ हृदयवालोंको विचार रहता नहीं है । देखो सत्यार्थ. पृ. १४२ से १४४ तक ॥ देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १५१ से १५५ तक ॥ ४५ ॥

महानिशीथमें साधुको, द्रव्य पूजा नहि शुध ।

सर्व निरवद्य मार्गका, लोप करें नहि बुध ॥ ४६ ॥

अरिहंत भगवंत पाठसु, किया मूर्त्तिका बोध ।

इसी सूत्रके पाठमें, तेरा लिखा तूं सोध ॥ ४७ ॥

तात्पर्य—पंच महाव्रतको अंगीकार करनेवाले, द्रव्य रहित साधुको-द्रव्य पूजा करनी सो शुद्ध नहीं है । क्योंकि-साधु हुये

वाद, श्रावक धर्मकी करनीरूप-द्रव्य पूजा करें तो, सर्वथा प्रकार-  
सैं जो निर्वच्यका मार्ग है, उसका लोप करनेसैं, महा प्रायश्चितका  
पात्र होता है । इस वास्ते बुद्धिमान पुरुषो, ते सर्व सावच्यके त्याग  
रूप-मार्गका लोप, कभी न करें इस । वास्ते साधु पुरुषोंको ही-  
द्रव्य पूजा करनेका, निषेध किया है । परंतु श्रावकोंको तो-  
कयबलिकम्मादिक, पाठोंसैं, अनेक जगेंपर-जिन मूर्तिकी पूजा  
करनेकी, हमेसां आज्ञाही दिखाई हुई है । किस वास्ते तीर्थकरोंकी  
अवज्ञा करके, अनंत संसार भ्रमणका बोजाको उठाते हो ? ॥४६॥

अब इसीही सूत्रके पाठमें, थोडासा ख्याल करके देखोकि-  
अरिहंताणं भगवंताणं, कह करके ही, तीर्थकरोंकी-अलोकिक  
परमशांत मूर्तिका बोध, गणधर महा पुरुषोंने कराया है । परंतु  
इस पाठमें-प्रतिमाका बोधको कराने वाला, नतो कोई-चैत्य, शब्द  
रखा हुवा है । और नतो कोई-प्रतिमा, शब्द भी लिखा हुवा है ।  
केवल-अरिहंत भगवंत के ही पाठसैं, तीर्थकरोंकी-मूर्तिका बोध,  
कराया हुवा है । और दृढनीजीने भी-प्रतिमाका ही अर्थ, किया  
हुवा है । तो इहांपर थोडासा विचार करो कि-जिन प्रतिमा, जिन  
सारखी होती है या नहीं ? । और जिन प्रतिमाकी-अवज्ञा करने  
वाले, तीर्थकरोंके वैरी है या नहीं ? । और जिन मूर्तिको-पथ्थर,  
पहाड, कहने वालोंका चित्त, पथ्थर पहाडरूप है या नहीं ? ।  
और तीर्थकरोंकी-अवज्ञा करके, अनंत संसाररूप, महा समुद्रमें-  
जंपापात, करते है या नहीं ? । और अपनी कीड़ हुई-सर्व कष्ट  
क्रियाको, निष्फलरूप उहराते है या नहीं ? । और पंडित नाम  
धरायके-अपनी चतुराईमें, धूड मेरते है या नहीं ? । इस वास्ते  
थोडासा ख्याल करके, पिछे योग्य मारगका विचार करो ? ।

देखो. सत्यार्थ. पृ. १४४ से १४६ तक—दूंदनीजीका लेख ॥ पिछे इनकी समीक्षा देखो. नेत्रां. पृ. १५५ से १६२ तक ॥ ४७ ॥ इहांतक दूंदनीजीने दूसरा पाठसे जो जिन मूर्त्तिका-निषेध दिखाया था ? उनका विचार किया गया ॥

॥ अब दूंदनीजीके तिसरा पाठका विचार करते है ॥

तीनों चौबीसी तणी, कही प्रतिमा बहुतेर ।

वंदन पूजन भी कहा, तोभी करें अंधेर ॥ ४८ ॥

तात्पर्य—नंदी सूत्रमें, मूल सूत्रोंकी नोंध दिखाइ है, उस नोंधकी गिनतीमें आया हुवा, यह विवाह चूलियाका पाठ—सत्यार्थ. पृ. १४७ से, दूंदनीजीने लिखा है। उसमें ऋषभ आदि ( ७२ ) तीर्थकरोंकी प्रतिमा आदि होनेका गौतम स्वामीजीने प्रश्न किया है, उसका उत्तरमें, वीर भगवंतने कहा है कि- सर्व देवताओंकी प्रतिमा होती है । फिर गौतम स्वामीजीने, केवल तीर्थकरोंकी ही—प्रतिमाओंका, वंदन, पूजन,—करनेके विषयमें, प्रश्न किया है । इस दूसरा प्रश्नके उत्तरमें भी, वीर भगवानने यही कहा कि—हा गौतम, तीर्थकरोंकी प्रतिमाओंको, वांदि भी, और पूजे भी ।

और दूंदनीजीने भी, सत्यार्थ. पृ. १४८ से—यही अर्थ लिखा हुवा है । परंतु आगे तिसरा प्रश्नोत्तरमें, महा नीसीथका पाठकी तरां, सावु पुरुषोंको ही—द्रव्य पूजन करनेके निषेधका, परमार्थको नहीं समजती हुई, और दूसरा प्रश्नोत्तरमें दिखाया हुवा, जिन मूर्त्तियांका—वंदन, पूजनरूप, वीर भगवानके उपदेशका भी—लोप-को करती हुई, और तीर्थकरोंकी भक्तिसे जिन मूर्त्तिका पूजा करने वाले, भग्य प्राणियोंको—मिथ्यात्त्री, अनंत संसारी, जूठे जूठे लिख मारती है ? । और वीर भगवानको भी साथमें कलंकित करती



है । और इस विवाह चूलिया सूत्रका पाठमें दिखाई हुई, यक्ष, भूतादिकोंकी-प्रतिमाओंको, वंदन करनेका, और पूजन करनेका-आदेश, वीर भगवानने नहीं दिखाया है । तोभी दूढनीजी अपने ग्रंथमें जगें जगेंपर उनोंकी प्रतिमाओंका, वंदन, और पूजन भी, करनेकी सिद्धि करके दिखलाती है । इतना ही मात्र नहीं, परंतु जैनके-सर्व आचार्योंको, और जैनके-सर्व ग्रंथोंको भी, मथ्या खुला करके निंदती है ? । और दूढनीजी अपने आप जैन धर्मसें भ्रष्ट होती हुई, दूसरे भव्य प्राणियोंको भी, जैन धर्मसें भ्रष्ट करनेका-उद्यम कर रही है । और अपना साध्वीपणा भी दिखाती है ? । एसें मूडोंको, हम कहांतक शिक्षा देते रहेंगे ? । देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. १६२ से १६७ तक ॥ ४८ ॥

पाडिसोयगामी साधु है, द्रव्य रहित विशुद्ध ।

फलफूलादिक द्रव्यसें, पूजा सूत्र विरुध ॥ ४९ ॥

तात्पर्य-संसारिक सुखोंसें विमुख, सो पाडिसोय गामी, साधु पुरुषो कहे जाते है । सो सर्व प्रकारका द्रव्यसें रहित होनेसें, उनोंका-फलफूलादिक द्रव्यसें, द्रव्य पूजा करनी सो सूत्रसें विरुद्ध है । क्योंकि-द्रव्य रहित पुरुषोंको, द्रव्य पूजा करनीसो, कभीभी उचित न गीनीजायगी । इसवास्ते-साधु पुरुषोंको, तीर्थकरोंकी जो दूसरी-भाव पूजा है, सोही करनी उचित है । इसवातका परमार्थको समजे बिना, गुरु बिनाकी दूढनीजी, सर्वथा प्रकारसें-जिनप्रतिमाका पूजनको निषेधकरके, वीरभगवानके-परम श्रावकोंकोभी, पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक-मिथ्यात्वी देवताओंकी, क्रूर मूर्तियां-पूजानेको, तत्पर होती है ? । ओर द्रौपदी श्राविका की पास, कामदेवकी-जड मूर्ति, पूजानेको. तत्पर होती है ? । परंतु इतनाभी वि-

चार, नहीं करती है कि—जिस जिनदत्त सूरिजी महाराजाने, अनेक जिनमंदिरोंकी प्रतिष्ठाओ—अपने हाथसे, कराई हुई है। और ते घं-दिरो, अबीभी विद्यमान है। उनकी झूठी साक्षी मैं देती हूं सो कैसे चलेगी ?। परंतु तदन क्षुद्र बुद्धिवालोंको—इतनाभी विचार कहां ?। देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १६७ से १७१ तक ॥ ४९ ॥

तप जप संयम मुनिक्रिया, भाव पूजा लहिसार ।

नहीं तीनको द्रव्य है, गृहीकों दोनों प्रकार ॥ ५० ॥

तात्पर्य—जिस महापुरुषने, धन पुत्रादिक सर्व संगका त्याग करके, तप जप संयमादिक, मुनिक्रियारूप भावपूजा करनेका—भंगीकार कर लिया है। उनके पास-नतो द्रव्य है, और न द्रव्य पूजा करनेकी—आज्ञा है। अगर साधुपणालेके द्रव्यपूजा करें तो, द्रव्य संग्रहादिकसे, विपरीत मार्गको—चलाने वाला, सिद्ध होता है। इस वास्ते साधु पुरुषोंको, द्रव्य पूजा करनेका—निषेध, किया है। परंतु गृहस्थ पुरुषोंने, धनादिकका त्याग—नहीं किया है, और सर्वप्रकारका—आरंभकाभी, त्याग नहीं किया है। इसी वास्ते द्रव्यधर्मके साथ-ही, भावधर्मका अधिकारी, श्रावकोंको दिखलाया है। और साधु है सोतो—केवल भावधर्मकाही, अधिकारी है ॥ देखोकि—श्रावको है सो, अपना भाव धर्मकी प्राप्ति करलेनेके वास्ते १ दूढक साधुओंको रहनेके वास्ते—स्थानक बंधवावते है ?। २ दीक्षा महोत्सव करते है ?। और ३ साधुओंका मरण महोत्सव भी, श्रावको ही करते है ?। और संथारी साधुको—बंदना करनेको, गाडी घोडे

१ दीक्षा महोत्सव । २ मरण महोत्सव । यह दोनो प्रकारकी जो श्रावक भक्ति करने है सो—साधुका द्रव्य निषेपकी ही भक्ति है ॥

दोहावते हुये, श्रावको दूर दूरतक जाते है ? और संघ निकाल करके, दूँदक साधुओंकी एक नवीन प्रकारसें, यात्रा करनेको- निकलते है ? इत्यादिक अनेक प्रकारके-धर्मके कार्यमें, जिमना, जिमावना, आदि-महा आरंभका कार्य, तुमरे दूँदक श्रावको, किस हेतुके वास्ते करते है ? तुम छेवटमें-कहोंगे कि, संसार खाता । हम पुछते है कि, इसमें तुमेरा मन कल्पित, संसार खाताका-क्या संबंध है ? । क्या लडके ल-लडकीका-विवाह करनेको प्रवृत्त मान होते हो ? । जो संसार खाता कह देते हो ? । अथवा मिथ्यात्वी यक्षादिक देवोंकी, पथ-रकी मूर्त्तिकी पास जैसे धन पुत्रादिक लेनेके वास्ते, दूँदनीजीने भे-जेथे, तैसें क्या धनपुत्रादिक लेनेके वास्ते पूर्वमें दिखाये हुये सर्व कार्य कराते हो ? ।

और वीरभगवानके-परमभावकोंके, दररोजका जिनमूर्त्तिका पूजनको छुडवायके, कायबलि कम्मा, के पाठसें-पितर, दादियां, भूतादिक-मिथ्यात्वी देवताओंकी मूर्त्तियां दररोज, बिना कारण-पूजानेको तत्पर होते हो ? । तुमेरा यह संसार खाता है सो क्या चिज है ? । तुमेरा संसार खाताका-स्वरूप, द्वितीय भागमें, मालूप हो जायगा । किस वास्ते जैन कुलमें-अंगारारूप बनके, तीर्थकरोंकी भी आशातना करते हो ? हमने तो तुमेरा हितके वास्ते लिखा है, आगे जैसी तुमेरी भवितव्यता । अगर तुमेरे कर्मके योगसें, दूसरा विशेष धर्मकार्य न बन सके, तोभी-तीर्थकर, गणधरोंकी, निंदा मात्रसें तो बचो ? । हम भी कहांतक तुमको समजावेगे ? । और जे जे दूँदनीजीने, मूर्त्तिपूजा निषेधके पाठो-दिखाये है, सो सो सर्व साधु पुरुषोंके-द्रव्य पूजनका, निषेधके-वास्तेही लिखे गये है । परंतु गृहस्थोंका तो-दररोजके पद कर्मरूप, द्रव्य धर्मसें-भाव धर्म

का, परम आलंबन स्वरूप काहा है। इसी वास्तेही-कयबलि कम्मा, का पाठके संकेतसे, श्रावकोंके वर्णनमें-जिन मूर्तिपूजारूप द्रव्य धर्म दिखाया गया है। नहीं-के मिथ्यात्वी-भूत, यक्षादिक, देवताओंकी-भक्तिकरानेके वास्ते, लिखके दिखाये है। किस वास्ते-दया दयाका, जूठा पोकार करके, जैन धर्मसे-सर्वथा प्रकारसे, अष्ट होते हो ? ॥ १० ॥

द्रव्य रहित श्रावक नहीं, ताते द्रव्यने भाव ।

पूजा करणि गृहस्थको, भर दरियेमें नाव ॥ ५१ ॥

तात्पर्य-श्रावक है सो, साधुकी तरां-द्रव्यविनाका नहीं है। और सर्व सावयका-त्यागीभी, नहीं हैं। सोतो सदाही महा आरंभमें फसा हुवा है। और साधुकी-वीस विश्वा दयाकी अपेक्षासे, मात्र-सवा विश्वा दया काही, पात्र है। इस वास्ते द्रव्य पूजाकी साथ ही, भाव पूजाका-अधिकारी दिखाया गया है। इसी वास्तेही वीर-भगवानके श्रावकों, प्रथम-तीर्थकरोंकी मूर्ति पूजाको करके, पीछेसे भगवानकोभी-वंदना करनेको, गये है। और उस पूजाका वर्णन-कयबलि कम्मा, का पाठके संकेतसे, जगें जगें पर-जैन सिद्धांतकारोंने, लिखा हुवा है। नहींके सत्यार्थ-४-१२६ में, दूढ़नी-जीने दिखाये हुये, मिथ्यात्वी-पितर, दादियां, भूत, यक्षादिकोंकी भयंकर मूर्तियोंकी दररोज पूजानेके, वास्ते पाठको दिखाया है। यह वीतराग देवकी भक्तिकी करणि है सो तो, सदा आरंभमें बैठे हुये, संसारी प्राणियोंको, भर दरियेमें-महान् जाजरूप है, नहींके संसारमें डुबाने वाली है। यह तो सदगुरुका पंजाविनाके, हमारे दूढ़क भाइयोंकी-मतिकारी, विपर्यासपणा हुवा है ॥ ५१ ॥

जूठ बोलना पाप है, नहीं जूठका अंत ।

निंदा करें सब संतकी, आपही आप महंत ॥ ५२ ॥

तात्पर्य-सत्यार्थ. पृ. १७२ में, जूठ बोलना पाप है, ऐसा लिखके-पृ. १७२ तक, सम्यक्त्वं शल्योद्धारदिक ग्रंथ कर्ताओंकी निंदा करके, अपना बड़ा ही साध्वीपणा दिखाया है । परंतु दूंदनीजीने, अपना ग्रंथका नाम-सत्यार्थ चंद्रोदय, रखके भी, प्रायः एक बात भी सत्य नहीं लिखी है । क्योंकि ग्रंथका सब पाया ही उंधा रचा है, तो पिछे दूंदनीका लेखमें सत्यपणा ते कहाँस-भाने वाला है ? इस बातको पाठक वर्ग तो, हमारा पूर्वका लेखसें, अच्छीतरासें समझ भी लेवेंगे, तो भी उनोंकों-विचार करनेका, बोजा कमी होजाने के वास्ते, थोडिसी सूचनाओं करके-फिर भी याद दिलाता हूं, सो प्रथम दूंदनीजीका सत्यार्थसें ही-विचार करलेना । पिछे मरजी होवे तो, फिरसें हमारा नेत्रांजनमें भी, आप लोकोंने निंदाको फिराना ।

( १ ) देखो सत्यार्थ. पृ. ६ में-पिछली तीन नयोंको, सत्यरूप ठहरायके, प्रथमकी-चार नयोंको, असत्यरूप, ठहरानेका प्रयत्न किया । क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ १ ॥

( २ ) पृ. ९ में-नाम, स्थापना, यह दोनों निक्षेप, अवस्तु ठहराया । और पृ. ७३ में-पूर्ण भद्रादिक यक्षोंकी, स्थापनारूप-मूर्त्तियांसें, धन पुत्रादिककी प्राप्ति होनेका दिखाया । क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २ ॥

( ४ ) और पृ. ९० से, द्रौपदीजीके विषयमें-अनेक प्रकारकी

१ जो प्रथमकी चार नयोंको-असत्य ठहरावेतो, साधु श्रावककी जितनी उत्तम करनी है, उनको सबको-असत्य ठहरानेका, महा प्रायश्चित्त होता है ॥ देखो. नेत्रां. पृ. २३ । २४ में ॥

जूठी कुतकों करके, पृ. ९८ में—जिन प्रतिमाके बदलेमें, कामदेवकी स्थापनारूप मूर्तिमें, वरकी प्राप्ति करानेको तत्पर हुई ?। क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ३ ॥

( ४ ) और. पृ. १२४ में—कयबलिकम्मा, के पाठमें—अनेक प्रकारकी जूठी कुतकों करके, वीर भगवानके भक्त श्रावकोंका, जिन पूजनको छुडवायके, पृ. १२६ में—मिथ्यात्वी, पितर, भूतादिकोंका—स्थापना निक्षेपरूप, मूर्तियोंको, दररोज पूजानेको तत्पर हुई ?। क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ?। जब मूर्तियां, कुछ वस्तु रूपकी ही नहीं है, तो पिछे दूंदनीजी इन्नोंकी सबकी मूर्तियोंको पूजानेको क्यों तत्पर हुई ? ॥ ४ ॥

( ५ ) निक्षेप चार ( ४ ) जैनसिद्धांतोंमें—वर्णन किये है, तो भी पृ. ११ में—आठ करके बतलाया ?। क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ५ ॥

( ६ ) भगवानकी मूर्तिमें—एक स्थापना निक्षेप, प्रसिद्धरूप है। तो भी पृ. २८ में—एक मूर्तिमें ही चारों निक्षेप हमारी पास मनानेको तत्पर हुई ?। क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ६ ॥

( ७ ) जब पृ. २८ से—भगवानकी मूर्तिमें ही, भगवानके चारों निक्षेप, हमारी पास—कबूल करानेको तत्पर हुई है, तब तो दूंदनीजीने भूत, यक्ष, काम देवादिकोंकी—मूर्तियोंमें भी, भूतादिकोंका चारों निक्षेप, अवश्य ही माने होंगे ? जब तो हृदयसें भूतादिकोंकी भक्तानी बनके, उन्नोंकी मूर्तियोंको, पूजानेको तत्पर होती है, और उपरसें तीर्थकरोंका—भक्तानी पणा दिखाती है। क्या दूंदनीजीका यह जूठ प्रपंच नहीं है ?

( ८ ) पृ. ४० में—वज्र करण राजाने, अंगूठीमें—जिन मूर्तिको

दर्शन करनेके वास्ते रखी, उसका-गपड सपड, अर्थ लिखके दिखाया ? । क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ८ ॥

( ९ ) पृ. ४९ में, शामु बहुका दृष्टांतसें-मूर्ति मात्रको, पाषाण ही ठहराया । तो भी पृ. ७३ में-पूर्ण भद्र यक्षादिकोंकी, पाषाणकी मूर्तिसें-धन पुत्रादिक, दिवानेको तत्पर हुई ? । क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ९ ॥

( १० ) और द्रौपदीजीके विषयमें, प्रगट रूप जिनमूर्तिका अर्थको छोड करके, पृ. ९८ में, कामदेवकी-पाषाणकी मूर्तिसें, द्रौपदीकी-वरकी प्राप्ति करानेको, तत्पर हुई ? । क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ १० ॥

जब मूर्ति मात्रको, जड पाषाणरूप समजते हो, तो पिछे-तुम बडे ज्ञानी होके, धन पुत्रादिक लेनेको क्यों दौडते हो ? क्या वीतरागी परमशांत मूर्ति ही, तुमरे नेत्रोंमें खुप रही है ? तब तो यह हमारा अंजन, बरोबर-करते रहेंगे तो, तुमरे नेत्रोंमें-आगेको मैल न रहेगा ।

( ११ ) पृ ९१ मे-दूंदनीजीने लिखाकि, अक्षरोंको देखके ज्ञान होता नहीं । तोभी तुम लोक जूडे जूडे अक्षरोंको लिखके, लोकोको-ज्ञान प्राप्त करानेके वास्ते, पोथीयां छपवाते हो ? । क्या यह तुमरे दूंदकोंका जूठ नहीं है ? ॥ ११ ॥

( १२ ) पृ. ३४ में-दूंदनीजीने स्त्रीकी मूर्तिसें, काम जगाया । पृ. ४२ में, मित्रकी मूर्तिसें-प्रेम जगाया । और पृ. ३६ में. आकार देखनेसें-ज्वादा, और जल्दी, समज होनेका दिखाया । और पृ. ६७ मे, भगवानकी मूर्तिमें, श्रुतिमात्रभी-लगानेका, निषेध करके दिखाया ? । क्या यह तुमरे दूंदकोंका, जूठ नहीं है ? ॥ १२ ॥

(१३) पृ. ५७ में—आकार, वा नाम, धरके, उसको—बंदने, पूजनेसे—लाभ नहीं होवे । एसा लिखके, पृ. ७३ में, पूर्णभद्रादिकोंका—आकार, और नामसे—धन पुत्रादिकका लाभ होनेका, दिखाया ? । और पृ. ९८ में, काम देवका—आकार, और नामसे—द्रौपदीजीको, वरका लाभ दिवानेको तत्पर हुई ? । क्या यह तुमरे ढूँढकोंका जूठ नहीं है ? ॥१३ ॥

(१४) पृ. ६९ में—सम्यक् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि, यह दोनों प्रकारका देवताओंकी पास, शाश्वतीजिन प्रतिमाओंको, व्यवहारिक कर्त्तव्यसे पूजाई । और पृ. ७० में, उवाई सूत्रसे—महावीर स्वामीजीके, चुंचुवेंका वर्णन बिना, शिखासे नखतकका वर्णन कबूल किया । और राय मश्रोजीसे, जिन पढिपाका—दाढी मुछाँ के बिना, नखसे शिखा तकका, वर्णन तूँन दिखा, तोभी पृ. ६७ में, ढूँढनीजी लिखती है कि—सूत्रोंमें तो—मूर्त्तिपूजा, कहीं नहीं लिखी है । यदि लिखी है तो हमें भी दिखाओ ? । क्या ढूँढनीजीका यह लिखना जूठ नहीं है ? ॥ १४ ॥

(१५) पृ. ६१ में—मूर्त्तिपूजा, पंडीतोसे तो—ढूँढनीजिने ही सुनी, और शास्त्रोंमें भी लिखी हुई देखी, तोभी पृ. १४२ में, लिखती है कि—सूत्रोंमें, मूर्त्तिपूजाका—जिकरही नहीं । परंतु इतना मात्रसे भी, संतोषको नहीं होती हुई, उलटपणे ते मूर्त्ति पूजाके पाठोंका अर्थ, जूठे जूठे लिखके—निषेध करनेको, तत्पर

१ देखो, सत्यार्थ. पृ. १९ में, ढूँढनीजी, मूर्त्तिमें—नाम निक्षेप मान्य करके, पिछेसे हमारी पासभी—मान्य करानेको तत्पर हुई है ? मूर्त्तिमेंभी चारों निक्षेपकी मान्यताके अभिमायसेही, ढूँढनीजिने यह लेख लिखा है ॥



होती है ? । क्या यह जूठे जूठे, दूँदनीजीके बेदंगापणाका, धांधल नहीं है ? ॥ १५ ॥

( १६ ) पृ. ७५ में, दूँदनीजीने लिखाके, सुधर्मा स्वामीजी का लेख सैंकड़ों पृष्ठों तकका ऐसा है कि, जिससे हमारा आत्माका स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती है, तो क्या हमारे दूँदक भाइओ, अपना जूठे जूठे—गंदा लेखोंसे, अपना आत्माका स्वार्थकी सिद्धि, मानने को तत्पर हुये है ? । क्या दूँदनीजीका यह जूठे नहीं है ? ॥ १६ ॥

( १७ ) पृ. ७७ में—दूँदनीजीने, बहूत्रे अरिहंत चेइय, के पाठसे, जिन मंदिरोंका अर्थको मान्य करके, दूसरा ( आयाखंत चेइय ) का, पाठांतरका पाठको—प्रक्षेपरूप, ठहरानेका—प्रयत्न किया ? । क्या दूँदनीजीका यह जूठे नहीं है ? ॥ १७ ॥

( १८ ) पृ. ७८ में—दूँदनीजीने अंबडजीका, पाठ लिखा है । और पृ. ७९ में, अरिहंत चेइय, पाठका अर्थसम्यकज्ञान, महाव्रत, अनुव्रतादिकरूप, करके दिखलाया है ? ॥ १८ ॥

( १९ ) और पृ. ८७ में, आनंद श्रावकका अधिकारमें, इसी ही—अरिहंत चेइय, का पाठ, प्रगटपणे लिखके भी—सर्वथा प्रकारसे लोप करनेका, प्रयत्न किया है ॥ १९ ॥

( २० ) और पृ. १०९ में, चमरेंद्रके पाठार्थमें, इसी ही—अरिहंत चेइय, के पाठमें, पद शब्दको, अपना घरमेंसे—जोड करके, केवली छन्नस्थका अर्थ करके दिखलाया है ? ॥ २० ॥

इस प्रकारसे—तीनों स्थानमें, अरिहंत चेइय, का एक ही पाठसे, जिन मूर्त्तिका प्रसिद्ध अर्थको—छोड करके, मनः कल्पनासे भिन्न भिन्न प्रकारसे, अर्थ करके—दिखलाया है । क्या यह दूँदनीजीका जूठे जूठे नहीं है ? ॥

( २१ ) और चैत्य शब्दका अर्थ, दोचार प्रकारका ही-कोशोंमें प्रसिद्ध है । तो भी दूंदनजीने, पृ. १०६ सें-११२ अर्थ, जूठे जूठे लिखके दिखाया, क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २१ ॥

( २२ ) पृ. १२१ में, महा निशीथकी गाथाके-जिन मंदिरोंका अर्थको, उपमावाची करके दिखाया ? । क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २२ ॥

जो कवी जिनेश्वर देवके, मंदिरों ही दूनीयामें विद्यमान न होते तो, दूंदनीजी-उपमा ही, किसकी करके दिखलाती ? ॥

( २३ ) पृ. १२९ सें १४० तक, सब आचार्योंकी निंदा, और सब जैन ग्रंथोंको भी निंदा, करके-टीका, चूर्णि, भाष्य, दूंदनीजी अपने आप बन बैठी ? । सो क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २३ ॥

( २४ ) पृ. १४२ में, साधु पुरुषोंके-अयोग्य वर्तनका निषेधरूप, पंचम स्वप्नके पाठसे, सर्वथा प्रकारसे-जिनमंदिरादिकोंका निषेध करके, दूंदनीजीने दिखलाया ? । सो क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २४ ॥

( २५ ) पृ. १४४ में, महा निशीथके पाठमें भी, साधु पुरुषोंकी-पूजाका हि, निषेध किया गया है । तो भी दूंदनीजी, सर्वथा प्रकारसे, जिनमूर्त्ति पूजाका-निषेध करके, दिखलाती है ? । और दूसरी जगेंपर, मिथ्यात्वी मूर्त्तियांका, पूजनकी-सिद्धि करके, दिखलाती है ? । सो क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २५ ॥

( २६ ) पृ. १४७ सें, विवाह चूलियाका पाठमें, ७२ तीर्थकरोंकी प्रतिमाका-वंदन भी, और पूजन भी, करनेका-वीर भगवाने ही दिखलाया है, और पिछेसे तीमरा प्रश्नमें साधुकी पूजाका,

निषेध किया है। उसका सर्वथा प्रकारसे—निषेध करके, और दूसरा पक्षमें मूर्ति पूजाकी आज्ञाको देनेवाले वीरभगवानको भी, कलंकित करके—दिखाया। क्या दूंदनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥२६॥

(२७) जिनदत्त सूरिजी महाराजने, अपने हाथसे, अनेक मंदिरोंकी—प्रतिष्ठाओ, कराई है। परंतु अपना लेखमें साधुकी पूजाका निषेध करके दिखलाया, उस साधुकी पूजाका निषेधके बदलमें—  
 पृ. १५० से, दूंदनीजीने, सर्वथा प्रकारसे—निषेधकरके दिखलाया। क्या यह दूंदनीका जूठ नहीं है ? ॥ २७ ॥

पाठक वर्ग ! यह सतावीस कलमके नमुनेसे, दूंदनीजीका कितना सत्यपणा है सो, इसरा मात्रमें दिखाया है ?। इनकी दिशाके अनुसारसे, आपलोकोने—विचार करलेना, क्योंकि सर्वथा प्रकारके जूठा लेखको—किस किस प्रकारसे, हम लिखक दिखावेंगे ?। दूंदनीजीने हृद उपरांतका जूठ लिखके, जो अपना—साध्वीजीपणा दिखाया है सोतो, गोलें जीवोंको भ्रमानेके वास्तेही लिखा है, बाकी तो सब ग्रंथ, जूठे जूठ लिखके, जैन धर्मके तत्त्वोंसे—भ्रष्ट होती हुई दूंदनीजी, दूसरे भव्य प्राणियोंकोभी, जैनधर्मके तत्त्वोंसे भ्रष्ट करनेकाही—उद्यमकर रही है। तें सिवाय न तो दूंदनीजीके लेखमें कोई तत्त्व है, और न तो कोई सारभी है ॥ तोभी दूंदनीजीके पक्षकार, विचार चतुर, जैन समाचारके अधिपति वाडीलाल शाह, दूंदनीजीका लेखकी बड़ी प्रमंसा करके, सत्यतामें अपनी सहाय भूति देते रहे ? न जाने ऐसे प्रसिद्ध पत्रकार होके, दूंदनीजीके लेखका विचार किस प्रकारसे किया होगा ?। सो कुछ हम समज-सकते नहीं है ॥ और जैन समाचारके अधिपतिनेभी—सम्यक्क, अथवा धर्मनो दरवाजो, इस नामसे गूजराती भाषामें, एक ग्रंथ

( २४० ) तात्पर्य प्रकाशक दुहा बावनी.

---

प्रसिद्ध कियाथा। उसग्रंथ बनानेमें दो तीन ढूढक पंडितो सहाय भूतभी हुयेथे, तोभी सब जूढही जूढ लिख माराथा। उसकाभी उत्तर हमारे तरफसे दिया गया है, सो पाठक वर्ग मंगवायके देख लेवे। हमारे ढूढकभाइओ, किसकिस प्रकारकी जूढी पंडिताई करके दिखाते है सो मालूम हो जायगा।

॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति श्री विजयानंद सूरीश्वर, लघुशिष्येन अपर विनयेन, ढूढक हृदय नेत्रांजन प्रथम भाग, तात्पर्य प्रकाशक दुहाबावनी संयोजिता, सा सप्ताहा ॥

॥ मूढ पुरुषोंमें सिद्धांतके वचनोंकी निष्फलता ॥

॥ विचारसारा अपि शास्त्रवाचो, मूढे गृहिता विफलीभवन्ति ।  
मितंपचग्राम्यदरिद्रदाराः, कुर्वत्युदारा अपि किं सुजात्यः ॥१॥

अर्थ—शास्त्रके वचनो होते है सो तो, विचार करनेको, सदा साररूप ही होते है । परंतु मूढ पुरुषो—ते वचनोंको ग्रहण करते हुये, निष्फलरूप ही कर देते है । जैसे कि—सुजातिकी स्त्रियो, बडी उदार भी होवे, परंतु गामडाओका—दालिद्र और कृपण पुरुषोंके घरमें गई हुई, ते उत्तम उदार स्त्रियां, उहांपर विशेष क्या कर सकतीयां है ? अपितु विशेष कुछभी नहीं कर सकतीयां है ॥ तैसे—ही—शास्त्रके वचन, बडे गंभीर, और बडे उदार, और अर्थसे भरे हुयेभी होते है । तोभी ते मूढ-पुरुषोंके हाथमे गये हुये, कबीमो सफलताको प्राप्त नहीं होते है । किंतु ते मूढ पुरुषो—शास्त्रके गंभीर वचनोंका, अर्थको नाश करते हुये, अपनाभी साथमें नाश ही-कर लेते है. ॥ इति काव्यार्थ ॥ १ ॥

अब इसकाव्यका, कुछ थोडासा तात्पर्य लिखते है, सो तात्पर्य

१ जैसेकि—श्रीअनुयोग द्वार सूत्रके वचनोंका नाश, सत्यार्थ चंद्रोदयमें, दृढनी पार्वतीजीने किया—देखो इनका विचार—नेत्रांजनमें ॥ और—धर्मना दरवाजा, नामका ग्रंथमें—शाह बाडीलालने किया । देखो इनका विचार—धर्मना दरवाजाने जोवानी दिशा, नामका ग्रंथमें ॥ इन दोनोने कितनी मूढताकीई है सो मालूम होजायगा ॥

यह है कि—जैन सिद्धांतोंके बचन सहस्र धारा रूप, अथवा लक्ष धारा रूप, महा गंभीर स्वरूपसें—गणधर महा पुरुषोंने, गूथन किये हुये है । और—उस महा गंभीर वचनोंमें, रखा हुवा अति सूक्ष्म विचार, कोई २ महा पुरुष, सद्गुरुकी कृपाका पात्र, और विचार चतुर्मुख, होते है सोही—अपनी अपनी योग्यता मुजब, वारिक दृष्टिसें देख लेते हुये । ते महा पुरुषो उस सिद्धांतोंका बचनके अनुसारसें, भव्य प्राणियोंके हितके लिये—योग्य अर्थ, निर्युक्तियांमें, और भाष्योंमें, और आगे उनकी टीकाओ आदि प्रकरण ग्रंथोंमें, लिखके दिखला गये है । और छेवटमें—ते महा पुरुषोभी कह ते गये है कि, एकैक सूत्रमें—अनंत अनंत अर्थ, रखा हुवा है । हम कहांतक लिख लिखके दिखावेंगे ? ॥

इस वास्ते—नतो निर्युक्तियां, निरर्थक है । और नतो—भाष्यों, निरर्थक स्वरूपकी है । और नतो सिद्धांतोंकी—टीकाओ, निरर्थक है । और नतो जैन के—प्रकरण ग्रंथो, निरर्थक रूपके है । महा पुरुषोंके किये हुये—ग्रंथोंमेंसें, एक भी ग्रंथ निरर्थक नहीं है ॥

और जो दूसरे साधारण मत वाले है उसमें भी—यह बात, प्रसिद्ध है कि— टीका गुरूणा गुरुः । अर्थात् टीका है सो—गुरुका भी गुरु है । उस टीका के बिना, आज कलके—साधारण बोध वालेसे, कबी भी योग्य अर्थ नहीं हो सकता है । प्रथम देखो आज तक तुमरे दूढ़कोंके ग्रंथोंमें, कितनी सत्यता आइ है ? तो पिछे उनके उपदेशमें सत्यता कहांसें आने वाली है ? सो प्रथमसें विचार करत चले आओ, पिछे महा पुरुषोंको दूषित करो ? । नाइक आप भवचक्रमें डुबते हुये, दूसरे भव्य प्राणियोंको—किस वास्ते डोवते

हो ? । प्रथम देखो— समकत्व शल्लयोद्धार, दूढक जेठमलजीके समकित सारका लेखमें, कितनी सत्यता आई है ? ॥

फिर देखो— गण्पदीपिका समीर । दूढनी पार्वतीजीकी ज्ञान दीपिकामें, कितनी सत्यता आई हुई है ? ॥

फिर देखो—धर्मना दरवाजाने जोवानी दिशा, तुमरे दोतीन—बडे बडे पंडितोंने मिलकर, बनाया हुआ—धर्मना दरवाजा, नामका ग्रंथमें, कितनी सत्यता आई हुई है ? ॥

फिर देखो, यह—दूढक हृदय नेत्रांजन, दूढनी पार्वतीजीका—सत्यार्थ चंद्रोदयमें, कितनी सत्यता आई हुई है ? ॥

और श्री अनुयोग द्वार सूत्रके—मूल पाठका अर्थको, किस प्रकारसे विपरीतपणे समज्या है ? । और दूढनीजीके जूठा गर्वकी सीमा, कहांतक पुहची है, सो अच्छीतरासे ख्याल करो ? । केवल—तीर्थकरोंकी निन्धा, गणधर महा पुरुषोंकी भी निन्धा, और जैन धर्मकी रक्षा करने वाले—सर्व जैनाचार्योंकी भी निन्धा, के सिवाय तुमरे दूढकों के—हाथमें, कौनसा विशेष धर्म आया है ? ॥

और—जो दया दयाका जूठा पुकार करके, तीर्थकरोंके सदृश तीर्थकरोंकी भव्य मूर्त्तियांकी, अज्ञा करनेको तत्पर हो जाते हो सोतो, तुमरी एक जातकी, मूढता है । परंतु वास्तविक प्रकारकी—दया नहीं है ? ॥

क्योंकि जब तक—सम्यक् ज्ञान पूर्वक, दया धर्ममें—प्रवृत्ति न—कीई जावे, तब तक—दया धर्म, वास्तविक नहीं कहा जावेगा । किंतु—दया मूढता ही, कही जावेगी । क्योंकि—दीक्षा महोत्सव, मरण महोत्सव, साधुकी संघ यात्रादि, साधुके निमित्ते—आरंभवाले

कायोंमें, तुमको तुमेरी दया माताका—ध्यान भी नहीं आता है । मात्र तीर्थकर देवकी भक्तिके वखतमें ही, तुमेरी जूठी कल्पी हुई दया माता—तुमको आके सताती है, और वीतराग देवकी भक्तिसें भ्रष्ट करती है । और तीर्थकरोंकी भक्तिके सिवाय—दूसरी जगेंपर, ते जूठी कल्पी हुई तुमेरी दया माता—तुमको कुछ भी आके कहती ही नहीं है. ॥

तो इहांपर—थोडासा विचार करोकि, यह दया मूढता कही जावेगी कि, वास्तविक प्रकारकी—दया कही जावेगी ? । हमने जो शास्त्रोंमें अनेक प्रकारका, मूढताके भेद देखे है, उसमेंका यह भी एक भेद ही मालूम होता है । नहीं तो इतना विपरीतपणा—जगें जगेंपर, हमारे दूँडकभाइयांका क्यों आता ? । अर्थात् कबी भी नहीं आता । यह तो कोइ—एक प्रकारका, अघोर कर्मकी ही विचित्रता, मालूम होती है । अगर जो ऐसा न होता तो—तीर्थकरोंकी परम शान्त मूर्त्तियांकी पूजाके स्थानमें, परम श्रावकोंकी पास—पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिकोंकी—भयंकर मूर्त्तियां, दररोज पूजानेको—त्यों तत्पर होते ? ॥

और यह—मूढता, कोइ ऐसी महा पापिनी है कि, जिसने पूर्ध कालमें भी—अनेक प्रकारसें, अनेक प्राणिओंको, फसाये है । और इस लोक परलोकका स्वार्थसें भी, भ्रष्ट ही किये है । परंतु सारा सारका—विचार करनेको, अवकाश नहीं दिया है.

॥ जैसेंकि—दुहा.

साराऽसार विचार विन, भोग इंद्रिमें लुद्ध ।

कागदकी हथनी विषे, फसें हाथी हुय बुद्ध ॥ १ ॥

साराऽसार विचार विन, रसन विषयमें मूढ ।



धीवर केरी जालमें, फसैं मछ जइ गूढ ॥ २ ॥  
 साराऽसार विचार विन, घ्राण विषयमें मस्त ।  
 फसैं भमर ही कमलमें, सूर्य होय जब अस्त ॥ ३ ॥  
 साराऽसार विचार विन, चक्षु विषयमें अंध ।  
 पडैं पतंग जइ दीपमें, सबल करमका बंध ॥ ४ ॥  
 साराऽसार विचार विन, श्रोत्र विषयमें लीन ।  
 पापी जनके हाथसुं, मोत विन मरैं हरिण ॥ ५ ॥  
 मानवशैं रावण थयो, कयों न सार विचार ।  
 अंते मरी नरकें गयो, लोके कह्यो गमार ॥ ६ ॥  
 मूढ बनी दुर्योधने, पांडवपर कियो क्रोध ।  
 सर्वनाश अपनो कियो, लियो न कृष्णासु बोध ॥ ७ ॥  
 लुटे धन और धरमको, मनके महा मलीन ।  
 लिखैं बकैं जूठुं सदा, जाणो चतुर परवीण ॥ ८ ॥  
 सहज वस्तुको निंदतां, बंधें पातक घोर ।  
 जिन मूरतिकी निंदना, सो संसार अघोर ॥ ९ ॥  
 दया मूढ के योगसैं, मत निंदो जिन राज ।  
 मूरति भव समुद्रसैं, पार उतारण जाज ॥ १० ॥  
 मित्र मूढ योगी हुवो, न कियो सार विचार ।  
 कंकण पीतलका लिया, किई ठगाई सुनार ॥ ११ ॥

तैसैंही-बीतरागी मूर्त्तिकी भक्तिसैं भडकने वाले, हमारें दूढक भाइओके पंथमें, प्रामाणिक दया माताका राज्य तो नहीं है, किंतु

दया मूढताका ही राज्यकी प्रबलता मालूम होती है ? । नहिलर हमारा परमोपकारी तीर्थकरोंकी, परमशांत मूर्तिकी पूजाको—छुडवायके, मिथ्यात्वी जो पितरादिक है, उनोंकी—क्रूर मूर्तियांकी, दररोज पूजा करानेको क्यों तत्पर होते ? ।

इस वास्ते मालूम होता है कि, हमारे दूढक भाइयोंके अंतःकरणमें, कोइ एक प्रकारकी मूढताका राज्यकी ही—प्रबलता हुई होगी ? ।

इसी कारणसे ही, हमारे दूढक भाइयोंके हृदयमें—सारा सारका विचार नहीं आता होगा ? ।

और इसी ही कारणसे, गणधरादिक सर्व जैन सिद्धांत कारोंका लेखसे भी, विपरीतपणे लेख लिखते है । हे दूढक भाइयो ! तुम दया दयाका जूठा पोकार करके, और बीतराग देवकी भव्य मूर्तियांकी पूजाको छुडवायके, मिथ्यात्वी देवोंकी—भयंकर मूर्तियां, पूजानेको तत्पर होते हो

परंतु—थोडासा मध्यस्थ भावसे खयाल करोंकि, जैन तत्त्वके विषयमें, आजतक दोनों तरफका लेख, जितना बहार आया है, उसमेंसे एक लेखभी, तुमेरे तरफका सत्य स्वरूपसे प्रगट हुवा है ? । तुम अपने आप जैन सिद्धांतोंसे भिलाके देखो, मालूम हो जायगा । किस वास्ते—जैन धर्मके निर्मल तत्त्वोंका, बिगाडा करके, अपने आप जैन धर्मसे भ्रष्ट होते हो ? ।

हमने यह लेख तुमेरा हितके वास्ते लिखा है । तुमने कोरा कष्ट बहुत भी किया, तोभी जैन तत्त्वका विमुखपणासे, और तीर्थकरोंकी भव्य मूर्तिकी निंदासे, और जैन धर्मके सर्व सद्गुरुओंकी निंदासे, और जैन धर्मके सर्व तत्त्व ग्रंथोंकी निंदासे, तुमेरा

कष्टसे क्या सिद्धि होने वाली है ? उस बातका अच्छीतरासे विचार करो ।

इसी वास्ते हम कहते है कि, यह तुमेरी दयामाता, विचारवाली नहीं है, किंतु दया मूढता ही है । इस प्रकारकी—दया मूढतासे, न तो तुम अपना कल्याण करसकोगे, और न तो दूसरेका भी कल्याण कर सकोगे, इसमें एक साधारण—उदाहरण, देके मैं मेरा लेखकी भी समाप्ति करता हूं । जैसे कि—कोई एक पुरुषथा, सो धर्म करनेकी तीव्र इच्छावाला होके, तापस व्रतको अंगीकार किया । उसने किसीसे श्रवण करके धर्मके स्वरूपका निश्चय किया कि—दया मूलो हि धर्मः । परंतु—ते नवीन तापस, सारा सारका विचार नहीं कर सकताथा । एकादिन भिक्षादिक कार्यके वास्ते, दूसरे तापस वस्तिमें जाते हुये, शीतज्वरसे पीडित एक तापसकी रक्षा करनेके वस्ते इस नवीन तापसको छोड गये । और कहते भी गये कि, इसको आहार, पानी, आदि कुछ देना नहीं । हम अभी आते है ।

अब ते शीत ज्वरीने, दीनपणा धारण करके, शीतल जल मंग्या, उस नवीन तापसने—विचार कियाकि, अरेरे—दया मूलोहि धर्मः, एसा विचार करके, ते शीत ज्वरीको शीतल जल दीया ।

अब ते ज्वरी, जल पीनेकी साथ—त्रिदोषमें आके, तरफडाट करनेको लगा । इतनेमें दूसरे तापसों भी आ गये । माहित होके पश्चात्ताप करते हुये, कहने लगेकि—अरे अज्ञानिनः किं न कुर्वति । अर्थात् अज्ञानी पुरुषों क्या क्या अनर्थ नहीं करते है ।

अब इस वचनको भी, ते नवीन तापसने धारण करके, वि-

चार कियाकि-हुं अज्ञानी होगा ? वास्ते कुछ ज्ञान प्राप्त करना । फिर किसीसे सुनाकि-तपसा ज्ञाना वाप्तिः । अब इस बचनको भी धारण करके, चले तपसा करके ज्ञानकी प्राप्ति करनेको पहाड उपर ।

अब दूसरे तापसो थे सो, दूढते दूढते दिन पंद्ररा बीसमें, पु-हचे पहाड उपर-देखा भूष तृषासे पीडित,परण तुल्य दिशामें । ज्ञानतो क्या प्राप्त होनेवाला था ? लेकिन ते तापसो, मरण दशाकी प्राप्तिसें छुडायके अपना मउमें लेकर आगये ।

फिर किसीसें सुनाकि-समाधि मूलोहि धर्मः । अर्थात् सबकी समाधि करना सोही धर्म है । अब-ते नवीन तापस, चला समाधि करनेको,चलते २ एक भाविक गाममें,बैठे समाधि लगायके । और धर्मका स्वरूप पुछनेवाले लोकोंको भी, कहता रहाकि-समाधि मूलोहि धर्मः । लोक पूजासें कुछ धनकी भी प्राप्ति हुई । परंतु-धुत्तोंको,धनप्राप्तिको खबर पडनेसें,भक्तिपूर्वक ते धूर्त लोकों भी धर्मका स्वरूप, पुछनेको लगे । अब सारा सारका विचार शून्य, ते नवीन तापसने—दिखाया समाधि मूलक धर्म । धन लेनेका प्रपंचके वास्ते, ते धुत्तोंने भेजी वेश्याको, जाके कहनेलगी, स्वामीनाथ मेरा कामज्वरकी समाधि करो ? ।

इधर स्वामीजी गये समाधि करनेको, उधरसें धूर्तोंथे सो धनको ले गये, गामवाले लोकोंको मालूम होनेसें, स्वामीजीको-गामसें निकाल दिये । इस वास्ते-सारा सारका विचार विना के स्वामीजीको, नतो—दया मुलक धर्ममें, कुछ कार्य सिद्ध हुवा । और स्वामीजीको, न तो तपसाने भी कुछ ज्ञानकी प्राप्ति हुई । और समाधि मूलक धर्मसें तो स्वामीजीका, दोनों भवका समाधा-नही हो गया ॥

इस उदाहरणसे—विचार करोकि, जो पुरुष, साधारण मात्रका वचनमें भी, सारा सारका विचार—नहीं करता है सो, नतो इस लोकका—कार्यकी सिद्धि, कर सकता है, और नतो परलोकका भी—कार्यकी सिद्धि, कर सकता है। तो पिछे जो जैन तत्त्वका मूल सिद्धांत ? सात नयोसें गर्भित। २ चार निक्षेपादिकसें गर्भित। ३ प्रत्यक्ष परोक्ष वे मूलके प्रमाणसें गर्भित। ४ उत्सर्ग अपवादादिक षट् भंगसें भी गर्भित है। उसका तत्त्व गुरुके बिना मूल मात्रसें कैसें समजा जावेगा ? कयी भी न समजा जावेगा। इसी कारणसें इसमेंसें एकैक विषयके साथ, नव तत्त्वादिक स्वरूप हजारो श्लोकोंमें लिखके, महापुरुषो दिखा गये है। और ते ग्रंथो विद्यमान पणे भी है। अगर कोई महापुरुष फिरसें भी लाखो श्लोकोंमें, लिखके दिखलावे, तो भी आगे काल विशेषसें, और पुरुष विशेषके योगसें, समजनेकी, और समजावनेकी—अपेक्षा ही बनी रहती है ! इसी वास्ते कारण पायके—महापुरुषोंको, ग्रंथों बनानेकी आवश्यकता पड जाती है।

परंतु—निर्युक्तिकार, भाष्यकार, और टीकाकार महापुरुषोंका—आश्रयको अंगीकार किये बिना, और परंपराका सदगुरुके पास पडे बिना, हमारे जैसें आजकालके जन्मे हुये अल्प बुद्धिवालोंको, जैन धर्मके तत्त्वके विषयमें—एक दिशा मात्रका भी भान होना बडा दुर्गट है। तो पिछे उस महापुरुषोंकी अवज्ञा करके, और गुरु द्राहीपणाका महा प्रायश्चित्तका बोजा, शिरपर उठायके, और मूल सूत्र मात्रका—जूठा हठ पकडके, जो कुछ—जैन तत्त्वके विषयमें लिखेंगे, और दूसरोंको उपदेश देंगे, सो सभी जूठही जूठके शिवाय, नतो सत्य स्वरूपका लेखको लिख सकेंगे, और नतो दूसरोंको सत्य स्वरूपसें समजा सकेंगे ॥

इस बातको-अनुभवमें सिद्धपणे, देखलो दोनों तरफका लेखको मिलायके, यथा योग्य मालूम हो जायगा। हाथमें कंगण, तो पिछे-आरसाका, क्या काम है ? ॥

प्रथम देखो-सूत्रोंकी पारगामिनी, पंडिता दूढनी पार्वतीजीको एक दया मूढताके योगसें, सारा सारका-विचार, कितना कर सकी है ? ।

तुमको-विचार करनेका, बोजा कभी हो जानेके वास्ते-इसारा मात्रसें, मैं भी दिखाता हूं। सो उनके अनुसारसें विचार करते चलेजाना, यथा योग्य मालूम हो जायगा ॥

देखोकि-दूढनी पार्वतीजीने, सत्यार्थ. पृ. १७२ में, लिखा-थाकि-जूठ बोलना पाप है, इसलेखके विषयमें, हमने हमारा तरफका बावनमा [ ५१ ] दुहामें, सूचना किईथीके-नहीं जूठका अंत, ऐसा लिखके, जो सतावीश कलमसें, दूढनीजीके जूठ पणेका, इसारा करके-दिखायाथा, वह सभीही कलमके साथ, यथा योग्य पणे दयामूढताको जोडकरके, विचार करना। दूढनीजीका लेख, दया वाला है कि-दया मूढताका है ? यथा योग्य मालूम हो जायगा ॥ जैसेकि [१] दूढनीजीने-पिछली तीन नयोंको, सत्यरूप ठहरायके, प्रथमकी चार नयोंको, असत्यरूप ठहरानेका-प्रयत्न किया। सो दूढनाजीने-भव्य जीवोंके उपर दयाकीई है कि-दया मूढता ? ॥१॥

[२ १ नाम, २ स्थापना, यह दोनों निक्षेप-अवस्तु ठहराया। और-पूर्णभद्र यक्षादिकोंकी, स्थापना रूप-मूर्तिकी पूजासें, धन पुत्रादिककी प्राप्ति हानेका दिखाया। यह दूढनीजीने-भव्य जीवोंके उपर, दया कीई है कि-दया मूढता ? ॥ २ ॥

[३] द्रौपदीजीके विषयमें, अनेक प्रकारकी जूठी कुतकों

करके, जिनमतिमाके बंदलेमें-अवस्तरूप काम देवकी, स्थापना रूप-मूर्त्तिसें, बरकी प्राप्ति करानेको-तत्पर हुई ? सो दूढनीजीने, भव्य जीवोंके उपर दया कीई है कि-दया मूढता ? ॥ ३ ॥

हमारा इस लेखके अनुसारसें, सतावीसैं कलमकी साथ, दूढ-नीजीकी-दया, और दया मूढताका-विचार, करते चले जाना ॥ मैं अबज्यादा कुछ नहीं लिखता हूं, मात्र इतनाही कहता हूं कि-महा पुरुषोंकी अवज्ञा करनेसें, न तो इसलोकमें कल्याणके पात्र बनोंगे, और न तो परलोकमें भी कल्याणके पात्र बनोंगे, यह बात तो निःसंशय पणे सेंही सिद्ध है ॥ इत्यलं अतिविस्तरेण.

॥ इति काव्यका तात्पर्यार्थ ॥

॥ मूढ पुरुषो तत्त्व देखनेका उत्साह मात्र भी

नहीं धरते है ॥

॥ केचिन्मूलानुकूलाः कतिचिदपिपुनः स्कंधसंबंधभाजः

छाया मायांति केचित् प्रतिपद मपरे पल्लवानुल्लवंति ।

पाणौ पुष्पाणि केचिद्धति तदऽपरे गंधमात्रस्य पात्रं,

वाग्वल्लैः किंतुमूढाः फल महह नहि द्रष्टु मप्युत्सहंते ॥ १ ॥

अर्थ—कितनेक मूढ पुरुषो हैसो, वाणीरूपी वेलडीका परमार्थको समजे बिना, मूल मात्रकोही—अनुकूल होके, अपनी पंडिताईको प्रगट करते है । कितनेक पुरुषो हैसो, ते वेलडीका, एकाद स्कंधरूप, ( अर्थात् एकाद विभागरूप ) पढ करके, उनका परमार्थको समजे बिनाही—अपनी पंडिताईको दूनीयामें प्रगट करते है । और कितनेक पुरुषो हैसो, ते वेलडीकी छाया मात्रका आश्रयको अंगीकार करते हुये, अपनी पंडिताईको प्रगट करते है । और कितनेक पुरुष हैसो, ते वेलडीका पल्लवोंका—उच्चारण करते हुये, ( अर्थात् किसी जगेंका श्लोक तो, कीसी जगेंकी गाथा, छंद, दुहादिकका—उच्चारण करते हुये ) अपनी पंडिताईको दूनीयामें प्रगट करते है । और कितनेक पुरुष हैसो, ते वेलडीके—पुष्पोंको, अपने हाथमें धारण करते हुये, ( अर्थात् बडे २ पोथे अपने हाथ मेंलेके बैठते हुये ) अपनी पंडिताईको दूनीयामें प्रगट करते है । और कितनेक पुरुष हैसो, ते वेलडीका गंध मात्रकाही पात्र बनते



है, ( अर्थात् ग्रंथको उपर उपरसें ही देख लेते है ) और अपनी पंडिताईको प्रगट करते है । परंतु ते वाणीरूपी बेलडीका—तात्पर्य-रूप फल क्या है, उसकी तरफ देखनेका भी उत्साह, ते मूढ पुरुषो नहीं धारण करते है ॥ १ ॥ इति काव्यार्थः संपूर्णः ॥

इस काव्यमें तात्पर्य यह कहा गया हैकि—जो जो तत्त्वके मूल सिद्धांतो है, उनकी व्याख्यारूप निर्युक्तियां, भाष्यो, टीकाभो, प्रकरण आदि ग्रंथो है, सोभी गुरु मुखसें पढ करके, उनका अर्थ मिलाया हुवा है, तोभी जब तक विशेष विचारमें नहीं उतरता है, तब तक ते ग्रंथोके—तत्त्वका रहस्य, कवी भी नहीं मिला सकता है । तो पिछे टीका कारादिक सर्व महा पुरुषोकी अवज्ञा करने वाले, ते मूढ पुरुषो, गुरुज्ञान बिनाके, मूल मात्रका सिद्धांतोसे—तत्त्वका रहस्य, कहासें मिला सकने वाले है ? । अपितु तीन कालमें भी न मिला सकेंगे ॥

॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति श्रीमद्विजानंद सूरीश्वर शिष्येन मुनिनाऽपर विज्ञेन  
दूढक हृदय नेत्रांजन प्रथम विभागे, विचार सार विवेको दर्शितः  
स समाप्तः ॥

श्री

## ढूढक हृदय नेत्रांजनस्य शङ्खि पत्रमिदम्.

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.
निषाद्विचार-निषद्विचार	?	२		मिशरपिणेका-मिशरी			
युक्तोवै-	युक्तोहिवै	६	२३		पणेका	४५	१५
विशष-	विशेष	१२	२४	सौ-	सो	४६	८
भावस्तु-	भाववस्तु	१४	१	ढूढनी-	ढूढनीजीको	४७	२२
अस्था-	अवस्था	१५	३	बिंव-	बिंव	४८	१२
सर्व-	सर्व	१५	६	निक्षेप-	निक्षेप	४९	२०
कितु-	किन्तु	१६	३	कुभ-	कुंभ	४९	२१
निक्षेपसें-	निक्षेपसें	१६	७	शास्त्रा-	शास्त्र	५०	१
शिघ्र-	शीघ्र	१६	१५	संका-	शंका	५७	१९
क्षासात्पणे-	साक्षात्पणे	२०	११	योगिक-	यौगिक	५८	११
बैठा नही-	बैठा नहीं	२०	११				१५
तात्पर्यार्थ-	तात्पर्यार्थ	२०	१६				१६
भुत-	भूत	२५	११	बोधकी-	बोधकी	५९	१
लोकत्तरिक, लोकोत्तरिक		२६	६	निक्षेप-	निक्षेप	५९	२१
पलवितेन-	पल्लवितेन	२६	१७	अस्था-	अवस्था	५९	२३
पड-	पठ	२९	१९	भाव-	भाव	६०	२२
शून्य-	शून्य	३२	५	जौ-	जो	६१	१०
भूमि-	भूमि	३२	२२	भावकी-	भावकी	६१	१५
		४०	१८	मूर्त्ति-	मूर्त्ति	६२	१६
संबंध-	संबंध	४०	१८	हेमका-	हमको	६२	२५
बुद्धिकैसे-	बुद्धिकैसी	४१	१२				६३
							१९

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.
धका-	धक्का	६४	१०	वैठना-	वैठना	१०	१०
वस्तके-	वस्तुके	६४	१३	ढंडनी-	ढुंडनी	८९	२
वेशा-	वैसा	६४	१४	तरे-	तेरे	१४	१४
वत-	वत	६४	१९	मूर्तिपर-	मूर्तिपर	१४	१४
वने-	वने	६७	१	अरिहंत-	अरिहंते	९०	१७
दूसरेका-	दूसरेका	६८	१५	देवलाक-	देवलोक	९३	११
साहि-	साहित	६९	११	मूर्तियें हैं-	मूर्तिथे है	९५	१८
मिठीका-	मिट्टिका	६९	१५	मूर्तिका-	मूर्तिका	२१	२१
		७२	२०	संपदायके-	संभदायके	९७	१२
सूत्रमें-	सूत्रमें	७५	१	पंडिमाणं-	पडिमाणं	९८	४
पुजा-	पूजा	"	७	पूर्णभद्र-	पूर्णभद्र	९९	१५
मूर्ति-	मूर्ति	"	८	इसं-	इस	१००	१
इत्यादि-	इत्यादि	"	१५	आदिकी-	आदिकी	"	५
शास्त्रोंमें-	शास्त्रोंमें	७६	८	वीतरग-	वीतराग	१०४	१०
हठनो-	हठतो	७६	१९			१०२	२५
पुजन-	पूजन	"	२०	परिव्रजाक,	परिव्रानक	१०६	१०
करनेके-	करनेके	"	२१	अन्य-	अन्य	१०९	३
कुतर्कका	कुतर्कका	"	१०	तुह्यारे-	तुह्यारे	११०	१४
मुकदमें	मुकदमें	७७	१४	शून्य-	शून्य	११३	१२
बहुत	"	७८	१०	थोथी-	थोथी	"	१३
होगा-	होगी	७९	५	ढूढनी-	ढुंडनी	११४	१
वंदनाय-	वंदनीय	"	१०	प्रतिमा-	प्रतिमा	११५	४
श्रृंगारादि-	श्रृंगारादि	८०	८	मूर्तिका-	मूर्तिका	११६	४
मूर्तिका-	मूर्तिका	८१	१	मूर्तियां-	मूर्तियां	११९	२५

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ. पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ. पंक्ति.
स्वनापोचार, स्वना-			सूत्रोभे, सूत्रोभे		१६४ ३
मोचार	१२०	१०	भे- भे		१६४ ९
सहयोद्धार, शहयोद्धार	१२५	३	यथाच-यथाच		१७
मूर्त्ति- मूर्त्ति	१३१	२६	सम्यक दर्शन, सम्यक दर्शन		१८
जीवपणको, जीवपणेको	१३१	२३	हसेंभी- इसमेंभी-		१६६ ५
हाम- हप	१३२	१८	दूढनी- दूढनी		१६९-२२
पलवितेन-पलवितेन	१३३	१८	सद्धो-सुद्धो		१६८ । ७
कवयलि-कवबलि	१३५	२०	भवित व्यत भवित		
तुमरे- तुमेरे	१३५	२१	व्यता		१७१ २१
भुत- भूत	१३५	३	इत्पलं- इत्यलं		१७२ २
हे सुमतिनी-हे सुमतिनि	१३६	८	जैन धर्मसे, जैन धर्मसे		१७७ १०
राराओ- राजाओ	१३६	१६	कथा- कया		१७९ १९
शून्य शून्य	१४२	२३	कृश्रजीने, कृष्णजीने		१८१ १९
प्रमाणिक, मामाणिक	१४४	१६	श्रृंग- श्रृंग		१८५ २४
दोखये- देखिये	१४५	३	वस्त्र- वस्त्रं		१८७ १६
लिखत हिई-लिखती			समन्वित, समन्वितं		१९४ ४
हुई	१४२	२	हस्त- हस्ते		१९४ ५
भद्र भाहु- भद्रबाहु	१५१	७	दके- देके		१९५ ७
ढंढकोमें- दूढकोमें	१५३	३	मयीं- मयी		१९९ २१
तुम्हार- तुम्हारे	१५५	१	स्वरूपकी, स्वरूपकी		२०० ४
इत्थलम- इत्थलम्	१५५	४			
उलंघन-उलंघन	१५९	१६।२७			
अयोग- अयोग्य	१६	१९			

# ॥ ढूँढक हृदय नेत्रांजन भाग द्वितीय प्रारंभ ॥

॥ अथ १ हेय, २ ज्ञेय, और ३ उपादेयके, स्वरूपसें—चार नि-  
क्षेपोंका विचार लिख दिखावते है ॥

॥ अब भव्य पुरुषोंके हितके लिये—चार निक्षेपके विषयमें,  
किंचित् दूसरा प्रकारसें. समजूति करके दिखावते है ॥

॥ इस दूनीयामें—वस्तु, अर्थात् पदार्थ, सामान्यपणेसें, तीन  
प्रकारके कहे जाते है । कितनेक पदार्थ—हेय रूप होते है, अर्थात्  
त्याग करनेके योग्य होते है ? ॥ और कितनेक पदार्थ—ज्ञेय  
रूप होते है, अर्थात् ज्ञान प्राप्त करनेके योग्य होते है २ ॥ और  
कितनेक पदार्थ—उपादेय रूप होते है, अर्थात् अंगीकार करनेके  
योग्य होते है ३ ॥

॥ जो पदार्थ—हेय तरीके होते है, उनके चारों निक्षेप भी,  
हेय रूप ही होते है ? । और जो पदार्थ—ज्ञेय तरीके होते है, उनके  
चारों निक्षेप भी, ज्ञेय रूप ही होते है २ । और जो पदार्थ—उ-  
पादेय तरीके होते है, उनके—चारों निक्षेपभी—उपादेय रूप ही  
होते है ३ ॥

॥ यह तीनों प्रकारके पदार्थमें, मत मतांतरकी विचित्रतासें,  
अथवा जीवोंके कर्मकी विचित्रतासें, अथवा समाजकी प्रवृत्तिकी  
विचित्रतासें, हेय, ज्ञेय, और उपादेय, यह तीनों पदार्थमें, सा-

( २ ) उपादेयादिक-वस्तुके चार चार-निक्षेप.

मान्य विशेषपणा भी देखनेमें आता है । और-हेय, ज्ञेयादिकमें, उलट पलट भी देखनेमें आता है ॥ जैसेके, किसीको सामान्यपणे हेय, ज्ञेय, और उपादेय रूप है, तो किसीको विशेष रूपसे भी हेय, ज्ञेयादि रूप है, । और किसीको एक पदार्थ-हेय रूप है, तो दूसरेको-ज्ञेय रूप भी, होजाता है अथवा उपादेय रूप भी, हो जाता है । सौ मतांतरादिककी विचित्रतामें, एक ही पदार्थमें, उलट पलटपणे, अनेक प्रकारकी भावनाओ दिखनेमें आती है ॥

॥ परंतु जिसने जो पदार्थको-हेय तरीके मान्या है, सोतो उस पदार्थका-चारों निक्षेपको, हेय तरीके ही, अंगीकार करता है १ । और-ज्ञेय पदार्थका चारों निक्षेपको, ज्ञेय रूप ही, अंगीकार करता है २ । और-उपादेय पदार्थका-चारों निक्षेपको, उपादेय तरीके ही, अंगीकार करता है ३ । जैसेके, शिवोपाशक है सो, शिवका ही-नाम, स्मरण करते है यह तो-नाम निक्षेप १ । पूजन भी शिवकी-मूर्त्तिका ही, करते है यह-स्थापना निक्षेप २ । और शिवकी ही पूर्वाऽपर अवस्थाको बडी प्रियपणे, मान्य रखते है यह-द्रव्य निक्षेप ३ । इस वास्ते परमोपादेय शिवजीको समजके, उनके-चारों निक्षेपको भी, उपादेयपणे, मान्य ही करले ते है ४ ॥

इसी प्रकारसे अब विष्णु भक्त है सो, विष्णुका ही-नाम, स्मरण करते है सो-नाम निक्षेप १ । पूजन भी, विष्णुकी मूर्त्तिका ही करते है सो-स्थापना निक्षेप २ । और विष्णुकी ही, पूर्वाऽपर अवस्थाको बडी प्रियतापणे, मान्य रखते ही है सो-द्रव्य निक्षेप ३ । इस वास्ते परमोपादेय-विष्णुको ही समजके, उनके-चारों निक्षेपको भी उपादेयपणे, मान्य ही कर लेते है, ४ ॥

अब मुसलमान है सो, अल्लाकाही-नाम, स्मरण करते है यह तो-नाम निक्षेप १ । और महज्जिदोंमें गोखका आकाररूपे, असद्भावसें स्थापनाको स्थापित करके, विनयादिकभी करतेही है यह-स्थापना निक्षेप २ । और, अल्लाकी, पूर्वाऽपर अवस्थाको, याद करके, अनेक प्रकारका पश्चात्तापभी करतेही है, यह-द्रव्य निक्षेपका विषय है ३ । इस वास्ते परमोपादेय अल्लाको समजके उनके-चारों निक्षेपकोभी-उपादेयपणे, मान्यही कर लेते है ४ ॥

॥ अब क्रिश्चन है सो, इसुकाही-नाम, स्मरण करते है, यह भी-नाम निक्षेपही है १ । गिरजागर बनाके, असद् भावसे स्थापनाकोभी स्थापित करके, उहांपर अनेक प्रकारका विनयके साथ, भजन बंदगीभी करते है, अथवा कितनेक गिरजा घरमें, साक्षात्पणे इसुकी, शान्त मूर्त्तिको स्थापित करके भी, अदबके साथ भजन बंदगी भी करते है यह-स्थापना निक्षेपका ही विषय है २ ॥ और इसुकी पूर्वाऽपर अवस्थाको स्मरण करके, बडा विलापभी करते है यह उनका-द्रव्य निक्षेपका, विषय है ३ ॥ इस वास्ते इसुको-परमोपादेय समजके उनके, चारों निक्षेपकोभी, उपादेयपणे मान्यही रखते है ४ ॥

इसमें विशेष यह है के, मतांतरके कारणसें, और भावनाका फरक होनेसें, जो कोई एकाद वस्तु एक पुरुषको-उपादेय है, तो दूसरेको-हेयरूप, अथवा ज्ञेयरूप, भी होजाता है । इसवास्ते चार निक्षेपोंमेंभी, हेय, ज्ञेय और उपादेयपणा, उलट पलटपणे होजाता है

॥ इति उपादेयादिक-वस्तुके, चार चार-निक्षेप ॥

॥ अब साधारणपणे-हेय रूप वस्तुको, दृष्टांतसें समर्थन करते है. जैसेके, स्त्री, अथवा पुरुषका, शरीररूप-एक वस्तु है, अर्थात्

( ४ ) हेय-वस्तुके, चार निक्षेपमें-दृष्टांत.

पदार्थ है। अब स्त्रीमें-माता, भगिनी, बेटी, बधू, आदिकी भावना, समाजकी प्रवृत्तिकी विचित्रतासें, होती है। एक कल्पनामें-भक्ति रागकी भावना, तो दूसरी कल्पनामें-प्रीति रागकी भावना, रहती है। परंतु समाजकी प्रवृत्तिको छोड़के जो साधु पदको अंगीकार करता है, सो तो-स्त्रीरूप वस्तु मात्रका, त्याग ही करके, व्रतको अंगीकार करता है, इस वास्ते स्त्रीरूप वस्तुका-चारों निक्षेपको भी त्याग ही करता है ॥

अब देखोकि-स्त्रीरूप-वस्तुका, भावनिक्षेप-योवनत्व, अंव-स्थामें कियाजाता है। क्योंकि,कामी पुरुषको,शीघ्रपणे कामविकारकी प्राप्तिकरानेवाली अवस्था वही है,। सो स्त्री, साधु-पुरुषोंको, सर्वथा प्रकारसे त्यागने के ही योग्य है। और उत्तम संन्यासी साधु, साभी-नारायण के साधु, जैनके साधु, विगेरे सर्वे साधुओं प्रत्यक्षपणे त्यागभी कर रहै है, ओर इस स्त्रीका-योवनत्वरूप, भावनिक्षेपका त्याग होनेसें उनका १ नाम निक्षेप। २ स्थापना निक्षेप। और ३ द्रव्यनिक्षेप काभी-त्याग करनेका,शास्त्रोंमें प्रसिद्धही है ॥ जै-सेंकि-साधु पुरुषोंने, स्त्रीकी श्रंगार कथादिक करके, स्त्रीका वारं-वार स्मरण, नहीं करना, यह निषेधकरनेसे-नाम निक्षेपका स्मरण, करना निषेध किया गया है १। और स्त्री आदिकी चित्रशालामें साधु पुरुषोंको रहनेका निषेध होनेसें, स्त्रीके-स्थापना निक्षेप काभी, त्याग करनाही दिखाया है, और इस स्थापना निक्षेपका त्याग करानेके वास्ते, सिद्धामेंभी प्रगटपणे पाठभी कहा है, देखो दश बैका-लिकका अष्टप्राध्ययनकी ५५ मी गाथा, यथा.

॥चित्तभित्तिं न निजाए, नारिं वा सुअलंकिअं  
भख्वरं पिव दहूणं, दिठिं पडि समाहरे ५५ ॥



अर्थ—इससे प्रथमकी गाथामें एसा कहाथाकि, साधुओंको मृतक स्त्रीका, कलेवरसेभी भयहै, इस वास्ते चित्रमें चित्रीहुई स्त्रीको, वा, अलंकारवाली स्त्रीको, अथवा अलंकारविनाकी स्त्रीकोभी, ध्यानपूर्वक देखें नही, अगर, स्वभावसे दृष्टि पडजावे तो, सूर्यकी प्रति पडीहुई दृष्टिकीतरां संहारण करलेवे ५५,

इसगाथामें, चित्रकी स्त्रीकोभी, देखनेका, निषेध करनेसें, स्त्रीका-स्थापना निक्षेपकाभी, त्याग करणा ही दिखाया है २। अब साधु पुरुषोंको स्त्रीका-द्रव्य निक्षेपभी, त्याग करने रूपही सिद्ध होता है, जैसेकि, स्त्रीत्वभावकी पूर्व अवस्था, बालिकारूपका, संघटन करना, निषेध किया है, तैसें स्त्रीकी अपर अवस्थारूप, मृतक देहसेंभी, साधु पुरुषोंको, भयही दिखाया है, इसवास्ते स्त्रीका-द्रव्यनिक्षेपभी, त्याग करनाही योग्य हुवा ३ ॥ इस लेखसें यही सिद्ध हुवाके, साधु पुरुषोंको-स्त्रीरूप हेय वस्तुका, चारोंनिक्षेपभी हेयरूपही है। तैसें साध्वीको, पुरुषरूप वस्तुकाभी, चारोंनिक्षेप त्यागहीकरना सिद्ध है. इसवास्ते हेयरूप वस्तुका, चारोंनिक्षेपभी, त्याग करनेकेही योग्य है

इति हेयरूप वस्तुका-चारोंनिक्षेप, त्याग करणेरूप प्रथमो अधिकार ॥

अब ज्ञेयरूप वस्तुका, चारनिक्षेपसें, ज्ञानप्राप्ति करनेरूप, द्वितीय अधिकार लिख दिखावते है—जैसेकि—मेरुपर्वत, जंबूद्वीप, नदी द्रह, कुंड, भरतादिक्षेत्र, सिंह, हंस, भारंडपंखी, हाथी, घोडा, हिंदुस्थान, जडी, बुटी, विगेरे नाना प्रकारकी ज्ञेय वस्तुका, नामदेके,

( ६ ) परमोपादेय-वस्तुके, चार निक्षेपमें-दृष्टांत.

बच्चोंको (बालकोंको) समजाना, सो ज्ञेयरूप वस्तुका, नामनिक्षेप-सें, ज्ञानकी प्राप्ति, समजनी.

और उन पदार्थोंकी, आकृति खेंचके, उनके स्वरूपका-ज्ञान-की प्राप्ति करानी, अथवा जिस जिस दिशामें पदार्थ रहे हुवे है उसउस दिशाका-ज्ञानकी प्राप्ति करावनी, सो ज्ञेयरूप पदार्थका-स्थापना निक्षेपसें, ज्ञानकी प्राप्ति, हुई समजनी ॥ २ ॥

और उस ज्ञेयपदार्थोंकी, पूर्वरूप अवस्था, अथवा अपरकालकी अवस्थाका, भिन्न भिन्नपणे समजूति करके दिखावना, सो ज्ञेयरूप वस्तुका-द्रव्य निक्षेपसे, ज्ञानकी प्राप्ति, हुई समजनी ॥ ३ ॥

॥ अब, जे जे ज्ञेय पदार्थका-१ नाम निक्षेपसें, २. स्थापना निक्षेपसें, और ३ द्रव्य निक्षेपसें, बालकोंको ज्ञानकी प्राप्ति कराईथी, सो सो पदार्थ, प्रत्यक्षपणे हाजर होनेपर, इसारा करके दिखाना के, यह वस्तु क्या है, इतना कहने मात्रसें, ते चतुर बालक, कहदेवे-गा कि, यह सिंहादिकका स्वरूप है। क्योंकि जिसको प्रथमके तीन निक्षेपोंका, यथावत् ज्ञानहोजायगा, उनको चोथा-भाव निक्षेपका, ज्ञानकी प्राप्ति होनेमें, किंचित् मात्रभी देर न लगेगी। इस बास्ते वस्तुके चारों निक्षेपभी, सार्थक रूपही है, परंतु निरर्थकरूप कभी न होंगे। हां विशेषमें इतना है के, १ हेय वस्तुके चारों निक्षेप हेय, और २ ज्ञेय वस्तुके चारों निक्षेप ज्ञेय, और ३ उपादेय वस्तुके चारों निक्षेप उपादेय, रूपे अंगीकार करने योग्य होते है। इसबास्ते वस्तुके-चारों निक्षेप ही, सार्थक रूप है, परंतु निरर्थक रूप तीन कालमें भी न होंगे ॥ इति ज्ञेयरूप वस्तुका, चारों निक्षेपसें-ज्ञान प्राप्ति करणेरूप, द्वितीयोऽधिकारः

॥ अब जैनोंको, परमोपादेय जो तीर्थकरों है, उनके चारों

निक्षेप भी, परमोपादेयस्वरूपके ही है । उनका विचार करके दिखावते हैं ॥

जैसे कि--वर्तमानकालके तीर्थकरोंका, जन्म हुये बाद, उनके माता पितादि करने, अनादि सिद्ध शब्दोंमेंसे, अनेक गुणोंको जनाने-वाले-ऋषभ आदि शब्दोंको लेके महावीर पर्यंत, जो नामका निक्षेप किया है, सो जैनी नामधारी मात्र भी, उनका-स्मरण, भजन, सदा सर्वकालमें करते हां है, इस वास्ते यह तीर्थकरोंका, नाम निक्षेप भी, परमोपादेय रूप ही है ? ॥

॥ और अपना परम पवित्र रूप शरीरमें निरपेक्ष होके, नासिकाका अग्रभागमें दृष्टिका आरोप करके, परम वैराग्य मुद्रायुक्त, परमध्याना रूढमें रहें हुयें, तीर्थकरोंकी, आकृतिका उतारा रूप, जिन मूर्ति है सोभी, स्थापना निक्षेपका विषय स्वरूपकी, भक्तजनोंको परम उपादेय रूप ही होगी २ ।

और जिस जिनेश्वर देवकी-बालकपणेके स्वरूपकी-पूर्व अवस्थाको, और मृतकशरीररूप-अपर अवस्थाको, इंद्रादिकोंनेभी, परमसत्कारादिक किया है सो-द्रव्य निक्षेपका विषयभी, हमारेजैसे अल्पगुण्यात्माको तो, अवश्यमेव परम उपादेयरूप ही है ॥ ३

और साक्षात् जो तीर्थकर है सो, भावनिक्षेपका स्वरूप है, सो-भावनिक्षेप पूज्यरूप होनेसे, उनके-तीनोंनिक्षेपभी, अवश्यमेव पूज्यबुद्धिको उत्पन्न करानेवालेही है ॥ ४

॥ इति परमोपादेय, तीर्थकरोंका, चार निक्षेपका स्वरूप. ॥

॥ अथ द्रुहनी पार्वतीजीका लेख ॥

श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें आदिहीमें-वस्तुके, स्वरूपके समजनेके लिए-वस्तुके सामान्य प्रकारसे-चार निक्षेप, निक्षेपने, (करने)

( ८ ) चार निक्षेपका, दृढनीजीको-विपरीतज्ञान.

कहे है ॥ यथा-नाम निक्षेप १ । स्थापना निक्षेप २ । द्रव्य निक्षेप ३ । भाव निक्षेप ४ ॥ अस्यार्थः-नाम निक्षेप-सो, वस्तुका-आकार और गुण रहित-नाम सो-नामनिक्षेप १ ॥ स्थापना निक्षेप-सो-वस्तुका-आकार, और नाम सहित, गुण रहित सो-स्थापना निक्षेप २ ॥ द्रव्यनिक्षेप-सो-वस्तुका वर्तमान गुण रहित, अतीत अथवा अनागत गुण सहित, और आकार नामभी सहित, सो-द्रव्य निक्षेप ३ ॥ भाव निक्षेप-सो-वस्तुका नाम, आकार, और वर्तमान गुण सहित, सो-भावनिक्षेप ४ ॥

॥ यह चार निक्षेपका लक्षण-दृढनी पार्वतीजीने-सिद्धांतसें निरपेक्ष होके, सत्यार्थ चंद्रोदय पृष्ठ पहिलेमेंहि, लिख दिखाया है, सो इहांपर फिरभी-पाठकगणको विचार करनेको, लिख दिखाया है ॥

॥ इति दृढनीजीका लेख ॥

पाठकगण ? हम दृढनीजीके—निक्षेपके विषयमें, बहुत कुछ कह करके भी आये है, तो भी इहांपर किंचित् सूचना करके दिखावते है ॥

यह दृढनीजी—सिद्धांतसें—वस्तुका-१ नाम निक्षेप । २ स्थापना निक्षेप । ३ द्रव्य निक्षेप । और ४ भाव निक्षेप । अलग अलग लिखती है । और अपना किया हुआ-नाम निक्षेपके अर्थमें-वस्तुको-आकार, और गुण रहितपणा, दिखलाती है, परंतु आकार, और गुण विनाकी, वस्तुही कैसे होगी ? १ ॥

और वस्तुका—स्थापना निक्षेपके अर्थमें—वस्तुको—गुण रहितपणा कहकर, नाम निक्षेपको भी—गूसडती है, सो यह कैसे बनेगा ? २ ॥

और वस्तुका-द्रव्य निक्षेपके अर्थमें-वस्तुको वर्त्तमानमें गुण रहितपणा दिखाके, फिर-नाम निक्षेपको, और स्थापना निक्षेपको भी, मिलाती है ॥ ३

और वस्तुका-भाव निक्षेपके अर्थमें-वर्त्तमानमें गुण सहित-पणा दिखाके, फिर वही-नाम निक्षेप, और स्थापना निक्षेपको भी साथमें ही-वर्णन करके दिखलाती है। सो क्या जरूरती ? सो तो अलगपणे ही कहे गये हुये है। जब वस्तुका-द्रव्य निक्षेपके विषयमें-वर्त्तमानमें गुण ही, नहींथा, तो पिछे अतीत अनागतमें भी, कहाँसे प्राप्त होगा ? ४ ॥

यह दूढ़नीजीका लिखना ही-अगडं बगडं रूप है, क्यों कि वस्तु तो गुणविनाकी तीनोंकालमें-कभी रहती ही नहीं है ॥  
॥ इति-चार निक्षेप विषये, दूढ़नीजीका विपरित ज्ञानका, विचार ॥

॥ अब हम जैन सिद्धांतका किंचित् स्वरूप, कहते है ॥

किया है जिनेश्वर देवके-तत्त्वोंका, अंत, जिसमें सो-जैन सिद्धांत ॥ अब सूत्र-अल्प अक्षरोंसेभी-किया है बहुत अर्थोंका वेष्टन जिसमें सो-सूत्र, कहते है ॥ तिस ही सूत्रोंमें-एक अनुयोग द्वार नामका भी सूत्र है, उसका अर्थ यह है कि-अनु जे किंचित् मात्र सूत्र, उनकी साथ-महान् अर्थका योग, सो अनुयोग। जिस अनुयोगद्वार सूत्रमें-सर्व सिद्धांतकी कुंचिकारूप, चार अनुयोगकी, व्याख्या किई गई है। इसी कारणसे महा गंभीरार्थ रूपमें होगया है, सो सद्गुरुके पास पढ़ें बिना, कोइभी वाचालता करेगा, सो, हास्य पदका पात्र बनेगा। हम अनुमान करते है कि-इस दूढ़नी पार्वती-

जाने, इस अनुयोगद्वार सूत्रके पिले, बहुत कालतक ही परिश्रम उठाया होगा, परंतु सदगुरुके वचनरूप-तात्पर्य रसायन मिलाये विना, वृथा ही लेश उठाया है । परंतु हमारे दूढक भाइयोंकी अनुकंपाके लिये, जो हमने परम सदगुरु श्री मदानंद विजय सूरि-श्वरजी महाराजके-वचनरूप रसायन कुंपिकासें, प्राप्त किया है रसायनका बुंद, सो उनोंके मनरूप लोह रसको, सुवर्णरूप बना देनेकी इच्छासें, जो-चार महा अनुयोग है, उसमेंसे-केवल एक निक्षेप नामका ही अनुयोगकी, सामान्य मात्रसें व्याख्या भी-महापुरुषोंको आश्रित होके ही, में फिर भी करनेकी प्रवृत्ति करता हूं, सो सज्जन पुरुषों-अवश्य ही योग्ययोग्यका विचार करेंगे ॥

॥ इति जैन सिद्धांत स्वरूपका विचार ॥

॥ सूत्र, और लक्षण कारके मतसे-चार निक्षेपका लक्षण ॥

जो क्रिया गुण वाचक-वर्ण, समुदाय है, उस वर्ण समुदाय मात्रका, अथवा अपनी इच्छा पूर्वक-वर्ण समुदायका, जीव, अजीव, आदि वस्तुमें-आरोप करना, अर्थात्-संज्ञा करलेनी, उसका नाम-नाम निक्षेप है ? ।

और उसीही-नामका निक्षेपवाली, जीवादिक वस्तुकी, सूत्रका रने दिखाई हुई दश प्रकारकी वस्तुमेंसे, किसीभी प्रकारकी वस्तुसें आकृति, अनाकृतिके स्वरूपसें, स्थापित करना, उसका नाम-स्थापना निक्षेप है २ ॥ और उसीही-नामका निक्षेपवाली वस्तुका, पूर्वकालमें, अथवा अपरकालमें, जो कारणरूप द्रव्यहै, उसमेंही ( अर्थात् कारण रूप द्रव्यमें ही) उसका-आरोप करना, उसका नाम-द्रव्य निक्षेप है ३ ॥ उसीही नामका निक्षेप वाली जीवादिक वस्तु-

की-क्रियाका और उनके गुणोंका, जब अपना स्वरूपमें वर्तन होता होवें, अथवा वस्तु है सो-अपना स्वभावमें-स्थित होवें, तब उस वस्तुका नाम-भाव निक्षेप, कहते है ४ ॥

॥ इति चार निक्षेपका-लक्षण स्वरूप ॥

॥ अब चार निक्षेपके विषयमें-किंचित् समजूति, लिखते है ॥

दूनीयामें अछी या बुरी जे जे वस्तु ( अर्थात् पदार्थ ) है, उसका कुछने कुछ-नाम, रखा हुवा होता है । सो-वस्तु, अपना अपना प्रसिद्ध-नामसँ ही, अपना अपना-स्वरूपका पिछान, संकेत-के जानने वाले पुरुषोंको, करादेते है, सोही नाम-नाम निक्षेपका विषय है ॥ १ ॥

फिर वही-नामका पदार्थकी-( अर्थात् वस्तुकी ) आकृति [ अथात् मूर्ति ] है सोभी, उसी वस्तुका बोधको करानेमें, विशेष-पणे, कारणरूपे हो जाती है, सोही स्थापना-स्थापना निक्षेपका विषय है २ ॥ और वही नाम, और आकृति के, स्वरूपका वस्तुकी-पूर्वकालकी अवस्था, अथवा अपरकालकी अवस्था है सोभी, उसी वस्तुका ही बोधको करानेमें कारणरूपे होजाती है, सोही द्रव्य-द्रव्य निक्षेपका, विषय है ३ ॥ जब वही-नामकी, और आकृतिकी, और पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूपकी ' वस्तु ' [ अर्थात् पदार्थ ] साक्षात्पणे लोको देख लेते है, अथवा ज्ञान करलेते है तब उस, वस्तुका-यथावत् पिछान करलेते है कि-जिस वस्तुका-नाम, सुनाथा, पिछे उनकी-आकृति भी देखीथी, और पूर्व अपर अवस्थाका गुण या दोष सुनाथा, सोही वस्तु यह है ४ ॥ इस विषयका विचारको

( १२ ) निक्षेपमें दूसरा प्रकारसें—समजूती.

जैन शास्त्रकारोंने—चार निक्षेपके स्वरूपसें—वर्णन किये है । इनका विशेष विचार गुरु गमतासें—समजनेकी जरूर है ॥

॥ इति चार निक्षेपकी समजूति ॥

चार निक्षेपके विषयमें दूसरा प्रकारकी—समजूति लक्षण द्वारा करा देते हैं.

जिस वस्तुका—बोध, जिस १ वचनसें, २ आकृतिसें, ३ गुणादिकके स्वरूपसें, श्रवण, नयन, मनः द्वारा, आत्माको होजावे, सो नामादिक—चारों निक्षेप, उसी वस्तुकाही है, बैसा समजना.

उदाहरण—जैसेकि वर्ण समुदायरूप—नाम मात्रका, उच्चारणके शब्दो, श्रवण द्वारा हृदयमें प्रवेश होके, और पिछे मनकी तरंगांको उत्पन्न करके, जो—नाम, जिस वस्तुका बोध, आत्माको करादेवे, सो नाम उस वस्तुका—नाम निक्षेप, समजना ? ॥

अब जो आकृति अनाकृतिके स्वरूपसें (अर्थात् मूर्ति अमूर्ति के स्वरूपसें) नेत्रद्वारा होके, और पिछे अनेक प्रकारकी मनकी तरंगांको उत्पन्न करके, जिसवस्तुका बोध, आत्माको होजावे सो आकृति १ अनाकृति रूप, वस्तुकी स्थापना—स्थापना निक्षेप, समजना ॥ २

अब जो वस्तु—पूर्वकालमें, अथवा अपर कालमें, कारण स्वरूपमें रही हुईहै, उनका गुण दोषादिक श्रवणसे, अथवा तिनके

? ज्ञान, दर्शन, चारित्रात्मक 'वस्तु' (अर्थात् पदार्थ) अमूर्त स्वरूपकेभी है तोभी संकेतीत अक्षरोंसें—नेत्रद्वाराहि, बोधके देनेवाले होते है ! सोभी 'स्थापना निक्षेप'के स्वरूपकेही है. ॥



संबंधी वस्तुका दर्शनसें, पिछे अनेक प्रकारकी मनमें तरांगां उत्पन्न होके, जब वही-कार्य स्वरूप, भाव वस्तुका बोध, आत्माको करादेवें तब सो कारणरूप द्रव्य वस्तु-द्रव्य निक्षेप, समजना ॥ ३

अब वहीतोहै-१-नाम, और वहीतोहै-२-आकृति, (मूर्ति) । और पूर्वकालमें-श्रावण कियेहुयें गुण दोषादिक स्वरूपकी ३ 'वस्तु' (अर्थात् दृश्य पदार्थ) श्रवणद्वारा, अथवा नयनद्वारा, मनका विचित्र परिणामको प्राप्त करके-साक्षात्पणे आत्माको-बोध, करादेवे, तब ते साक्षात् स्वरूप भावकी वस्तुको-भाव निक्षेप, समजना. ४॥

इति दूसरा प्रकारसें-लक्षणद्वारा-चार निक्षेपका स्वरूपकी-समजूति ॥

सूचना—इसमें सूचना यह है कि—यह चार निक्षेपके विषयमें—जे जे हमने विशेष प्रकारसें, समजूति करके दिखाई है, उसमें किसीभी स्थानमें, किसीभी प्रकारका, यत्कीचित् फरक मालूम होजावें, तब हमारा विचारको त्याग करके, लक्षणकारके लक्षणसें ही—उसवस्तुका-चार निक्षेप, करनेका निर्वाह करलेना, परंतु हमारा दर्शाया हुआ विचारपर, आग्रह नहीं करना । महापुरुषोंकी गंभीरताको, हम नहीं पुहच सकतेहैं ॥ इति ॥

अब चार निक्षेपके विषयमें—सार्थकता निरर्थकताका,

विचार, लिखते हैं ॥

पाठकगण ? दूनीयामें जितनी-वस्तु, भिन्न भिन्न है [ अर्थात् भिन्न भिन्न पदार्थ है ] सो-अपना नाम ? । अपनी आकृति २ ।

( १४ ) चार निक्षेपमें--सार्थकता निरर्थकताका-विचार.

अपना संपूर्ण गुण दोष प्राप्तिकी-पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूप, अर्थात् कारणरूप द्रव्य ३ । और ते पदार्थका साक्षात्कार स्वरूप भाव ४ । [ अर्थात् साक्षात् स्वरूप पदार्थ ] है सो, अपना अपना स्वरूपका-पिछान करणमें, [ अर्थात् ते-चार प्रकार, निज निज स्वरूपका पिछान करणमें ] परम उपयोगो स्वरूपके ही है । इसी कारणसें जैन सिद्धांतकारोंने-ते चारो प्रकारको-चार निक्षेपकी, संज्ञासें-वर्णन करके, दिखलाये है । उनका विचार-श्री अनुयोग-द्वार सूत्रमें, महागंभीर आशयवाले गणधर महाराजाओने-सूचना तरीके दिखलाया हुआ है । परंतु गुरुज्ञान विनाकी टूटनी पार्वती-जीने-गणधर महाराजाओंका आशयको, समजे विना, प्रथमके-त्रण निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके, क्यों कि कार्य साधक नहीं ऐसा जूटा हेतुके साथ-विपरीतपणे, लिख दिखाया है । और यह टूटनी जगें जगें विपरीतपणा करके—जैन धर्मके मूल तत्त्वोका, नाश करणको, प्रवृत्त हुई है । जबसें हमारे टूटकोने-यह पंथ पकडा है, तबसें जो कुछ जैन तत्त्वके विषयमें उनको दि-खा है सो-विभंग ज्ञानीयोंकी तरह—विपरीत ही विपरीत, दि-खता है । परंतु हम भार देके कहते है कि-जो वस्तुका [ अर्थात् पदार्थका ] चार निक्षेप है, उसमेंसे-एकभी निक्षेप, निरर्थक, अथवा उपयोग विनाका, नहीं है । किंतु कार्य साधकमें-परम उप-योगी स्वरूपके ही है ॥

क्यों कि-जिस पदार्थका, [ अर्थात् वस्तुका ] अपनेको-पि-छान करनेकी इच्छा होगी, उस वस्तुका प्रथम-नामसें ही पिछान करनेकी जरूर पड़ेगी, इसी-नामको, शास्त्रकारोंने-नाम निक्षेपके स्वरूपसें माना है १ ॥

और उस पदार्थका विशेष ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छासें—उनकी

आकृति [ मूर्ति ] भी, देखनेकी-स्वास जरूर ही पडती है । यह उस पदार्थका दूसरा—स्थापना निक्षेपका विषय है २ ॥

फिरभी उस पदार्थका विशेष ज्ञानकी प्राप्ति केलिये-गुण दोष रूप प्राप्तिके स्वरूपकी-पूर्व अवस्था, या अपर अवस्था है, उनसेंभी उस वस्तुका-बोध-प्राप्त करनेकी आवश्यकता ही है, और उसी पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूपको, शास्त्रकारोंने-द्रव्य निक्षेपके स्वरूपसें, माना है ३ ॥

अब देखो कि-वर्णन किये हुये जो-त्रण निक्षेप है, उस त्रण निक्षेपके स्वरूपका भी बोध, अपनेमें करानेवाला जो साक्षात् स्वरूप पदार्थ ( अर्थात् वस्तु ) है, उस पदार्थको शास्त्रकारोंने-भाव निक्षेपका विषय भूत माना है. ४ ॥

अब इस-चार निक्षेपके-विषयमें, विचार यह है कि-जब कोईभी पुरुष-वह भाव निक्षेपका विषय भूत साक्षात् पदार्थको-देखेंगे अथवा उसने देखा हुवा होगा, तबभी पूर्वोक्त-त्रण निक्षेपका, ज्ञान पूर्वकही, उस भावनिक्षेपका विषयभूत साक्षात् पदार्थकाभी-ज्ञान होगा, परंतु प्रथम के-त्रण निक्षेपके स्वरूपको जाने बिना, केवल उस भाव वस्तुको देखने मात्रसें, कभीभी उनका यथावत् ज्ञान न होगा, और उनका आदर भी न कर सकेगा ॥ क्योंकि हम कीर्णलमें फिरते हैं, और उदापर रही हुई-श्रमूल्य अमूल्य वनस्पतिसत्वा, कि जो-भाव निक्षेपका विषय भूत है, उनको साक्षात्पणे देखतेवगनानुंगे, परंतु उस-पदार्थोंका, प्रथमके-त्रण निक्षेप विषयका, यथावत् ज्ञान, मिलाये बिना, उनोंका कुछभी गौरव नहीं कर सकते हैं । कारण उनोंका प्रथमके-त्रण निक्षेप विषयका, हमको ज्ञान ही नहीं है, तो पिछे वह-भाव निक्षेपका विषयभूत साक्षात् पदार्थोंका, आदर कैसें

करेंगे ? अर्थात् कभीभी आदर न कर सकेंगे ॥

इस वास्ते पदार्थोंका जो प्रथमके-त्रण निक्षेप है, सोही कार्य-की सिद्धि करानेमें-सार्थक, और परम उपयोग स्वरूपकेही है । परंतु दूंदकोंने दिखाये हुये निरर्थक स्वरूपके नहीं है । इस विषयमें दूंदनी पार्वतीजीकी, और दूंदक बाडीलाल शाहकी, मतिही विपरीत पणे हो गई है ॥ फिरभी देखोकि-जिसको पदार्थोंका प्रथमके-त्रण निक्षेपके विषयका, यथार्थ ज्ञान नहीं होता है उसका-भाव निक्षेपका विषयकोभी-विपरीतपणेही ग्रहण करनेको लग जाता है । जैसेकि-भाव निक्षेपका विषयभूत, साक्षात्-जेरी, वस्तु है, परंतु उनका प्रथमके-त्रण निक्षेपका, विषयको-नहीं जाननेवाला बालक है सो, उसी वखत उस-जेरी वस्तुको, मुखमें-डालनेको जाता है । और भावनिक्षेपका विषयभूत साक्षात्-जेरी सर्प, वस्तु है, उनको-पक-ढनेकोभी जाता है । इसवास्ते दूनीयामें जो जो पदार्थों है उनका प्रथमके-त्रण निक्षेप विषयका ही-बोध लेनेकी जरूरी है । और वह त्रण निक्षेप ही, कार्यके-साधक, बाधकमें, परमोपयोगी स्वरूपके है । तो भी दूंदक, और दूंदनीजीने-त्रण निक्षेपको-निरर्थक, और उपयोग विनाके, लिख मारे है । इतनी मूढता करके भी-संतोषको जहीं प्राप्त हुयें है, किंतु सर्व गणधर महाराजाओंको, और सर्व आन्ध्र महाराजाओंकोभी-निन्दित कर दिये है । ऐसे सर्वथा प्रकृत्ये-विपरीत विचारवालोंको-हम कहां तक शिक्षा देवेंगे ॥

भी भां कि  
सने

इत्यलं विस्तरेण.

॥ इति । चार निक्षेपकी-सार्थकता, निरर्थकताका, विचार ॥

॥ अब दूढकोंके पुस्तकोंसे-चार निक्षेपका, विचार ॥

समाकित-सार, यह दो पदसें मिश्रित-नाम है और समाकित गुण, चेतनका है, उनका सार भी उहांपर ही-मिलना, चाहिये ? परंतु जेठमलजी दूढकने-जूठका पुंज, लिखके, उस पुस्तकका यह-समाकित सार-नाम, रखा है । सो दूढक, और दूढनीजीके-मतसे भी, नाम निक्षेप, ही होगा ! और उनोंने-नाम निक्षेप है सो, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और-उपयोग विनाका ही, माना है । हमतो उस जूठको पुंजका-नाम समाकित सार, निरर्थक ही, मानते हैं । परंतु दूढकोंकी मान्यता मुजब-दूढकोंकी भी, उस पुस्तकका नाम-समाकितसार, निरर्थक, और-समाकितका कार्यकी, सिद्धिमें-उपयोग विनाका ही, हुवा है ॥ इस वास्ते जेठमलजीके पुस्तकमेंसें-समाकितकासार,तीनकालमें भी, किसीको-नहीं मिलनेवाला है ॥

॥ इति जेठमलजीके पुस्तकका, निरर्थक रूप-नाम निक्षेपके, स्वरूपका विचार ॥

॥ अब जेठमलजीके पुस्तकका-स्थापना निक्षेपका, स्वरूपको विचारते हैं ॥

अब देखिये-समाकित सार-वस्तुका,स्थापना निक्षेपका स्वरूप-ज्ञान वस्तुका स्थापना निक्षेप-काष्ट पै लिखा, पोथी पै लिखा, आदि दश प्रकारसें करनेका सिद्धांतमें कहा है। सो तीर्थकरोंके वचनानुसार-सत्य लेख रूप होवे, तब ही आदर करनेके योग्य होवे । परंतु दूढक जेठमलजीने-अक्षरोंकी जुडाई, जूठे-जूठ करके, समाकितसें भ्रष्ट करनेका-लेखको, लिखा है । और दूढक, दूढनीजीने-यह अक्षरकी जुडाई रूप-स्थापना निक्षेपको, समाकितका कार्यकी मि-

द्विमें-निरर्थक, और उपयोग विनाका, मान्या है । और सम्यक्क ज्ञानियोंको तो जेठमलजीके पुस्तकके, अक्षरोंकी संकलना-विपरीत ही दिखलाई देती है, उनके वास्ते तो निरर्थक है, उसमें तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं है, परंतु दूढकोंके मंतव्य मुजब-दूढकोंको भी-समकितसार वस्तुका-कार्यकी सिद्धि, तीनकालमें भी होने-वाली नहीं है । क्योंकि यह अक्षरोंकी जुडाइ रूप-स्थापना निक्षेपको, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विनाका, मान्या है । तो पिछे कागद उपर लिखा हुआ, जेठमल दूढकजीका, जूठा लेखमें-समकितका सार, कहाँसे मिलानेवाले है ? ॥

॥ इति दूढक जेठमलजीके-पुस्तकका, निरर्थकरूप दूसरा-स्थापना निक्षेपका, स्वरूप ॥

अब जेठमलजीके-पुस्तकका, तिसरा-द्रव्य निक्षेपके, स्वरूपका विचार, करके दिखावतै हे ॥

अब देखिये-समकितसार, वस्तुका, तिसरा-द्रव्यनिक्षेपप्रथम दूढनीजीने-सत्यार्थ पृष्ठ. ५ में-द्रव्य आवश्यकके २ भेद, यथा-षष्ठ अध्यायन आवश्यक सूत्र १ । आवश्यकके पढनेवाला २ आदि । लिखके तीर्थकर-भाषित,सिद्धांतकाभी-तिसरा द्रव्यनिक्षेप, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक,और उपयोग विनाके, ठहरायके, पिछे तीर्थकरोंका प्रथमके त्रण निक्षेपभी, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विनाके, लिख दिखायेथे । और शाह वाडीलालने गणधर भाषित-सूत्रके-चार निक्षेप, करती वखते-त्रण निक्षेप, निरर्थक-ठहरानेके लिये-“ धर्मना दरवाजाना पृष्ठ. ६४ मे-श्री अनुयोगद्वार सूत्रकी-साक्षी देके, लिखा है, कि-पेहला त्रण निक्षेप-अत्रयद्यु, एटले उ-

पयोग विनाना, छेलो चोथोज आ लोकमां उपयोगी ” ऐसा लिखके ज्ञान वस्तुका-त्रण निक्षेप, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विना के, ठहरायके, तीर्थकरके-त्रण निक्षेपभी, निरर्थक, और उपयोग विनाके ही-लिख मारे है ॥ अब इसमें विचार करनेका यह है कि-जब तीर्थकरोंका-ज्ञान वस्तु स्वरूप पुस्तक पांनाका । और साक्षात् स्वरूप तीर्थकर भगवानका-त्रण निक्षेप, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विनाके-होजायगे, तब जेठमल दूढकजीने-लिखा हुआ, जूठका पुंजरूप-समकितसार नाम-ज्ञान वस्तुका, संपूर्ण पुस्तककि जो-द्रव्य निक्षेपके विषय स्वरूपका है सो, सम्यक् ज्ञानीयोंके लिये-निरर्थक, और उपयोग विनाका, होजावे उसमें तो-कोइ आश्चर्यकी बात ही नहीं है, परंतु दूढक, दूढनीजीके, मंतव्य मुजब तो दूढकोंकोभी-समकित सार वस्तुकी, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विनाकाही, हुआ है । इस वास्ते जेठमलका रचित-समकितसार नामका, संपूर्ण पुस्तककि-जो द्रव्य निक्षेपके स्वरूपका है, उसमेंसे-हमारे दूढकोंकोभी-समकितसारकी वस्तु, तीन कालमेंभी न मिल सकेगी ॥

॥ इति दूढक जेठमलजीके-पुस्तकका-निरर्थक रूप, तिसरा

द्रव्य निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब जेठमलजी के पुस्तकका, चतुर्थ ' भावनिक्षेपका ' स्वरूप-दिखावते हैं ॥

अब देखिये-समकितसार वस्तुका, चतुर्थ-भाव निक्षेप, दूढक जेठमलजीने-जो समकितगुण चेऊनकाथा,उस-नामका निक्षेप,अपना लिखा हुआ-जड स्वरूप पुस्तकमें, किया है, सोतो दूढक, दूढनीजीके-मंतव्य मुजब-निरर्थक है ॥१॥

अब समकितसार वस्तुको-जनानेके लिये, जो उस पुस्तक में-स्थापना निक्षेपका विषय स्वरूपकी-अक्षरोंकी जुड़ाई है, सोभी, जेठमलजीके पुस्तककी-निरर्थक, रूपही है। क्योंकि-दूढक, दूढ-नीजीने-दूसरा स्थापना निक्षेपभी, निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें-उपयोग विनाका मान्या हुवा है ॥ २ ॥

अब देखो-समकितसार-वस्तुका, तिसरा द्रव्य निक्षेप-पुस्तक पानाके स्वरूपसें है, सोभी दूढक, दूढनीजीने-निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें-उपयोग विनाके, मानहुये है। तो अब, हे भव्य पुरुषो-विचार करोकि, समकित सार वस्तुका, प्रथमके-त्रण निक्षेप निरर्थक, और समकितसार वस्तुका, कार्यकी सिद्धिमें-उपयोगविना के हुये, तो पिछे जेठमलका दिखाया हुवा-द्रव्य निक्षेपका विषय-रूप पुस्तकसें, भावनिक्षेपका विषयभूत-समकितसार वस्तुको, कहाँसें मिलवोंगे ?। हमतो यही कहतेहैंकि-भावनिक्षेपका विषय-भूत जो-वस्तु है, उनकी-सिद्धिकरानेमें, प्रथमके-त्रण निक्षेपही, परमोपयोगी है ॥ यहवात-दूढक, दूढनीजीके-लेखसेंही, हम सिद्ध करके दिखलाते हैं ॥

देखोकि—सत्यार्थ पृष्ठ. १७ में-तीर्थकरका-भावनिक्षेपके, विषयमें-दूढनीजी लिखती है कि-शरीर स्थित, पूर्वोक्त चतुष्टय गुण सहित, आत्मा, सो-भावनिक्षेप है, यहभी कार्यसाधक है ॥

अबदेखो-धर्मना दरवाजा-पृष्ठ. ६२-६३ में-वाडीलालका लेख-केवलज्ञानादि सहित तबसें छे ते-भाव अरिहंत, खरेखरा-अरिहंततो तेज; अने-चंदनिक पण तेज, बाकीतो अरिहंत नामनो-माणस के, पथ्थर, कोईतुं-काल्याण, करी सके नही ॥

अब पृष्ठ. ६३ में, सूत्रका भावनिक्षेपमें-सूत्रमानां तत्रो ( वां-



चनार ग्रहण करे छे ते ) ॥

अब हम प्रथम दूढ़नीजीको पुछते है कि-अरूपी गुणवाला, तीर्थंकरका अरूपी आत्मा, तूने किस विधिसे देख लिया ? क्यों कि अरूपी आत्माको तो,केवल ज्ञानी विना,दूसरा पुरुष देख सकता ही नहीं है ? हे दूढ़नी तू इतना मात्र ही कह सकेगी कि-जैनके सिद्धांतसे हम-ज्ञान सकते है, तबतो जो तूने सर्व पदार्थके प्रथमके-त्रण निक्षेप, निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें-उपयोग विनाके, मानेथे, उसमेंसे जैनसिद्धांतका जो प्रथमके-त्रण निक्षेप है, सो ही तीर्थंकरका-अरूपी आत्माका, और सर्व पदार्थ मात्रका, ज्ञान प्राप्त करानेमें-परमोपयोगी स्वरूपके ही हुये है । तो पिछे तूने, और तेरा दूढ़कने-जैन तत्त्वोंको, और लोकोंको, भ्रष्ट करनेके वास्ते यह क्या पथथर फेक मारा ? कि वस्तुके प्रथमका-त्रण निक्षेप, निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें-उपयोग विनाके ? तुमको इतनी अज्ञता कहाँसे प्राप्त हो गइ कि-जैनमार्गका सर्व तत्त्वोंको, विपरीत ही विपरतिपणे देखते हो ? ॥

हम भार देके कहते है कि-जब यह अनुयोगका विषय, तुमेरे दूढ़कोंको-दिशावलोकनका स्वरूप मात्रसे भी-यथा योग्य दिखनेको लगेगा, तब तुमको तीर्थंकरकी ' मूर्त्तिका ' और सर्व आचार्योंकी ' निंदा ' करनेका-प्रसंग ही, काहेको रहेगा ? परंतु मुरु द्रोही पणासे-जबरजस्त अज्ञानने, तुमको घेर लिये है । सो इसमें किसीका-उपाय नहीं है ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति दूढ़क जेठमलर्जाके पुस्तकका-निरर्थक रूप चतुर्थ-  
भाव निक्षेपका, स्वरूप ॥

अब हम दूढ़नी पार्वतीजीकी 'ज्ञान दीपिकाके, चार निक्षेप' सामान्य मात्रका स्वरूपसे—दिखलावते हैं ॥

ज्ञान—दीपिका—यह दो शब्दोंका, मिश्रण करके, अपना पुस्तकमें, दूढ़नीजीने—नामका निक्षेप, किया है। ज्ञान है सो तो चेतन गुण है, और—दीपिका है सो, जड चेतन स्वरूपकी है ॥

यह दूसरी वस्तुओंका—नाम है सो, दूढ़नीजीने—अपनी रची हुई पुस्तकमें, निरर्थक, और ज्ञानकी दीपिकारूप—कार्यकी सिद्धिमें, उपयोग बिनाका, यह—नामनिक्षेप, माना है। तो अब विचार करो कि—यह दूढ़नीजीका पुस्तकको वांचने वाले हैं उनको—ज्ञान दीपक, कैसे जगेगा ? अपितु तीन कालमेंभी—ज्ञानदीपक, जगनेवाला नहीं है। यह तो दूढ़नीजीका—नाम निक्षेपका विषय ॥ १ ॥

अब देखोकि, दूढ़नीजीने—अपनी थोथी पोथीमें, जो जूठे जूठे अक्षरोंकी जुड़ाई किई है, सो—स्थापना निक्षेपका, विषय है, सो स्थापना निक्षेप—निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें—उपयोग बिनाका, माना है, वास्ते ऐसी जूठी अक्षरोंकी जुड़ाईमें—वांचने वालेको, तीन कालमेंभी—ज्ञान दीपक, न जगेगा। यह तो दूढ़नीजीका दूसरा स्थापना निक्षेपका, विषय २ ॥

अब देखोकि—ज्ञान दीपिका, ऐसा—नाम निक्षेप १। अक्षरोंकी जुड़ाईरूप, दूसरा—स्थापना निक्षेप २। यह दोनों निक्षेप—निरर्थक, और उपयोग बिनाके, मानके—द्रव्य निक्षेपका, विषय रूप—संपूर्ण पुस्तक भी, गप्प दीपिका समीर ने तो—निरर्थक, और उपयोग बिनाका, करके ही दिखायाथा, परंतु दूढ़नीजीने अपने आप—निरर्थक, और उपयोग बिनाकाही, मान लिया है। यहतो दूढ़नीजीका, तिसरा—द्रव्य निक्षेप ३। अब देखोकि—दूढ़नीजीने जो

ज्ञान दीपिका जगानेका-भाव, मनमें धारण कियाथा, सो-भाव-  
निक्षेपका विषय भूत-ज्ञानदीपिका, तीन कालमेंभी-किसीके हृदयमें,  
न जगेगी ४ ॥

॥ इति दूंदनीजीकी-ज्ञानदीपिकाके-चार निक्षेपका, स्वरूप. ॥

अबहम-ज्यादा उदाहरण देनेकाबंध करके, यह कहते है  
कि-जो जैन सिद्धांतकारोंने-वस्तुके चार निक्षेप, मानेहै सोतो-स-  
त्य स्वरूपसंही माने है, परंतु-निरर्थक, अथवा कार्यसिद्धिमें उप-  
योग विनाके, नहीं माने है । देखो इस बातमें-उाणांग सूत्रका,  
चोथा ठाणा, छापेकी पोथीके पृष्ठ. २६८ में-तथाच.

१नामसच्चे । २ठवणसच्चे । ३दट्वसच्चे । ४ भावसाच्चे।

अर्थ—पदार्थोंका-१नाम है । सो,सत्य है २स्थापना है सोभी,  
सत्य है । ३द्रव्य है सोभी, सत्यही है । ४और भाव है सोभी, स-  
त्यही है । यह सत्यरूप चार निक्षेपका, विषयको नही समजते हु-  
ये, हमारे दूंदकभाईओं, जो मनमें आता है सोही-बकवादकर उठते  
है ? परंतु उनोंकी दयाकी खातर-दूसरी प्रकारके उदाहरणों सेभी,  
हम-हमारे दूंदकभाईओंको-समजूति करके दिखावते है ॥ सो हमारे  
दिधेहुये दृष्टांतमेंसे-न्यायपूर्वक बोध, ग्रहण करना, परंतु-विपरीत  
विचारमें, नहीं उतरणा ॥

॥ त्रण पार्वतीके-चारचार निक्षेप ॥

अब देखियेकि—१शिवस्त्री । २वेदया । और ३ दूंदनीजी ।  
यह तीन-‘पार्वती’ और तीनोंके-तीन भक्तके, उदाहरणसे-चार

( २४ ) शिव भक्ताश्रित--त्रण पार्वतीका नाम निक्षेप.

चार निक्षेपका स्वरूप, दिखावत है । जैसे कि--महादेवजीकी स्त्रीका नाम है-पार्वती, सो दूदनीजीके मंतव्य मुजब--नाम, होगा । और जैनसिद्धांतानु सारसे तो--नाम निक्षेपही होगा । परंतु दूसरीस्त्री में दिया।हुवा यह-पार्वतीजीका-नामतो, दूदनीजीके-मंतव्य मुजबभी-नाम निक्षेप ही, होगा । और यह पार्वतीजीका-नाम, हजारो स्त्रियोंका देखने-में भी आता है, तो भी एक-दो-स्त्रियोंका, मुख्यत्वपणा करके, समजाते हैं । जैसे कि--कोई खुब मुरतकी वेश्या है, उसमें-नामका निक्षेप, किया है-पार्वती । और एक दूदनी साध्वीजीमें भी वही-नामका निक्षेप, किया गया है-पार्वती । अब-एक पुरुष है, महादेवजीका भक्त ? । और दूसरा-एक पुरुष है, सो-केवल कामका विकारी २ । और तिसरा-एक पुरुष है, सो दूदक धर्मकी ही प्रीतिवाला. ३ ।

॥ शिवभक्त आश्रित--त्रण पार्वतीजीका, स्वरूप. ॥

इस विषयमें प्रथम--शिवका भक्त, आश्रित--त्रण पार्वतीजीका, चार चार निक्षेप १ हेय, २ ज्ञेय, और ३ उपादेयके, स्वरूपसे--विचार करके, दिखलावते हैं ।

अब जो महादेवजीका--भक्त, है सोतो-वेश्या पार्वतीका-नाम निक्षेपको, केवल--१ हेय, रूपही जानता है । और- वेश्या पार्वती, एसा--नाम, सुनके, कबीभी उसकी तरफ ध्यान नहीं देता है ॥ और दूसरा दूदनी पार्वतीजीका-नाम निक्षेपको, सुनके, उनको--२ ज्ञेय, रूपसे, समजाता है । और--साध्वी पार्वतीजी एसा नाम सुनके-नतो प्रीति धारण करता है, और न तो अप्रीति करता है । मात्र इतना ही विचार करता है कि, यह-पार्वतीजी भी कोई एक वस्तु रूपसे होंगी ? ॥

और शिवजीकी-पार्वतीजीका-नाम निक्षेपको, ३ उपादेयके स्वरूपसे—मानता है । और अपना सुख दुःखादिकके प्रसंगमें—उसी ही पार्वतीजीका-नामको, स्मरण करता है । और सुखसे उच्चारण भी करता है कि—हे पार्वतीजी, हे पार्वतीजी, इत्यादि

और कुछ भी अपनी—शांति, मानता है । जैसे कि—कोई पुरुष अपनी—जनेताका प्रेमी, माताकी—घेर हाजारीमें, अथवा सर्वथा प्रकारके अभावमें, सुख दुःखादिकके प्रसंगमें—हे अम्मा २ ऐसा तो—पंजाबी । हे मा २ ऐसा—गूजराती, अथवा मारवाडी । और हे आई २ ऐसा तो—दक्षिणी, उच्चारण करके, अपना दुःखादिकके प्रसंगमें—विश्रान्ति, मानता है । तैसे ही सो शिवजीका-भक्त, ईश्वर पार्वतीजीका—नाम निक्षेपको, उच्चारण करके, अपना दुःखादिककी कुछभी—विश्रान्ति, मान रहा है । सो केवल नाम निक्षेपका, विषयसे ही, मान रहा है । इति शिव भक्त, आश्रित त्रण पार्वतीका, प्रथम—नाम निक्षेपका, स्वरूप ॥

अब इस ही शिव—भक्त, आश्रित-त्रण पार्वतीजीका, दूसरा स्थापना निक्षेपका, स्वरूप दिखावते हैं—

सो ही शिवजीका भक्तने—शोलें श्रृंगारसे सज्ज किई हुई, और अस्वीयाके चालाका देखाव है जिसमें, ऐसी—वेश्या-पार्वतीकी, आकृति ( अर्थात् मूर्ति ) को—देखके, अपनी मुख नाशिका का—विभत्स पणा करके, कहता है कि—ऐसी पापिणीयां, जगतमें क्यों जन्म लेतीयां होगी ? ऐसा कहकर, उस-मूर्तिकी, अपभ्राजना ही करता है । और फिर उनकी तरफ—दृष्टिभी नहीं देता है, क्यों कि—उनको कामके तरफ—बिलकुल, लक्षही नहीं है । केवल शिवपार्वतीजीके, भजनमें ही—प्रीति लग रही है । इस वास्ते

( २६ ) शिवभक्ताश्रित—त्रण पार्वतीका देद्रव्य निक्षेप.

उस बेइया पार्वतीकी—मूर्तिको, केवल हेय रूप समजके, निंदनिक ही मानता है ॥

और मुख उपर—मुहपत्तिका, चिन्ह चढाया हुवा है जिसने, ऐसी—दूदनी पार्वतीजीकी, दूसरी—मूर्तिको, देखके, सो शिव भक्त—नतो हर्षित होके, प्रीतिको, हिखावता है, और नतो मुख नाशिकाको चढायके—अपभ्रानना, करता है । मात्र इतना ही मनमें ख्याल कर रहा है कि-ऐसा भी एक नवीन प्रकारका रूप, दूनीयामें—होता है । केवल २ ज्ञेय रूपसैं—समजता है ॥

और शिव पार्वतीजीकी—मूर्तिको, देखके—बडा हर्षित होके, अपनी रोम राजी तो करलेता है विकस्वर, और अपनी मुख नाशिकाका दर्शाव तो कर लिया है—भव्य स्वरूप, और अपने नेत्रोंसैं अमृत भावको वर्षावता हुवा, वारंवार—तृप्त निघासैं देखके, और अपनी परम ३ उपादेय वस्तुकी—मूर्ति ( आकृति ) समजकर, अपना मस्तकको—जुका, रहा है । और दूसरे पुरुषोंको बोध करानेके लिये, मुखसैं उच्चारण करके भी कहता है कि—देखो प्यारे यह जगेश्वरीकी—मूर्तिका, क्या अलौकिक स्वरूप है, इत्यादि ।

॥ इति शिवभक्त, आश्रित—त्रण पार्वतीका, स्थापना निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब इस ही शिवभक्त आश्रित—त्रण पार्वतीका—तीसरा द्रव्य निक्षेपका स्वरूप—प्रदर्शित करते है ॥

अब सो शिवभक्त उसी-बेइया पार्वतीकी काम विकारका स्वरूपको ही प्रकट करनेवाली—पूर्व अवस्थाको, अथवा अपर अवस्थाको, ( अर्थात् योचनत्वकी—पूर्व अपर अवस्थाको ) निघा क-

रके भी देखता नहीं है, अथवा किसीको वर्णन करते हुयेसे-श्रवण करके, ते भक्तेने कहा कि--अरे महा भाग--ऐसी महा पापिणी-यांका--चरित्र, हमको मत सुनावना । ऐसा कह करके--वेदया पार्वतीका-द्रव्य निक्षेपके विषयको भी--हेय पणा, मानता हुवा--अभाव ही, प्रदर्शित करता है ॥

और दूढ़नी साध्वी पार्वतीजीकी-पूर्व अवस्था यह है कि-दीक्षा लेनेकी इछा करके, किसी साध्वीके पास आई हुई, और अपनी गुरुनीजीकी पास-कई दिनतक रहकर, पठन पाठन करतीथी ते । अपर अवस्था यह है कि, जो दूढ़नी पार्वतीजी-उपदेशादिक करतीथी, और ग्रंथादिककी रचनाभी करतीथी ते, उनकी समाप्ति हुई सुनते है, इत्यादिक-द्रव्य निक्षेपका-विषयकी वार्त्ता-सो शिव भक्त, किसीसे श्रवण करके-नतो हर्षित होता है, और नतो दिल-गिरीकोभी प्रदर्शित करता है, केवल-ज्ञेय स्वरूपका पदार्थको सम-ज करके-मध्यस्थ भावको. अंगीकार कर रहा है ॥

॥ और सो शिवभक्त-शिव पार्वतीजीकी-अनेक प्रकारकी लीलावाली-पूर्व अवस्थाको, अथवा अपर अवस्थाको-श्रवण करनेके लिये, पंडित पुरुषोंको-संतुष्ट द्रव्यको,-अर्पण करके भी-द्रव्य निक्षेपका विषयरूप, अपना उपादेयकी--ते वार्त्ताओंको, वारंवार श्रवण करनेकी इछा करता है ॥

॥ इति शिव भक्त आश्रित-त्रण पार्वतीका-तिसरा द्रव्यनि-  
क्षेपके विषयका स्वरूप ॥

॥ अब उसही शिव भक्त आश्रित-त्रण पार्वतीका. चतुर्थ-भाव निक्षेपका, स्वरूप-प्रदर्शित करते है ॥

प्रथम जो-वेश्या पार्वती है सो-शोलें शृंगार सज्जकरके, अपने नैत्रोंका कटाक्ष-लोकोंके उपर, डाल रही है, और परपुरुषोंकी राह देखनेको-बेठी हुई है, सोही-भाव निक्षेपका विषय स्वरूपकी है ॥ परंतु सो शिवभक्ततो-हेय रूप मंदापात्र जाणके, उनकी तरफ-थोड़ीसी निचा मात्र करके भी, देखता नहीं है ॥

और मुख उपर-पट्टी, चढायके साक्षात्पणे बेठी हुई, जो दू-दनी पार्वतीजी है सो-अपनी आवश्यकादिक-नित्य क्रियामें, तत्पर, विश्वारादिकमें-उद्यत, उपदेश दानादिकमें-प्रवीण है, सोही-भाव निक्षेपका, विषय है । परंतु सो शिव भक्त-साक्षात्पणे देखकेभी-विचार करता है कि-ऐसीभी नवीन प्रकारकी-क्रिया करनेवाले लोक, दूनीयामें फिरते हैं । ऐसा शोच करता हुवा-नतो हर्ष धारण करता है, और नतो कुछ-दिलगीरीपणाभी प्रगट करता है । मात्र एक नवीन प्रकारका-ज्ञेय पदार्थका स्वरूपको जाणकरके और विस्मित हुवा दगदगपणे देखकरके पिछे अपना रस्ता पकड लिया है ॥

अब सोशिव भक्त-एकांत स्थलमें, अपनी उपादेयरूप शिव-पार्वतीजीकी-मूर्तिके, सामने-बैठकरके, उसीही पार्वतीजीके नामकी अर्थात्-नाम निक्षेपका, विषयभूतकी मालाभी-हमेशां फिराता रहा, और उसीही पार्वतीजीकी-पूर्व अपर अवस्थाका-अनेक गुणगर्भित-भजनोंको पढके, उसमें लयलीनभी-होता रहा । तब ते भक्तकी ऐसी अलौकिक भक्तिको देखके, ते मूर्तिको अधिष्ठित एक देवताने, उस भक्तको, साक्षात्पणे पार्वतीजीका-भावनिक्षेपके, स्वरूपसे-दर्शन करायाहै । उससाक्षात्-पार्वतीजीका, स्वरूपको-देखके, सो शिवभक्त-विकश्वर रोमराजी पूर्वक, अत्यंत आल्हादित हुवा, उस साक्षात्पणे-पार्वतीजीके, चरणोंमें पढके, अपना निस्ता-



र पणाकी-आजीजी करता है, और सर्वप्रकारसे-निर्द्वेषहोके, उस पार्वतीजीका-दर्शन, भजन, आदिमेंही-मसगुलपणे रहता है ॥

और दूनीयादारीका विशेष-प्रयोजनही, नहीं रखता है, जैसे कि-काठियावाडमें-नरसिंह मेहताभक्तको, ऐसा बनाव, बन्या हुवा सुनते है ॥

और दक्षिणमें-तुकाराम आदि भक्तोंकोभी-ऐसा बनाव, बन्या हुवा सुनते है ॥

और जैनोंकातो-संकटो पुरुषोंको जिन प्रतिमाका अधिष्ठायक देवताओंने-हाजरपणे दर्शनदेके, संकटका निवारण किया हुवा है जैसेकि-श्रीपालराजाको, और सुशुद्धिमन्त्री आदिको । और परोक्ष-पणे तो-जिनप्रतिमाका अधिष्ठायकोंने-छाखो पुरुषोंको सहायता-कीह हुई है, और अबीभी केसरीयातीर्थ बाबाका, और भोयणी तीर्थ बाबाका-अधिष्ठायक देवताओं-ते भक्तजनोंको, सहायता करतेही है । सो जिन प्रतिमा (मूर्ति) की-भक्तिकाही फल हे ॥ इतनी बात प्रसंगसे-हमने लिखदिखाई है ॥

॥ इति शिवभक्त आश्रित-त्रणं पार्वतीका-चार चार निक्षेपों-का, स्वरूप ॥

अब कामी पुरुष आश्रित-त्रणं पार्वतीका, चार चार-निक्षेपका स्वरूप, प्रदर्शित करते है ॥

अब जो-वैश्याका भेमी-कामी पुरुष है सोतो, न शिवपार्वती-जीको-नामसें, जानता है । और न तो दूढनी पार्वतीजीको-नाम-सें, जानता है । केवल वैश्या पार्वतीका-नामनिक्षेपकोही-आपना उपादेय स्वरूपसें, जानता है । जब पार्वती-ऐसा नाम, सुनता है

( ३० ) कामी पुरुषाश्रित-त्रणं पार्वतीका चारनिक्षेप.

अथवा-यादौ आतां है, तत्र-वेश्या पार्वतीकी तरफही, उतका-ध्यान, लगजाता है ॥

इति कामीपुरुषको त्रणं पार्वतीका नामनिक्षेपकी, प्रीतिकी स्वरूप ॥

अब उस कामी पुरुषको-किसीने-शिवपार्वतीजीकी-मूर्ति, और दूंडनी पार्वतीजीकी-मूर्ति, दिखाई है। परंतु सोकामी पुरुषने सामान्यपणे देखके-नतो हर्षभाव दिखाया है, और नतो कुछ-अपभ्रजनाभी किई है, परंतु विशेषमें-इतना विचार करनेको तो लग गयाकि, जैसी खुब सुरत वेश्या पार्वतीकी-मूर्तिको, देखके, मनका प्रफूलितपणासं, और रोमराजिका त्रिकश्वरपणासं-आत्माको आनंद होता है, तैसं आनंदको-प्राप्त करानेमें, यह दोनो मूर्तियांमेंसे-एक-भी नहीं है। वैशा विचार करके, उस कामी पुरुषने-दिखानेवाला पुरुषको, पिछें सुपरतही करदीई है, परंतु ते मूर्तियांवालाका आग्रह सें-कामी पुरुष, खडाही रहा है ॥

॥ इति कामी पुरुषको—त्रणं पार्वतीका—स्थापना निक्षेपकी प्रीतिका स्वरूप ॥

॥ अब—वही दोनो मूर्तियांवाला पुरुष—उसकामी पुरुषको-शिवपार्वतीजीकी, और दूंडनी पार्वतीजीकी—क्रमसें-पूर्व अवस्था, और अपर अवस्थाकि—जो पूर्वमें-वर्णन किईथी, सोही अवस्थाका—रस पूर्वक वर्णन करके सुनावता है, तो भी ध्यानपूर्वक नहीं सुनता है, और मुखसें कहता है कि—बसकर भाई बसकर, क्या ऐसी निकामी बातों—हमको सुनाता है। एसा कहकर, शि-

वपार्वतीजीके वर्णनमें—कुछ कथन कर सक्या नहीं । परंतु दुंदनी-  
जीके वर्णनमें कहता है कि—अरेरे फूकटका इतना कष्टको उठा  
करके, दुंदनी पार्वतीजीने तो--वृथा ही, जन्म गमाया है, ऐसा कह-  
कर बेश्या पार्वतीकी ही—मोहोत्पादकी पूर्वाऽपर अवस्थाका--व-  
र्णन करके, अपना आनंद, और दीलगीरी पणाभी, प्रदर्शित  
करता है.

॥ इति कामी पुरुषको—त्रणं पार्वतीका—द्रव्य निक्षेपं—  
प्रीति अप्रीतिका स्वरूप ॥

॥ अब उस कामी पुरुषको-भाव निक्षेपका विषय भूत, साक्षात्  
शिव पार्वतीजीका-दर्शन होना तो, कठिन ही है । परंतु किसीने-दुं-  
दनी पार्वतीजीकी-जो साक्षात् पणे-भाव निक्षेपका विषयभूत है,  
उनका दर्शन करादिया है । परंतु उसकामी पुरुषने, मलीन वेशादिक  
देखतेकी साथ ही-मुखपै मरोडा देके, चलधरा है ।

॥ अब-भाव निक्षेपका विषय रूप, साक्षात्-बेश्या पार्वतीको,  
देखतेकी साथ, उसकामी पुरुषने-रोम राजितो कर लिई है खडी,  
और नेत्रोंसे वर्षाता रहा है अमृतभाव, और अत्यंत-आल्हादित  
पणे, मिलता हुवा-अपना जन्म, जीवतव्यका, साफल्यपणा ही  
मान रहा है ॥ इतिभाव निक्षेप ॥

॥ इति कामी पुरुष आश्रित-त्रणं पार्वतीजीका चार चार नि-  
क्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब-दुंदक भक्त श्रावक आश्रित-त्रणं पार्वतीजीका—चार  
चार निक्षेपका, स्वरूप-मूर्तिपूजक, और दुंदक श्रावकका—संवाद  
पूर्वक, दिखावते है ॥

( ३२ ) दूँढक भक्ताश्रित-त्रणें पार्वतीका ? नाम निक्षेप.

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूँढक ! अपनी दूँढनी पार्वतीजीके-मंतव्य मुजब-शिवजीकी स्त्रीमें-पार्वतीजी, नाम है, सो कभी-नामनिक्षेप, न होगा । क्योंकि-सोतो असलरूप-नाम है, तोभी अपनेको तो ज्ञेय स्वरूपही मानना—ठीक होगा ॥ और ते असलरूप-शिव पार्वतीजीका-नामके, हिशाबसें बेश्यामें-पार्वती नाम है सो-नाम निक्षेप, होगा । परंतु वह-कुछभी कार्य साधक, नहीं होनेसें-हेय रूप जानके, अपनेको-त्याग करना ही, अच्छा है । चाहे किसी पुरुष ने बेश्या पार्वतीके-नामसे, अप भ्राजनाभी किई, तोभी अपनेको-प्रीति या अप्रीति, होनेका कुछभी कारण नहीं है । क्योंकि-बेश्या पार्वती तो अपनेको निरर्थक रूपही है ॥

अब अपनी साध्वी दूँढनीमें-पार्वतीजी-नाम है, सोभी-शिव पार्वतीजीके हिशाबसें, नाम मात्रतो, न कहा जावेगा--किंतु-नाम निक्षेपही, मानना-उचित होगा । उहां क्या विचार करेंगे ? क्योंकि-अपनी दूँढनी पार्वतीजीने ? नामनिक्षेप । २ स्थापना निक्षेप । ३ द्रव्यनिक्षेप । यह-तीनों निक्षेप, कार्य साधक नहीं-ऐसा लिखके-निरर्थक रूप ही, उहराये है । जो अपने दूँढनी पार्वतीजीका-नामको, ज्ञेयरूप, मानीयेतो-शिवपार्वतीजीके मान्यता तुल्य होजायगी । अगर जो-हेय रूप, मानीयेतो-बेश्या पार्वतीकी तुल्य-निरर्थकरूप, होजायगी, तब तो-दूँढनी पार्वतीजीके-नामकी साथ, हमारा कुछ भी संबंध न रहेगा ।

और इसी-नामसें, गालीयां देनेवाला--हमको कुछ भी, बोलनेको न देवेगा कि-हम तो मात्र-नामको, उच्चारण करके-गालीयां, देते है इसमें तुमेरा हम क्या लेते है ? ऐसा कहेगा । इस वास्ते दूँढनीजीके-नाम निक्षेपका, विचार ही करना पडेगा ॥

दूढक भक्ताश्रित-त्रणं पार्वतीका ? नाम निक्षेप. ( ३३ )

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक—दूढनीजीमें पार्वती-नाम है सो-  
नामनिक्षेप, न मानेंगे-पात्र नामही, मान लेंवेंगे तो पिछे-वेश्या पा-  
र्वतीकी तुल्यता; न रहेगी ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक शिवजीकी स्त्रीमे-पार्वतीजी नाम  
है, सोभी-जैन सिद्धांतकारोंने-नाम निक्षेप ही, माना है । अगर  
जो दूढनीजीकी जूठी कल्पना, मुजब-नाम ही, ठहरायलेंवें तो भी  
दूढनीजीमें तो पार्वती ऐसा नाम है सो भी-नाम निक्षेप ही,  
ठहरेगा ॥

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-हमारी दूढनीजीमें पार्वतीका-नाम  
निक्षेप,तुं क्या वेश्या पार्वतीका-नाम-निक्षेपकी,तुल्य समजता है ?॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक-हमतो जैन सिद्धांताऽनुसारसें-  
ह्य वस्तुमें-हेय रूप । और ज्ञेय वस्तुमें-ज्ञेय रूप । और-उपादेय  
वस्तुमें-उपादेय रूप, यथा योग्य-नामका निक्षेप, मानते है । प-  
रतु-त्रण निक्षेप-निरर्थक रूपे, नहीं मानते है । यह तो तुमेरी दूढ-  
नी पार्वतीजीने-सिद्धांतसें निरपेक्ष होके ? नाम भिन्न, । २ नाम  
निक्षेप भिन्न । ऐसैं स्थापना । द्रव्य । और भाव । इन चारों नि-  
क्षेपोंको-भिन्न भिन्नपणे लिखके, और जूठा आठ विकल्प करके. म-  
थमके-त्रण निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके-ठहराये है ।  
ऐसी अपनी अपूर्व चातुरी प्रगट करके, वेश्या पार्वतीका-नाम नि-  
क्षेपकी-तुल्यता, अपनेमें ठहराय लिई है ? ॥

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-वेश्या पार्वतीका-नाम निक्षेप  
तुल्य-निरर्थक, स्वामिनीजीका-नाम निक्षेप, हो जावें, सो तो  
बात अछी नहीं । इस वास्ते-में-तेरेको ही पुलताहुं कि-इस विष-  
यमें असल बात क्या है ? ॥

( ३४ ) दूढक भक्ताश्रित-त्रणें पार्वतीका-? नाम निक्षेप.

और यह दूषण कैसे न रहें, ऐसा रस्ता-सिद्धांतानुं सार,  
हमको भी-दिखलाना चाहिये ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक—इस ग्रंथकारने-दूढनीजीकी सर्व  
कुशुक्तियांको-सिद्धांतके अनुसारसे सर्वथापणे विपरीत रूप दिखा-  
के-चार निक्षेपका विषयको, अनेक प्रकारकी युक्तियांस-समजाया  
है, तो भी क्या तेरी समज-हुई नहीं है, खेर, देख टुकमें इहांपर  
भी-समजा देते है ।

यद्यपि-नाम-एक होके, अनेक वस्तुमें भी-नाम निक्षेप रूप,  
किया जाता है, परंतु इष्ट वस्तुमें किया हुवा ते-नामका निक्षेप,  
इष्ट रूप ही-मानना, उचित होता है । इसी बातकी सिद्धि-देखो  
सत्यार्थ पृष्ठ. ५० में-दूढनी भी करके ही दिखाती है कि-कोई-  
पार्श्व, नामसे-गाली दे तो, हमे कुछ नहीं, कई-पार्श्व नामवाले,  
फिरते है । तुम्हारा-पार्श्व, अवतार, ऐसे कहके-गालो दे तो-द्वेष  
आवे, इत्यादि ॥

फिर भी देखो कि-जेठमल, इस-नामका निक्षेप, आजतक  
लाखो पुरुषोंमें होता आया है, तो भी-गतरूप हुवा, दूढक सा-  
धुमें-जेठमल, यह नामका निक्षेप है सो तो, तुमने भी-उपादेय  
रूप ही, माना है ॥

दूढक-हे भाई मूर्त्तिपूजक-जेठमल, इस नामका निक्षेपको, ह-  
मने कुछ-उपादेय रूपसे, नहीं माना है ॥

मूर्त्तिपूजक-हे भाई भोला दूढक-दूढक साधुमें रत्वा हुवा-जेठ-  
मल, नामका निक्षेपको तो, तुमने-उपादेय रूप ही, माना है । क्यों  
कि-हमारा गुरु बर्य-श्री आत्मा रामजी महाराजाने, जेठमलने व-  
नाया हुवा-समकित सार-ग्रंथका, खंडन रूप—सम्यक्क श्लेषों-

## दूढक भक्ताश्रित-व्रणं पार्वतीका-१ नाम निक्षेप. ( ३५ )

द्वारमें, जेठमलजीकी—अज्ञानता, और मूढता, देखके मात्र इतना ही लिखाथा कि—जेठा मूढमतिने, जेठा अल्प मतिने, जेठा अज्ञानीने, जेठा निन्दवने, समजे बिना—कुछ का कुछ, लिख मारा है । इतना लेख परतो अनेक हठीले दूढकोंने—अनेक प्रकारका उत्पात करनेका विचार कियाथा, और आत्मारामजी महाराजको—परकारमें भी चढा देनेके विचार पर आ गयेथे । तो अब विचार करो कि—अदृश्य रूप दूढक जेठमलजीका—नाम निक्षेप, तुमको उपादेय रूप, न होता तो इतना धांधल ही किस वास्ने मचा देते । सिद्ध हुवा है कि—दूढकमें—जेठमल नामका निक्षेप, तुमने भी—उपादेय रूप ही, माना है । तैसे ही दूढनीजीमें—पार्वती, यह—नामका निक्षेप, उपादेय स्वरूपसे—मानोंगे, तब ही वेश्या पार्वतीकी तुल्यता न होगी । नहीं तो तुमको उत्तर देनेकी भी जगा न रहेगी ॥

और जो—नाम है, सो ही—नाम निक्षेपका, विषय, है । दूसरी जो जो कल्पनाओ दूढनीने किई है सो तो—जैन सिद्धांतसे—निरपेक्ष होके ही, किई है ॥

दूढक—हे भाई मूर्तिपूजक—इस मुजब तो—उपादेय वस्तुमें—जो नामका निक्षेप है, सो भी उपादेय रूप ही—पानना, उचित मालूम होता है । क्यों कि—ऋषभादिक, महावीर, पर्यंत—नाम है सो भी, बैल आदिपशुओंमें, और अनेक पुरुषादिकोंमें भी, रखा ही जाता है, परंतु तीर्थकर जीवाधिष्ठित—शरिरोमें, रखा हुवा—ऋषभादिक महावीर पर्यंत—नाम है सो, तीर्थकरोंके अभिप्रायसे—परम उपादेय रूप, हम भी मानलेवेंगे । परंतु तुमलोक पथरकी—मूर्तिमें, तीर्थकरोंका—स्थापना निक्षेप, करके—भगवान् ठहराय लेते हो, सो तो हम—भगवान् रूपसे, कभी न मानेंगे ॥

( ३६ ) दूढक भक्ताश्रित-त्रणें पार्वतीका-स्थापना निक्षेप.

॥ इति दूढक भक्त आश्रित संवाद पूर्वक-त्रणें पार्वतीका-नाम  
निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब दूढक भक्त आश्रित-त्रणें पार्वतीका-स्थापना निक्षेप-  
का, स्वरूप-संवाद पूर्वक ही, दिखावते हैं ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक—देखकि, उपादेय वस्तुका-पुतला  
( अर्थात् आकृति ) अथवा काली स्याहीका-फोटो [ मूर्त्ति ] है  
सोभी, उपादेय रूपसें ही-माननी, उचित होगी, परंतु ना मुकर  
जानेमें-तुमकोभी, बहुत प्रकारका-शोचही, करना पड़ेगा,

दूढक—मूर्त्तिकोतो हम-मूर्त्ति, मानते ही है, ना कौन  
पाडता है ? ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक-में-तेरेको-पुछता हूं क्या, और  
तूं-उत्तर देता है क्या, में तेरेको यह पुछता हूं कि-जो अपना  
परम उपादेयरूप-तीर्थकरादिक संबंधीकी-मूर्त्ति है, सो तूं-परम  
उपादेयके स्वरूपसें, मानता है कि नहीं, इतने मात्रका-उत्तर,  
हमको दिखादे ॥

दूढक—बाहरे मूर्त्तिपूजक भाई बाह, क्या-उपादेय वस्तुकी  
पथर आदिकी आकृति [मूर्त्ति] भी, उपादेय रूपही, मानलेनी ? ॥

मूर्त्तिपूजक—हा भाई दूढक हा, हमतो-तीर्थकरादिक परम  
उपादेय वस्तुकी, मूर्त्तिकोभी-परम उपादेय रूपही, मानते हैं । जो  
तुमभी-उपादेय वस्तुकी, आकृतिको-उपादेय रूपसें, न मानोंगे  
तो-किसीके आगे, बात करने जोगेभी न रहोंगे । देखो प्रथम  
सामान्य मात्रसें, हमने-दिखाया हुआ, त्रणें पार्वतीकी-मूर्त्तिका



विचारसं, उपादेयकी-मूर्त्ति हैसो, उपादेयपणे-सिद्ध होती है या नहीं ? पिछे-परमोपदेय तीर्थकरोंकी मूर्त्ति है सो, परमोपादेय रूप, अपने आप-सिद्ध, हो जायगी ॥

देखोकि—शिवका भक्त थासो तो, अपना-उपादेय संबन्धिनी, शिव पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, देखतेकी साथ, परम प्रीति को धारण करता हुवा-बड़ा हार्षित हुवा था ॥

और काम विकारसं भरी हुई-हेय वस्तु संबन्धिनी, बेश्या पार्वतीकी-मूर्त्तिको, देखके-बड़ा दिलगिर हुवा था ॥

और मुख उपर पङ्गीवाली, दूढ़नी पार्वतीजीकी-ज्ञेय वस्तु संबन्धिनी-मूर्त्तिको, देखके, नतो-हार्षित हुवा था, और नतो-दिल-गिरभी हुवा था, मात्र नवीन प्रकारका स्वरूपको-आकृति, सम-जता हुवा, टगटगपणे-देखता ही रहाथा ॥

॥ अब दूसरा-कामी पुरुषथा सो, शिवपार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, देखके, और दूढ़नी पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, देखके, मात्र ज्ञेय वस्तु रूपका-स्वरूपको जानके, नतो-हार्षित हुवाथा, और नतो-कुछ दिलगिरभी हुवाथा, परंतु काम विकारकी-पेटीरूप, बेश्या पार्वती-की-मूर्त्तिको, देखके, और अपना-उपादेय वस्तु संबन्धिनी, जानके, परम प्रीतिकी साथ, अंग प्रत्यंगको बारंबार देखता हुवा, और अपना शरीरकी रोम-राजिको-विक्रम्वर, करता हुवा, कितनीक देरतक, देखनेमें मसगूलही बन रहाथा, क्योंकि-उस कामी पुरुषको, जो कुछ-उपादेय वस्तुथी सोतो, एक बेश्या पार्वतीहीथी । इस वास्ते उनकी-मूर्त्तिको, देखके भी, उसमें ही उनको मग्नरूप होना युक्ति युक्त ही था ॥ परंतु हे दूढ़क भाई !

अब तेरेको ही हम पुछते हैं कि, एकतो है-शिव पार्वतिजीकी

( १८ ) दूढक भक्ताश्रित-त्रणे पार्वतीका-२स्थाप्रना निक्षेपः

मूर्त्ति । और दूसरी है वेश्या पार्वतीकी-मूर्त्ति । और तीसरी है दूढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्ति । यह तीन स्वरूपकी, तीन मूर्त्ति में सैं, तेरा हृदयमें-? हेय । २ ज्ञेय । और ३ उपादेयका विषयरूपसैं, विशेषण-बोधका, कारणरूपे, कोई भी-मूर्त्ति, है या नहीं ? प्रथम ही इसमें विचार करकि-वेश्या पार्वतीकी मूर्त्ति तुल्य, दूढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, मानना, यहतो कभी भी उचित न-गीना जायगा । जो कभी विशेषण सैं रहित, केवल ज्ञेय स्वरूपसैं, दूढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, कहोगे, तब तो-जैसे दूढनी पार्वतीजीकी मूर्त्तिको, खिचवा के-घरमें रखते हो, तैसे ही शिव पार्वतीजीकी मूर्त्तिभी खिचवा के तुमरे दूढकों को-घरमें रखनी ही चाहिये, सो शिव पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, खिचवाके-घरमें, क्यों नहीं रखते हो ?

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-तू बड़ा भोला है, हमने दूढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तियां, खिचवा के-घरमें रखियां हैं, सो तेरी बात सत्य है, परंतु उस मूर्त्तियां सैं, कोई कार्यकी सिद्धि होती है, ऐसा नहीं मानते हैं ।

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक-दूढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तियांसैं, तू किस कार्यकी सिद्धि, करना चाहता-है ? इस बातमें तू विशेष-पणे, इतना मात्रही कहसकेगा कि-उपदेशकी प्राप्तिरूप-कार्यकी सिद्धि, हमारी नहीं होती है । इनके शिवाय दूसरा विशेषमें कुछ-भी न कह सकेगा, परंतु दूर देशमें रहे हुये-दूढकोंको, इस-मूर्त्तियांका दर्शनसैं, दूढनी पार्वतीजीका स्वरूपकी-स्मृति, होती है या नहीं ? और उनकेवाद, जो दूढनीजीके-भक्त बने हुये हैं, उनोंको कुछ-प्रीति, अप्रीति, करानेमें वह-मूर्त्तियां, निमित्तभूत, है या नहीं ? इसमें जो तेरा विचार हो सो, हमको बतलादे ॥

दूढ़क—हे भाई मूर्त्तिपूजक-वारंवार ऐसा क्या पुछता है, देख-मूर्त्तियाँमें, नतो कोई-प्रीति रही है, और नतो कोई-अप्रीति भी रही है, सोतो अपना आत्मामेंही रही हुई है, किसवास्ते ऐसी भ्रमितपणेकी वातां हमको सुनावता है ? ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढ़क-तेरा कहना यह सत्य है, परंतु उस-प्रीति अप्रीति होनेमें तुमको, दूढ़नीजीकी-मूर्त्ति, कुछ कारण रूप, होती है या नहीं ? इतना मात्रही में तेरेको पुछता हूँ । जो तू कहेगाकि-हमको प्रीतिअप्रीति उत्पन्न होनेमें-मूर्त्ति, कारणरूपे कुछभी नहीं है,तो पिछे हम-पुछते है कि-काठीयावाड देशका-लि-मडी सेहरमें, संवत् १९४७ का-वैशाख मासमें, पूज्यश्री-गोपाल ऋषनी, अचानकपणे देहांत हुयेवाद, हाजारभक्त सेवकोने, मृतक शरीरको पट्टेउपर बिठाके, और नीचेके भागमें-त्रण जीवते साधु-को बिठायेके, उनका-फोटो ग्राफ, किसवास्ते खिन्नवाया ? । और पंजाबी दूढ़क श्रावकोने-जीवते हुये दूढ़क-सोहनलाल आदि साधुओंका । और दूढ़नी पार्वतीजी आदि साध्वीयांका । और दक्षिण अहमदनगरमें-चंपालाल आदि, दूढ़क साधुओंका । और आगरा सेहरमें-पचीस त्रीसेक श्रावकोंकी साथमें बैठे हुये-पांच सात साधु-ओंका । इत्यादिक अनेक स्थलोंमें-दूढ़क श्रावकोने, अपना अपना मान्वाहुवा-गुरुरूप दूढ़क साधुओंका, और दूढ़नी साध्वीयांका, फोटोग्राफ, किसवास्ते खिचवाया ? और हमने यहभी सुना हैकि कोई कोई अधिक भक्तोंने तो, अपने तालेजिंदेमेंभी कबज करके रखे है, सो किसवास्ते करते है ? उनका कारण तू ही दिखलाव ? हमनेतो इस लेखसँ, सिद्ध करके ही दिखलाया है कि-जो उपादेय वस्तुकी-मूर्त्तिहै, सो मूर्त्ति, तुमकोभी-प्रीति विशेषका, कारण हीहै। इसीवास्ते तुमलोको-दूढ़क साधु, साध्वीयांका-फोटोग्राफ, खिच-

( ४० ) दूढक भक्ताश्रित-त्रणं पार्वतीका-स्थापना निक्षेप.

वायके, अपने ताले जिंदमें-कबजकरके रखतेहो, और इस देखसैं-यहभी सिद्ध हुवाकि, दूढक दूढनीजीने-स्थापना निक्षेपको, जो निरर्थकरूप-उहराया है सोभी जूठे जूठे ही लिखमारा है । अगर जो तुम दूढको उपादेय रूप, वस्तुकी-मूर्त्तिको, उपादेय के स्वरूपसैं, न मानोंगे तो जैन धर्मका द्वेषीमें सैं-कोइक बदमास, दूढनी साध्वी जीकी-मूर्त्तिके, साथ-कुचेष्टा करता हुवा पुरुषकी मूर्त्तिको । और दूढक साधुकी मूर्त्तिके साथ-किसी रंडीकी मूर्त्तिको । वे अदबसैं खिचवायके, अनेक प्रकारकी अपभ्रजना करता हुवा भी, तुमको कुछ भी बोलनेको न देवेगा, परंतु मूर्त्तिको भी-उपादेयपणे, मानने वाले हम-उस बदमासको, हठासकेंगे, और ऐसे अत्याचार करने वालेको, हठानेकी, हमको भी जरूर ही है, नहीं तो तमासा देखनेवाले लोको भी बेठे हुये ही है । तो अब विचार करोंकि-तीर्थकरोंकी अपेक्षासैं, आज कालके-तुछ पात्ररूप, साधुओंकी-मूर्त्तियां भी, उपादेयपणे चिन्तन करके ही, बदमास लोकोको-हम हटासकेंगे, तो पिछे हमारा-परमप्रिय, परमपूज्य, परमोपदेश दाता, शासनके नायकरूप, तीर्थकरोंकी-मूर्त्तियांको, निरर्थकरूप मानके, हम ही जैन कुलमें-भंगारापरू, बने हुये, अवज्ञा करनेवाले, तीर्थकरोंके भक्त, कैसे बनेंगे ? इस बातका विचार, तीर्थकरोंके-भक्तोंको तो, अवश्य करनेके, योग्य ही है, बाकी रहे जो-महा मिथ्या दृष्टि, और दुर्भवी, अथवा अभवी, उनोंकी पाससैं हम कुछ भी विचार नहीं करा सकते है ॥

और देखाकि-सिद्धांत कारोंने तो, सर्व वस्तुका-स्थापना निक्षेपको, अपना अपना स्वरूपका-पिछान करानेमें, कारणरूप, मानके-सार्थक, और कार्यकी सिद्धिमें, उपयोगवाला हीमाना है, तो पिछे तीर्थकरोंका-स्थापना निक्षेप, निरर्थक हीहै, ऐसा दूढनी-कैसे-

लिखती है ? और यही दूढनी पार्वती, दूसरी साधारण वस्तुका-स्थापना निक्षेपको, सार्थक, और कार्यकी सिद्धिमें-उपयोगवाला-भी, जैन सूत्रोंका-मूल पाठसें ही, लिखके दिखाती है, परंतु विपरीतमति हो जानेसें-कुछ विचारही, नहीं कर सकी है ॥

देखो-सत्यार्थ पृष्ठ ७३ । ७४ में-यथा-सूत्र उवाईजीमें-पूर्ण-भद्र यक्षके, यक्षायतन, अर्थात्-मंदिर, मूर्त्तिका, और उसकी-पूजाका, पूजाके फलका-धन, संपदादिकी, प्राप्ति होना, इत्यादि भलीभांति सविस्तार-वर्णन-चला है ॥

और अंतगढ सूत्रमें-मोगर पाणी, यक्षके-मंदिर, मूर्त्तिका । हरण गमेषी देवकी-मूर्त्तिपूजाका ॥ और विपाक सूत्रमें-उंबर यक्षकी-मूर्त्ति, मंदिरका, और उसकी पूजाका फल-पुत्रादिका होना, सविस्तार पूर्वोक्त वर्णन चला है ॥ पृष्ठ. ७४ओ ७से-हे भव्य इस पूर्वोक्त कथनका-तात्पर्य यह है कि, वह जो सूत्रोंमें नगरियाके-वर्णनके आदमें, पूर्णभद्रादि यक्षोंके-मंदिर चलेहैं सो,वह यक्षादि सरागी देव होते हैं, और बालि बाकुल आदिककी इछा भी रखते हैं, और राग द्वेषके प्रयोगसें अपनी-मूर्त्तिकी पूजापूजा देखके-वर, शराप भी-देतेहै ताते हरएक नगरकी-रक्षारूप, नगरके बाहर इनके-मंदिर हमेशांसे चले आतेहै, संसारिक स्वार्थ होनेसें ॥

पाठकवर्ग ! अब इसमें विचार किजीयेकि-प्रथम यही दूढनी-जी अपनी थोथीपोथीमें-नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप, और द्रव्य निक्षेप, । यह तीनों निक्षेपोंको-निरर्थक, और कार्य साधक नहीं, वैशा बारंबार लिखके-पत्रके पत्रें, भरती चली आई । और यह पूर्वोक्त सूत्रपाठका विचारसें-स्थापना निक्षेपका विषयरूप, यक्षादिकोंके-पथ्थरकी आकृतिरूपसें, अर्थात् मूर्त्तिके स्वरूपसें, उनके

( ४२ ) दूढक भक्ताश्रित-त्रणें पार्वतीका-स्थापना निक्षेप.

दूढकोंको धनपुत्रादिक कार्यकी सिद्धिभी दिखला देती है ॥ तो अब विचार करोकि-यक्षादिक व्यंतरोंका स्थापना निक्षेपसें बनी हुई पथरकी मूर्त्ति, सार्थकरूप हुई कि, निरर्थकरूप ? दूढनीजी तो केवल वीतरागी मूर्त्तिसें-द्वेष धारण करके, अपने लेखकाभी पूर्वाऽ परके विचार किये बिना, जो मनमें आया सोही-अगडं बगडं लिखके, अपना और भद्रिक श्रावकोंके, धर्मका-नाश करनेकोही, उद्यत हुई है । ते सिवाय दूसरा प्रकारकी सिद्धितो-दूढनीजीके लेखमें, कुछभी दिखनेमें नहीं आती है ॥

दूढक-हे भाई मूर्त्तिपूजक, हमारी दूढनीजीने स्थापना निक्षेप, कार्य साधक नहीं, ऐसा लिखके जो-निरर्थक ठहराया है सो, तीर्थकरोंका-जडरूप पथरकी मूर्त्ति पूजासें-मुक्तिका कार्यकी सिद्धि नहीं, इस अभिप्राय मात्रसें-स्थापनानिक्षेप, निरर्थकरूप लिखा है ॥

मूर्त्तिपूजक-हे भाई दूढक, दूढनीजीने केवल ऐसा नहीं लिखा है, उसने तो-वीतरागी मूर्त्तिसें द्वेष धारण करके, और अपना लेखमें-पूर्ण भद्रादिक यक्षोंके संबंधी-जडरूप पथरकी मूर्त्तिसें, धन पुत्रादिक-कार्यकी सिद्धिरूप, सिद्धांतके पाठका विचार किये बिना-सर्व वस्तुका स्थापनानिक्षेप [ मूर्त्ति ] को, निरर्थक ठहराके, तीर्थकरोंका-स्थापना निक्षेप ( मूर्त्ति ) भी, सर्वथा प्रकारसें

१ जैसे-तीर्थकरोंका-नाम, स्मरण मात्रसें दूढनीजी मोक्षको पहचानेको चाहती है तैसेही यक्षोंका-नाम, स्मरण मात्रसें-धन, पुत्रादिक क्यों नहीं दिवा देती है ? काहेको फल फूलादिकसें जड पथरकी मूर्त्ति पूजा कराती हुई दूढक भाइयोंको-अनंत संसारमें गेरती है ? ॥

निरर्थक ठहरानेका, प्रयत्न किया है ॥ देखो सत्यार्थ पृष्ठ ८ में यथा-काष्ठ, पीतल, पाषाणादिकी-मूर्त्ति, बनाके स्थापना करलीके यह मेरा-इंद्र है, फिर उसको-वंदे, पूजे, उससे, धन, पुत्र, आदिक मांगे, मेला, महोत्सव करें । परंतु वह जड-कुछ जाने नहीं, ताते शून्य है । अज्ञानताके कारण उसे-इंद्र, मानलेते है । परंतु वह-इंद्र नहीं, अर्थात्-कार्यसाधक नहीं ॥

इस प्रकारसे दूढनीजी-पथम इंद्रकी मूर्त्तिको, निरर्थक-उ-रायके, पिछे-पृष्ठ १५-१६ में-ऋषभ देवजीकी-मूर्त्तिको, जडपणा दिखलायके निरर्थकपणा, दिखलाया है ॥

और-७३।७४ में-पूर्ण भद्रादिक यक्षोंके-पथ्यरकी मूर्त्तिसें, दूढक श्रावकोको-धन, पुत्रादिककी, प्राप्ति कराती हुई-स्थापना निक्षेपको, सार्थकरूप-करके, दिखलाती है । तो अब दूढनीजीको तीर्थकरोंकी भक्तानी समजनी, कि, यक्षोंकी ? उनका विचार वाचक वर्ग ही करें ? ॥

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-त्रय पूर्ण भद्रादिक यक्षोंकी-प-थ्यरसे बना हुई, जडरूप मूर्त्तिकी पूजासे-धन, पुत्रादिककी, प्राप्ति होनेसे-सार्थकपणा है, तब तो-इंद्रादिकोंकी पाषाणादिकसे बनी हुई, जडरूप-मूर्त्तिकी पूजासे भी, अवश्य ही-कार्य सिद्ध होनाचाहिये, क्योंकि-सरागीपणा जैसा पूर्ण भद्रादिक यक्षोंमें है, तैसा ही सरा-गीपणा-इंद्रमें भी है, तो पिछे हमारी दूढनीजीने-इंद्रकी मूर्त्तिको-जडरूप, कहकर, और निरर्थकपणा ठहराय करके, सर्व वस्तुका-स्थापना निक्षेप, निरर्थकरूपसे, क्यों ठहराया होगा ? सो कुछ मेरी समजमें-आया नहीं है ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक-दूढनीजीने तो वीतरागी मूर्त्तिसें-

( ४४ ) दूढक भक्ताश्रित-त्रणं पार्वतीका-रस्थापना निक्षेप.

द्वेषभाव करके, अपना लेखका भी पूर्वाऽपरके विचार किये बिना, जो मनमें आया सो ही-लिख मारा है। परंतु हेय १। हेय २। और उपादेय ३। के स्वरूपसे, पूर्वमें दिखाई हुई हमारी युक्तिके प्रमाणसे-जैन सिद्धांतकारोंके मंतव्य मुजब, स्थापनानिक्षेप-निरर्थक रूपका नहीं है, सो तो अपनी अपनी वस्तु स्वभावका-तादृश बोधको कराता हुवा, आत्माको ते ते वस्तुओंका गुणोंकी तरफ, विशेषपणे ही लक्ष कराता है

इस विषयमें-प्रमाण देखो-सत्यार्थ पृष्ठ. ३५ में-दूढनी ही लिखती है कि-हां हां सुननेकी अपेक्षा ( निसचत ) आकार ( नकसा ) देखनेसे-ज्यादा, और जल्दी, समज-आती है, यह तो-हम भी मानते हैं।

अब दूढनीजीका-इस लेखसे, विचार करनेका यह है कि-जब मूर्त्तिपूजनमें, कुछ विशेष ही नहीं था, तब तो पूर्ण भद्रादिक यक्षोंका-नाम स्मरण मात्रसे ही, दूढकोंको-धन, पुत्रादिककी प्राप्ति, दूढनीजी-करा देती, किस वास्ते यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी मूर्त्तिका पूजनमें-आरंभ, कराती हुई-धन, पुत्रादिक, प्राप्ति होनेका-लिखके, दिखाती है ?

और यह भी विचार करो कि दूढनीजीका ही लेखसे, मूर्त्तिको-वंदना, नमस्कारादि-करनेका, सिद्ध होता है कि नहीं ?

अगर जो यक्षादिकोंकी जड स्वरूप मूर्त्तिको-वंदना, नमस्कारादिक, न करावेगी-तो पिछे, दूढकोंको-धन, पुत्रादिककी-प्राप्ति भी किस प्रकारसे करादेवेगी ?

जब दूढनीजी-यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी-मूर्त्तिका, आरंभ-वाला पूजन, और वंदना, नमस्कारादिक-करानेको उद्यत हुई है-



तो पिछे, जिनेश्वर देवकी मूर्तिके-भक्तोंको, सत्यार्थ पृष्ठ. १७ में-जड पूजक, पणेका, जूठा विशेषण-क्यों देती है ? क्यों कि, दूढनी ही-यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी, पापाणादिकसें बनी हुई-जडरूप मूर्तिका पूजन, कराती हुई, बेसक जड पूजक पणेका-विशेषणके लायक, हो सकती है । परंतु हम जिन मूर्तिके भक्त-इस विशेषणके योग्य, कैसे हो सकते है ? ॥

और सत्यार्थ-पृष्ठ ६७ में-दूढनीजीने लिखा है कि पथरकी मूर्तिको धरके, श्रुति लगानी नहीं चाहिये ।

इस लेखसें विचार यह आता है कि वह यक्षादिक देवोंकी मूर्ति भी पथरसें ही बनी हुई होती है, और उस मूर्तियांकी पूजासें, दूढनीजीने-धन पुत्रादिक प्राप्ति होनेका भी दिखाया है, जबतक दूढनीजी भोंदू दूढकोंकी पाससें उस मूर्तियांमें-श्रुति मात्र भी लगानेको न देवेगी, तबतक-धन, पुत्रादिक, वस्तुकी प्राप्ति भी किस प्रकारसें करा सकेगी ? ॥

फिर पृष्ठ ५७ में-लिखता है कि-उसको [ अर्थात् मूर्तिको ] हम भी भगवान्का आकार कहदें, परंतु-वंदना, नमस्कार तो नहीं करें । और लड्डु पेंडे तो अगाडी नहीं धरें ॥

इस लेखसें भी विचार करनेका यह है कि-अदृश्य स्वरूपके जो यक्षादिक देवताओ है, उनोंकी कल्पित पथरकी मूर्तियांको वंदना, नमस्कार, करना और लड्डु पेंडे भी चढानेका हमारे दूढक भाईयांको सिद्ध करके दिखलाती है, और परम ध्यानमें लीनरूप तीर्थकरोंका साक्षात् स्वरूपका आकारको-वंदनादिक करनेका भी, ना पाडती हैं तो क्या तीर्थकरों के धर्मका सनातपणा इसी प्रकारसें चला आता है ? ॥

और सत्यार्थ पृष्ठ ३६ में-दूंदनीजी लिखती है कि-उस आकार [ नकसे ] को-चंदना, नमस्कार, करना यह मतवाल तुम्हें किसने पीलादी ॥

यह जो लिखा है सो भी यक्षादिक मिथ्यास्वी देवोंका भयंकर आकार को-चंदना, नमस्कार, और आरंभवाला पूजनसे-धन, पुत्रादिककी, प्राप्ति करानेको उद्यत हुई, यह दूंदनी ही-मतवाल पीलाने वाली सिद्ध होगी के-त्रिनेश्वर देवका आकारकी भक्तिको दिखाने वाले, सिद्ध होंगे ?

उसका विचार तो-जैन धर्मका अभिलाषियोंको ही करनेका है ? अब इस दिग् मात्रका लेखसे ख्याल करनेका यह है कि-मूर्त्ति मात्रको निरर्थक ठहरानेके लिये दूंदनीजीने जो जो कुतर्कों किई है सो सो-हेय १, ज्ञेय २, और उपादेय ३ । वस्तुओंकी मूर्त्तियोंको विशेषणके विभागको समजे बिना, अगडं बगडं लिखके, भोले जीवोंको बीतरागी मूर्त्तिकी भक्तिसे-भ्रष्ट करनेको, जूठका पुंज भेगा किया है परंतु जैन सिद्धांतकारोंकी शैलीका अनुकरण किंचित् मात्र भी किया हुवा नहीं है ।

और हम बीतराग देवकानिर्मल सिद्धांतोंके लेखसे, विचार करके देखते है तबतोयही मालूम होता हैकि-अपना अपना उपादेय वस्तुका, जो-नाम निक्षेप है, उसमेंही उसका-स्थापना निक्षेप (मूर्त्ति) है सो, सारी आलस दूनीयांका विशेषण ही-ध्यान खेंच रही है, और उस प्रमाणे दूनीयांको वर्त्तन करती हुईभी प्रगटपणे देखते है । मात्र मूढताको धारण करके-कोई कोई समाज, मुखसे-ही ना मुकर जाता है । परंतु विचारशील समाज है सो तो-हेय १ । ज्ञेय २ । और उपादेय ३की । वस्तुके स्वरूपसे-नामनिक्षेपको,

और स्थापना निक्षेपकोभी, योग्यता मुजब-आदर, और सत्कार ही कर रहा है। परंतु मूढताको प्रगट नहीं करता है। यही विशेष पणा दिख रहा है।

॥ फिर भी देखो-सत्यार्थ-पृष्ठ. १३२ ओ. १२ सें-दूढनीजी लिखती है कि-भगवती शतक १२ मा, उद्देशा २ में-जयंती समणो पासका, अपनी भौजाई मृगावतीसे कहती भई कि—महावीर स्वा-मीजीका-नाम, गोत्र, सुणनेसे ही—महाफल है। तो प्रत्यक्ष सेवा भक्ति करनेका जो फल है सो-क्या वर्णन करूं। और भी पाठ ऐसैं बहुत जगह आता है ॥

दूढनीजीका इस लेखसें, खयाल करनेका यह है कि-नाम-और गोत्र, एक प्रकारका होके भी-अनेक पुरुषोंमें, दाखल हुयेला देख-नेमें आता है, तो भी भगवानके साथ संबंधवाला—नाम, और गोत्र, जडरूप अक्षरोंके आकारका, दूसरेके मुखसें प्रकाशमान हु-येला, श्रवणद्वारा—सुनने मात्रसें, भक्त जनोंको—महाफलको प्राप्त करता है। ऐसा जैन सिद्धांतोंसें सिद्ध है। तो पीछे वीतराग दे-वके ही सदृश्य, और अन्य वस्तुओंसें अमिलित, ऐसी अलोकिक-वीतरागी मूर्त्तिको, नेत्रोंसे साक्षात्पणे देखते हुये, हमारे दूढकभाई-यांको-अल्हादितपणा क्यों नहीं होता है? क्या तीर्थकरोंकी भ-क्तिभावका बीज, उनांके हृदयमेंसें-नष्ट हो गया है?।

क्योंकि जो तीर्थकरोंके-भक्त होंगे, सोही तीर्थकरोंके साथ संबंध वाला-नाम, और गोत्र रूप अक्षरोंको, कर्णद्वारा श्रवण कर-नेसेंअल्हादित हो केही, महा फलको प्राप्त करलेवेगा। तो पीछे नेत्र द्वारा-तादृश भगवानकी भव्य मूर्त्तिका, दर्शनको करता हुवा, सोभ व्यात्माभक्त—अल्हादित होके, महाफलकी प्राप्ति क्यों न कर ले-

( ४८ ) दूढ़क भक्ताश्रित-त्रयें पार्वतीका-२ स्थापना निक्षेप.

वेगा ? । क्यों कि-नामसें भी, मूर्त्ति है सो-विशेषपणे ही बोधको प्राप्त करानेवाली, सिद्ध हो चुकी है ॥

देखो सत्यार्थ—पृष्ठ. ३५ में—दूढ़नीजी भी लिखती ही है कि—हां हां सुननेकी अपेक्षा ( निसवत ) आकार [ नकसा ] देखनेसें-ज्यादा, और जल्दी, समज आती है । यह तो हम भी मानते है ॥

तो अब-नामसें भी विशेषपणे बोधको कराने वाली, वीतरागी मूर्त्तिको देखनेसें-आल्हादित न होना, सो तो कर्मकी बहूलता के सिवाय, दूसरा विशेषपणा क्या समजना ? ।

इस वास्ते वीतराग देवके भक्तोंको विचार करनेकी भलामण विशेषपणे ही करता हुं ॥

फिर भी देखोकि-हमारे दूढ़क साधुओं, और साध्वीयां, मर्यादाको छोड करके अपनी मूर्त्तियां ( अर्थात् काली स्याहीका फोटो ) खिचवाते है, और अपने २ भक्तोंको दर्शन के लिये अर्पण भी करते है, तोपिछें जिस अरिहंतका-नाम, रात और दिन, ले ले के-वंदना, नमस्कार, करते है, उनकी परम पवित्र मूर्त्तिको-वंदना, नमस्कार, क्यों नही करना ? । अपितु अवश्यमेव करनेके योग्य ही है ॥

दूढ़क—हे भाई मूर्त्तिपूजक देख सत्यार्थ पृष्ठ. ५० से-५१ तक—हमारी दूढ़नीजीने लिखा है कि—पार्श्व नामसें—गाली, देतो, हमे कुछ द्वेष नहीं, तुम्हारा पार्श्व अवतार ऐसे कहके गाली देतो, द्वेष आवे, ताते वह-नामभी, भावमें हीहै। उसमें दृष्टांत यह दियाहैकि—राजाके पुत्रका नाम, इंद्रजित् है, तैसेंही धोबीके पुत्रका नामभी, इंद्रजित् है, सो धोबीका पुत्र मर गया, वह धोबी

हाय २ इंद्रजित्, हाय इंद्रजित्, कहकें रोता है, परंतु राजाने-बुरा, नहीं माना । ताते—नामतो, गुणा कर्षणही होता है, सो—भाव निक्षेपमें ही है ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक, थोडासा ख्याल करके देखकि—जो—नाम, अनेक वस्तुओंके साथ संबंधवाला होजाता है, उस नामके—दो चार अक्षर मात्रमें तो, दूढनोजीको साक्षात् पणे—तीर्थकर भगवान्, दिख पडता है । और वह—दो चार अक्षर मात्रको, अपना मुखसे उच्चारण करने मात्रसे—वंदना, नमस्कारादिक भी, करना मानती है तो पिछे—नामसे भी, विशेष पणे बोधको करानेवाली—वीतरागी मूर्त्तियें, तीर्थकर भगवान्, हमारे दूढक भाईयांको—किस कारणसे नहि दिखता है ? क्यों कि जो मिथ्यात्वी लोको है सो भी, तीर्थकरोंके—नामको सुननेसे, तीर्थकरोंकी—मूर्त्तिको देखनेसे, विशेषपणे ही तीर्थकरोंका—बोधको, प्राप्त होते है । तो पिछे हमारा दूढक भाईयांको, तीर्थकरोंकी—अलोकिक मूर्त्तिको देखनेसे भी, तीर्थकरोंका बोध नहीं होता है, इसमें क्या कारण समजना ? उसका विचार करनेका तो—वाचक वर्गको ही दे देता हुं ॥

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक, हमलोक—दूढक साधुओंकी, और साध्वीयांकी—मूर्त्तियांको, खिचवायके घरमें रखते है, यह बात तेरी सत्य है, परंतु उस मूर्त्तियांको—वंदना, नस्कार तो—कभीभी नहीं करते है, तो पिछे—ऋषभादिक, तीर्थकरोंकी—मूर्त्तियांको, वंदना, नमस्कार, किस प्रकारसे करें ?

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक—जिस २ दूढक साधुको, जिस २ दूढक श्रावकोंने—अपना २ गुरूपणे मान लिया है, सो सो दूढक

भावक, दूर देशमें रहा हुआ, अपना २ गुरुका-नामको, स्मरण करता हुआ, वंदना, नमस्कार, करेगा या नहि ?

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक—जिस दूढक साधुको, गुरु करके मान लिया, उनका-नाम, स्मरण करके, वंदना, नमस्कार, नहीं करें तो पिछे किसका नाम लेके—वंदना, नमस्कार, करना ?

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक, जिस गुरुको तूने मान्य किया है, उस नामके—अनेक पुरुष होते है, और ते नामके अक्षरोंमे तो—तेरा मान्य किया हुआ गुरुका, चिन्ह तो, कोई प्रकारका भी दिखता नहीं है, सो—नामका, उच्चारण मात्र करनेसे ही तूने वंदना नमस्कार करनेका भी कबुल कर लिया, और उसी ही गुरुका स्वरूपको—साक्षात्पणे बोध, करानेवाली—मूर्त्ति है, उसको वंदना नमस्कार करनेका भी ना पाडता है, सो किस प्रकारका तेरा विवेक समजना? अथवा किस प्रकारकी धिठाइ समजनी ?

दूढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक हमारे दूढक गुरुजीने ऐसा फरमाया है कि गुरुजीका नाम देके तो, वंदना, नमस्कार, करना। परंतु उनकी मूर्त्तिको वंदना नमस्कार नहीं करना। क्यों कि-नाम तो, गुणकार्षण ही होता है, सो भाव निक्षेपमें ही है, ऐसा पृष्ठ. ११ में हमारी दूढनी पार्वती साध्वीजीने लिखा है। इस वास्ते गुरुजीका नाम देके—वंदना, नमस्कार, करते है, परंतु उनकी मूर्त्तिको देखके किस प्रकारसे करें ?

मूर्त्तिपूजक—हे भाई दूढक, इसमें थोडासा—विचार करके, जो नाम, अनेक वस्तुओंके साथ संबंध वाला हो के, पिछेसे ते-नाम, तेरा मान्य किया हुआ—गुरुके साथ, संबंध वाला हुआ है। जैसे कि—चंपालाल, सोहनलाल, आदि। अथवा—पार्वती, जीषी, अ-

दि । उस नाम मात्र-के दो चार अक्षर में तो, तेरा गुरुजीका साक्षात् स्वरूपवाला-भाव निक्षेप, गुसड गया, जिससे तू-बंदना, नमस्कार, करनेको लग गया ।

और जो तेरा गुरुजीका ही साक्षात् स्वरूपको-बोध कराने वाली, तेरा ही गुरुजीकी-मूर्ति है, उसमेंसे तेरा-भाव निक्षेप, कहां चला जाता है ? । जो तू तेरा ही गुरुजीकी, साक्षात् स्वरूपकी-मूर्तिको, बंदना, नमस्कार करनेकी भी-ना पाडता है ? ॥

क्योंकि—एक नामके तो, अनेक पुरुष, रहते हैं, उसमें तो गफलत, होनेका भी-संभव, रहता है । परंतु साक्षात् स्वरूपकी मूर्तिसें तो, इछित पदार्थका-बोधके शिवाय, दूसरी वस्तुकी भ्रांति होनेका भी संभव नहीं है । इस वास्ते विचार कर ? ॥

दूढ़क—हे भाई मूर्तिपूजक, तेरा कहना सत्य हे कि-जिस वस्तुका—दो चार अक्षरके नाम मात्रको, उच्चारण करके-बंदना, नमस्कार, करते होवें, उनकी मूर्तिको, देखके-बंदना, नमस्कार, करना । सो भी-योग्य ही मालूम होता है । इसी वास्ते हमारे समुदायके लोक, दूढ़क गुरुओंकी-मूर्तियां, खिचवाते हैं । परंतु उस मूर्तियांपर-पाणी, गेरके, और-फल फूल चढायके, पापके बंधनमें पडना, उसका-विचार तो, तुम लोकोंको ही-करनेका है, हम तो ऐसी-बातको, नहीं चाहते हैं ।

मूर्तिपूजक-हे भाई दूढ़क, इहांपर थोडीसी निष्ठा करके देख कि-हम-तीर्थकर, गणधरादि, महा पुरुषों के, भक्त हैं । और हमको-उनकेपर, परम विश्वास भी है ।

और जो कुछ उनोंने-कहा है, सो हमारा-हित, और कल्याण के वास्ते ही-समजते हैं । और उनोंके-कहने मुजब ही, कार्य

करणेकी-श्रद्धा, हमेसां रखते है । और उस कार्यमें-विधि सहित प्रवृत्ति होनेसें, हमारा निस्तार होगा, यह भी-निश्चय करके ही, मानते है । इसी वास्ते हम-मूर्त्तिद्वारा, तीर्थकरोंकी-भक्ति, करते है । सो-जिन मूर्त्तिका पूजन, जैन सिद्धांतोंमें-जगें जगें पर, दिखाया हुवा है । अगर जो तूं तेरी-स्वामिनी पार्वतीजीका लेख परसें भी-विचार, करेगा, तो भी तेरा हृदय नयनको-बडा प्रकाश हा, दिख पडेगा । तेरी स्वामिनीजी को-विपरीत विचारमें, कुछ समज-नहीं पडी है । इसी वास्ते ही-अगडं बगडं, लिखके दिखाया है । परंतु जो में-तेरेको फिर भी आगेको, सूचनाओ करके दिखाता हुं, उस तरफ ख्याल पूर्वक-विचार करेगा, तब तो वीतराग देवका-सत्यरूप मार्ग, अपने आप-तेरेको हाथ लग जायगा । अगर जो अज्ञताको, धारण करके, हठ पकडके-जायगा, तब तो साक्षात्-सर्व तीर्थकरो भी, तुमको-न समजा सकेंगे । तो पिछे मेरे जैसेकी-क्या ताकात है, जो समजा सकेंगे ? तो भी भव्य पुरुषों के-हित के लिये, ते सूचनाओं लिखके, दिखाता हुं, सो अवश्यमेव-लाभदायक होंगी ।

प्रथम देख-सत्यार्थ पृष्ठ. ८ से-दूढ़नीजीने, लिखाहै कि-काष्ठ, पाषाणादिकी-इंद्रकी मूर्त्ति, बनाके-बंदे, पूजे, धन, पुत्रादिक, मागे । वह-जड, कुछ जाने नहीं, ताते शून्यहै । अर्थात्-कार्य साधक, नहीं । इत्यादि ॥

पुनः पृष्ठ. १५ से-ऋषभदेव भगवानकी, मूर्त्तिकोभी जडपदार्थ कहकरके पृष्ठ. १६ में निर्धक, ठहराई ॥

परंतु पृष्ठ. ७३ में-पूर्ण भद्रादिक यज्ञोंके, पथरकी-मूर्त्तिपूजा सें, हमारेभोके दूढ़कभाईओंको धन, पुत्रादिककी-पाप्मिसें-सार्थकी-



सिद्धिकरनेकी दिखाई । तो अब विचार करोकि-पथरसे बनीहुई, जडस्वरूपकी मूर्ति-सार्थक हुईके, निरर्थक ? ॥

हमकोतो-जडस्वभावकी, मूर्तिही-बाधकपणे, और-साधकपणे भी, दूदनीजीका लेखसँही, जगें जगें पर-दिख रहीहै । न जानें दूदनीजीको, तीर्थकर भगवानकीही-परमशांत मूर्ति, आत्माकी शांतिका साधकपणे, क्यों नहीं दिखलाईदेती है ? जो जडपणा दिखलाके निरर्थक ठहराती है ? ॥

देखो प्रथम, मूर्तिसँ-बाधकपणा, सत्यार्थ पृष्ठ. ३४ में-दूदनीजीने, लिखाहै कि-स्त्रीकी मूर्तियां-देखके, सबीकामियोंका-काम, जागता होगा ॥ विचार करोकि-यह जडस्वरूपकी-मूर्तियां, कामी पुरुषोंका-मनको विकार उत्पन्नकरनेसँ बाधकरूप, हुई या नहीं ? ॥

फिर पृष्ठ. ५८ में देखो, दूदनीजीने लिखाहैकि-गौकी मूर्ति, तोडे तो-घातक दोष, लागे ॥

अब यहभी-जड स्वरूपकी, मूर्ति-तोडने वालेका आत्माको बाधकरूपकी, हुई या नहीं हुई ? ॥

तर्क-अजीइसीही पृष्ठ में, हमारी स्वामिनीजीने, लिखा हैकि-मूर्तिको, तोडने, फोडनेसँ-दोषतो लग जाय । परंतु पूजनेसँ-लाभ, न होय । जैसे मिटीकी गौको-पूजनेसँ, दुध-न मिले ॥ इसीही वास्ते जडरूप इंद्रकी मूर्तिपूजनसँ-धन, पुत्रादिक, मंगने वालेको, नहीं मिलनेका-दिखलाकेही, आये है ॥ उत्तर-है भाई दूदक-तू, और तेरी स्वामिनीजीभी, सर्वजगेंपर-एकही आंखसँ, देखनेका-सिखे-हो । परंतु यह हमारा-अंजनकी, सहयतासँ, दूसरी-आंखसँभी, थोडासा ख्याल करके-तुम लोक देखेंगे, तोभी-ठीक ही ठीक, मालूम होजायगा । क्योंकि तेरी स्वामिनीजीने-जड स्वरूपकी मूर्तिसँ,

केवल-दोषही, होनेका, मान्या है वैसे नहीं है । किंतु—स्वभकी प्राप्तिभी, मानी हुई है । इस वास्ते ही हमतुमको-दूसरी आंखसें, देखनेकी भलागण, करते है ॥ सो-खयाल पूर्वक, देखना ॥

प्रथम देखो, सत्यार्थ पृष्ठ. ७३ में-पूर्ण भद्रादिक यक्षोंकी, जड स्वरूपकी-मूर्त्तिवांसें, धन, पुत्रादिकका-लाभको, करवाती हुई दू-दनीजी साधकगणाकी सिद्धि करके, दिखलाती है या नहीं ? ॥

और सत्यार्थ पृष्ठ. ९० से-द्रौपदीजीकी, जिन प्रतिमाका-पू-जनमें, अनेक प्रकारकी जूठी कुतकों करके, पृष्ठ. ९८ में-स्वमति कल्पनासें वरका लाभके वास्ते, कामदेवकी-मूर्त्तिपूजाको, दिख-लाती हुई, यह दूंदनीजी-जड स्वरूपकी, मूर्त्तिको, वर प्राप्तिका सा-धकरूप, उहराती है या नहीं ?

फिर देखो पृष्ठ. ४० में-वज्र करण राजाने, अंगूठीमें-वामु-पूज्य, तीर्थंकरकी मूर्त्तिको, रखीथी । उस मूर्त्तिसें-लाभ, यह साध-कगणा, या हानि, यह बोधकगणा, दोनोंमेंसे-एक तो, दूंदनीजीको भी-पान्य ही, करना पडेगा । जैनेने तो-लाभ के वास्ते ही, मानी हुई है ॥

फिर देखो पृष्ठ. ३९ में-मल्लादिन कुमारने, मल्लि-कुमारीकी-मूर्त्तिको, देखके—लज्जा पाई, अदब उठाया, चित्रकारके पर—क्रोध, किया ॥

इहां परभी-जड स्वरूपकी मूर्त्तिसें, लाभ, और हानि, दोनों भी-दूंदनीजीको भी, माननी ही पडेगी ।

फिर देखो पृष्ठ. ४२ में-मित्रकी मूर्त्तिसें, प्रेम, जागता है । लडपडे तो, उसी ही मूर्त्तिसें-क्रोध, जागता है ॥

इहां परभी, जड स्वरूपकी मूर्त्तिसें-लाभ, या हानि, दूंदनी-जीको भी-पाननी ही, पडेगी ॥

अब पृष्ठ. १२४ सें—कयबलि कम्मा, के पाठसें, जिन प्र-  
तिष्ठाका पूजन-दररोज, करनेका, वीर भगवानके परम श्रावकोंका-  
हित, और—कल्याण, होनेके वास्ते, जैन सिद्धांतकारोंने, जगें जगों-  
पर—लिखा है ।

उस विषयमें, पृष्ठ. १२६ में—टीकाकार, टब्बाकार, सर्व जै-  
नाचार्योंको—निंदती हुई, दूंदनीजी—ते परम श्रावकोंकी—पाससें,  
मिथ्यात्वी—पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी—जड स्वरूपकी, मूर्त्तिका  
पूजन, दररोज, न जाने—किस लाभके वास्ते, कराती है इसबातका  
खुलासा दूंदनीने लिखा हुवा नहीं है, सो दूंदनीजीकोही, पुछ लेना॥

ऐसें जगें जगें पर लाभकी प्राप्तिसें—साधकपणा, और हा-  
निसें—बाधकपणा, गपड सपड लिखके, दिखाती है । तोभी सत्या-  
र्थ पृष्ठ. ९ में—दोनों निक्षेप, अवस्तु, कल्पना रूप—लिखती है ।  
तो क्या यहसब, अपना हाथसे—लिखी हुई, अनेक प्रकारकी मूर्त्ति-  
यां, अनेक प्रकार का—कार्यमें, साधक बाधक स्वरूपकी दूंदनीजीको  
दिखाई दिई नहीं, जो—कल्पना स्वरूपकी ही, उहराती है ?

फिर—सत्यार्थ पृष्ठ. ६१ सें—देखो, दूंदनीजीने यह लिखा है  
कि—हमने भी—बड़े बड़े पांडित, जो विशेषकर भक्ति अंगको, मुख्य  
रखते है, उन्हांसें सुना है कि—यावत्काल—ज्ञान नहीं, तावत्काल  
मूर्त्ति पूजन है । और—कई जगह, लिखा भी—देखनेमें, आया है ॥

अब इस लेखसें भी—खयाल करोकि, तीर्थकरोंकी भाक्ति कर-  
नेकी, इच्छा वाले—श्रावकोंको, जिन मूर्त्तिकी—पूजा, जैन के सिद्धां-  
तोसें सिद्धरूप, है, या नहीं ? । जब तीर्थकरोंके मूर्त्तिकी पूजा,  
जैनके सिद्धांतोंसें, दूंदनीजीके लेखसे ही—सिद्धरूप है, तो पिछे  
सत्यार्थ पृष्ठ. १२४ सें कयबलिकम्मा, के पाठमें—जिन मूर्त्तिका  
अर्थको—छोड करके, पृष्ठ. १२६ में टांकाकार, और टब्बाकार सर्व

महा पुरुषोंको-निदती हुई, यह दूढ़नी, वीर भगवानके-भक्त श्रावकोका, नित्य ( अर्थात् दर रोजके ) पूजनमें पितर, दादेयां भूतादिक की प्रतिमा, किस हेतु से पूजाती है ? । क्या वीरभगवानके ते परम श्रावको-मिथ्यात्वी पितर, दादेयां, के भक्तथें कि-तीर्थकर देवके भक्तथे ? उसका विचार करोंगे तब पानी गेरके, और-फल, फूल, चढायके, तीर्थकर देवकी-भक्ति करनेके वास्ते तीर्थकरोंकी मूर्त्तिपूजा करनेकी अपने आप सिद्ध हो जायगी । जूठी कुतकों करनेसे-क्या सिद्ध होने वाला है ? ॥

फिर भी ख्याल करोकि-द्रौपदीजी, परम श्राविकाने-जिन प्रतिमाका पूजन, फल, फूल, धूप, दीप, आदि सर्व प्रकारसे-बडा विस्तार वाला, किया है । इसी ही वास्ते-शाश्वती जिन प्रतिमाओंका, सतर भेदकी-पूजाका विस्तारसे, पूजन करनेवाला, जो समाकित दृष्टि-सूर्याभ देवता है, उनकी-उपमा देके, छेवटमें द्रौपदी के, पाठमें-नमुद्युणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आदि पाठको भी-पढनेका, दिखाया है । तो भी-विपरीतार्थको दूढ़ने वाली, दूढ़जीने अनेक प्रकारकी जूठी कुतकों करके, छे वटमें-कामदेवकी, मूर्त्तिपूजाका-संभव, दिखाया है ? ॥

परंतु-हे भाई दूढ़क, हम तेरेकोही-सलाह, पुछते है कि-वीर भगवानके, परम श्रावकोंका-नित्य कर्त्तव्यमें, (अर्थात् दररोज के कर्त्तव्यमें ) कयबलिकम्मा, के पाठार्थसें टीकाकार, और टब्बाकार-सर्व महापुरुषोंने, जिनप्रतिमाका-पूजन, करनेका, दिखाया है । और दूढ़नजीने-इसीही-कयबलिकम्मा, के पाठार्थसें पितर, दा-

१ दूढ़क जेठमलने समाकितसारमें-पाणीकी कुर लियां, करनेका अर्थ किया है परस्परका ढंग तो देखो ॥

देयां, भूतादिक की-प्रतिमाका, पूजन-दररोजके लिये, ते परम श्रावकोंको करनेका-सिद्ध करके, दिखलाया है । इसलेखसें—सिद्ध होता है कि, श्रावक नामधारी मात्रको भी-दररोजके लिये मूर्त्ति पूजा, जैन सिद्धांतोंसें-सिद्ध रूप ही है । दूढ़नीजीके-कहने मुजव, चलेगा, तब तो-पितरादिक, मिथ्यास्त्री देवोंकी-मूर्त्तिके पर, पाणी गेरके, और फल फूलादिक चढायके, दररोज-उनोंकी ही पूजा, तेरेको करनी पड़ेगी ।

अगर जो टीकाकारोंके-कहने मुजव, जिन मूर्त्तिकी-पूजा, करनेकी-मान लेवेगा, तब तीर्थकर भगवान्की-भक्तिका, लाभ-उठावेगा । इस बातमें जो तेरा न्यायमें-आवें, सो ही बात ठीक है।

हे दूढ़कभाई तू इसमें, तर्क करेगा कि-धन, पुत्रादिककी-लालचके वास्ते, हम-संसार खातेमें, सब कुछ करते हैं, हमको क्या विचार करनेका है ? जब तो तेरी बड़ी ही-भूल, होती है ।

क्यों कि धीरभगवान्के, परम श्रावकोंका-नित्य कर्त्तव्यके विषयमें ही, यह-कयबलि कम्मा, का पाठ, आता है । उसका-अर्थ, दूढ़नीजीने-जिन मूर्त्तिके बदलेमें, मिथ्यास्त्री देवजो-पितरादिक है, उनकी मूर्त्तिपूजा, करनेकी-दिखलाई है । और-धन, पुत्रादिकके, वास्ते तो-पूर्णभद्र, मोगरपाणी, आदि यक्षोंकी-पथ्यस्की मूर्त्ति, तुमरेको पूजनेके वास्ते-भलगरूपसें, दिखाई है ।

इस वास्ते इस बातका-निकर, कयबलि कम्मा, के पाठमें-कभी भी, नहीं समजना । इस बातका ख्याल-हमारे लेखसें, और दूढ़नीजीके-लेखसें, अच्छी तरावें कालेना । हम वारंवार कहांतक लिखेंगे ? ॥

ख्याल करनेका यह है कि-जो तुम ढूँढको, सनातन मतका दावाकरनेकी—इच्छा, रखते हो, तब तो वीरभगवान्के—ते उत्तम श्रावकोंकी, दररोजकी करनीके मुजब-मूर्त्तिपूजा, तुमेरे-गलेमें, अवश्य भेव पड़ेगी ? ।

ढूँढनीजीके—कहने मुजब श्रावक धर्ममें प्रवृत्ति करनेकी इच्छा रखोंगे तब तो, मिथ्यात्वी देव जो-पितरादिक है, उनकी-दररोज सेवा करनेमें, तत्पर होना पड़ेगा । अगर जो-टीका करोंके, कहने मुजब-अर्थ कबूल करके श्रावक धर्ममें प्रवृत्ति करोंगे, तब-तीर्थकर देवकी भाक्तिका, लाभ दररोज मिलायोंगे । परंतु मूर्त्ति पूजाको अंगीकार किये बिना, तुम है सो, कोइ भी प्रकारके-ढंग, धडेमें, नगीने जावोंगे । यह बात तो-ढूँढनीजी के लेखमें भी, चोकसपणे सें-ही सिद्ध, हो चुकी है ॥

और द्रौपदीजीकी-जिन प्रतिमाका पूजनमें, शास्वती-जिन प्रतिमाओंका विस्तारसें पूजन करने वाला, जो समाकिती सूर्याभदेव है, उनकी-उपमा, दीई है । और द्रौपदीजीने मूर्त्तिके आगे नमुष्ट्युगां, का पाठ भी-पढा हुवा है ।

और टीका कारोंने-जिनेश्वर देवकी, मूर्त्तिका ही-अर्थ, किया हुवा है । तो पिछे ढूँढनीजी-कामदेवकी, मूर्त्तिका-अर्थ, करके, उनके आगे-नमुष्ट्युगां, का पाठ-किस प्रमाणसें, पढाती है ? ।

क्योंकि नमुष्ट्युगां, के पाठमें तो, केवल वीतराग देवकी ही-स्तुति है, कुछ-कामदेवकी-स्तुति, नहीं है । जो ढूँढनीजीकी कुतर्क, मान्य हो जायगी ? । इस वास्ते-पाणी, मेरके, और-फल, फूल, चढायके भी, जो-श्रावक के विषयमें, मूर्त्तिपूजाका सिद्धांतोंमे-पाठ,

आता है सोतो श्रावकोंका-भवोभवमें, हित, और कल्याण के छिये जिनेश्वर देवकी-भक्ति, करनेके वास्ते ही-लिखा गया है । नहीं के मिथ्यात्वी देव जो-पितर, दादेयां, भूतादिक है, उनोंकी-निरंतर भक्तिके, वास्ते-आता है । किस वास्ते भव्य जीवोंको-जिन धर्मसें, भ्रष्ट, करते हो ? अपना जो-कल्याण, होने वाला है, सोतो-वीतराग देवकी-सेवा, भक्तिसें ही, होने वाला है ? । कुछ मिथ्यात्वी पितरादिककी-सेवा, भक्तिसें, नहीं होने वाला है ॥

फिरदेखो-सत्यार्थ पृष्ठ. ७७ में-उवाई सूत्रका पाठ-बह्वे अरिहंतचेइय, इसपाठका, अर्थ-बहुत जिनमंदिर, ऐसा दूढ़नी-जीनेभी-मान्यही किया है, मात्र इसी-अर्थका, प्रकाशक-आयार वंतचेइय, के पाठसे-दूसरा पाठ आता है, उनको-प्रक्षेपरूप ठहरायके, लोप करनेका-प्रयत्न, कियाहै ! परंतु इहांपर दोनोंप्रकारका पाठमें-चेइय, शब्दसें-जिनमंदिरोंका, अर्थकीसिद्धि, दुपटपणेसें होरही है ! देखो इसका विचार-नेत्रांजनके प्रथम भागका पृष्ठ १०३ में अब इसमें-फिरभी, ल्यालकरोकि-इस उवाई सूत्रके-दोनों प्रकारके, पाठमें-चेइय, शब्दसें, जिनमंदिरोंकी-बहुलता, और श्रावकोंकीभी-बहुलता, दिखाके ही, चंपानगरीकी-शोभामें, अधिकता दिखाई है । तोभी विपरीतार्थको दूढ़नेवाली-दूढ़नीजीने, सत्यार्थ पृष्ठ, ७८—७९ में-इसी सूत्रसें, दिखाया हुवा-अंबड परित्राजक, परम श्रावकका-“अरिहंत चेइय” के पाठमें, अरिहंतकी-प्रतिमाका, प्रगट अर्थको-छोडकरके, उनका अर्थ-सम्यक्व्रत, वा-अनुव्रतादिक धर्मरूप, वे संबधका-करके, दिखाया है ॥

इसमें विचार करनेका यह है कि-ने चंपानगरीके जिनमंदिरों-

को तो, ते परम श्रावकोने ही-बनाये होंगे । और उसमें—स्थापित कीई हुई, जिन मूर्त्तिकी पूजा—फल, फूलादिकसँ, ते परम श्रावकोने ही—किई होंगी । तोपिछे दूहनीजीको-वीतराग देवसँ, क्यों-वैरभाव, हो गया । जो जगें जगें विपरीत—अर्थ, करके आप वीतराग देवकी, भक्तिसँ—भ्रष्ट होती हुई, श्रावकोंकोभी—तीर्थकरोंकी भक्तिका लाभसँ—भ्रष्ट करनेका, उद्यम-कर रही है ?

मेरा इसलेखपर, भोले श्रावकोंको-शंका, उत्पन्न होगीकि-दूहनीजीका लेखमें, एक दो जगें पर ही-फरक,मालूम होता है । तोपिछे जगें जगें पर-विपरीत है, ऐसा किस हेतुसँ लिखदिखाया होगा । इसबातकी-शंका, दूर होनेके लिये, कितनीक-सूचनाओ, करके दिखाता हूं, सो इस-नेत्रांजनका, प्रथमके भागसँ-विचार, करलेना ! हम विशेष विचार न लिखेंगे ॥

फिरभी देखो सत्यार्थ पृष्ठ. ८७ । ८८ में-आनंद श्रावकके-अधिकारमें, यही-अरिहंत चैड्य, के पाठसँ जिनमूर्त्तिका अर्थको लोप, करनेका,प्रयत्नकिया है । देखो इसकी समीक्षा-नेत्रांजनका, पृष्ठ. १०८ । १०९ में ॥

पुनः देखो सत्यार्थ पृष्ठ, १०३।१०६ तक-जंघाचाराणादि मुनि-ओ, नंदीश्वरादिक द्वीपोंमें, और इस भरत क्षेत्रमें भी-शाश्वती, तथा अशाश्वती, जिन प्रतिओंको-बंदना, नमस्कार, करनेको-फिरते है, उहां-चैड्याइं वंदइ, नमंस्सइ, के पाठसँ, जिन मूर्त्तिको बंदना, नमस्कार, करनेका-सिद्धरूप, अर्थको छोड करके-उहां नंदीश्वर द्वीपादिकमें ज्ञानका ढेरकी, स्तुति, करनेका-अर्थ, करके दिखलाती है । देखो इनकी समीक्षा-नेत्रांजनके प्रथम भागका पृष्ठ. ११७ सँ १२१ तक, क्योंकि-मुनियोंको भी, जिन मूर्त्तिको



बंदना, नमस्कार, करनेकी जरूर ही है, मात्र द्रव्य पूजा करनेकी, अज्ञा नहीं है ॥

फिर भी देखो सत्यार्थ पृष्ठ. १०९ सें-चमरेंद्रके पाठमें-त्रण शरणमेंसे दूसरा-शरण अरिहंत चेइयाणि, के पाठसे-अरिहंतकी मूर्त्तिका, शरण-लेनेका, दिखाया है । उसमें अरिहंतकी-मूर्त्तिका, अर्थको-छोडनेके लिये, अरिहंत पद, का नवीन प्रकारसे अर्थ करके, दिखाती है । देखो इसकी समीक्षा-नेत्रांजनके प्रथम भाग-का-पृष्ठ. १२१ सें १२५ तक ॥

अब इसमें विशेष-ख्याल करनेका, यह है कि-अरिहंत चेइय, का पाठ-जिस जिस जगेपर सिद्धांतमें आया है, उस उस जगेपर आज तकके-टीकाकार, टब्चाकार, सर्व महा पुरुषोंने अरिहंतकी प्रतिभा ( मूर्त्ति ) का ही अर्थ, प्रगटपणे-लिखा हुआ है, तो भी दूँढनीजाने अपनी ही पांडितानीपणा प्रगट करके उवाइ सूत्रके पाठमें-बहुवे अरिहंत चेइय, है उस पाठके विषयमें, जिन मंदिरोंका-अर्थ, करके भी, प्रक्षेपरूप, ठहरानेका-जूठा, प्रयत्न किया ॥

और-अंबडजीके, अधिकारमें इसीही-अरिहंत चेइय का अर्थ, सम्यक्चक्रत, वा, अनुव्रतादिक धर्म, का करके-दिखाया ॥

और-आनंद श्रावकके, अधिकारमें इसीही-अरिहंत चेइय, के पाठको-लोप, करनेका-प्रयत्न किया ॥

और जंघाचारण मुनियोके-विषयमें इसी ही-चेइय, के पाठका-अर्थमें, ज्ञानका-ढेरको, बतलाया ॥

और—चमरेंद्र के, विषयमें—इसही—अरिहंत चेइय, का अर्थ— अरिहंत पद, करके दिखलाया है ॥

हमको विचार यही आता है कि—वीतराग देवकी, मूर्त्तियां—हजारो वर्षोंसे, जग जाहिरपणे—दिख रहीयां है, और जैन सिद्धांतोंमें—जगे जगे पर, उनकी सिद्धिका, पाठ भी—लिखा गया है, तो भी—विशेष धर्मको, दूँढनेवाले—हमारे दूँढक भाईभा, अपना ही तरण तारण—तीर्थकरोंकी, मूर्त्तियां के—वैती, बनके, सनातन धर्मका—शिखर पर, बैठनेको जाते है । परंतु हम उनोंको—तीर्थकरोंके, भक्त मात्र ही—किस प्रकारसे, गिनेंगे ? ॥

॥ तर्क—अजी, सत्यार्थ—पृष्ठ. ११८ में—हमारी दूँढनीजीने, मूर्त्तिपूजनमें—षट् काया रंभका, दोष,दिखाके—पृष्ठ. १२०में—लिखा है कि—दूसरा बडा दोष—मिथ्यात्वका, है, उसमें हेतु यह दिखाया है कि—जडको, चेतन मानके, मस्तक—जुकाना, मिथ्या है ॥

इस लेखसे—हमारी दूँढनीजीने, यह सिद्ध करके—दिखलाया है, कि—श्रावकोंको कोई भी प्रकारकी मूर्त्तिपूजा करनी सो बडा—मिथ्यात्व है, और षट् कायारंभका—कारण, होनेसे, हम विशेष धर्मकी दूँढ करनेवाले—दूँढक धर्मी श्रावक है सो, कोई भी प्रकारकी मूर्त्तिकी पूजा करें तो—संसारमें, डुब जावें, क्यों कि—मिथ्यात्व है सो संसारमें डुबाता है इस वास्ते हम दूँढको जिन मूर्त्तिकी—पूजा भी, नहीं करते है ॥

इसमें हमारा—विचार, यह है कि—वीतरागी मूर्त्तिकी—पूजा करनी, सोतो तीर्थकरोंकी—भक्तिके वास्ते है । और इस प्रकारसे—भक्ति करनेका, गणधरादिक महा पुरुषोंने—जगें जगेंपर लिखके भी दिखाया है ॥

परंतु-सत्यार्थ पृष्ठ. ७१ में-स्वास मिथ्यात्वी देव कि,जो-पूर्णभद्र यक्ष, मोगरपाणी यक्ष, ऊंवर यक्षादिकोंको-पथथरसें बनी हुई, जडरूप-मूर्तियांके आगे, हमारे दूंदक श्रावक भाईयांके पाससें मस्तकको, जुकावती हुई, और उस जडरूप मूर्तियांकी षट् का-याका आरंभसें-पूजाको भी, करावती हुई, और संसारकी वृद्धिका हेतु, जो-धन, पुत्रादिक है, उनको भी-दिवावती हुई, यह दूंदनीजी हमारे भोले दूंदक श्रावक भाईयांको, न जाने किस खड्डेमें-गेरेगी ? हमको तो उस बातका ही-बड़ा विचार, हो रहा है ॥

और सत्यार्थ पृष्ठ. १२४ से-कयबलिकम्मा,का पाठमें-अनेक प्रकारका, विपरीत विचारको-करती हुई, और पृष्ठ. १२६ में-टीकाकार,टब्बाकारोंने-किया हुआ, जिनप्रतिमा पूजनका-अर्थको, निंदती हुई, और ते वीरभगवानके परमश्रावकोंको-नित्यकर्तव्यरूप जिनप्रतिमाका पूजनको-छुडवाती हुई, छेवटमें मिथ्यात्वी-पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी-जडरूप, पथथरकी-प्रतिमाका, दररोज पूजनको-करावती हुई, यह दूंदनीजी, ते परमश्रावकोंको, नजाने किस-गतिमें-डालनेका, विचार-करेगी ? अथवा दूंदनीही आप-किसगति-में, जावेगी ? उसबातकाभी-हमको, बड़ा-विचारही, हो रहा है ॥

क्योंकि जिनप्रतिमाका पूजनकरनेवाले—श्रावकोंको, ओर उपदेश करनेवाले—गणधरादिक, सर्वमहापुरुषोंकोभी, दूंदनीजीने-सत्यार्थ पृष्ठ. १४७ में, और १४९ में—अनंत संसारीही लिखमारें है । देखो इसकी समीक्षा-नेत्रांजनके, प्रथमभागका-पृष्ठ. १५७ से-१६७ तक ॥ परंतु जैनसिद्धांतोंमें-भक्तिसेंजिन प्रतिमा, पूजनका-फल, हित, सुख, और छेवटमें-मोक्षकी प्राप्ति होने तकका, श्रीरायपसेनी सूत्रमें, गणधर महाराजाओने—हियाए सुहाए नि-

स्सेसाए अनुगामित्ताए भविस्सइ । के पाठसे-प्रगट्पणे, दि-  
खाया हुवा है ॥

और द्रौपदीजीने भी-इसी ही, फलकी-प्राप्ति के, वास्ते-जिन  
प्रतिमाको, पूजा है । इस लिये ही-सूर्याभ देवकी, उमा-दीई है ॥

परंतु-वीर भगवानके, परम श्रावकोंको-दररोजकी सेवामें  
पितरादिकोंकी-मूर्त्तिपूजा करनेका पाठ, किसी भी जैनाचार्यने-लि-  
खके, दिखाया हुआ नहीं है ॥

तैसेही श्वेतांबर, दिगंबर, संप्रदायके-लाखो श्रावकोंमेंसे,  
किसी भी श्रावककी-व्यक्ति; होती हुई, देखनेमें नहीं आती है ।  
तो पिछे यह दूढनीजी ते परम श्रावकोंकी पाससे-पितरादिक,  
मिथ्यात्वी देवोंकी-मूर्त्तियां, दररोज-किस हेतुसे, पूजाती है ? ।  
क्योंकि-जो परम श्रावको होते है सो, तो, जिनेश्वर देवकी-मूर्त्तिके  
बिना, किसीको-नमस्कार मात्र भी, करनेकी-इच्छा, नहीं रखते  
है । देखो सत्यार्थ पृष्ठ. ४५ में-प्रमाण, दूढनीजीने ही लिखा है  
कि-वज्रकरणने, अंगूठीमें-मूर्त्ति, कराई ॥

इस लेखसे-खयाल करोंकि, परम सम्यक्क धर्मका-पालन,  
करता हुआ-ते वज्रकरण राजा, अपना-स्वामी राजाको भी,  
नमस्कार करनेकी वखते, अंगूठीमें-रखी हुई वारमा तीर्थकर-श्री  
वामुपूज्य, स्वामीकी मूर्त्तिका ही-दर्शन करता रहा । परंतु ते सिं-  
होदर नामका स्वामी राजाको भी, नमस्कार-नहीं किया । तो  
पिछे-वीर भगवानके ही ते परम श्रावको-पितरादिक, मिथ्यात्वी  
देवोंकी-मूर्त्तिपूजा, दररोज-कैपें करेंगे ? ॥

बीतरागी मूर्त्तिके साथ दूढनीजीकी धिठाई तो देखोकि-एक

जगेंपर तो—ते परम श्रावकोंको, मिथ्यात्वी पितरादिकोंकी—मूर्त्तिको, दररोज, पूजाती है । और सत्यार्थ पृष्ठ. ७३ में—धन, पुत्रादिककी लालच देके, स्वार्थकी सिद्धि होनेका दिखाती हुई, यक्षादिकोंकी भी—मूर्त्तिको, पूजाती है । और सत्यार्थ पृष्ठ. ६७ में—लिखती है कि—मूर्त्तिको धरके, उसमें—श्रुति, लगानी नहीं चाहिये । कैसी २ अपूर्व—चातुरी, करके, दिखलाती है । उसका विचार, पाठकवर्ग—आप ही, करलेवेंगे । हम बारंबार क्या लिखके दिखावेंगे ?

फिर भी देखो—शत्यार्थ पृष्ठ. ३४ ओली ३ से, दुंदनीजीने—लिखा है कि—स्त्रीकी मूर्त्तियांको, देखके तो—सबी कामियांका, काम—जागता, होगा ।

और पृष्ठ. ४२ ओ. १० से. लिखा है कि—हां हां हम भी मानते है कि—मित्रकी, मूर्त्तिको—देखके, प्रेम, जागता है । यदि उसी मित्रसे—लड पडे तो, उसी—मूर्त्तिको, देखके—क्रोध, जागता है ।

इस लेखसे—हमको विचार, यह आता है कि—मित्रता रखे जब तक तो—मित्रकी, मूर्त्तिसे—प्रेम, और—लड पडे तो, उसी ही, मूर्त्तिसे द्वेष, तो क्या—हमारे दुंदक भाइयो, महा मिथ्यात्वके साथ—गाढ प्रीति करके, ते परम श्रावकोंके दररोजके ऋत्तव्यमें, मिथ्यात्वी—पितर, दादियां, भूतादिकका मूर्त्तिपूजन । और तैसे ही धन पुत्रादिककी लालच दिखाके भी, मिथ्यात्वी काम देवादिक, और पूर्णभद्र यक्षादिक—देवोंकी, मूर्त्तिका—पूजन, करानेको—उद्यत, हुये होंगे ?

ऐसा—अनुमान, हर किलीके—हृदयमें भी, आये बिना न रहेगा, क्यों कि—समकितकी प्राप्ति—हेतु भूत, तीर्थकरोंकी—भक्तिसे, दूर होके, और—गुप्तपणे, तीर्थकरोंके—साथ, हृदयमें—द्वेषको, धारण

करके । और-सत्य स्वरूपवाले, तीर्थकरोंकी, मूर्त्तिपूजाके-पाठोंका, तदन-विपरीतार्थ, करते हुये ।

और-तीर्थकरोंके, भक्तोंको-पाषाणोपासक, पहाड पूज कोका, विशेषण-देके, उपहास्यको करते हुये । और तीर्थकरोंके, भक्तोंको ही-मिथ्यात्वी, अनंत-संसारी, ठहरानेका-प्रयत्न, करते हुये ।

और छेवटमें-उनके, उपदेशकोंको भी-अनंत संसारी ही, ठहरानेका-प्रयत्न, किया है ।

तो अब ख्याल करोकि-पितरादिक, जो मिथ्यात्वी-देवताओ है, उनोंकी-पथरसें, बनी हुई-मूर्त्तियां है, उनकी-दररोज, पूजा, करनेकी-सिद्धि, करते हुये-हमारे वृद्धकभाईयो, तीर्थकर भगवानसे-गुप्तपणे, हृदयमें-द्वेषभावको, धारण करनेवाले--सिद्ध, होते हैं या नहीं ?

इस विषयमें--योग्याऽयोग्यका, विचार--त्राचकवर्ग ही, कर लेवेंगे ॥

प्रथम हमको-जिस वृद्धकभाईने, ऐसा-कहाथा, कि-मूर्त्तियां पर, पाणी-गेरके, और-फल, फूल, चढायके-पाप बंधनमें, पडना-ऐसी बात, हम-नहीं, चाहते है ।

उनको हम-सूचना, करते है कि-हे वृद्धकभाई, जो तू तेरी स्वामिनी-पार्वतीजीके, लेखसें-धर्म मार्गमें, प्रवृत्ति करनेका-विचार करेगा, तब तो-मिथ्यात्वी जो-पितरादिक-देवो है, उनोंकी मूर्त्तिपूजा-दररोज, वीरभगवानके-श्रावकोंकी तरां, तेरेको भी करनी पडेगी ? ।

क्यों कि वृद्धनीजीने-कयबलि कम्मा, के पाठसें, ते प-

रम श्रावकोंके-नित्य कर्त्तव्यमें, तीर्थकरोंकी-भक्ति करनेका, छुड-वायके-ते परम श्रावकोंकी पासमें भी, दररोज-पितरादिकोंकी ही मूर्त्ति, पूजाई है ।

अगर जो तू-जैन सिद्धांतकारोंके, कहने मुजब-शुद्ध जैन धर्मकी प्राप्तिकी इछासं, चलनेका-इरादा, करेगा, तबतो सिद्धांतकारोंने-दिखाई हुई, तीर्थकरोंकी-भक्तिपूर्वक मूर्त्तिपूजासं, तू तेरा भवोभवका-हितकी ही, प्राप्ति कर लेवेगा ।

क्यों कि जैन ग्रंथकारोंने तो-ते परम श्रावकोंकी, दररोजकी-पूजामें, तीर्थकरोंकी ही-पूर्त्तिपूजा, कही हुई है ।

चाहें तो तू-तेरी स्वामिनीजीका, सत्यार्थ पृष्ठ. १२६ में से-अपने आप,विचार करले, तेरेको यथा योग्य-मालूम,हो जायगा ॥

फिर भी-सत्यार्थ पृष्ठ. ३४ का लेखसं, खपाल करोकि, काम विकारी स्त्रीकी, मूर्त्तिको-देखनेसें, कामी पुरुषोंको काम, जागे । एसा दूढ़नीजीने लिखा ॥

तो अब जो-मिथ्यात्वी लोको होंगे, उन्होको ही मिथ्यात्वी पितर, दादेयां, यक्षादिक-देवोंको, मूर्त्तियांको-देखनेसे, प्रेम उत्पन्न होनेका । और उनोंकी मूर्त्तियांको-पूजन, करनेकी-सिद्धि, करनेका-नियम, स्वभाविकपणे ही-लागु, पडेगा ॥

और-जिस भव्यात्मको, महा मिथ्यात्वका-उपशम, हुवा होगा, और समाकितकी प्राप्ति-कर लेनेकी, अभिरुची-उत्पन्न हुई होगी, एसा निर्मल शांत चित्त वृत्ति वाला-भव्यात्माकोतो, जगतका उद्धार करने वाले-तीर्थकरोंकी, परम शांत मूर्त्तिको, देखनेकी साथ ही हृदयमेंसे-अमृतसका जरणा झरेगा ? इसमें कोई भी प्रकारसं शंकाका स्थान नहीं है ॥

अब आगे पाठक गणको, अधिक वाचनका-कंटाळासं, हठाता

हुवा, मात्र-दो शब्दोंमें ही, उन्होका ध्यानको खेचताहुं कि-जिस महा पुरुषोंका, नाम मात्रका-उच्चारण, करनेसे ही-बंदन, नमन, करके-हमारा पापका प्रलय, करनेको-चाहते होंगे, उनोंकी-विशेष बोधदायक अलौकिक, भव्य मूर्तियांका-दर्शन, नमन, पूजनसें भी, हमारा-कठोर हृदयको, द्रावित-किये बिना,

और आत्माको सम्यक्क धर्ममें-स्थापित किये बिना, हमलोक विशेष धर्मकी प्राप्ति, तीन कालमें भी-न मिला सकेंगे । यह हमारा कथन चारो तरफकी दृष्टिसें, हमारा सामान्य मात्रका भी लेखसें देखने वाले-सज्जन पुरुषोंको, योग्य ही-मालूम हो जायगा ।

और ते सज्जन पुरुषो, हमारा-स्वच्छ हृदयका लेखको, सफल करते हुये, तीर्थकरोंकी-भाक्तिभावका, लाभको-अवश्यमेव, उठावेंगे ? । और हमारा-अनुमोदनका, लाभकी आशाको, सफल करेंगे ? । इत्यलं विस्तरेण ॥

---

॥ इति दृढक भक्त आश्रित संवाद पूर्वक त्रणे पार्वतीका दूसरा स्थापना निक्षेपका स्वरूप ॥

---

अब दृढक भक्त आश्रित-त्रणे पार्वतीजीका, तिसरा-द्रव्य निक्षेपका, स्वरूप लिखते है ॥

मूर्तिपूजक—हे भाइ दृढक, देखकि, शिव पार्वतीजीका-द्रव्य निक्षेप, यहया कि-भाव निक्षेपका विषयभूत योवनत्वकी, पूर्व अवस्थामें, अथवा-अपर अवस्थामें, उनके-गुणोंका वर्णन, पांडितोंको संतुष्ट द्रव्यका-अर्पण करके भी, सो शिवका भक्त-श्रवण करता हुवा, और अपना-उपादेय वस्तुके संबंधपणे, मानता हुवा, अपना लाभ, या-हानिको भी, मानता रहा था ॥



और वेश्या पार्वतीका-द्रव्य निक्षेप, यह था कि-कामविकार-को जगाने वाली, भाव निक्षेपका विषयभूत योवनत्वकी-पूर्व अव-स्थारूप बालिकामें था । अथवा अपर अवस्था मृतक रूपकी अवस्था-मेंथा । उनके गुणोंका, वर्णन-श्रवण करता हुवा, और अपना-उपा-देय वस्तुके संबंधपणे, मानता हुवा, सो कामी पुरुष, अपना-लाभ था—हानिको भी, मानता रहाथा ।

और दूँदनी पार्वतीजीका-द्रव्य निक्षेप, यह था कि-शिक्षा ले-नेका भाव करके आई हुई, अपनी गुरुनीजीके पास पठन पाठनको करतीथी ते पूर्वकी अवस्थामें । अथवा जो दूँदनी पार्वतीजी उपदे-शादिक करतीथी, और ग्रंथादिकोंकी रचना भी करतीथी, उनकी समाप्ति हुई सुनते है, ऐसी अपर अवस्थामें—द्रव्य निक्षेप, किया गया था ॥

परंतु—ते शिवभक्तने, और ते कामी पुरुषने तो, दूँदनी पार्वतीजीका-इस द्रव्य निक्षेपका विषयको, ज्ञेय वस्तुके संबंधपणे मानके, नतो अपना लाभ, और नतो अपनी-हानीको, कुछ मानाथा ॥

परंतु-हे भाई दूँदक, में तेरेको, पुछता हुं कि-१ शिव पार्व-तीजी । २ वेश्या पार्वती । और ३ दूँदनी पार्वतीजी । यह तीनों पार्वतीका—द्रव्य निक्षेपकी, वार्त्ताको-श्रवण करके, किस पार्व-तीका द्रव्य निक्षेपका विषयसे-तूं अपना लाभ, और अपनी हा-निको, मानेगा ॥

क्योंकि-वेश्यापार्वतीका, द्रव्यनिक्षेपसे-लाभ, कामी पुरुषको ही होनेवालाथा । और हानिभी, उसीकोही हुई है ॥

और शिवपार्वतीजीका, द्रव्यनिक्षेपसे-लाभ, शिवभक्तकोही प्राप्त होनेवालाथा । और हानिभी, उसीकोही हुई है ॥

परंतु हे भाई दूढ़क, दूढ़नी पावित्रीजीका, द्रव्यनिक्षेपसें-लाभ, या हानि, क्या तेरंको मान्य नहीं करना पडेगा ? ।

तो पिछे-अपना उपादेय, वस्तु संबंधीका-द्रव्यनिक्षेपभी निरर्थक पणे, कैसें मान्या जायगा ? जैसेंकि भविष्य कालमें-अमृत फलको देने वाला, कल्पवृक्षका-अंकुराको, पाणीसें सिंचन करके उनकी रक्षा कौन पुरुष, न करेगा ? ।

अथवा अमृतफलको देता हुवा, कल्पवृक्षका-नाश, होनेसें, किसका चित्तमें-दुःख, उत्पन्न-न होगा ? ।

तेसेही-तीर्थकर भगवानकी, बालकरूप पूर्व अवस्थाकोभी, हमारा कल्याणकी करनेवाली जानके, उनको भक्ति करनेको हम-क्यों न चाहेगे ? ।

और हमारा-सर्वस्वका नाश, मानते हुये, तीर्थकरोंका-मृतक शरीररूप अपरअवस्थाकीभी-भक्ति करनेको, क्यों न चाहेगे ?

और उनोंके-दुःखोंसें दुःखित, सुखोंसें चित्तमें सुखीभी, क्यों न होंगे ? ।

इस वास्ते तीर्थकरोंका-द्रव्यनिक्षेपकोभी, सार्थकरूपही मानते है । परंतु निरर्थक स्वरूपका, नहीं मानते है ।

यह निक्षेपके विषयमें, दूढ़नीजीकी-मतिकहाही, विपर्याप्त हुआ है, इस वास्ते-त्रण निक्षेपको, निरर्थक रूपसें, लिख दीखाती है ? ।

\*जब हमारे दूढ़क भाईयो-द्रव्यनिक्षेप, निरर्थकही कहते है, तो पिछे-दीक्षा लेने वालाका, और साधुके-मुडदाका, ठाठमाठसें-वरघोडा, और दूशाला डालके, हजारो रूपैयाका-बिगाडा, किसवास्ते करते है ? डालदेनेकी वस्तुका-आदर, कौन करता है ?

परंतु अपनी अपनी योग्यता मुजब, सर्व वस्तुका-चार चार निक्षेप, सार्थक रूप ही मानते है, उसमें भी-परमोपादेय, वस्तुके तो-चारो निक्षेपको, परमोपादेयसे ही मानते है ।

परंतु-चार निक्षेप,कोइ भी प्रकारसे-निरर्थक स्वरूपका,नहीं है।

इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ अब दूँडक भक्ताश्रित-त्रणे पार्वतीका-चतुर्थ-भाव निक्षेपका, स्वरूप लिखते है ॥

देख भाई दूँडक-साक्षात् स्वरूपसे, प्रगटपणे-१ शिव पार्वतीजी । २ वेश्या पार्वती । और ३ दूँडनी पार्वतीजी । विद्यमान होवे तब ही ते-त्रणे वस्तुओ, अपना अपना स्वरूपसे-भाव निक्षेपका, विषय स्वरूपकी, कही जाती है ।

परंतु १ शिवभक्त हैं सो तो, शिव पार्वतीजीको ही-देखता हुवा, भक्तिके वस होके-मोहित, हो जायगा ? । २ कामी पुरुष है सो तो, वेश्या पार्वतीको ही-देखता हुवा कामके वस होके-मोहित, हो जायगा ? । तैसे ही ३ दूँडक मतका भक्तको, दूँडनी पार्वतीजीको ही-देखके, भक्तिके वस होके-मोहित, होना ही चाहिये ? ३ ॥

क्योंकि-१ शिवभक्तथा सो-पार्वतीजी, ऐसा-नाम मात्रका, उच्चारण करता हुवा । अथवा किसीसे-श्रवण करता हुवाभी, अपनी श्रुति, शिवपार्वतीजीकी तरफही-लगाता हुवा, बंदना, नमस्कार करके-अपना आत्मानंदमें, मग्नरूपही, होजाताथा १ । और विशेष प्रकारसे-बोधको करानेवाली, शिवपार्वतीजीकी-मूर्तिको, देखके तो बडाही हर्षित होके, अपना-मस्तकको, झुकाता हुवा, और

दूसरेकीभी तें-मूर्त्तिको, दिखाता हुवा, और उनोंकी पाससें-मस्तक, मुकाने कीभी-इछा, करता रहाथा २। और ते शिवभक्त, शिवपार्वती-जीकी-पूर्व अपर अवस्थाका, इतिहास, पंडितोंको संतुष्ट द्रव्यको, अर्पण करकेभी-श्रवण, करता रहाथा ३। तो अब साक्षात्पणे-शिवपार्वतीजीका, दर्शन करता हुवा—भक्तिके वस होके, मोहित हो जावे, इसमें क्या आश्चर्य जैसा है ? अपितु कोईभी आश्चर्य जैसा नहीं है ४ ॥

अब देखो २ कामी पुरुष-पार्वती, ऐसा नाम मात्रका-श्रवण करता हुवा, वेश्या पार्वतीकी तरफ ही-अपना चित्तको, लगा देताथा ?। और खास वेश्या पार्वतीकी, मूर्त्तिको-देखके, उसमें मोहित हो जावे, उसमें क्या आश्चर्यकी बात है ? २। तैसेहि वह कामीपुरुष, वेश्या पार्वतीकी—पूर्व अपर अवस्थाका, वर्णन-सुनके भी, मस्त ही हो जाताथा ३। तो अब साक्षात्, वेश्या पार्वतीको-देखाता हुवा, कामके वस होके, उसमें-मोहित हो जावे, इसमें क्या आश्चर्यकी बात है ? ४ ॥

अब देख भाई दूदक, तूभी, दूदनी साध्वी पार्वतीजीका-चारो निक्षेपको भी-उपादेयपणे ही, अंगीकार, कर रहा है। क्योंकि शिव पार्वतीजी के-हिसाबसें, दूदनीजीमें-पार्वती, नाम है सो, दूदनीजीके मानने मुगब भी-नाम निक्षेप ही, ठहर चुका है। और दूदनीजीने-निरर्थक भी, माना है। तो अब दूदनी पार्वतीजीके नाम मात्रसें, किसी पुरुषने यत् किंचित्पणे, अथवा अधिकपणे-अवज्ञा कीई, अथवा लिखी, तो, भक्तजनोंको—दुःख माननेकी, क्या आवश्यकता रहेगी ?

परंतु हे दूदक भाईओ ! तुमतो दुःख मानतेही हो। जैसेकि-सम्यक्कश्लयोद्धारमें, गतरूप जेठमल दूदकके—नामसें, किंचित्

भात्रकी अर्चनसँ दुःख भासाथा । ती अब-नाम निक्षेप, सार्थक हुवाकि-निरर्थक ? सो इहाँपर थोडासा फाँम करके, देखी ?। यहती दूदनीजीका-नाम निक्षेप, हुवा ॥ १ ॥

अब दूसरा-स्थापना निक्षेपको, देखोकि-शिव और पार्वती-जीके जैसे, दूदनी पार्वतीजीकी साथ-बदाभास पुरुषकी-मूर्तिको, दाखल कीई होवैतो, क्या भक्तजनोंको-दुःख, न होगा ? हमतो इस बातमें, यह कहतेहैकि-जैन धर्मको, नाम मात्रसे धारण करने वाले, सर्व पुरुष मात्रकोही-दुःख, होजायगा, तोपिछे खास उनके भक्त जनोंको-दुःख, होजानेमें क्या आश्चर्य है ? तो अब विचार करे-कि-स्थापना निक्षेप, सार्थक हुवाकि निरर्थक ?।।

अब इहाँपर यत्किंचित् सूचनाओ, यह हैकि-जैन धर्मका सनातनपणेसँ दावा करने वाले होके, १ टीकाकार, टब्बाकार बगैर-सर्व महान् महान् आचार्योंका, अर्थकी निंदाकरते है सो । और २ तीर्थकर भगवानकी परम पवित्र, शांत, और भव्य-मूर्तिको, पथर, पहाड आदि-निध वचनसँ, लिखते है सो । और ३ परम श्राविका-द्रौपदीजीका, जिनपूजनको-छुडवायके, काम देवकी मूर्त्तिपूजाकी-सिद्धि करनेका, प्रयत्न करते है सो । और ४ जेघाचारणादि मुनियोंका, जिनमूर्त्तिके-वदनमें, ज्ञानका ढेरको-बतलाते है सो। और ५ चमरेंद्रका पाठसँ, जिनमूर्त्तिका शरणमें-अरिहतपदका, नवीन प्रकारसँ-अर्थ करके, बतलाते हैं सो । और ६ वीर भगवानके-परमश्रावकोका, नित्य पूजनरूप-जिनप्रतिमाका, लोपकरके-पितर, दादियाँ, भूतादिकोंकी, मूर्त्तिपूजाकी-सिद्धि करके, दिखलाते है सो । और ७ यक्षादिक-देवोंकी, पथरकी-मूर्त्तिपूजासँ, स्वार्थकी सिद्धिमानने वाले है सो । सनातन जैनधर्मा, अथवा तीर्थकर देवके-भ-

क्त, कहे जावेंगेकि-सर्वथा प्रकारसें, विपरीत विचारवाले-कहे जावेंगे ? । सो हमारा, और दूढ़नी पार्वतीजीका-लेखको, मिलाकर-के-विचार, करलेना । यहतो दूढ़नीजीके-स्थापना निक्षेपका, विचार हुवा ॥ २ ॥

अब दूढ़नी पार्वतीजीका तिसरा-द्रव्य निक्षेप, देखोकि-निर्दोषरूप, दीक्षा लेनेकी-पूर्व अवस्थाको, शीलभंगादिकका कोई पुरुष-जूठा ही, कलंक-दे देवे ।

और निर्मल-चारित्रिका पालन किये बाद, गत प्राणका शरीरकी-मिट्टीका, खराबा करनेकी-प्रवृत्ति, कोई पुरुष करेगा तो, क्या उनके भक्त जनोंका-चित्तको, खेद, उत्पन्न-न होगा ? ।

अथवा ते पूर्व अवस्थासें हर्ष, और अपर अवस्थासें-दिलगीरीपणा, उनके भक्त जनोंको- न होगा ? । जब ते-द्रव्य निक्षेपका विषयवाली, दोनो प्रकारकी-अवस्थासें, हर्ष, या दिलगीरी, उत्पन्न होती है, तो पिछे-यह द्रव्य निक्षेप, उनके भक्त जनोंको सार्थक हुवा कि निरर्थक ? । जब दूढ़नी पार्वतीजीका द्रव्य निक्षेप, सार्थक-मानके, सर्व प्रकारका दावा करनेको, तत्पर हो जाते हो, तो पिछे जिस तीर्थंकर भगवानका, नाम मात्रसें भी अवज्ञाको, सहन नहीं करते हुयें हम, हमारा-कल्याण मानते है, उनकी पूर्व अपर अवस्थाको, उपयोग बिनाकी-कह करके, तुल्य वस्तुकीतरां निरर्थक, ठहरानेवाले हम, तीर्थंकरोंके भक्त कहे जावेंगे कि, वैरी कहे जावेंगे ? उनका विचार, तीर्थंकराके-भक्तोंको ही करनेका है ॥

अब हम फिर भी किंचित्-तात्पर्य कह करके, इस लेखकी समाप्ति करते है ।

तात्पर्य यह है कि-जिस जिस पुरुषोंने, जो जो-वस्तु,

( अर्थात्—पदार्थ, ) जिस जिस-स्वरूपसे, मानी होगी, उस २ वस्तुके चारो निक्षेप भी, उसी ही—भावकी, उत्पत्ति कराने वाले, होंगे ।

जैसे कि—\* शत्रु भावकी वस्तु, होंगी उनके चारो निक्षेप भी, शत्रु भावकी ही—उत्पत्ति, कराने वाले—होंगे ।

और—मित्र भावकी, वस्तु होंगी, उनके—चारो निक्षेप भी, मित्र भावकी ही—उत्पत्ति, कराने वाले—होंगे ।

और जो कल्याण भावकी—वस्तु, होगी उनके—चारो निक्षेप भी, कल्याण भावकी ही—उत्पत्ति, कराने वाले होंगे ।

और परम कल्याण भावकी—वस्तु, होंगी, उनके—चारो निक्षेप भी, परम कल्याण—भावकी ही, उत्पत्ति—कराने वाले, होंगे । परंतु—उपयोग बिनाकी, निरर्थक स्वरूपकी—वस्तु न होंगी । इसी वास्ते सिद्धांतमें—१ नाम सच्चे । २ उच्यते सच्चे । ३ द्रव्य सच्चे । ४ भाव सच्चे ॥

कह कर—चार निक्षेपको, सत्य रूपसे ही, कहे हैं । इस वास्ते खयाल करनेका, यह है कि—जो हम मिथ्यात्वी लोकोंकी तरां, तीर्थकरोंकी साथ—गुप्तपणे, हृदयमें—शत्रु भावको, धारण करते—होंगे, तब तो तीर्थकरोंका—त्रण निक्षेप, उपयोग बिनाके होके—हमारा कल्याणकी प्राप्ति होनमें, बेसक निरर्थक रूपही—हो जायगे, और हमारा जन्म जीवतव्य भी—निरर्थक रूप ही—हो जायगा ।

\* देखो सत्यार्थ पृष्ठ ४२ में—मित्रकी—मूर्त्तिको, देखके—मेम जागता है । लडपडे तो उसी ही—मूर्त्तिको, देखके—क्रोध, जागता है । विचार करोकि—हमारे दूढक भाईयो इस वखते तीर्थकर भगवानके—वैरी, बने हुये है या नहीं ? ॥

नहीं तो तीर्थकरोंका—१ नाप, और २ स्थापना, यहदोनों निक्षेप, विद्यमान है—उनकी योग्यता मुजब, उपासना करनेसे—इ-मारा, कल्याणकी ही—प्राप्ति होगी । परंतु निरर्थक रूपकी तो कभी भी न होगी ॥

इति दूदक भक्त आश्रित—त्रणें पार्वतीका, चतुर्थ-भाव निक्षेप-पका, स्वरूप ॥

॥ इति पार्वती वस्तुका—चार २ निक्षेपका स्वरूप संपूर्ण ॥





गोपाल ऋष.



मोहन ऋष.

मणिलाल ऋष.

ननु ऋष.

चि. शा. पुणे.



इंडनी पार्वती.

, चिबीनामकी बेळी.

चि. शा. पुणे.



॥ दो प्रकारकी ढूँढक ' छबीयांका ' स्पष्टीकरण ॥

॥ हे ढूँढक भाइयो ? यह दो प्रकारकी-छबीयां, हमने दाखल करवाई है उसमेंसे प्रथम एक तो है काठियावाडका-लीमडी सेहरके नामसे प्रसिद्ध, लीमडी संघाडेके ढूँढक साधु समुदायका-पूज्य श्री ' गोपाल ' स्वामीजीकी । जब यह ऋषिजी-संवत् १९४७ का वैशाख मासमें-गत्यंतरको प्राप्त हुये, तब कितनेक हाजर भक्तोंने-पूज्यकी मृतक देहको-एक तखत ( अर्थात् पट्टे ) पर बिठाके, और नीचेके भागमें तीन ( ३ ) जीवते साधुको बिठाके दर्शनार्थे उनकी छबीको उत्तराई लीई है, और यह छबी है सो-गोपाल स्वामीका-स्थापना निक्षेप'का विषय के, स्वरूपकी है-तो अब विचार करो-कि-गोपाल स्वामीका दुर्गंधरूप मृतक देहकी ' मूर्ति ' तुमको दर्शन करनेके योग्य हो गई ? और महा सुमंधमय, तीर्थकरोंके देहकी, चंद्रोज्वल पाषाणमय, अलोकिक भव्य मूर्ति ' हमारे ढूँढक भाइयोंको-दर्शन करनेके, योग्य नहीं ? तो क्या उनको-तीर्थकर भगवानसे ही, कोई चैर भाव हो गया है ? जो उनकोही निंदा करनेको थोथा पोथा लिख मारते है ? हे ढूँढक भाइयो थोडासा क्षणभर विचार करो ? इसमें तीर्थकरोंका बिगाडा होता है कि-तुम तुमसे आत्माका बिगाडा करलेते हो ?

अब हम ढूँढनी पार्वतीजीकी-छबीका, कुछ विशेष विवेचन करके दिखलाते है, क्योंकि-धर्मका दरवाजामें-ढूँढक बाडीलालने, और इसी ढूँढनी पार्वतीजीने भी-१ नामनिक्षेप । २स्थापना निक्षेप । और ३ द्रव्य निक्षेप । यह त्रण निक्षेपको-श्री अनुयोग द्वार सूत्रकी जुठी साक्षी देके

सर्व वस्तुओंका-निरर्थक, और उपयोग विना के, ठहरायेंथे परंतु हम-  
ने हमारा लेखमें-सिद्धांतका वचनके अनुसारसे-अनेक प्रकारकी यु-  
क्तिओंके साथ-चारो निक्षेपकी सार्थकता, और उपयोगीपणा क-  
रके ही दिखलाइ दिया है, तोभी इहांपर किंचित् उपयोग करानेके  
वास्ते-सूचना मात्र, लिख दिखाता हूं-अब विचार कीजीयेकि-म-  
हादेवजीकी पार्वतीकी अपेक्षासें-इसी दूढनी पार्वतीजीका-नाम है  
सो, तुमेरा ही मंतव्य मुजब-नाम निक्षेप ही, ठहर चूका है, और  
निरर्थकभी तुमने माना है, तब तो दूढनी पार्वतीजीके नामसें दूर  
देशमें बैठकर किसीने-गालीयांभी दीइ तो तुमको उदासी भाव  
होनेका, और उनके तरफ द्वेषभाव करनेका, अथवा उनको निवा-  
रण करनेका, कुछभी प्रयोजन न रहेगा । क्योंकि-निरर्थरूप और  
उपयोग विनाकी वस्तुका-चाहे कोई कुछभी करे तोभी, उनका-  
शोक, संताप, कोईभी करता नहीं है । यह तो दूढनीजीका १ नाम  
निक्षेप हुवा ॥ अब दूढनीजीका २ द्रव्य निक्षेप, और ४ भाव नि-  
क्षेपमें-विशेष हम लिख चूके है मात्र इहांपर-२ स्थापना निक्षेपमें  
ही-सूचनारूपे लिखके दिखावते है । कारण यह है कि-दूढनीजीने  
स्थापना निक्षेपको ही-निरर्थ, और उपयोग विनाका, ठहरानेके  
वास्ते ही-विशेष प्रयत्न किया है । और यह-जो छबी है सो, दूढ-  
नीजीका-स्थापना निक्षेपका, विषयके स्वरूपकी ही है । अब इ-  
इमें देखीये कि-कोई बदमास पुरुष-काम चेष्टारूपका दिखाव कर-  
के, ओर दूढनीजीकी-छबीके साथमें, खडा होके, और दूसरी-छ-  
बीका (अर्थात् मूर्त्तिका) उतारा करवायके, जगें जगें पर बे अदबी  
करता फिरेगा, तब-हे दूढक भाईयों-तुमको, और हमको-दिलगीरी,  
उत्पन्न होगी या नहीं ? कदाच तुम-हठ पकड करके ऐसा कहभी  
देवोंगे कि-इसमें-दिलगीरी करनेका, क्या प्रयोजन है ?

परंतु हम इस बातको-मंजूर न करेंगे, कारण यह है कि-ऐसी अनुचित बातसे-जैन धर्मकीही-निंदा होती है ? यद्यपि वीतराग देवकी मूर्त्तिकी द्वेषिणी-दूंदनीसे-हम विशेष संबंध नहीं रखते हैं, परंतु जैन धर्मकी प्रीति होनेसे यह अनुचितपणा सहन न कर सकेंगे ? यद्यपि जैनधर्मके तत्त्वोका-विपरीत बोधसे, दूंदनी पार्वतीजी-ने-वस्तुका-चार चार निक्षेपमेंसे-त्रण त्रण निक्षेप-निरर्थक, और उपयोग विनाका, ठहरायके-अपनी मूर्त्तिरूप-स्थापनाकोभी-निरर्थक ठहराई है,

परंतु हमतो तीर्थकरोंके वचनानुसार, हमारी उपादेय वस्तुका-चारोनिक्षेप, योग्यता प्रमाणे, उपादेयपणे ही मानते हैं । जो कदाच हमारा लेखसे-किंचित् मात्रभी-विचार करेंगे तो, तुम दूंदकोने-भी-अपनी उपादेयरूप वस्तुका-चारो निक्षेप, योग्यता प्रमाणे-उपादेय रूपसे ही माने हुये हैं ।

परंतु कोई विशेष प्रकारका-मिथ्यात्वके उदयसे, अथवा कोई-विपरीत बोधके-कारणसे, अथवा कोई संसार भ्रमणकी-बहुलतासे, तुमलोक तीर्थकरोका-भक्तपणाको, जाहीर करकेभी केवल वीतराग देवका-स्थापना निक्षेप रूप-भव्य मूर्त्ति कीही, अनेक प्रकारसे-अवज्ञा करनेको, तत्पर होके-अपना संसार भ्रमणमें ही अधिकपणा करलेतेहो, और दूसरे भव्य पुरुषोंकोभी-विपरीत मार्गमें गेरनेका-विपरीत रस्ताको दूंदतेहो.

और इसीकारणसे अपनेमें-दूंदकपणाकी सिद्धिभी करके दिखलातेहो । और गण धरादिक महापुरुषोंको, और महान् महान् सर्व आचार्योंको, और जैनके सर्व सिद्धांतोंको-निंदितकरके-अपने आप-तत्त्वज्ञानीपणाको, प्रगट करते हो ?

क्या तुमही ज्ञानी ही गयेही ? कोई जैनाचार्यको—जैन तत्त्वका बीध, नहीं था ! जो जगें जगें गणधरादि महान् महान् आचार्योंको ही निंदते हो ? हमतो यही कहते हैं कि—कोई जैन धर्मके तत्त्वोंसे विमुख पुरुषकी वाणीरूप पानीका—पान करनेसे, तुम दिवाने बने हुये—ने गणधरादिक महापुरुषोंकोभी—दिवाने रूप, लेखतेहो ?

परंतु जो यह किंचित् मात्र स्वच्छ वाणीरूप पानीका—पानकर-कें—विचारमें उत्तरंगेतो, अपने आप मालूम होजायगा कि—जैन त-त्त्वोंके विषयमें—हमकितनी पुहच धरावते हैं ?

और जी विचारमें न उतरंगे तब तक तो तुम—अपने आप तत्त्वज्ञानी बने हुये ही है । कारण कि—दूनीयाका ही यह एक कुदरती नियम, दिखनेमें आता है कि—जो पागल होता है सो भी सब दूनीयाको—पागल रूप समज कर—अपने आप वह पागल ही तत्त्व ज्ञानकी मूर्तिरूप, बन बैठता है ।

और अपनी जूठी बात भी—दूसरोंको, मनानेको—जबरजस्ति-पणा भी करता है, और वह पागल उस जूठी बातको भी नहीं मानने वालोंकी—हेरानगति करनेको ही—तत्पर हो जाता है ॥

अब इसमें एक सामान्य दृष्टांत देके—में—मेरा लेखकी भी, समाप्ति ही करता हूं ॥

दृष्टांत यह है कि—किसी एक समये—एक निमित्तियेने राजाको जाहिर कियाकि—हे महाराज ! जो यह ग्रहोंके योगमें वर्षा होने वाली है, उसका पानी, जो कोई पीई लेवेगा, सोही दिवाना बन जायगा—तब जो जो उत्तम लोकथे उनोंने—अपना अपना बंदोबस्त कर लिया, परंतु जिस लोको के पास कुछ साधन ही नहीं था, वह लोक—अपना कुछ भी बंदोबस्त कर सके नहीं,



और वह वर्षाका पानीको-पीनेकेही साथ, दिवाने ही बनगयें ऐसँ कोइ सँकटो ही-नंग धडंग होके, बे अदबीसँही फिरने लगे, और छेवटमें ते दिवानोंने, राजाको भी-दिवाना समजकर, राज्य-गद्दीपरसँ-उठा देनेकाही, विचार किया। परंतु ते विपरीत पानीका-पानसँ, पराधीन बने हुये दिवानोंने इतनाभी विचार नहीं किया कि-हमारी सर्व प्रकारसँ परवस्ति करके, अनेक प्रकारके-संकटोसँ रक्षण करनेवाला, हमारा परमोपकारी, राजाको, राज्य गद्दीपरसँ उठादेके, हम हमारी ही गति क्या करलेंगे ?

परंतु ते विचारे-सर्वथा प्रकारसँ, पराधीन हो जानेसँ, उनके कुछ भी बसमें ही न रहाथा ? जब पीछेसँ सुवर्षा हुये बाद, ते दीवाने लोकोने, सुवर्षा के पानीको पिया-तब ते होंसमें आके-बडा पश्चात्ताप ही करने लगेंकि-अहो हमने बडा ही अनुचितपणा किया कि-जो हमारा सर्व प्रकारसँ-रक्षण करने वाला, और हमारा पर-मोपकारी, हमारा शिरके-मुगट समान, हमारा माळिककाभी हम तिरस्कार करनेकी बुद्धिवाले हो गये ? धिक्कार पडो हमारा जन्म जीवतरमें, इत्यादिक अनेक प्रकारका-पश्चात्तापसँ, और ते उपकारी राजाकी-क्षमा चाहीने, और अपना परमोपकारी राजाकी साथ भीतिको-धारण करतेहुयें, स्वछ, और सरल-न्यायनीतिका मार्गको प्रकडकर, अपना श्रुद्धव्यवहार मार्ग करनेको, तत्परहो गये। हेभव्यपुरुषो ?

यह दृष्टांत देनेका-यह तात्पर्य है कि, जिनेश्वर देवकेही सदृश-यह जिनमूर्तिको, सिद्धांतकारोंने-जगें जगें पर वर्ण किई हुई है।

और ते तीर्थंकरों है सो-हमारा परमोपकारी, राजाओंकेभी महाराजाओंके सदृश है ।

( ८२ ) वातरागी मूर्त्तिसं विपरिणामे होनेमें दृष्टांत.

और हम अज्ञानांधोंको-सूर्यका प्रकाश सदृश मोक्षमार्गके-अ-  
पूर्व तत्त्वोंको-दिखानेवाले होनेसे हमारा परमोपकारी हुये है।

और हम अघोर संसारके महाभयमें पड़े हुयेको, ते तीर्थकरो  
सर्वमकारका उपद्रवसे रक्षणकरने वालेही है।

परंतु हमलोक अनंत संसारमें परिभ्रमण करतेहुये आजतक  
विपरीत पुरुषोंकी वाणीरूप-पानीका, पान करनेसे-दिवाने बने  
हुये, तीर्थकर महाराजाओंकी-अवज्ञाकरनेमें-कुछभी विचार नहीं  
करते आये है।

क्योंकि-कोई तेसी विपरीत वाणीरूप-पानीका, पानकरनेसे,  
तीर्थकरोंके वचनरूप अमृतका पानको-जेर तुलसमजतेथे ? जैसे शीत-  
ल पानीका स्पर्शको कोइपुरुष दाहतुल्य समजें, और सोनाकी चिज-  
को पीतलजानके, अंगीकारको न करे ? तैसेहीहम वातराग देवका-  
भी नतो १नामलेके भक्तिकरनेकी इच्छाकरतेथें, और नतो तेओंकी  
२मूर्त्तिकीभी भक्ति करनेकी इच्छा करतेथें,

और नतो ते तीर्थकरोंकी ३बालकरूप पूर्व अवस्थाकी, और  
मृतक देहरूप अपर अवस्थाकीभी-भक्तिकरनेको, देवताओंकीतरां  
शक्तिको धरावतेथे, तो पिछे साक्षात्रूप ४तीर्थकरोंकी भक्तिकरनेको  
कहांसे भाग्यशाली बनने वाले थें ? इसीवास्तेही हम-चार गतिरूप  
संसारमें-परिभ्रमण करते फिरतेथें।

परंतु जो कदाच हम मनुष्यका भवकोपाके, और जैनधर्मका  
आश्रयकोलेकेभी ते तीर्थकरोंकी भक्ति चार निक्षेपोंका विषयसे, योग्य-  
ता प्रमाणे, और हमारी शक्तिके प्रमाणसे। करनेको भाग्यशाली न  
बनेगें तो हम हमारा कल्याण अनंत संसारका परिभ्रमण करनेसेभी-  
न करसकेंगे। इस वास्ते हेभव्य पुरुषो। यह अमूल्यरूप मनुष्यका

जन्मको-प्राप्त होके, गणधरादि पुरुषोंने दिखाई हुई, तीर्थकरोंकी-मूर्त्तिकी भक्तिकरनेसे, कोई प्रकारसे मत चुको, उसमेंभी जो तत्त्व-रहित संसारी पुरुषों है सो, सदाकाल-प्रहा आरंभमें फसें हुये हो-नेसे, तीर्थकरोंकी—मूर्त्तिकी भक्तिसे, विमुख होते है सोतो, भवस-मुद्रमें डुबते हुये समाकितकी प्राप्तिका कारणरूप जिनमूर्त्तिकी भक्ति रूपका, महान् जाहजको छोडकरके-अपनी भुजाओंको-वृथाही प-छाडता है ? इहांपर इतनाही इसाराकरके—मे-मेरा लेखकी समा-प्ति करता हुं । सुश्लेषुकि अधिक विस्तरेण ॥

हमारे दूढ़क भाइयांके-संसार खाताका

स्वरूप, लिखते है ॥

पाठक वर्ग ! हमारे दूढ़क भाईओ, थोडा बखत पहिले, गण-धरादिक महा पुरुषोंके वचनसे-विपरीत होके, कोई ऐसी विलक्षण प्रकारकी गेर समजको पुहचेथे कि-मूर्त्तिसे कुछ फायदा ही नहीं होता है ।

परंतु अब यह नवीन प्रकारके जमानेमें, देश परदेशका अधिक व्यवहार हो जानेसे, चारों ही दिशामें मंदिर, मूर्त्तिका, पूजन करने वालोंका ही प्रचार विशेष देखके, अजान वर्ग है सो भी मूर्त्तिसे कुछने कुछ, फायदा होनेका संभव है, ऐसा सामान्य प्रकारसेभी समजनेको लगे है ॥

परंतु आश्चर्य वही होता है कि-नैन धर्मका सनातन पणेसे दावा करने वाली, पंडिता दूढ़नी पार्वतीजी, अपना सरथार्थ ग्रंथका पृष्ठ, ३४ में, लिखती है कि—? स्त्रीकी मूर्त्तिको देखके तों-पत्नी कामियांका काम जागता होगा ॥

ऐसा लिखके फिर हमको प्रश्न करती है कि-भगवानकी मूर्तिको देखके, किस २ को वैराग्य हुआ, सो बताओ ? ॥

विचार—इस लेखमें स्त्रीके नाम मात्रका, उच्चारण करनेसे, कामीयांको काम नहीं जागे। इस प्रकारकी सिद्धि करके, मात्र स्त्रीकी मूर्तिको ही देखनेसे, कामियांको काम जागे। ऐसा लिखा।

और भगवानका तो नाम मात्रसे ही, हमारे दूढक भाईयांका, वैराग्य निचूड जावे। मात्र भगवानकी मूर्तिको ही देखनेसे हमारे दूढक भाईयांका वैराग्य शुक जावे। यह जो दूढनीजीने विपरीत पणे लिखके दिखाया है, क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है ? ॥ यह संसारका खाता, हमको किस प्रकारसे समजना ? ॥ १ ॥

फिर पृष्ठ. ३८ में—दूढनीजी लिखती है कि, २ ज्ञाता सूत्रमें—मल्लदिन कुमारने, चित्र शालीमें—मल्लिकुमारीकी मूर्तिको देखके, लज्जा पाई, अदब उठाया, और चित्रकार पै-क्रोध किया, लिखा है ॥

विचार—उस मल्लदिन कुमारने, एक स्त्री मात्रकी-मूर्तिको देखके, लज्जा पाई, अदब भी उठाया। और हम तीर्थकरोंके ही भक्त होके, उनोंकी ही-मूर्तियांकी, वे अदबी करनेवाले, किस प्रकारके निर्लज्ज गिने जावगे ? ।

और उस मल्लदिन कुमारने, कोई कारणसर-चित्रकार पर ही क्रोध किया, हम है सो हमारा परमोपकारी तीर्थकरोंकी मूर्तियां पर ही, कारण बिना-क्रोध करके, हमारा आत्माको ही महा मलीनरूप बनाते है। क्या ? हमारे दूढक भाईयांने इस प्रकारका

संसार खाता मान्या है ? । किस प्रकारका ज्ञानकी खूबी समजनी ? ॥ २ ॥

फिर सत्यार्थ पृष्ठ. ४० में, दूढ़नीजी लिखती है कि ३ राम चरित्रमें वज्र करणने, अंगूठीमें मूर्ति कराई । परंतु वह सब-उच्च नीच कर्म, मिथ्यात्वादि, पुण्य पापका स्वरूप दिखानेके-संबंधमें, कथन आता है । इत्यादि ॥

विचार-राम लक्ष्मणके वारेमें, सो वज्रकरण राजा, अपना स्वामी सिंहोदर राजाको भी-नमस्कार नहीं करनेकी इच्छासें, मात्र निर्मल समाकितका पालन करनेके वास्ते, बारमा श्री वासुपूज्य स्वामिकी मूर्तिको, अपनी अंगूठीमें रखके, हमेशां दरसन करता रहा, सो तो हमारे दूढ़कोंका, उंच नीच पुण्य पापादि गण्ड सपडा॥

और वही तीर्थकरोंकी परम पवित्र मूर्तिसें-द्वेष भाव करके, हमारे दूढ़क भाईओ-अपना आत्माको, महा मलीन करते रहे है, क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है ? नजाने किस प्रकार के संसार खातेका स्वरूप है ? ॥ ३ ॥

फिर सत्यार्थ. पृष्ठ. ४२ में-दूढ़नीजी लिखती है कि, मित्रकी मूर्तिको देखके-प्रेम, जागता है, यह तो हम भी मानते है । यदि लडपडे तो-उसी मूर्तिको देखके, क्रोध-जागता है ॥ ४ ॥

विचार-जैसें मित्रकी मूर्तिसें प्रेम, तैसें हमारे दूढ़क भाईओने, मिथ्यात्व के साथ-गाढ प्रीति करके, पितरादिक मिथ्यात्वी देवोंकी मूर्ति पूजासें, क्या अपना स्वार्थ, सिद्ध कर लेनेका-पान लिया है ? और लडपडे तो-उसी मूर्तिसें ( मित्रकी मूर्तिसें ) द्वेष, तैसेंही तीर्थकरोंके साथ गुप्तपणे, हृदयमें-द्वेषभाव रखके, उनोंकी मूर्तिवांकी-अवज्ञा करनेको, तत्पर हुये है ? क्या उसका नाम-संसार खाता, मान्या है ? ४ ॥

॥ फिर. सत्यार्थ. पृष्ठ. ५१ में-दूढ़नीजीने, लिखा है कि-५  
स्थापनारूप अक्षरोंसे, ज्ञान होना, किस भूलसे कहते हो ? ॥ ५ ॥

विचार-जब अक्षरोंसे, ज्ञान ही नहीं होता है, तो क्या हमारे  
दूढ़क भाईओ, सर्वथा प्रकारसे-नास्तिक रूप होके, उनोंने मान्य  
किये हुये, बत्रौश सूत्रोंके-अक्षरोंसेभी, कुछ ज्ञान होनेका, नहीं मा-  
नके, तीर्थकरोंकी-सर्वथा प्रकारसे, अवज्ञा करनेको-तत्पर हुये  
है ? क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है ? ॥ ५ ॥

फिर. सत्यार्थ. पृष्ठ. ६१ में-दूढ़नीजीने लिखा है कि-६ ह-  
मने भी-बड़े बड़े पंडित, जो विशेषकर भक्ति अंगको-मुख्य रखते  
है, उन्हींसे सुना है कि यावत् काल-ज्ञान नहीं, तावत्काल-मूर्त्ति  
पूजन है । और कई जगह लिखाभी देखनेमें आया है ॥ ६ ॥

विचार-जिन मूर्त्तिको-पूजन करनेका, दूढ़नीजीने-बड़े बड़े  
पंडितोंसे तो सुना, और जैन सिद्धांतोंमें-लिखा हुआभी देखा, तो  
भी ते सर्व बड़े बड़े पंडितोंकी, और ते सर्व शास्त्रोंकी-अवज्ञा क-  
रके, और अपना ही-परम पूज्य, तीर्थकरोंकी-मूर्त्तिकी, अवज्ञा  
करके, और-पितरादिक, मिथ्यात्वी देवोंकी-मूर्त्तिका पूजनकी,  
सिद्धि करके, अपनाही लेखपर कुचा फिराते हो ? क्या उनका  
नाम-संसार खाता है, कि-कोई दूसरा प्रकारका, संसार  
खाता है ? ॥ ६ ॥

॥ फिर. सत्यार्थ. पृष्ठ. ६९ में-दूढ़नीजीने लिखा है कि-७  
देवलोकमें-जिन प्रतिमाओंको, समदृष्टि भी पूजते है, और मिथ्या  
दृष्टिभी पूजते है, कुछ समदृष्टियांका-नियम, नहीं है ॥ ७ ॥

विचार-समदृष्टि जीवतो, इस पंचमालमें भी-तीर्थकरोंकी

मूर्तिका पूजन किये बिना, रोटीभी नहीं खाते हैं। परंतु प्रीतराणी मूर्तिका अलौकिक भव्य स्वरूप देखके, निकट भवी मिथ्या दृष्टि जीवों है, उनोंकाभी पूजन करनेका-भाव, हो जाता है। और बड़े बड़े तीर्थोंके उपर जाके सैंकड़ो लोक-पूजन भी करते हैं। सो तो उनोंका भव्यपणाका लक्षण है। तो क्या वही परम पवित्र-जिन मूर्तिके, निंदक बनाने, उनका नाम, संसार खाता है कि-कोई दूसरा प्रकारका, संसार खाता है ? ॥ ७ ॥

॥ फिर. सत्यार्थ-पृष्ठ. ६८ में-दूढ़नीजीने लिखा है कि-८ मूर्तिको धरके, श्रुतिभी लगानी-नहीं चाहिये ॥ ८ ॥

विचार—पितरादिक, और यक्षादिक, मिथ्यात्वी देवोंके-हमारे दूढ़क श्रावक भाईयांको भक्त बनाके, उनोंकी प्रतिमाका पूजन, षट्-कायाका आरंभसेती फल फूलादिकसैं-कराके, तीर्थकर भगवानकी परम पवित्र मूर्तिमें, श्रुति मात्र लगानेका भी-निषेध करते हैं ? सोही संसार खाते के-स्वरूप वाले हैं कि, कोई दूसरे हैं ? यह भी एक विचार करने जैसा ही है ॥ ८ ॥

फिर. पृष्ठ. ३७ में दूढ़नीजीने लिखा है कि-९ असल, और नकलका-ज्ञान तो, पशु, पक्षीभी-रखते हैं। ऐसा लिखके-एक सबैया भी लिखा है ॥ ९ ॥

विचार—हमारे दूढ़क भाईओं, असल जो त्रिलोकीके नाथ-वीतराग देव है, उनकी परम पवित्र-मूर्तिका ज्ञान पशुकीतरां नहीं करते हुये, जो मिथ्यात्वी यक्षादिक-क्रूर देवताओ है, उनोंकी मूर्तियांमें भ्रमित होके, वीर भगवानके परम श्रावकोंकोभी, पूजानेको तत्पर हुये हैं ? क्या उनका नाम-संसार खाता मान्या है ? ॥ ९ ॥

फिर. पृष्ठ. ४३ में-दूढ़नीजीने लिखा है कि-१० भगवानकी-

मूर्तिको देखके, कोई खुश हो जाय तो हो जाय । परंतु-नमस्कार, कौन विद्वान् करेगा ? और दाल चाबलादि, कौन विद्वान्-चढावेगा ? ॥ १० ॥

विचार—वीतराग देवकी-परम शांत मूर्तिको देखके, हमारे दुंदक भाईओ-खुशभी हो जाय, तोभी नमस्कार-नहीं करते हुयें, और यक्षादिकोंकी क्रूर मूर्तिसें, खुश हुये बिनाभी-उनके आगे षट् कायाका आरंभादिक सर्व कुछ करेनेको तत्पर हुये है ? क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है ? ॥ १० ॥

फिर. पृष्ठ. ४४ में. दुंदनीजीने लिखा है कि-११ हम मूर्ति मानते है, परंतु मूर्तिका-पूजन, नहीं मानते है ॥ ११ ॥

विचार—हमारे दुंदक भाईओ इस प्रकारसैं, मूर्तिपूजनका-सर्वथा प्रकारसैं-निषेधकरके, द्रौपदीजी परम श्राविकाके पाससैं-जिन मूर्तिका पूजनको छुडवायके, श्रावकोंको नहीं इच्छित ऐसा, मिथ्यात्वी कामदेव है उनकी मूर्तिको-पूजानेको, तत्पर हुये ? । और वीर भगवानके-परम श्रावकोंकी पाससैं, दररोजका जिनेश्वर देवकी-मूर्तिका पूजन, छुडवायके, मिथ्यात्वी पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी-प्रतिमा पूजानेको, तत्पर हुये ? । क्या उसका नाम संसार खाता है ? ॥ ११ ॥

फिर. पृष्ठ. ६७ में, दुंदनीजीने लिखा है कि-सूत्रोंमें तो, मूर्तिपूजा-कहीं नहीं लिखा है, यदि लिखा है तो हम भी दि-खाओ ॥ १२ ॥

विचार—दुंदनीजीको, जिनेश्वर देवकी मूर्तिके बदलेमें-द्रौ-पदीजिके पाठमें, काम देवकी-मूर्तिका भास हो गया ? । और



अंबडजीके पाठमें-सम्यक्क धर्मादिक दिख पडा ? । और जंघाचारण के पाठमें-ज्ञानका ढेर, दिख पडा ? । और चमरेंद्रके पाठमें-चैत्य के बदलेमें चैत्यपद, दिख पडा ? । और वीरभगवान के-परमश्रावकों का, दररोजके जिनपूजनमें-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक, देवताओ दिखपडे ? । और उवाईसूत्रका-बह्वेत्तरिहंत चेइय, कापाठ तो दिखाही नहीं । ऐसें पंचम स्वप्नका, महानिशीथका, विवाह चूळिया सूत्रका, इत्यादिक जगें जगेंपर, विपरीतही विपरीत-लिखके, हमको मश्र पुछती है ? । क्या इसका नाम-संसारखाता, मान रखा है ? ॥ १२

फिर. पृष्ठ. ७० में-दूदनीजीने लिखा है कि-१३ नमोश्चुणं, के पाठमें तर्क करोंगे तो, उत्तर यह है कि-पूर्वक भावसे, मालूम होता है कि-देवता परंपरा व्यवहारसें, कहते आते है ॥ १३ ॥

विचार—जैसें देवताओ, नमोश्चुणं कापाठ, परंपराके व्यवहारसें—जिन प्रतिमाओके आगे, पढते चले आते है । तैसेंही श्रावकोंके कूलमेंभी—परंपरासें, आज तक-जिनप्रतिमाके आगेही, नमोश्चुणं, का पाठ पढयाजाता है । उस परंपराका अर्थको, उलठके-द्रौपदीजी श्राविकाके पास, काम देवकी मूर्तिके आगे, अयोग्यपणे-नमोश्चुणंका पाठ, पढाना सरु करवाया ? क्या उसका नाम-संसार खाता मान रखा है ? ॥ १३ ॥

फिर. पृष्ठ. १३८ में. दूदनीजीने लिखा है कि-१४ मूर्त्तिपूजनमें षट्कायारंभादि दोष है ॥

और. पृष्ठ. १२० में लिखा है कि-दूसरा बडा दोष मिथ्यात्वका है । क्योंकि जडको चेतन मान कर, मस्तक-जूकाना, यह मिथ्या है ॥ १४ ॥

विचार-यह दूढनीजी इस प्रकारसे, अपना परमपूज्य तीर्थकरोंकी ही-परम पवित्र, मूर्त्तिका पूजनको, निंदती हुई । और खास-जो मिथ्यात्वी क्रूर देवोकि, यक्ष, भूतादिक है, उनकी जड स्वरूपकी मूर्त्तिमें-चेतनको, मनाती हुई । और षट् कायाका आरंभसे पूजाको-भी कराती हुई । और ते जड स्वरूपकी मूर्त्तियांके आगे, हमारे भोदू दूढक भाईयांका मस्तकभी घिसानेको तत्परहोती है ? । क्या उसका नाम-संसारखाता, मान्या है ? ॥१४॥

॥ फिर. पृष्ठ. ७५ में—दूढनीजीने लिखा है कि, १५ हम देखते है कि, सूत्रोंमें-ठाम ठाम, जिन पदार्थोंसे-हमारा विशेष करके, आत्मीय स्वार्थ भी-सिद्ध नहीं होता है, उनका विस्तार सैंकडे-पृष्ठोंपर, ( सुधर्म स्वामजीने ) लिख धरा है । ऐसा लिखके-ज्ञाता सूत्रका, जीवाभिगम सूत्रका, और रायपसेनी सूत्रका भी सैंकडो पृष्ठोंका मूलपाठोकोही, निरर्थक-उहराये है ॥ १५ ॥

विचार—दूढनीजी प्रथम सर्व आचार्योंका लेखको-निरर्थक रूप, गपौडे-उहरायके, अब जैन शासनके नायक भूत, सुधर्मा स्वामीजीका लेखसें भी, अपना—स्वार्थकी सिद्धिको, नहीं मानती हुई, केवल अपना ही शासनको प्रगट करके, दूढनीजी आप भवचक्रमें गीरती हुई, हमारे भोदू दूढक श्रावक भाइयांको भी, डुबानेको तत्पर हुई है ? । क्या इसका नाम संसार खातामान्या है ? ॥

फिर. पृष्ठ. १४४ में-दूढनीजीने लिखा है कि-१६ तहा किल अम्हे—अरिहंताणं, भगवंताणं, गंधमल्लादि ॥

पृष्ठ. १४५ में-अर्थ-तिम निश्चय कोई कहे कि मैं अरिहंत भगवंतकी मूर्त्तिका गंधि मालादि ॥ १६ ॥

विचार—इस महानिशीथ सूत्रका पाठमें, तीर्थकरोंकी मूर्त्ति

का-बोध, अरिहंत, भगवंत, का पाठ मात्रसें ही-कराया है । और दूढनीजीने भी-इस सूत्र पाठका अर्थ, जिनमूर्त्तिका ही करके दिखाया है । और-जिन प्रतिमा जिन सारखी, ऐसा जो सिद्धांतोका लेख है, उनकी भी सिद्धि, दूढनीजीके लेखसें ही होती है ।

तो भी दूढनीजी तीर्थकरोकी, मूर्त्तिको पथर, पहाड, लिखके, अवज्ञा करती हुई, और यक्षादिकोंकी मूर्त्तिको पूजाती हुई, आप ही दूढनीजी भव समुद्रमें डुबती हुई, और हमारो भोले दूढक श्रावक भाइयांको भी, भवसमुद्रमें लेजाती है ? ।

क्या इसका नाम संसार खाता मान्या है ? ॥ १६ ॥

॥ फिर सत्यार्थ पृष्ठ. १४३ में, जो पंचम स्वप्नका पाठ है, उस पाठसें-साधुओंको ही मूर्त्तिपूजाका निषेध किया गया है । उस मूर्त्तिपूजाका सर्वथा प्रकारसें-निषेध करके, पृष्ठ. १४४ में-मति कल्पनासें-मूर्त्तिपूजाके उपदेशकोंको, कुमार्गमें गेरनेवाले लिखे है ॥ १७ विचार-दूढनीजीने इस पंचम स्वप्नका पाठार्थमें, अपनी मति कल्पनासें-मूर्त्तिपूजाके उपदेशकोंको, कुमार्गमें-गेरनेवाले लिखे ।

परंतु सत्यार्थ पृष्ठ. १२६ में-वीरभगवानके परम श्रावकोंकी पाससें, तदन अयोग्यपणे, खास जो मिथ्यात्वी-पितर, भूतादिक है, उनोंकी मूर्त्तिपूजा पट् कायाका आरंभसें-कराती हुई, ते परम श्रावकोंको-कुमार्गमें गिरनेका, जूठ कलंक देके, दूढनी ही आप कुमार्गमें पडती है ? । क्या उसका नाम संसार-खाता, मान्या है ? १७

फिर. सत्यार्थ पृष्ठ. १४६ में-साधुओंको मूर्त्तिपूजाका निषेध रूप, महा निशीथका पाठार्थमें, दूढनीजी जिन मूर्त्तिपूजक श्रावकोंको-पाषाणो पासकका, संबोधनसें-हास्य करती हुई, और अपनी मति कल्पनासें जिनमूर्त्तिपूजाके उपदेशकोंको, अनंत संसारी लिख मारे है ॥ १८ ॥

विचार—तीर्थकरोंकी भक्तिसँ श्रावक जिन मूर्त्तिपूजे, सो तो अनंत संसारी । और तीर्थकरोंकी भक्ति करानेके वास्ते, उपदेश देनेवाले—गणधरादिक सर्व साधु, सो भी अनंत संसारी ॥

परंतु जैनोंको पूजन करनेका वज्र्य ऐसी—मिथ्यात्वी कामदेवकी, जड स्वरूप पथ्थरकी मूर्त्ति, यक्षादिकोंकी जड स्वरूप पथ्थरकी मूर्त्ति, और अदृश्य स्वरूप पितरादिकोंकी जड स्वरूप मूर्त्ति, उनोंका पूजनकी सिद्धि करके देनेवाली, और वीरभगवानके परम श्रावकोंका—जिन पूजन छुडवायके, महा मिथ्यात्वी—पितरादिकोंको पूजानेवाली, ऐसी यह विवेक शून्या ढूढनीजी, तीर्थकरोंके साथ—वैरभावके योगसँ, अनंत संसारमें गीरती हुई, ते वीरभगवानके परम श्रावकोंको भी, गेरनेका रस्ता ढूढ रही है ? । क्या उसका नाम संसारखाता मान्या है ? १८

॥ फिर. पृष्ठ. १४८ में, विवाह चूलिया सूत्रका पाठार्थमें, ढूढनीजी लिखती है कि—१९

हे भगवन् मनुष्य लोकमें, कितने प्रकारकी पडिमा ( मूर्त्ति ) कही है, हे गौतम—अनेक प्रकारकी कहीं है, ऋषभादि महावीर ( वर्द्धमान ) पर्यंत २४ तीर्थकरोंकी ।

अतीत, अनागत—चोवीस तीर्थकरोंकी, पडिमा । राजाओंकी पडिमा । यक्षोंकी पडिमा । भूतोंकी पडिमा । जाव धूमकेतुकी पडिमा ॥ हे भगवन् जिन पडिमाकी—वंदना करे, पूजा करे । हा गौतम—बेदे, पूजे ॥ १९ ॥

विचार—नंदीसूत्रका मूल पाठमें—सूत्रोंकी गीनतीमें, आयाहुवा इस विवाह चूलिया, सूत्रका पाठार्थमें—यक्षादिकोंके प्रतिमाकी उपेक्षा करके, मात्र तीनोचोवीसीके ( ७२ ) बहुतेर तीर्थकरोंकी—प्रतिमाओंका, वंदन, और पूजन, करणेके विषयमें—गौतम स्वामीजीनें, प्र-

श्रकिया है ॥ इसप्रश्नके उत्तरमें-भगवान् महावीर स्वापीजीने, कहा हैकि-हे गौतम, तीर्थकरोंकी प्रतिमाओंको-वादेभी, और पूजेभी, ऐसीआज्ञा, खुदभगवान-अपने मुखसे, फरमा रहे है । और दूढनीजीभी—इसपाठका अर्थ, इसी प्रकारसें करती है । तोभी परमार्थको समजे बिना, उस आज्ञाका लोपकरके, जिस यज्ञादिकोंकी प्रतिमा, श्रावकोंको पूजनेके योग्य नहीं है, उनोंकी-(अर्थात् यज्ञादिकोंकी) प्रतिमा पूजनकी सिद्धिकरके, जगें जगें पर-दिखाती हुई । और परमपूज्य तीर्थकरोंकी प्रतिमाका-वंदन, पूजनसें, हटातीहुई । और तीर्थकरोंकी प्रतिमाओका-वंदन, पूजनका, उपदेश देनेवाले श्री वीरभगवान है उनकोभी, अनंत संसारका-कलंक, मूढतापणे चढाती हुई। ऐसा विपरीत बोधसें यह दूढनीजी-महा भवचक्रमें, जंपापात करतीहुई । और दूसरे भव्य प्राणियोंकोभी—महा भवचक्रमें, गेरनेको तत्पर हुई है ? क्या इसका नाम—संसारखाता, मान्या है ? ॥ १९ ॥

हम हमारे दूढकभाईयांका, विपरीत विचार-कहातक लिखरेके दिखावें, क्योंकि—१ सर्वलोक व्यवहारसेभी विपरीत । २ जैन धर्मसेंभी विपरीत । ३ जैनाचार्योंसेंभी विपरीत । ४ गणधर महाराजाओंसेंभी विपरीत । ५ जैनके सर्वसिद्धांतोंसेंभी विपरीत । छेवटमें ६ सर्व तीर्थकरोंसेंभी विपरीत । केवल माते हुये सांढकीतरां—मथ्या उचाकरके, फिरना । नतो दिखाई हुई युक्तिका विचारकरना, और नतो जैन सिद्धांतकारोकी तरफभी देखना, मात्र जो मनमें आज्ञावे सोही-अनघड पथर, फेंकमारना । क्योंकि-संसारखाता, यह शब्दका प्रचार, नतो कोई जैन सिद्धांतकारने लिखा है, और नतो कोई लौकिक शास्त्रोंमेंभी प्रचलित है, केवल यह-कर्ण कटुक, वाक्य है सोही हमारे दूढकभाईयांको-संसारमें भटकानेकी, सूचना कर

रहा है कि-शकुन पहिला शब्द आगला, । क्योंकि हरणहुयेला द्रौपदीजी लेनेको, जातेहुये पांडवोंने-कृष्णजीको, मात्र इतनाही कहाथाकि, हम हार जावेतो,तुमने सहाय्यकरना । उसवखतही, कृष्णजीने कहाकि-तुम पहिलेही, हारजानेकाशब्द निकालतेहो-तो पिछे, जयमिलाके कहासैं आनेवालेहो? ऐसा निश्चयक्रिया । और छेवटमें पञ्चोत्तर राजाकी साथ, लड़ाई करतेहुये पांचे पांडवो हारगये, और कृष्णजीको ही जय मिलादेनी पडीथी ।

तैसैं ही हमारे दुंदकभाइओ, जैनमतका आश्रय लेके, सर्व परम गुरुओंकी निंदा । और तीर्थकर गणधरोंकी भी अवज्ञा । और जैनके सर्व सिद्धांतोंको जूठ ठहराना । देवताओंने तीर्थकरोंकी भक्तिभावसैं, विधि सहित सत्तर भेदसैं पूजा किई-सो भी संसारखाता । और ते जिन मूर्त्तिओंके आगे-नमोष्ठ्युणां, कापाठ पढा सो भी संसारखाता ।

इसी प्रकारसैं-द्रौपदीजी परम श्राविकाने विधि सहित जिन प्रतिमाका पूजन करके नमोष्ठ्युणांका, पाठ पढा, सो भी संसारखाता । वीरभगवानके-परमश्रावकोने, जो नित्य [ अर्थात् दररोज ) तीर्थकर देवोंकी-प्रतिमाओंकी भक्तिपूर्वक सेवा किई, सो भी संसारखाता । दुंदनीजीने-यक्षादिकोकी जड़रूप पथथरकी क्रूर मूर्त्तिकी पूजा कराई, सो तो दुंदनीजीका स्वार्थकी सिद्धिको करनेवाली । मित्रकी मूर्त्तिसैं प्रेम, लड पडे तो उसी मूर्त्तिसैं द्वेष, इत्यादिक सर्व जगेंपर-विपरीत ही विपरीत, समजायके जिनमूर्त्तिके साथ, दुंदनीजीने-इतना द्वेष, प्रज्वलित किया है कि-इस लोक परलोकका, महा फलकी प्राप्तिको देनेवाला, जिन मूर्त्तिका पूजनको, छुडवायके हमारे भौदू दुंदक श्रावकभाइयांको, केवल तुच्छरूप धन

पुत्रादिक है उनकी—लालच देके, मिथ्यात्वी पूर्ण भद्रादिक यज्ञोंकी—क्रूर मूर्त्ति, पूजानेको तत्पर हुई । और वीरभगवानके, परम श्रावकोंको—किंचित् मात्रका लाभके विना भी पितर, दादियां, भू-तादिकोंकी—मूर्त्तियां, षट् कायाका आरंभसे पूजानेको तत्पर हुई । और द्रौपदीजीकी पास—मयोजनके विना ही, कामदेवकी मूर्त्ति-कापूजन, करानेको तत्पर हुई ।

मात्र परम पूज्य तीर्थकरोंकी मूर्त्तिके वास्ते कहती है कि—उसमें श्रुतिमात्र भी मत लगाओ । वंदना नमस्कार भी मत करो । और वंदना नमस्कार करनेका बतलानेवाले, तीर्थकर, गणधर, तुमको—मतवाल, पिलानेवाले है । इत्यादिक जो जो मनमें आया, सो ही बकवाद करके, अपना संसारखाताकी वृद्धि करती हुई, भोदू लोकोको भी, यही संसारखाताका ही शब्दको सिखाती है ।

और केवल अपना जो—परमोपकारी, तीर्थकर भगवान है, उनकीही परमशांत मूर्त्तिका पूजनसे, श्रावकोंको हटाती है । और—जो श्रावकोंके वास्ते तदन अयोग्य पितरादिक, यक्षादिक, मिथ्या-त्वी क्रूर देवताओ है, उनकी मूर्त्तिका पूजनकी—सिद्धिकरके, दिख-लाती है ॥

और सर्वपदार्थकी साथ—व्यापक स्वरूप, जो चार निक्षेप, जैन सिद्धांतोंमें—सत्य स्वरूपसें कहे गये है, उस विषयका विचार-को—परंपराका गुरुके पास पढे बिना, और ते चार निक्षेपके विषयका हेय, ज्ञेय, और उपादेयके स्वरूपसें, वस्तुभावका तात्पर्यको, समजे बिना—निरर्थ, और उपयोग बिनाका, लिखके । और गणधरा-दिक—सर्वमहापुरुषोंको, गपौडेमारनेवाले ठहरायके, अपना महामूढ पंथकी सिद्धिकरके दिखाती है ? ।

और इस प्रकारसे प्रथमके त्रण निक्षेपको—निरर्थक, ठहरायके, जैनधर्मके १ सर्व सिद्धांतोका, जैनधर्मकी २ सर्वक्रियाओका, और जैन धर्मके ३ सर्व नियमोका, और जैनधर्मके—साधु, श्रावक संबंधी—जितने व्रतो, जितनी क्रियाओ, उस—सर्वका, लोपकरकेही दिखाती है॥

जैसे कि—१ नाम निक्षेपका विषयभूत, आवश्यक, दश वैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांगोदिक—सर्व जैन सिद्धांतोका, नाम भी—निरर्थक । १ । और २ उस पुस्तकोमें लिखी हुई—स्थापना-निक्षेपका विषयभूत, अक्षरोकी पंक्ति, सो भी उपयोग बिनाकी निरर्थकरूप २ । और सामान्य मात्रसे—३ द्रव्य निक्षेपका विषयभूत जैन धर्मके सर्व पुस्तको—सो भी निरर्थक ३ । जैसे कि दंडनीजीका जूठा आशयको, पकड करके—साह बाहीलालने अपना बनाया हुवा—धर्मना दरवाजा, नामके, पुस्तकका पृष्ठ. ६३ में, प्रगट-पणे लिखके दिखायाथा ॥

और पृष्ठ. १४ में, लिखाथा कि—आ चार निक्षेप, जैन मतमां उपयोगी भाग, भजेव छे । एनी गेर समजथी—निरारंभी जैन धर्ममां, एक मूर्तिपूजक पंथ, उभो थयो छे, के जेमां—हिंसा, मुख्यत्वे छे ॥

इत्यादिक अने प्रकारका जूठही जूठ आक्षेप करके, तदन हद्द उपरांतकी, मजलको पुहचकरके—दरवाजाका पृष्ठ. ६८ । ६९ में, लिखा है कि—अरेरे भस्मग्रहना—भ्रमित आचार्योए, मात्र पेटना कारणे, दुधभांथी पौरा विणवा जेवुं काम करी—स्थापना निक्षेप, नो अवलो अर्थ लइ—मूर्तिपूजाना, अने ते अंगे यतां बीजां अग-पित पापोमां, भोली दूनीयाने—केवी डुबावी दीधी छे ?। अने डुबे-छा पाछा उठवाज न पामे तेदला माटे—तेमना उपर, कपोल कल्पित



ग्रंथोनी, केवी त्रासदायक पछेडी औढाडी दीधी छे । पृष्ठ. ७० में- भस्मग्रहना संख्याबंध, भूखथी आकूल व्याकूल थयेला आचार्यो, शा- खनुं शस्त्र बनावी, ते बडे दूनीयानो शिकार करवामां, फतेह पामि-एमां शुं आश्रय ? । परंतु जेओने अंतर्चक्षु छे, तेमने विचार करवा दो, अने पापखाइमां धकेली देनार सामे-मानसिक टकर, लेवादो ॥ इत्यादिक जो मनमें आया सोही अतिनिंद्य वचनसें लिख मारा है ॥

परंतु इस दूढकभाइको अंतरके चक्षु खुले करनेकी, और मा- नसिक टकर, लेनेकी, भलामण करके, इहांपर हम एकही बात पु- छते है कि-हे भाई दूढक ! तूने, और तेरी स्वामिनीजीने-स्था- पना निक्षेपका विषयभूत, मूर्ति मात्रको-निरर्थक, और उपयोग विनाकी, ठहराईथी ? तो पिछे-मिथ्यात्वी यक्षादिक देवोंकी, जड- रूप-निरर्थक, पथरकी क्रूर मूर्तिके आगे, तुमने मान्य कीई हुई जो हिंसा है उसको कराके, पूजा करनेवालोंको-धन, पुत्रादि, प्राप्ति होनेका-दिखाती बखते, तुमको कुछ भी विचार न आयाथा ? जो केवल धीतराग देवके परम भक्त श्रावकोंको-हिंसा धर्मी लिख मा- रते हो ? ॥

हम तो यही समजते है कि, जैन धर्मका-विपरीत बोध होनेसें, तुम दूढको जूठे जूठे लिखते हो । और निर्मल जैन तत्त्वोंको भ्रष्ट- पणा करते हो । और अनाथ भव्यजीवोंको-जैन धर्मसें भ्रष्ट करते हो । सोही तुमेरा-संसार खाता, हमको भ्रगटपणे ही मालूम होता है, बाकी दूसरा प्रकारका-संसारखाता, न तो कोई ग्रंथादिकमे, लिखा हुवा देख्या है ।

और न तो किसी महापुरुषकी पाससें, श्रवण मात्र भी किया हुवा है ॥ किस वास्ते श्रावक धर्मका लोप करके-संसारखाताका, जूठा पोकार उठाते हो ? ॥

पाठकवर्ग ? हमारे दूढ़कभाइओ, दरपणमें विपरीत विचारसँ देखनेवाला-अज्ञानी कुकुट ( कुकडा ) की तरां, अपनी भूलको-नहीं देखते. हुये, महान् महान् पूर्वाचार्योंका-अपूर्व अर्थ रत्नके भंडारा रूप, ग्रंथोंको-गपौड़े गपौड़े, कहकर निंदते है ? । कभी तो हिंसा धर्मी लिख देते है ? कभी तो मतवाल पीलानेवाले लिख देते है ? परन्तु जैन धर्मके तत्त्वोंसे विमुख होके तदन बेगुद्ध बने हुये-हमारे दूढ़कभाइओ, अपना अज्ञानका पडदा खोलके, जैन धर्मके गुद्ध तत्त्वोंकी तरफ-थोड़ीसी निघा मात्र करके भी, देखते नहीं है ? । मात्र अपना हृदयपर अज्ञानका महान् पडदा लेके, वीतराग देवकी भी निंदा । परम गुरुयांकी भी निंदा करके, जैन धर्मके तत्त्वोंको भी-विपरीत लिखनेमे, अपनी पंडिताइ समजते है ? । न तो अपना पूर्वका लेखका विचार करते है, न तो पिछेके लेखका विचार करते है, और जो मनमें आता है, सोही लिख मारते है ? । ऐसँ निकृष्ट विचारवालोंको, हम कहां तक शिक्षा देते रहेंगे ? ।

अब तो कोई उनोंका ही भाग्यकी प्रबलता होनी चाहिये. तब ही पार जावेगा ? इतना ही मात्र लिखके इस संसारखातेका स्वरूपकी भी समाप्ति ही करता हुं ॥ इत्यलमति विस्तरेण ॥

---

॥ इति हमारे दूढ़कभाइयांका संसारखातेका स्वरूपकी समाप्ति ॥

---

# ॥ प्रतिमामंडन स्तवनसंग्रहः ॥

अनेक महापुरुषों कृत.



॥ संग्रह कर्ता ॥

श्रीमद्विजयानंद सूरिशिष्य मुनि अमरविजय.



छपवायके पसिद्ध कर्ता.

स्वर्गवासी शा. छगनदास मगनदासके



स्मरणार्थे तेमणा पुत्र चुनीलाजी ॥

आमलनेरा ( जिल्हा, खानदेश, )



अमदावाद.

श्री " सत्यविजय " प्रिन्टींग प्रेसमां. शा. सांकळचंद  
हरीलाले छाप्युं.



॥ अथ श्रीमद्यज्ञोविजयजिकृत दृढकशिक्षा ॥

जिन, जिन प्रतिमा, बंदन दीसइ, समकितनइ आलाचइ । अंग  
उपासके प्रगट अरथए, मूरख मनघां नावइरे ॥ कुमती कां प्रति-  
मा ऊधापी, इमतें शुभ मतिका पीरे, कुमती. मारम छोपे  
पापीरे, कुमती कां प्रतिमा ऊधापी १ ॥ एह अरथ <sup>२</sup>अबडं  
अधिकारे, जूओ उरंग ऊवाइ । ए समकितनो मारम मरडी,  
कहइ दया सी माइरे । कु. । २ ॥ समकित विन सुर दुर  
गति पाभ्यो, अरस विरस आहारी । जूओ जमाली दयाई  
न तर्वा, हूओ बहुल संसारोरे । कु. । ३ ॥ <sup>३</sup>चारण मुनि जिन  
प्रतिमा बंदइ, भाषिउं भगवई अंगे । चैत्यसाषि आलोगणा भाषो,  
व्यवहारे मनरंगरे । कु. । ४ ॥ प्रतिमानति फल काउस्तगिं, आ-  
वश्यकमां भाषिउं । चैत्य अरथ वेयावच मुनिनिं, दसमइ अंगि  
दाखिउंरे । कु. । ५ ॥ सूरयाभ सुरे प्रतिमा पूजा, राय पसेणी मां-  
हिं । समकित विन भवजलमां पढतां, दया न साहइ बाहिरे ।  
कु. । ६ ॥ <sup>४</sup>द्रौपदीइं जिन प्रतिमा पूजा, छठइ अंगि वाचइ । तोस्युं  
एक दया पोकारी, आणाविन तूं माचइरे । कु. ७ ॥ एक जिन  
प्रतिमा बंदन द्वेषि, सूत्रघप्तां तूं छोपइ । नंदीमां जे आगम संख्या,  
ते आप मति कां गोवइरे । कु. ८ ॥ <sup>५</sup>जिनपूजा फल दानादिक सम,

१ ॥ अरिहंत चेइयाइं, पाठ, आनंदादिक भावकोका  
समकितके आलावेमें आता है । देखो नेत्रांजन १ भाग पृष्ठ. १०८  
में ॥ २ अंबडजीमें भी यही पाठ है । देखो नेत्रांजन १ भाग. पृष्ठ.  
१०४ से ८ तक ॥ ३ नेत्रांजन १ भाग. पृष्ठ. ११७ से १२१ तक ॥  
४ नेत्रांजन १ भाग. पृष्ठ ११० से ११४ तक ॥ ५ नेत्रांजन  
१ भाग. पृष्ठ. १३२ से १३३ तक ॥

( ४ )

जिनप्रतिमा स्थापन दूसरां स्तवने.

महा निशीथइं लहीइ । अंध परंपर कुमत वासना, तो किम मनमां बहिरे । कु. । ९ ॥ सिद्धारथराइं जिनपूज्या, कल्प सूत्रमां देखो । आणा शुद्ध दया मनि धरतां, मिलइ सूत्रनो लेखोरे । कु. । १० ॥ स्थावर हिंसा जिन पूजामां, जो तूं देखी धृजइ । ते पापीने दूर देशथी, जे तुज आवी पूजइरे । कु. । ११ ॥ पडिकमणइ मुनि दान विहारइ, हिंसा दोष अशेष । लाभालाभ विचारी जोतां, प्रतिमामां स्थो द्वेषरे । कु. । १२ ॥ टीका, चूरणी, भाष्य, ऊवेष्यां, ऊवेखी, निर्युक्ति । प्रतिमा कारण सूत्र ऊवेष्यां, दूरी रही तुज मुगतीरे । कु. । १३ ॥ शुद्ध परंपर चाली आवी, प्रतिमा वंदन वाणी । संमूर्छिम जे मूढ न मानइ, तेह अदिठ कल्याणीरे । कु. । १४ ॥ जिन प्रतिमा जिन सरणी जाणइ, पंचांगीना जाण । वाचक जस विजय कहइ ते गिरुआ, किजई तास वषाणरे । कु. । १५ ॥

॥ इति दूढकशिक्षा स्वाध्याय ॥

॥ अथ दूसरी शिक्षाभी लिखते है ॥

श्रीश्रुतदेवी तणइ सुपसाय, प्रणमी सदगुरु पाया । श्री सिद्धांत तणइ अनुसार इ, सीष कहूं सुखदायारे ? ॥ कुमति कां प्रतिमा ऊथापें, मुग्धलोकनइ भ्रमें पाडी, तूंपिंडभरइ कां पापइरे । कु. । २॥ सिद्धांत तणइपदि अक्षर अक्षर, प्रतिमानो अधिकार । तुमें जिनप्रतिमा कांइ ऊथापो, तो जास्यो नरक मजारिरे । कु. । ३ ॥ द्रव्य पूजानो फल श्रावकनइ, कहिउंछै फल मोटो । पूर्वाचारय प्रतिमा मानी, तो याह-रोमत षोठोरे कु. । ४ ॥ देशविरतिथी होय देवगति, तिहां प्रतिमा पूजे-

१ देखो नेत्रांजन १ भाग. पृ. १०४ में से १०८ तक. ॥  
देखो नेत्रांजन

वी। ते तो चित्त तुमारे नावे, तो तुम दूरगति लेवीरे । कु.। १॥ १श्रावक अंबड प्रतिमा वंदे, जूओ सूत्र ऊवाइ । सूत्र अरथना अक्षर मर-  
हो, ए मतिथाने किम आइरे । कु. । ६ ॥ २जंघाचारणा वीधाचारण,  
प्रतिमावंदन चाल्या । अधिकार ए भगवती बोलें, थें मुख सहु का-  
लारे । कु. । ७॥ ३श्रावक आनंदने आलावे, प्रतिमा वंदइ करजोडी ।  
उपासके विचारी जोयो, थें कुमते हियाथी छोडीरे । कु. । ८ ॥ श्री  
जिनवरना चार निक्षेपा, मानें ते जगसाचा । थापनानें उथाप  
करेंजे, बालबुद्धिनर काचारे । कु. । ९ ॥ लबाधि प्रयोजन अबधिआव-  
इ, जिमगोचरीइ इरिया । शुद्ध संयम आराधक बोल्या, गुणमणिकेरा  
दरियारे । कु. । १० ॥ ऋषभादिक जिन 'नाम' लिइं शिव, ठवणा,  
जिन आकारें । इव्य' जिना ते अतीत अनागत, भावें विहरता सार-  
रे । कु. । ११ ॥ ४द्रव्य, थापना, जो नवी मानो, तो पोथी मतजालो ।  
भावश्रुत मुखकारण बोल्ये, तो थाहरो मुखकालोरे । कु. । १२ ॥ जिनप्र-  
तिमा जिन काहि बोलावे, सूत्र सिद्धांत विचारो । ५जिनघर, सि-  
द्धायतन, ना काहियां, सत्यभाषी गणधारोरे । कु. । १३ ॥

१ भाग. पृ. १०७ सें १२१ तक ॥

२ नेत्रांजन ? भाग. पृष्ठ. ११७ सें १२१ तक ॥

३ ने० १भा. पृष्ठ. १०८ सें ॥

४ जो स्थापना, और द्रव्य, निक्षेपको, न माने उनको जैन-  
के सूत्रोंकोभी हाथमें लेना नही चाहिये, कारणकि-सूत्रोंमें अक्षरों है  
सो-स्थापना रूपसे है, और सर्व पुस्तक 'द्रव्यनिक्षेपका, विषय  
रूपका है ॥

५ जिनघर, सिद्धायतन, यह दोनोंभी नाम, वीतरागका मंदि-  
रके ही गणधर भगवानने कहे है ॥

जिनप्रति मन्वेकिं धूप ऊषेवइ. द्रौपदी सूर्याभदेवा । ज्ञाता  
 रायपसेर्णांमाहि, ए अक्षर जो एहवारे । कु. । १४ ॥ ' नमु-  
 थ्युणं ' कही शिव सुखमागें, नृत्य करी जिम आगिं । सम-  
 कित दृष्टिजिन गुणरागें, कां तुज कुमति न भागेरे । कु. ।  
 १५ ॥ सूर्याभसुर नाटिक करतां, वचन विराधक न धधो ।  
 " अणुजाणह भयवं " इणि अक्षर, आणाराधक सदसारे । कु. ।  
 १६ ॥ जलयर' थलयर' फूलनां पगरण, जानु प्रमाण समारे । जोय-  
 णलमें ए प्रगट अक्षर, समवायांग मजाररे । कु. । १७ ॥ पडिले-  
 हन करतां परमादिं, कह्या छकाय विराधक । उत्तराध्ययनना  
 अध्ययन छवीशमें, कुण दया धरमनो साधक । कु. । १८ ॥  
 नदो नाहलां ऊतरी चालो, दया किहां नव राखे । थें दयानो धर्म न  
 जाणो, रहस्यो समकित पाखेरे । कु. । १९ ॥ साधु अनें साधवी  
 बलीए, घडी छमांईं न फिरवुं । सुषिम वरषा तिहां हो ए, भगवती  
 सूत्र सहहवुरे । कु. । २० ॥ परिपाटी जे धर्म देषाडें, ते कह्या धर्म  
 आराधक । वसैं वरस पाहिलो धर्मविछेडें, ते जिनवचन विराधक  
 । कु. । २१ ॥ अत्तागम अनंतरागम बली, परंपरागम जाणो । एतीनें  
 मारगवली लोपें, ते तो मूढ अजाणरे । कु. । २२ ॥ तुंगीया नगरीना  
 श्रावक दाता, पुण्यवंत ने सौभागी । घरि घरिवें राधो विन मागें,  
 ए कुमती किहांथी लागीरे कू. । २३ ॥ योग उपधान विना श्रुत भणतां,  
 ए कुबुद्धि तिहां आई । तप जप संयम किरिया छाडें, पूर्व कमाईं  
 गमाईरे । कु. । २४ ॥ चउवीश दंडक भगवती भाष्यां, एनर दंडक  
 भिन पूजें । शुभ दृष्टि शुभ भाविं शुभ फल, देषी कुमत मत  
 धूजेरे । कु. । २५ ॥ बेंद्री तेंद्री चउरेंद्रीय, पांच थावर नरक निषासी ।

१ नेनांजन १भाग. पृ. ११० सें ११४ तक—द्रौपदीजीका  
 विचार है ॥



जे जिन बिंबतुं दरसन करे,ते दंडक नक्कां जासीरे । कु. । २६ ॥  
व्यंतर ज्योतिष्ने वैमानिक, तीर्थच मनुष्य ए जाणी । भुवनपतिना  
दश ए दंडक,इहां जिनपूज गवाणीरे । कु । २७ ॥ श्रीजिन बिंब से-  
व्यां सुखसंपति, इंद्रादिक पदरूढां । वंदन पूजन नाटिक करतां, पापे  
शिव सुख उठारे । कु. २८ ॥ कानो मात्र एक पद उथापें, ते कह्या  
अनंत संसारी । जेतो आखा खंधजलोपें, तिहारी गति छे भारीरे ।  
कु. । २९ ॥ कूवा आवाढानां पाणी पीउं,कहें अम्हे दया अधिकारी ।  
ए एकवीस पाणीमाहि कदां, थेंतो बहुल संसारीरे । कु. । ३० ॥ श्री  
महावीरना गणधर बोले,प्रतिमा पूज्यां फलरूढां । वंदन'पूजन'नाटिक  
करतां,निंदा करे ते बूढेरे । (अथवा) जेते मुगति पुहचेंरे) । कु. । ३१ ॥  
आदियुगादि सें चल आवें,देवलनां कमठाण । भरत उद्धार शत्रुंजय  
कीधो,थेंछो सह्य अनियमाणारे । कु. । ३२ ॥ आद्रकुमार शत्र्यंभवभट्टा,  
प्रतिमा देखी बूज्या । भद्रबाहु गणधर इणि परे बोले, कठिन कर्म  
स्युंज्यार । कु. । ३३ ॥ श्रावकने ए सुकृत कमाई, प्रतिमा पूजा  
अधिकार्ई । जिन प्रतिमानी निंदा करतां,मति, बुद्धि, शुद्धि,गमाईरे ।  
कु. । ३४ ॥ कठोल धान काचे गोरस जिम्यां,जीवदया किम होई  
बेंद्रीनी विराधन करतां, पूर्वकमाई तें खोईरे । कु. । ३५ ॥ सुविहित  
समाचारीयी टळीया, रति विना रडवडीया । कुमत कदाग्रह नाथे  
राता,धरमथकी ते पडीयारे । कु. । ३६ ॥ सोजत मंडन वीर जिनसरे,॥  
आगे पद हमारे हाथ.नहीं आनेसे लिखे नहीं है ॥इति समाप्त ।

१ एक धानकी बे फाडी होवे, उसको-कठोल, कहते है । मुंग,  
चणादि, उस बस्तुकी चिज छ़ास. दही. दुध उष्ण किये बिना थेला  
करें तो, उसमें तुरत जीवोत्पत्ति होती है । इस वास्ते खानेकी  
मना है ॥

॥ पुनरपि स्तवनं लिख्यते ॥

क्यूं जिनप्रतिमा ऊथापरे, कुमति क्यूं जिनप्रतिमा ऊथापे ।  
 अभय कुमारे जिनप्रतिमा मेजी, आद्रकुमारे देखी । जातिस मरण  
 ततषिण उंपनो, सूयगडोम सूत्र छे साधरि, पापी क्यूं जिनप्रतिमा  
 ऊथापे । १ ॥ सूत्र ठाणागे चौथे ठाणे, चउ निक्षेपा दाख्या ।  
 श्री अनुयोग दुवारे ते पिण, गौतम गणधरे भाष्यारे । पापी,  
 क्यूं, । २ ॥ भगवई अंगे शतक वीसमें, उदेशे नवमें आनंदे ।  
 १ जंघाचारण विद्याचारण, जिन पडिमाजई बंदेरे । पापी, क्यूं । ३ ॥  
 २ छठे अंगे द्रौपदी कुमरी, श्री जिनप्रतिमा पूजे । जिनहर सूत्रे प्रगट  
 पाठए, कुमतिने नही सूजेरे । पापी क्यूं, । ४ ॥ उपासक अंगे  
 ३ आनंद श्रावक, समाकितने आलावे । अन्न उत्थिया प्रगट पाठए,  
 कुमति अरथ न पात्रेरे । पापी क्यूं, । ५ ॥ दशमें अंगे प्रश्न व्याकरणे  
 संवर तीजे भाख्यो । निरजरा अर्थे चैत्य कह्यो हैं, सूत्रे इणिपरि  
 दाख्यारे । पापी क्यूं, । ६ ॥ सूरयाभे जिनप्रतिमा पूजी, रायपसेणी  
 उवंगे । विजय देवता जीवाभिगमें, सूत्र अर्थ जोवो रंगेरे । पापी क्यूं, ।  
 । ७ ॥ ४ अरिहंत चैत्य उवाई उपंगे, अंबडने अधिकारें । वंदइ करयइ  
 पाठ त्रिहाली, कुमती कुमत निवारेरे । पापी क्यूं, । ८ ॥ आवश्यक  
 चूर्णो भरत नरेसर, अष्टापद गिरी आचे । मानोषेत घमाणे जिननां,  
 चौवीस विंश श्रावरे । पापी क्यूं, । ९ ॥ शांति-जिनेसर पडिमा देखी  
 शयंपंभव पडि पूजे । दश वैकालिक सूत्र चूलिका, कुमति अरथ न

१ देखो-नेत्रांजन १ भा. पृष्ठ. ११७ सें. १२१ ॥ । २. ने-  
 त्रांजन. १ भा. पृष्ठ. ११० सें ११४ तक ॥ ३. नेत्रांजन. १  
 भा. पृष्ठ. १०८ में ॥ । ४. नेत्रांजन, १ भा. पृष्ठ. १०४ सें  
 १०८ तक ॥

सूजेरे । पापी क्यूं । १० ॥ शुभ अनुबंध निरजरा कारण, द्रव्य पूजाफल दाख्यो । भाव पूजा फल सिद्धिना कारण, वीर जिनेसर भाख्योरे । पापी क्यूं । ११ ॥ कुमति मंद मिथ्या मति भुंडो, आगप अग्लो बोले । जिन प्रतिपासुं, द्वेष धरीने, सूत्र अरथ नहीं खोलेरे । पापी क्यूं । १२ ॥ जे जिन बिंव तण्ण ऊथापक, नबडंडकमांहि जावे । जेहने तेह सूं द्वेष थयो ते, किम तस मंदिर आवेरे । पापी क्यूं । १३ ॥ सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, पयन्ने, ठाम ठाम आलावें । जिनपंडित पूजे शुभ भावें, मुक्तितणा फल पावेरे । पापी क्यूं । १४ ॥ संवेगी मरितारथ मुनिवर, जस विजय हितकारी । सोभाग्य विजय मुनि इणिपरि पभणे, जिन पूजा सुखकारीरे । पापी क्यूं । १५ ॥

इति कुमति निकंदन स्तवनं ३ समाप्तं ॥

॥ अथ चिंतामणि पार्श्वजिन ४ स्तवनं ॥

भविका श्री जिन बिंव जूदारो, आतम परम आधारो रे । भ । श्री । ष्टेक, जिन प्रतिमा जिनसररवी जाणो, न करो शंका कांड । आगपवाणीने अनुसारें, राखो प्रीत सवाईरे । भ । श्री । १ ॥ जे जिन बिंव स्वरूप न जाणे, ते कहियें किम जाणे । मुलातेह अज्ञानें भरिया, नहीं तिहां तस्व पिछाणेरे । भ । श्री । २ ॥ अंबड थावक श्रेणिक राजा, रावण प्रमुख अनेक । विविधपरें जिन भक्ति करंता, पाठ्या धरम विवेकरे । भ । श्री । ३ ॥ जिन प्रतिमा बहु भगंत जीतां, होय निश्चय उपगार । परमारथ गुण प्रगटे पूरण, जो जो आद्र कुमाररे । भ । श्री । ४ ॥ जिन प्रतिमा आकारें जलचर, ले बहु जलधि मज्जर । ते देखी बहूला मछादिक, पाण्या विरति प्रका-

ररे । भ । श्री । ५ ॥ पांचमा अंगें जिन प्रतिमानो, प्रगटपणे अ-  
धिकार । सुरयाभ सुर जिनवर पूज्या, रायपसेणी मजाररे । भ ।  
श्री । ६ ॥ दशमें अंगें अहिंसा दाखी, जिन पूजा जिनराज । ए  
हवा आगम अरथमरोडी, करियें किम अकाजरे । भ । श्री । ७ ॥  
समकित धारी सतीय द्रौपदी, जिन पूज्या मनरंगें । जो जो एहनो  
अरथ विचारी, छठें ज्ञाता अंगेरें । भ । श्री । ८ ॥ विजय सुरें  
जिम जिनवर पूजा, कीधी चित्त धिर राखी । द्रव्यभाव बिहुं भेदें  
कीनी, जीवाभिगमते साखीरे । भ । श्री । ९ ॥ इत्यादिक बहु  
आगम साखें, कोई शंका मति करजो । जिन प्रतिमा देखी नित न-  
वलो, प्रेम घणो चित्त धरजोरे । भ । श्री । १० ॥ चिंतामणि प्रभु  
पास पसायें, सरधा होजो सवाई । श्री जिन लाभ सुगुरु उपदेशें,  
श्री जिनचंद्र सवाईरे, भ. श्री. ११ ॥

इति चिंतामणि पार्श्व ४ स्तवन.

॥ अथ मिथ्यात्व खंडन स्वाध्याय ५ लिख्यते.

दूहा.—पूर्वाचारज सम नहीं, तारण तरण जहाज । ते गुरुपद  
सेवा विना, सबही काज अकाज । १ ॥ टीकाकार विशेष जे, नि-  
र्युक्ति करतार । भाष्य अवचुरी चूर्णिथी, सूत्र साथ मन धार । २ ॥  
यहथी अरथ परंपरा, जाणग जे मुनिराज । सूत्र चौराशी वर्णव्या,  
भविष्यण तारक जाज । ३ ॥ निजमति करता कल्पना, मिथ्यामति  
केई जीव । कुमति रचीने भोलवे, नरके करसैं रीव । ४ ॥ बाल  
अजाणग जीवडा, मूरखने मति हीन । नुगराने गुरु मानसैं, थास्थें  
दुखिया दीन । ५ ॥

ढाल—प्रणमी श्री गुरुना पदपंकज, शिखामण कहुं सारी ।

समकित दृष्टि जीवने काजें, सुणज्यो नरनें नारी । भवियण समजो हृदय मजारी । १ । ए टेक ॥ अत्तागम अरिहंतने होवें, अणंतर श्रुत गणधार । आचारजथी पूर्व परंपर, सो सदहें ते अणगाररे । भवियण समजो हृदय मजारी । २ ॥ भगवई पंचम अंगे भाख्यो, श्री जिनवीर जिनेस । भेष धरीने अवलो भाखे, करी कुलिंगनो बेसरे । भवि । ३ ॥ बाहार व्यवहारे परिग्रह त्यागी, बगलानी परें जेह । सूत्रनो अर्थ जे अवलो मरडें, मिथ्या दृष्टि कहां तेह रे । भवि । ४ ॥ आचारज ऊवजाय तणो जे, कुल मळनो परिहार तेहना अवरणवाद लवंतो, होसें अनंत संसाररे । भवि । ५ ॥ महा मोहनी कर्मनो बंधक, समवायांगे भाण्यो । श्रुतदायक गुरुने हेळवतो, अनंत संसारी ते दाख्योरे । भवि । ६ ॥ तप किरिया बहु विधनी कीधी, आगम अवलो बोख्यो । देवाकिलविषे ते थयो ' जमाली ' पंचम अंगे खोल्पोरे । भवि । ७ ॥ ज्ञाता अंगे सेलग मुरिवर, पासथ्या थया जेह । पंथक मुनिवर नित नित नमतां, श्रुतदायक गुण गेहरे । भवि । ८ ॥ कुलगण संघतणी वैयावच, करें निरजरा काजें । दशमें अंगे जिनवर भाखें, करें चैत्यनी साहजेंरे । भवि । ९ ॥ आरंभ परिग्रहना परिहारी, किरिया कठोरने धारें । ज्ञान विराधक मिथ्या दृष्टि, लहें नहीं भव पाररे । भवि । १० ॥ भगवती अंगे पंचम शतकें, गौतम गणधर साखें । समकित विन किरिया नहीं लेखें, वीर जिणंद इम भाषेरे । भवि । ११ ॥ पूर्व परंपरा आगम साखें, सदहणाकरो श्रुद्धी । परत संसारी तेहनें कहियें, गुण गृहवा जस बुद्धिरे । भवि । १२ ॥ नव सातना भेद छे बहुला, तेहना भंग न जाणें । कदाग्रहथी करी कल्पना, हठ मिथ्यात्व वखाणेरे । भवि । १३ ॥ सम्यक् दृष्टि देवतणा जे, अवरण वाद न कहिये । ठाणा अंगे इणिवरी भाख्यो, दुरलभ बोधि लहियेंरे । भवि । १४ ॥

देव वंदननी टीकाकारी, हरिभद्र सूरिराया । च्यार थुइ करी देववां  
 दिजे, वृद्ध वचन सुखदायारे । भवि । १५ ॥ वैयावच्य शांति स-  
 माधिना करता, सुर समकित सुखकारी । प्रगट पाठ टीका निर-  
 धास्यो, हरिभद्र सूरि गणधारीरे । भवि । १६ ॥ वारें अधिकारें  
 चैत्य वंदननो, न क्युं कहो हवें तेह । टीकाकार थुइ कही छे, सुर  
 सम्यक्त्व गुण गेहरे । भवि । १७ ॥ खेत्र देव श्रध्यातरादिक, का-  
 उसग कव्यो हरिभद्रें । निर्युक्तिमें प्रगट पाठ ए, देखो करी मन भद्रें  
 । भवि । १८ ॥ श्रावक सूत्र कव्यो वंदे तूं, पूरवधर मुनिराय । बोध  
 समाधि कारण बाळे, सुर समकित सुखदायारे । भवि । १९ ॥ वै-  
 शाला नगरीनो विनाशक, चैत्य थुभनो घाती । कुलबालुओ गुरूनो  
 द्रोही, सातमी नरक संघातीरे । भवि । २० ॥ इत्यादिक अधिकार  
 घणेरा, निरपक्षी थई देखो । दृष्टि रागनें दुर उवेखी, सुख कारण  
 सुबिबेकरे । भवि । २१ ॥ पंडितराय शिरोमणि कहियें, अन्नविजय  
 गुरुराय । जसविजय गुरु सुपसाये, परमानंद सुखदायारें । भवि । २२ ॥

इति मिथ्यात्व तिमिर निवारण स्वाध्याय ५ मी संपूर्ण.

॥ श्री संपति राजाका ६ स्तवन । राग आशावरी ।

धन धम संपति साचो राजा, जेणे कीधां उत्तम कामरे ।  
 सवालाख मासाद करावी, कलियुग राखुं नाम रे ॥ धन. १  
 वीर संवत्सर संवत् बीजे, तेरोत्तर रविवार रे ।  
 महाशुदि आठमी विंव भरावी, सफल कियो आवतार रे ॥ धन. २  
 श्रीपद्म प्रभु मूरती थापी, सकल तीरथ शणगार रे ।  
 कलियुग कल्प तरु ए प्रगटयो, बंछित फल दातार रे ॥ धन. ३  
 उपासरा वे हजार कराव्या, दानशाला शय सात रे ॥

- धर्म तणा आधार आरोपी, त्रिजग हुओ विख्यात रे ॥ धन. ४  
 सवालख मासाद कराच्या, छत्रीस सहस्त उद्धार रे ।  
 सवाकोडी संख्याये प्रतिमा, धातु पंचाणुं हजार रे ॥ धन. ५  
 एक मासाद नवो नीत नीपजे, तो मुख शुद्धिज होय रे ।  
 एह अभिग्रह संपति कीधो, उत्तम करणी जोय रे ॥ धन. ६  
 आर्थ सुहस्ति गुरु उपदेशे, श्रावकनो आचार रे ।  
 समाकित मूल बार व्रत पाली, कीधो जग उपगार रे ॥ धन. ७  
 भिन शासन उद्योत करीने, पाली व्रण खंड राज रे ।  
 ए संसार असार जाणीने, साध्यां आत्म काज रे ॥ धन. ८  
 गंगाणी नयरीमां प्रगट्या, श्रीपद्मपभ देव रे ।  
 विबुध कानजी शिष्य कनकने, देज्यो तुम पय सेव रे ॥ धन. ९

॥ इति श्री संपति राजाका ६ स्तवन संपूर्ण ॥

॥ अथ जिन प्रतिमाके उपर ७ स्तवन । चोपाई ॥

- जेहने जिनवरनो नही जाप, तेहनुं पासु न मेलें पाप ।  
 जेहने जिनवर सुं नही रंग, तेहनो कदी न कीजे संग ॥ १  
 जेहने नही बाहाला वीतराग, ते मुक्तिनो न लहे ताग ।  
 जेहने भगवंत सुं नही भाव, तेहनी कुण सांभलशे राव ॥ २  
 जेहने प्रतिमा शुं नही प्रेम, तेहनुं मुखहुं जोइये केम ।  
 जेहने प्रतिमा शुं नही प्रीत, ते तो पामें नही समकित ॥ ३  
 जेहने प्रतिमा शुं छे वेर, तेहनी कहो शी थामें पेर ।  
 जेहने जिनप्रतिमा नहीं पूज्य, आगम बोले तेह अवूज्य ॥ ४  
 १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ने ४ भाव, प्रभुने पूजो सही प्रस्ताव ।  
 जे नर पूजे जिननां बिंब, ते लहे अविचल पद अविचल ॥ ५

( १४ )      ॥ जिन प्रतिमान विषये ८ स्तवन ॥

पूजा छे मुक्तिनो पंथ, नित नित भाषे इम भगवंत ।  
सहि एक नरक बिना निरधार, प्रतिमा छे त्रिभुवनमां सार ॥ ६  
सत्तर अठाणुं आषाढी बीज, उज्जल कीधुं छे बोध बीज ।  
इम कहे उदय रतन उवज्जाय, प्रेमे पूजो प्रभुना पाय ॥ ७

इति जिन प्रतिमा ७ स्तवन ॥

जिन प्रतिमा विषये ८ स्तवन ॥ चेतउरे चित माणी, ए देशी ॥  
चरण नमुं श्री वीरनारे, धरि मन भाव अभंग ।  
पामी जे जसु सेवधी, ज्ञान दर्शनरे चारित्र गुण चंगकि ॥ १  
सुणज्योरे सु विचारी, तुम्हे तजि ज्योरे मन हूती शंककि, सु ए टेका  
जिन प्रतिमा जिन सारखीरे, भाषी श्री जिनराज ।  
समकित धर चित सरदहें, भवजलधिरे तरवाने काज कि ॥ सु० २  
जेहनुं नाम जपीये सदारे, धरीये जेहनी आण ।  
मूरती तास उथापतां, सहु करणीरे थाई अपामणकि ॥ सु० ३  
बंदे पूजे भाव सुरे, समकिती अरिहंत देव ।  
तिम अरिहंतना बिबनी, मन सुद्धेरे नित सारें सेवाकि ॥ सु० ४  
१ नाम, २ ठवण, ३ द्रव्य, ४ भाव सुरे, श्री अनुयोग दुवार ।  
चार निक्षेपा जिन तणा, बंदे पूजेरे ध्यावे समकित धारकि ॥ सु० ५  
भाव पूजा कही साधुनेरे, श्रावकनें द्रव्य भाव ।  
धर्म समकित जिन सेवमें, शिव सुखनोरे एही उपावाकि ॥ सु० ६  
दान शील तप दोहिलोरे, अहानिशि ए नत्री थाय ।  
भावें जिन बिंश पूजतां, भव भवनोरे सहु पातक जायकि ॥ सु० ७

१ एक नरक का स्थान छोडकरके, और सर्व जगें पर, शा-  
श्वते, और अशाश्वते, जिनेश्वर देवके बिंश ( प्रतिमा ) बिराजमान हे  
उनका पाठभी जैन सिद्धांतोंमें जगें जगें पर विद्यमान पणे है।



- नाम जपतां जिनतणुंरे, रसना ज्युं निरमल थाय ।  
 त्यूं जिनबिंब जुहारतां, निश्रे सुरे हुयें निरमल कायकि ॥ सु० ८  
 साधु अने श्रावक तणारे, कहा धर्म देई प्रकार ।  
 श्री जिनवर अने गणधरे, सर्व विरतीरे देश विरती विचाराकि ॥ सु० ९  
 श्रावकने थावरतणीरे, न पलें दया लगाार ।  
 सवा विश्वा पालें सही, ज्युं होवें चारह व्रत धाराकि ॥ सु० १०  
 वीश विश्वा पालें जतीरे, रहते निज आचार ।  
 सरसव मेरुने अंतरे, गृह धरमेरे साधु धरम संभाराकि ॥ सु० ११  
 तिण कारण श्रावक भणीरे, समाकित प्राप्ति काज ।  
 पूजा श्री जिन बिंबनी, मुनि सेवारे बोली जिनराजाकि ॥ सु० १२  
 पर्व दिवस पोसह कह्योरे, आवश्यक दुई वार ।  
 अवसर सीपाइक करें, भोजन करेरे जिन मुनीने जुहारकि ॥ सु० १३  
 १ घर करसण व्यापरनेरे, भाष्यो छे आरंभ ।  
 पूजा जिहां जिन बिंबनी, तिहां भाषीरे जिन भक्ति भदंभकि ॥ सु० १४  
 पुत्र कलत्र परिवारमेरे, सुद्ध न होय तप शील ।  
 दानथकी पूजाथकी, श्रावकनेरे थायें सुख लीलकि ॥ सु. १५  
 जिनवर बचन उथार्पानेरे, निज मन कल्पना भेलि ।  
 जिन मूरति पूजा तजे, ते जाणोरे मिथ्यातनी केलि कि ॥ सु. १६  
 जिन मुनि सेवा कारणे, आरंभ जे इहां थाय ।  
 अल्प करम बहु निर्जरा, भगवती सूत्रे भाषें जिनराज कि ॥ सु. १७  
 सूत्र बचन जे ओल्लेरे, जे आणें संदेह ।  
 मिथ्या मतना उदयथी, भारी करमारे जाणो नर तेह कि ॥ सु. १८

१ घर-खेती-व्यापारादिक स्वार्थ कार्यमां प्रवृत्ति करतां जे  
 काई सूक्ष्मजीवोनी विराधना थाय, तेनेज तीर्थकरोभे आरंभ कहेलो  
 छे; बाकी जिनपूजाने तो भक्तिज कहेली छे,

जिन मूरति निंदी जिणेंरे, तिणें निंथा जिनराज ।  
 पूजाना अंतरावयी, जीव वंधेरे दश विध अंतराय कि ॥ सु. १९  
 १ अंग, २ उपांग, ३ सिद्धांतमरे, श्रावकने अधिकार ।  
 न्हाया कर्मबाले कर्मियां, पूजानारे ए अरथ विचार कि ॥ सु. २०  
 १ जीवाभिगम, २ उवाइयेंरे, ३ ज्ञाता, ४ भगवती अंग ।  
 ५ रायषसेणीमें बली, जिन पूजारे भाषी सतरह भंग कि ॥ सु. २१  
 श्री भगवंतें भाषियारे, पूजानां फल सार ।  
 १ हित २ सुख ३ मोक्ष कारण सही, ए अक्षररे मनमें अवभाराकि ॥ सु० २२  
 चित्र लिखित नारी तणोरे, रूप देण्यां काम राग ।  
 ५ विम वैराग्यनी वासना, मनि उपजेरे देण्यां वीतराग कि ॥ सु० २३  
 श्री सत्यभद्र गणधररे, तिमवल्ली आद्र कुमार ।  
 प्रति दुज्या प्रतिमाथकी, तिणे पाम्यारे भवसामर पार कि ॥ सु० २४  
 १ दानव २ मानव ३ देवतारे, जे धरें समाकित धर्म ।  
 ते उत्तम करणी करें, ते न करें रे कोई कुलित कर्म कि ॥ सु० २५  
 तीन लोक मांहे अछेरे, जिनवर चैत्य जिके वि ।  
 ते पंचम आवश्यकें, आराधेरे मुनि धावक केवि कि ॥ सु० २६  
 सार सकल जिन धर्मनोरे, जिनवर भाष्यो एह ।  
 लक्ष्मी बल्लभ गणि कहें, जिन वचनेरे मत धरों संदेह कि ॥ सु० २७  
 ॥ इति श्री लक्ष्मी बल्लभ सूरि कृत ८ स्तवन संपूर्ण ॥

॥ अथ प्रतिमा विषय स्तवन ९ मा ॥

जैनी है सो जिन प्रतिमा पूजनसे मनबंछित फल पावत है । ए टेक ।  
 रावण नाटक पूजा करके, मोत्र तीर्थकर पद्या है । जैनी । १ ॥  
 सती द्रौपदीये प्रतिमा पूजा, ज्ञाना साख भरावत है । जैनी । २ ॥

चारण मुनिवर प्रतिमा बंदनको, रुचक नंदीश्वर जावत है। जैनी । ३५ ॥  
 सूर्याभ देवको मित्रदेवने, हितमुख मोक्ष बताया है । जैनी । ४ ॥  
 आद्र कुमारे प्रतिमा देखी ते, जाति स्मरण पाया है । जैनी । ५ ॥  
 जीवाभिगममें लवण मुठिये, श्री जिनराजको पूज्या है । जैनी । ६ ॥  
 ठाणांग सूत्रमें चार निक्षेपा, सत्यरूप बतलाया है । जैनी । ७ ॥  
 लाल कहै जिन प्रतिमा पूजे, जन्म मरण मिट जावत है । जैनी । ८ ॥

इति ९ स्तवन ॥

॥ अथ जिन प्रतिमा स्थापन रास लिख्यते ॥

॥ मुनिराजश्री बलभविजयत्रीकी तरफसें मिल्या हुवा ॥

सूय देवी हियडे धरी, सद्गुरु वयण रयण चित चारके ।  
 रास भणुं रालियामनो, सूत्रे जिन प्रतिमा अधिकारके ।  
 कुमति कदाग्रह छोड द्यो ॥ ए आंकणी ॥ ॥ १ ॥  
 मन हठ मकरो मूढ गमारके, हठ मिथ्या न वखानिये ।  
 मिथ्या ते बांधे संसारके । कु मति ॥ २ ॥  
 कुडो हठ ताणे जिके, अम्हे कहांछां तेहिज साचके ।  
 ते अधरमी आत्मा, काच समान गिणें ते प्रांचके । कु ॥ ३ ॥  
 कुमति कुटिल कदाग्रही, साच न राचें निगुण निटोलके ।  
 परम परागम बाहिरा, स्युं जाणे ते सूत्रनो बोलके । कु ॥ ४ ॥  
 गुरु कुल वासवसें जिके, ते कहिये जान प्रवीणके ।  
 शुद्ध स्रयम तेहनी फले, आगम वयण तणो रस लीनके । कु ॥ ५ ॥  
 एक वचन जे सूत्रनो, उथापे ते बांधे भवनो बंधके ।  
 पाडे तेहनी स्युं होस्ये, उथापे जे सारो स्वंधके । कु ॥ ६ ॥

१ जिन प्रतिमा जिन अंतरो, जाणे जे जिनथी प्रति कूलके ।  
 जिन प्रतिमा जिन सारखी, मानीजे ए समाकित मूलके । कु. ॥७॥  
 जिन प्रतिमा उपरि जिके, साची सहहना धारंत के ।  
 ते नरनारी निस्तरे, चउगति भवनो आणे अंतके । कु. ॥ ८ ॥  
 आज इण दूसम आरे, मति श्रुत छे तेही पण हीनके ।  
 तो किम सूत्र उथापीये, इम जाणो तुमे चतुर प्रवीणके । कु. ॥ ९ ॥  
 मन पर्यव केवल अवाधि, ज्ञान गयां तीन विछेदके ।  
 तो जिम सूत्रे भाषियो, तिम किजे मन धरिय उमेदके । कु. ॥ १० ॥  
 जे निज मन मान्यो करे, टीका वृत्ति न माने जेह के ।  
 ते मूरख मंद बुद्धिया, परमार्थ किम पामें तेह के । कु. ॥ ११ ॥  
 ए आगम मानुं अम्हे, एह न मानुं एह कहे हके ।  
 तेहने पुछो एहवो, ज्ञान किसो प्रगटयो तुम्हे देह के । कु. ॥ १२ ॥  
 दश अठावीसमें, उत्तराध्यन कही छे जोय के ।  
 आणा रुचि वीतरगनी, आगन्या ते परमाणकि होय के । कु. ॥ १३ ॥  
 तप संयम दानादि सहुं, आण सहित फलें ततकालके ।  
 धर्म सहुं विन आगन्या, अकण विन जाणे घास पलालके । कु. ॥ १४ ॥  
 तो साची जिन आगन्या, जो धरे प्रतिमामुं रागके ।  
 सूत्रे जिन प्रतिमा कही, जेह न माने तेह अभाग के । कु. ॥ १५ ॥  
 दारु प्रमुख दश थापना, बोली किरियानें अधिकारके ।  
 ० किरिया विण पिण थापना, इनही अनुयोग दुवारके । कु. ॥ १६ ॥

१ जो तीर्थकरकी प्रतिमासैं अंतर करनेवाले है सो तीर्थकरोंसैं ही दूर रहनेवाले है ॥

२ आज्ञाविनाका-दान दयादिक धर्म है सो, धान्य विनाका घास, पलाल; जैसा है ॥

३ काष्ठादिक दश प्रकारकी स्थापना, तीर्थकरोंकी भी करनेकी कही है ॥

पाठ संधारे गुरुत्वे, वैसंतां आशातना थाय के ।  
 ते केहनी आशातना ? कहौने ए अर्थ समजायके । कु. ॥ १७ ॥  
 उंधी गति मति जेहनी, दीर्घ संसारी जे छे पीडके ।  
 समजाया समजे नहीं, जो समजावे श्री महावीरके । कु. ॥ १८ ॥  
 १ जिन प्रतिमा जिन अंतरो, कोइ नहीं आगमनी साखीके ।  
 तिणही त्यां जिन हीलिये, तिण बंधो जिन बंधो दाखिके । कु. ॥ १९ ॥  
 जिन प्रतिमा दरसन थकी, मति बुज्यो श्री आद्रकुमारके ।  
 शय्यंभव श्रुत केवली, दश वैकालिनो करतारके । कु. ॥ २० ॥  
 स्वयंभू रमण समुद्रमें, मछ निहाली प्रतिमा रूपके ।  
 जाति स्मरण समकिते, सुरपदवी पामी तेह अनुपके । कु. ॥ २१ ॥  
 रायपसेणी उपांगमें, सूरयाभे पूजा किधके ।  
 शक्रस्तवन आगल कहौ, हित सुख मोक्ष तणा फल लीधके । कु. ॥ २२ ॥  
 छठे अंगे द्रौपदी, विधिसुं पूज्या श्री जिन राजके ।  
 जिन प्रतिमा आगल कहौ, शक्र स्तव ते केहने<sup>१</sup> काजके ? । कु. ॥ २३ ॥

१ प्रतिमाको नहीं मानते हो तो—गुरुके पाटकी, आसनकी आशातनासँ गुरुकी आशातना हुइ कैसें मानते हो ? इति प्रश्न ॥

२ देखो सत्यार्थ पृष्ठ. १४४ में—महा निशीथ सूत्रका पाठमें—अरिहंताणं, भगवंताणं । का पाठसँ—मूर्त्तियांकाही बोध कराया है । इस वास्ते मूर्त्तिमें और तीर्थकरोंमें भेद भाव नहीं है । जिसने प्रतिमाकी अवज्ञा कीई उसने तीर्थकरोंकी ही अवज्ञा करनेका दोष लगता है । वांटे उनको तीर्थकरोकोही वंदनेका लाभ होता है. ॥

३ द्रौपदीको—नमोऽथुंणका पाठ, कामदेवकी मूर्त्तिके आगे, दूढनी पढावती है ? ॥ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग. पृष्ठ. ११० से ११४ तक ॥

जीवाभिगमं जोड्यो, विजय देवतणे अधिकारके ।  
 सिद्धायतन आवी करी, पैसे पूरवतणे दुवारके । कु. ॥ २४ ॥  
 देवछंदे आवे तिहां, जिन प्रतिमा देखी धरे रागके ।  
 करे प्रणाम नमाय तनुं, भगति युगति निज भाव अथागके । कु. ॥ २५ ॥  
 लोमहृथ परमारजे, सुरभि गंधोदक करे पखालके ।  
 अंग लुहे अंगलुहणे, चंदन पूज करे सुविशालके । कु. ॥ २६ ॥  
 फूल चढावे प्रभुभणी, उखेवे कृष्णागर धूप के ।  
 शक्र स्तव आगल कहें, कवण हेतु ते कहो सरूपके । कु. ॥ २७ ॥  
 ठाणा अंगे भाषियो, चौथे ठाणे एह विचारके ।  
 नंदीसर जिन शास्वता, वंदे सुरवर असुर कुमारके । कु. ॥ २८ ॥  
 पूजा प्रतिमा स्थापना, जंबूद्वीप पन्नती माहिके ।  
 बीजे अध्ययने अछे, सत्तम आलावे उछाहके । कु. ॥ २९ ॥  
 पंचम अंगे भाषियो, जिन दाढा पूजे चमरेंद्रके ।  
 तेह टाले आशातना, विषय न सेवे ते असुरेंद्रके । कु. ॥ ३० ॥  
 क्यां तेतो पुद्गल हाडना, देहावयव विवर्जित जाणके ।  
 १ अर्धम अर्थ वली कामेन, कहै अर्थ कहो सुजाणके । कु. ॥ ३१ ॥  
 २ जंघा विद्या चारणा, तप शील लवधितणा भंडारके ।  
 एक डिगे मानुपोत्तरे, चैत्य जुहारे अणगारके । कु. ॥ ३२ ॥  
 बीजे डिगे नंदीसरे, तिहां वली चैत्य जुहारण जायके ।  
 तीजे डिगे आवे इहां, इहां ना पण प्रणमे जिनरायके । कु. ॥ ३३ ॥  
 भगवती अंगे इम कखो, गोयम आगे श्री महावीरके ।  
 सदहणा मन आणीने, पूजो जिनवर गुण गंभीरके । कु. ॥ ३४ ॥

१ धन पुत्रादिकके वास्ते पूजा करनी अर्धम कही है, सोही दूढनी करानेको तत्पर दुई है ॥

२ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ठ. ११७ सँ १२१ तक ॥

१ अंबड परिव्राजकतणो, आलावो श्री उवाई माहेंके ।  
 अन्य ग्रहित ते परिहरुं, वांदु जिन प्रतिमा चित लायके । कु.॥३५॥  
 सत्तम अंगे समजिने, २ आनंदनो आलावो जोइके ।  
 अन्य तीर्थ वांदु नहीं, सांप्रति जो जिन प्रतिमा होय के । कु.॥३६॥  
 ३ वली उववाइने धुरे, चंपा नगरी वरणकी जोयके ।  
 जिनमंदिर पाडा कह्या, काह न मानो कुमति लोयके । कु. ॥ ३७॥  
 साधु करे चैय तणो, बेयावच ते केहै भायके ।  
 ४ पएहा वागरणे कह्यो, साचो अर्थ कह्यो समजायके । कु. ॥३८॥  
 अष्टापद गिरि उपरे, चैत्य करायो भरतें पुण्यने कामके ।  
 आवश्यक चूर्णी कहुं, देवलासिंह निषद्या नामके । कु. ॥ ३९ ॥  
 ५ ज्ञाता अंगे उपदिशी, जिनवर पूजा सतर प्रकारके ।  
 जीवाभिगम उपांगमें, तिहां पिण छे एहिज अधिकारके । कु.॥४०॥  
 श्रीव्यवहार सिद्धांतमें, प्रथम उदेशे कह्यो शुद्धके ।  
 श्रीजिन प्रतिमा आगळे, ६ आलोचना लीजे मन शुद्धके । कु.॥४१॥  
 विद्युनमाली देवता, कीधी प्रतिमा बोध निमित्तके ।

- १ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ठ. १०४ से १०८ तक ॥  
 २ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ठ १०८ से १०९ तक ॥  
 ३ देखो इसका विचार-नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ठ १०३ से १०४ ॥

४ साधुभी चैत्य ( मंदिर ) की बैयावच करे, देखो प्रश्न व्याकरण ॥

५ ज्ञाता सूत्रमें-सतरभेदी पूजा करनेका उपदेश है ।

६ प्रतिमाके आगे-साधुको दूषणकी आलोचना करनेका, व्यवहार सूत्रमें कहा है ॥

उपदेश अच्युत देवने, प्रभावती पूजा शुभ चित्तके । कु. ॥ ४२ ॥  
 श्री आवश्यके दाखियो, वगुर शेट तणो दिष्टांतके ।  
 मल्लि स्वामी प्रतिमा तणी, इह लोकारथ सेव करंतके । कु. ॥ ४३ ॥  
 गाथा भक्त पयन्ननी, जोवो श्रावक जन आलंबके ।  
 करावे जिन द्रव्यसुं, जिनवर देवल जिन विंबके । कु. ॥ ४४ ॥  
 चौबी सथ्यो मानो तुम्हे, कीत्तिय, बंदिय, महिया, पाठके ।  
 महियानो श्युं? अर्थ छे, साच कहो एकडो मांडके । कु. ॥ ४५ ॥  
 नाम जिना ठवणा जिना, द्रव्य जिना भावजिना वखाणके ।  
 मानो कांइ न मूढमति, चारे निक्षेपा सूत्रां जाणके । कु. ॥ ४६ ॥  
 भुवण पति वाण व्यंतरा, जोइसी वली बेमाणिय देवके ।  
 ए सुर चार निकायना, सारे जिन प्रतिमानी सेवके । कु. ॥ ४७ ॥  
 नंदी अनुयोग दुवारमें, पूजाना सगले अधिकारके ।  
 सूत्रेही माने नहीं, तो जाणिये बहुल संसारके । कु. ॥ ४८ ॥  
 जो कहिस्थो पूजा विषे, थाय छे बहुलो आरंभके ।  
 तो दृष्टांत कहूं सांभलो, मत राखो मन मांहि दंभके । कु. ॥ ४९ ॥  
 ज्ञाता अंगे इम कह्यो, प्रतिबोध्या मल्लिनाथे छ मित्रके ।  
 प्रतिमा सोवनमें करी, दिन प्रति मूके कवल विचित्रके । कु. ॥ ५० ॥  
 जीव तणी उतपति थइ, कुथित आहार तणो परमाणके ।  
 सावद्य आरंभ ये कियो, त्रिहुअरथामें अरथ वखाणके । कु. ॥ ५१ ॥

१ महिया, शब्दका अर्थ-देखो सम्यक्क शल्योद्धारमें ॥

२ आरंभमें धर्म नहीं होता है, ऐसा कहने वालेको समजाते हैं।

३ छ मित्रको प्रतिबंधनेके वास्ते-मल्लिनाथने, जीवोंकी उत्पात्ति कराईथी, सो धर्मके वास्तेकि, अधर्मके वास्ते ? ॥



१ वली मुबुद्धि मंत्रोत्तरे, प्रतिबोधन जितशत्रु महाराजके ।  
 फरहोदक आरंभियो, ते आरंभ कहो किण काजके । कु. ॥ ५२ ॥  
 थावच्चा पुत्रनो कियो, कृष्णे व्रत उल्लव अतिसारके ।  
 स्नान आदिक आरंभियो, काम धरमके अरथ विचारके । कु. ॥ ५३ ॥  
 असूरयाभे नाटक कियो, भगवंत आगल बहु विस्तारके ।  
 तिणे ठामे आरंभ थयो, किंवा न थयो करो विचारके । कु. ॥ ५४ ॥  
 धेरु शिखर महिमा करे, जिन न्हवरावे मिल सुर रायके ।  
 आरंभ जइ बहुलो कियो, जाणी जै छै पुण्य उपायके । कु. ॥ ५५ ॥  
 श्रेणिक कोणिक वंदवा, चाल्या ह्य गय रथ परिवारके ।  
 तिहां कारण स्थुं जाणिये, आरंभ विण नहि धरम लगारके । कु. ॥ ५६ ॥  
 गुरु आव्या उल्लवकरो, नरनारी मिल सामा जाय के ।  
 ते आरंभ न लेखवो, तो जिन पूजा उथापो कांइके । कु. ॥ ५७ ॥  
 पुहचें देवलोक वारमें, नवा प्रसाद करावन हारके ।  
 दीसैं अक्षर एहवा, महा निस्सीथ सिद्धांत मजार के । कु. ॥ ५८ ॥

१ राजाको प्रतिबोधनेके वास्ते, गंदा पाणीको स्वच्छ किया, सो धर्मके वास्तेकि, अधर्मके वास्ते ? ॥

२ थावच्चा पुत्रका व्रत ओल्लवमें, कृष्ण राजाने स्नानादिक अनेक आरंभ, धर्मके वास्ते कियाकि, अधर्मके वास्ते ? ॥

३ सूर्याभ देवने-भगवंतकी भक्तिके वास्ते, नाटक किया, उसमें-आरंभ हुवा कि नहीं ? ॥

४ भगवंतोंके जन्म महोत्सवमें-नदीयां चाले उतना पाणीका आरंभ, देवताओंने-पुण्यके वास्ते, किया कि नहीं ? ॥

५ श्रेणिकादि, बडा आरंभके साथ-वंदना करनेको, धर्मके वास्ते-गये कि नहीं ? ॥

जिन प्रतिमा जिन देहरां, जेह करावे चतुर सुजाण के ।  
 लाभ अनंत गुणो हूवे, इम बोले आगमनी वाण के । कु. ॥२९ ॥  
 पूजे पितर करंडिये, पूजे देवीने क्षेत्रपालके ।  
 जिन प्रतिमा पूजे नहीं, ए तो लागे सबल जंजालके । कु. ॥ ६० ॥  
 चित्र लिखित जे पुतली, तेजोयां वाधे कामके ।  
 तो प्रतिमा जिनराजनी, देखतां शुभ परिणामके । कु. ॥ ६१ ॥  
 इम ठामे ठामे कब्यो, जिन प्रतिमा पूजा अधिकारके ।  
 जे मानें नहीं मानवी, ते रुळसी संसार अपारके । कु. ॥ ६२ ॥  
 आगम अर्थ सहं कहे, तहत्ति करे जे आगम मांहिके ।  
 जिन प्रतिमा माने नहि, तेतो माहरी माने वांझके । कु. ॥ ६३ ॥  
 अरथ आगमना ओलवें, नवा बनावे हिया जोरके ।  
 खोटाने थायें खरा, बेटो चोर तो वापही चोरके । कु. ॥ ६४ ॥  
 मुज मन जिन प्रतिमा रमी, जिन प्रतिमा माहरे आधारके ।  
 संदहणा मुझ एहवी, जिन प्रतिमा जिनवर आकारके । कु. ॥ ६५ ॥  
 सतरे पचीसी सालमें, कियो रास जिन प्रतिमा अधिकारके ।  
 विनवे दास जिन राजनो, करो झटपट प्रभु पारके । कु. ॥ ६६ ॥

इतिसंपूर्ण ॥

१ हमारे दूढ़को तीर्थकरोंके भक्त होके, वीर भगवानके श्राव-  
 कोंकोभी—मिथ्यात्वी जे पितरादिक है,उनकी पूजा—दर रोज, करा-  
 नेको उद्यत हुये है, उसमें—आरंभ नहीं, देखो सत्यार्थ पृष्ठ. १२४  
 सें १२६ तक ॥

२ अदृश्यरूप यक्षादिक देवोंकी—प्रतिमा, बने । मात्र साक्षा-  
 तरूप तीर्थकरोंकी—प्रतिमा, न बने ॥ यह है तो मारी—मा, पिण  
 सो तो वांझनी ? हमारे दूढ़क भाईयांकी अकल तो देखो ! ॥

॥ अथ प्रतिमाकी भक्तिका स्तवन ॥

जिन मंदिर दरसन जाना जीया,	
जाना जीया सुख पानार्जिया.	जि०
जिन मंदिर दरसन जानें ते,	
बोध बीजका पानार्जिया.	जि० ए टेंक.
केशर चंदन और अरगजा,	
प्रभुजीकी अंगीयां रचाना जीया.	जि० ॥ १ ॥
चंपा मरुवो गुलाब केतकी,	
जिनर्जाके द्वार गुंधाना जिया.	जि० ॥ २ ॥
द्रौपदीये जिन प्रतिमा पूजी;	
सूत्र ज्ञाताजी मानो जीया.	जि० ॥ ३ ॥
जिन प्रतिमा जिन सरस्वी जानो;	
सूत्र उवाई मानो जीया.	जि० ॥ ४ ॥
रायणरुख समोसर्या प्रभुजी;	
पूर्व नवाणुं वारा जीया.	जि० ॥ ५ ॥
सेवक अरज करे करजोडी;	
भव भव ताप भीटावना जीया.	जि० ॥ ६ ॥

॥ इति संपूर्ण ॥

॥ जिन प्रतिमा विषये महात्माके उद्गारो ॥

जिनवर प्रतिमा जगमां जेह, भावे भवियण वंदो तेह, जिम भवनो हुयें छेह । नामादिक निक्षेवा भेय, आराधनाए सवि आ-  
राधेय, नहीं ए कोइ हेय । वाचक विणु कुण वाच्य कह्य, थाप्या  
विणु किम सो समरेय, द्रव्य विना न जाणेय । भान विना किम

साध्य सधेय, भाव अवस्था रोपे ऋणोय, भाव रूप सदहेय ॥ १ ॥

॥ यह प्रथमके उद्धारमें चाली भिन्न है ॥

अर्थ—हे भव्यजनो जे आ जगतमां, जिन प्रतिमा है उनको तुम-बंदो, जिसें तुमेरा भवका छेह [ अर्थात् अंत ] आ जावें । जे नामादिक निक्षेपके भेद है, ते सर्वे—आराधना करके, आराधन करनेके योग्य है । परंतु त्यागने लायक इसमेंसें एक भी नहीं है । क्यों कि नाम ( वाचक ) बिनाके, [ वाच्य ] तीर्थकरो ही, नहीं होते है ? । और उनोंकी—आकृति [ मूर्ति ] का, विचार किये बिना—स्मरण भी, नहीं होता है २ । और आकृति है सो-द्रव्य वस्तुके बिना, नहीं होती है ३ । और तीर्थकरोका-भाव, दिलमें लाये बिना, अपना जो पापका नाश करने रूप साध्य है, सो भी सिद्ध होनेवाला नहीं है ।

और नामादिक जे ऋण निक्षेप है, सोही-भाव अस्थाको, जनानेवाले है । इस वास्ते ते पूर्वके ऋण निक्षेपो ही, भाव रूपसें सदहना करनेके योग्य है ॥ १ ॥

\* ॥ रसना तुज गुण संस्तवे, दृष्टि तुज दरसनि, नव अंग पूजा समें, काया तुज फरसनि । तुज गुण श्रवणें दो श्रवण, मस्तक प्रणिपातें, श्रुद्ध निमित्त सवे हुयां, शुभ परिणाति थातें । वि-

\* दूंदनीजीने सत्यार्थ पृष्ठ. १७ में, लिखाथाकि—जिनपद नहीं शरीमें, जिनपद चेतन मांह । जिन वर्णन कळु और है, यह जिन वर्णन नांह ॥ १ ॥

इस महात्माका-दूसरा, तिसरा, उद्गारसें । दूंदनीजी अपना लिखा हुवा दुहाका-तात्पर्य अछीतरां विचार लेवें ॥

विध निमित्त विलासथीए, विलसी प्रभु एकांत, अवतरिओ अभ्यं-  
तरे, निश्चल ध्येय महंत ॥ २ ॥

अर्थ—हे भगवन् तेरा गुणोंकी स्तुति करने मात्रसें तो, रसना ( जीव्हा ), और मूर्त्तिद्वारा तेरा दरसणसें दृष्टि । और नव अंग-  
की पूजा करनेके समयमें मूर्त्तिद्वारा तेरा स्पर्श करके काया । और  
तेरा अनेक गुण गर्भित स्तुतिओंका—श्रवण करनेसें, दो श्रवण  
( कर्ण ) । और मूर्त्तिद्वारा तेरेको नमस्कार करनेके अवसरमें—म-  
स्तक । यह सर्व प्रकारके, हमारे अंगके अवयवो, शुभ निमित्तमें  
जुडके, हमारी शुभ परिणति होते हुयें, ऐसे विविध निमित्तोंके  
योगसें, हमारा अभ्यंतरमें दाखल हुयेला प्रभुको, एकांत स्थलमें  
विलसेंगे, तबही निश्चयसें ध्येयरूपे भगवान होगा ॥

इसमें तात्पर्य यह है कि—प्रथम प्रभुकी मूर्त्तिका शुभ निमित्तमें,  
हमारे अंगके—अवयवोंको, व्यवहारसें जोडेगे, उनके पिछे ही—  
तीर्थकर भगवान्का स्वरूप, निश्चयसें हमारी परिणतिमें दाखल  
होंगे ? परंतु तीर्थकरोंकी—आकृतिरूप, बाह्य स्वरूपका शुभ निमि-  
त्तमें, हमारे अंगोंके जोडे बिना, निश्चय । स्वरूपसें तीर्थकरोंका  
स्वरूपको तीन कालमें भी न मिलावेंगे ॥ २ ॥

॥ भाव दृष्टिमां भावतां, व्यापक सविठाभिं, उदासीनता अव-  
रस्थुं, लीनो तुज नामिं । दिठा विणु पणि देखिये, सुतां पिण ज-  
गवें, अपर विषयथी छोडवें, इंद्रिय बुद्धि त्यजवें । परार्धीनता मिट  
गए ए, भेदबुद्धि गइ दूर, अध्यात्म प्रभु प्रणमिओ, चिदानंद  
भरपुर ॥ ३ ॥

अर्थ—पूर्वके उद्गारका तात्पर्य दिखाने के वास्ते, यही महात्मा—  
अपना अभिप्राय प्रगटपणे जाहिर करते है । सो यह है कि—भाव

दृष्टिमां भावतां व्यापक सर्वाटामि, इस वचनका तात्पर्य यह है कि—हे भगवन् जब हम हमारी जीव्हासे ऋषभदेवादिक महावीर पर्यंत, दो चार अक्षरोंका उच्चारण करके—तुमेरा नाम मात्रको लेते है, उहां पर भी व्यापकपणे हमको—तूं ही दिखलाई देता है । और हमारी दृष्टि मात्रसें जब तेरी आकृति ( अर्थात् मूर्ति ) को देखते है, तब भी उहांपर, हे भगवन् हमको—तूंही दिखलाई देता है । और तेरी बालक अवस्थाका, अथवा तेरी मृतकरूप शरीरकी अवस्थाका, विचार करते है उहांपर भी, हमको—तूंही दिख पडता है । और तेरा गुण ग्राम करने की स्तुतिओंको पढते है, उहांपर भी—हमको तूंही दिख पडता है । क्योंकि—जब हमारी भावदृष्टिमें, हम तेरेको भावते है; तब हे भगवन्—सर्व जगोपर, हमको तूंही व्यापकपणे, दिखता है । परंतु—उदासीनता अवरस्युंत्तीनो तुज नामिं, तात्पर्य यह है कि—जब हम—ऋषभदेवादिक महावीर पर्यंत, नाम के अक्षरोंका उच्चारण करते है, तब हम इन अक्षरोंसें, और इस नाम वाली दूसरी वस्तुओंसे भी, उदासीनता भाव करके, हे भगवन् हम तेरा ही नाम में लीन होके, तेरा ही, स्वरूपको भावते है । इस वास्ते हमको—दूसरी वस्तुओ, बाधक रूपकी नहीं हो सकती है । एसें ही—हे भगवन् तेरी आकृति ( अर्थात् मूर्ति ) को देखते है, उस वखत भी—काष्ठ पाषाणादिक वस्तुओंसें भी, उदासीनता रखके ही, तेरा ही स्वरूपमें लीन होते है । एसें ही हे भगवन् तेरी पूर्व अपर अवस्थामें, जो जड स्वरूपका—शरीर है, उस वस्तुसें भी—उदासीनता धारण करके, हम तेरा ही स्वरूपमें लीन होते है । इसमें तात्पर्य यह कहा गया कि—१ नाम के अक्षरोंमें । और २ उनकी आकृतिमें । और ३ उनकी पूर्व अपर अव-

स्थानमें भी, साक्षात् स्वरूपसें भगवान् नहीं है तो भी, हम भक्तजन हैं सो—भावदृष्टिसें, भगवान्को ही साक्षात्पणे भावनासें कर लेते हैं। इसवास्ते आगे कहते हैं कि—दिठाविगुणं परिण देखिये, तात्पर्य—हे भगवन् न तो हम तुमको—रूपभादिक—नामके अक्षरोंमें, साक्षात्पणे देखते हैं। और नतो तेरेको—मूर्ति मात्रमें, साक्षात्पणे देखते हैं। और नतो तेरेको पूर्व अपर अवस्थाका शरीरमें भी, साक्षात्पणे देखते हैं। और नतो तेरा गुणग्रामकी स्तुतिओंमें भी, तेरेको साक्षात्पणे देखते हैं। तोभी हम तेरेको हमारी भावदृष्टिसें—सर्व जगेंपर ही देख रहे हैं।

और हे भगवन्! हम अनादिकालके अज्ञानरूपी अंधोर निद्रामें सुते हैं, तोभी तू अपना अपूर्व ज्ञानका बोध देके, हमको जगावता है। इसी वास्ते महात्माने अपना उद्गारमें कहा है कि—सुतांपिण जगवें, अर्थात् एसी अंधोर निद्रा सेंभी, तू हमको जगावता है। इतनाही मात्र नहीं परंतु जब हम तेरी भक्तिमें—लीन होजायगें, तब जो हमारी इंद्रियोंमें—इंद्रियपणेकी बुद्धि हो रही है, सोभी तेरी भक्तिके वससें—लुट जायगी, हसीही वास्ते महात्माने कहा है कि—इंद्रिय बुद्धि त्यजवें, जब ऐसें इंद्रियमेंसें इंद्रिय बुद्धि हमारी लुट जायगी, तब हमारी जो पराधीनता है सोभी—मिट जायगी। इसी वास्ते कहा है कि—पराधीनता मिटगए ए, जब एसी पराधीनता मिटजायगी—तब जो हमको तेरा स्वरूपमें, और हमारा स्वरूपमें भेदभाव मालूम होता है, सोभी दूर हो जायगा। इसीवास्ते महात्माने कहा है कि—भेदबुद्धि गई टूर, जब ऐसें—भेदबुद्धि, न रहेगी तबही हे भगवन्—तेरा साक्षात् स्वरूपको हम नमस्कार करेगे। परंतु पूर्वमें दिखाइ हुई अवस्थामें, तेरेको हम साक्षात्पणे—नमस्का-

र, नहीं करसकतेहै। जब ऐसा अनुक्रमसें दरजेपर जावेंगे तब तेरेको हम साक्षात्पणे नमस्कार करनेके योग्य होजावेंगे। तब तो हम हमारा आत्मामें ही मग्नरूप होजायगे। इसी हीवास्ते महात्माने कहा है कि—चिदानंद भरपुर, जब हम एसें चढजावेंगे तबही हम हमारा आत्मैकि आनंदमें भरपुर मग्नरूप हो जायगे। तब हमको कोईभी प्रकारका दूसरा साधनकी जरुरात न रहेगी ॥ ३ ॥

अब हम इन महात्माके उद्गारोंका तात्पर्य कहते हे—जब हमको साक्षात्पणे—तीर्थकरोंको, नमस्कार करनेकी इच्छा होगी, तब हम इस महात्माने जो क्रम दिखलाया है, उस क्रम पूर्वक तीर्थकरोंकी सेवा करनेमें—तत्पर होंके, महात्माने दिखाई हुई हृदको पृहचेंगे, तबही हमारा आत्माको—साक्षात्पणे तीर्थकरोंका दर्शन, करा सकेंगे। परंतु पूर्वकी अवस्थामें तो—इस महात्माके कथन मुजब, १ नाम स्मरण, २ प्रतिमाका पूजन, और ३ तीर्थकरोंकी स्तुतिओंसें—गुणग्राम करकेही, हम हमारा आत्माको—यत्किंचित्के दरजेपर, चढा सकेंगे। परंतु पूर्वके शुभ निमित्तों मेंसें, एकभी निमित्तका त्याग करके—साक्षात्पणे तीर्थकरोंका दर्शन, तीनकालमेंभी न करसकेंगे ? क्योंकि जबभी ऋषभदेवादिक—नामोंके अक्षरोंमें, तीर्थकरो नहीं है, तोभी हम उनको उच्चारण करके—वंदना, नमस्कार, करते हीहै। तो पिछे तीर्थकरोंका विशैष बोधको कराने वाली तीर्थकर भगवानकी—मूर्त्तिको, वंदना, नमस्कार, क्यों नहीं करना ? यह तो हमारी मूढताके शिवाय, इसमें कोईभी प्रकारकी दूसरी बात नहीं है.

॥ इत्यलंविस्तरेण ॥



॥ श्री षड्जैन धर्मोपदेष्टा माधव मुनि विरचित ॥

स्तवन तरंगिणी द्वितीय तरंग.

साधुमार्गी जैन उद्योतनी सभा, मानसरोवरी  
आगराने ज्ञान लाभार्थ मुद्रित कराया ॥

अथ स्यान सुमति संवाद पद । राग रसियाकीमें ॥

अजब गजबकी बात कुगुरु मिल, कैसो वेश बनायोरी ॥ टेर ॥  
मानो पेट शेत पट ओदन, जिन मुनिको फरमायोरी. अ० ॥ १ ॥  
कल्पसूत्र उत्तराध्ययनमें, प्रगटपणे दरसायोरी. अ० ॥ २ ॥  
तो क्यों पीत वसन केसरिया, कुगुरुने मन भायोरी. अ० ॥ ३ ॥  
भिष्ट भये निर्मल चारितसे, तासे पीत मुहायोरी. अ० ॥ ४ ॥  
नही वीर शासन वरती हम,यों इन प्रगट जतायोरी अ० ॥ ५ ॥  
तो भी शूद्र मति नहीं समजे, ताको कहा उपायोरी. अ० ॥ ६ ॥  
रजोहरणको दंड अभेहित, मुनि पटमांहि लुकायोरी. अ० ॥ ७ ॥  
तो क्यों आकरणांत दंड अति, दीरघ करमें सहायोरी. अ० ॥ ८ ॥  
त्रिविध दंड आतम दंडानो, ताते दंड रखायोरी. अ० ॥ ९ ॥  
मुहणंतग मुखपै धारे बिन, अवश प्राणि वध थायोरी. अ० ॥ १० ॥  
तो क्यों करमें करपाति धारी, हिंसा धरम चलायोरी. अ० ॥ ११ ॥

१ जैन धर्मका—सुख किधर है, इतने मात्रकी तो—स्वर्ग भी नहीं है, तो भी जैन धर्मके—उपदेष्टा बन बैठे है ? ॥

२ सम्यक्क शल्योद्धार, और यह हमारा ग्रंथसें भी थोडासा विचार करो ? तुमेरेमें मूढता कितनी व्याप्त हो गई है ? ॥

विपत कालमें वेश बदल इन, मांग मांग कर स्वायोरी. अ० ॥ १२ ॥

पडी कुरीत कहो किम छुटे, पक्षपात प्रगटायोरी. अ० ॥ १३ ॥

क्या अचरजकी बात अलीये, काल महातम छायोरी. अ० ॥ १४ ॥

स्यान सुमाति संवाद सुगुरु मुनि, मगन पसायें गायोरी. अ० ॥ १५ ॥

॥ इति ॥

॥ पुनः ॥

तीन खंडको नायक ताको, रूप बनावें जाली है ।

देखो पंचम काल कलूकी, महिमां अजब निराली है ॥ टेर ॥

रूपामर नीच अधम जन आगे, नाचै दे दे ताली है. दे० ॥ २ ॥

पदमा पतिको रूप धारकें, मागैं फेरै थाछी है. दे० ॥ ३ ॥

बने मात पितु जिनजीके, ये बात अचभै वाली है. दे० ॥ ४ ॥

जंबूरूप बनाके नांचे, कौसी पडी प्रनाली है. दे० ॥ ५ ॥

इत्यादिक निंदाकी पोथी विक्रम संवत्. १९३५ में आगरे  
वालोंने छपाई है ॥

१ प्रथम देख आजीविका जुटनेसें विपत्तिमें आके-लौकाशा  
बनीयेने, मांग मांगके स्वाया ? ॥ पिछे गुरुजीके साथ लडाइ हो  
जानेसें-विपत्तिमें आके, लवजी दूढकने-मांग मांगके खाना सरु  
किया । तुम लोक भी गप्पां सप्पां मारके, उनोंका ही अनुकरण  
कर रहे हो ? दूरोंका जूठा दूषण क्यों देते हो ? ॥

२ तीर्थकर भगवानके वैरी होके-पितर, भूत, यक्षादिकोंकी  
प्रातिमाको पूजाने वाले--नीच, अधम, कहे जावेंगे कि--तीर्थकरोंके  
भक्त ? उसका थोडासा विचार करो ? ॥

पुनः पृष्ठ. ३० में—लावणी बहर खडी ॥

पणी मुकरको जो न पिछाने, वो कैसा जोहरी प्रधान ।  
जो शठ जड चेतन नहीं जाने, ताको किम कहियै मतिमान ॥ टेर ॥  
जडमें चेतन भाव विचारे, चेतन भाव धरे ।  
प्रगट यही मिथ्यात्व मूढ वो, भीम भवो रधि केम तरे ।  
मुक्त गये भगवंत तिन्होंका, फिर आह्वानन मुख उचरे ।  
करे विसर्जन पुन प्रभुजीका, यह अद्भुत अन्याय करे ।  
दोऊ विध अपमान प्रभुका, करे कहे कैसे अज्ञान. जो शठ. ॥ १ ॥  
श्रुत इंद्री जाके नहीं ताको, नाद बजाय सुनावे गान ।  
चक्षु नहीं नाटक दिखलावे, हाथ नचाय तोड करतान ।  
जाके घ्राण न ताको मूरख, पुष्प चढावे बे परमान ।  
रसना जाके मुखमें नाहीं, ताको क्यों चांहे पकवान ।  
फोगट भ्रम भक्तीमें हिंसा, करे वो कैसे हैं इन्सान. जो० ॥ २ ॥  
जब गोभूम चना आदिक सब, धान्य सचित जिनराज मने ।  
प्रगट लिखा है पाठ सूत्र, सामायिक माहीं वियक्रमने ।  
दग्ध अन्न अंकुर नहीं देवे, देखा है परतक्षपणे ।  
तो भी शठ हठसे बतलावे, अचिन कुहेतू लगा घणे ।  
अभिनिवेश उन्मत्त अज्ञको, आवे नहीं श्रुद्ध श्रद्धान. जो. ॥ ३ ॥

१ जिन पूजन छुडवायके, पितरादिक पूजाते है उनको, मणि काचकी खबर नहीं है कि हमको ? विचार करो ? ॥

२ प्रतिष्ठादिक कार्यमें आह्वान, और विसर्जन. इंद्रादिक देवताओंका किया जाता है। इस दूढकको खबर नहीं होनेमें, भगवानका लिखमारा है ? गुरु विना ज्ञान कहाँमें होगा ? ॥

३ यह दूढक—हमको उन्मत्त, और अज्ञान—ठहराता है। परंतु पहिलेसे ख्याल करोकि, दूढनी पार्वतीजी—यक्षादिक, पितरादिक

श्रुद्ध श्रद्धान विना सब जप तप, क्रिया कलाप होय निस्सार ।  
 विन समकित चउदह पूर्वके, धारी जांय नरक मंभार ।  
 हे समकित ही सार पाय, नरभव कीजै सत असत विचार ।  
 सुगुरु मगन सुपसाय पाय मति, माधव कहै सुनों नरनार ।  
 तजके पक्ष लखो जड चेतन, व्यर्थ करो मत खेंचातान. जो. ॥४॥

॥ इति ॥

॥ प्रगट जैन पीतांबरी मूर्त्तिपूजकोका मिथ्यात्व ॥

ग्रंथ कर्ता.

गलाधिपति श्रीमत्परमपूज्य श्री १००८ श्री रघुनाथजी महाराजके संप्रदायके महामुनि श्री कुंदनमलजी, महाराज नाम धारक दूढ़क साधुने, कितनाक प्रयोजन विनाका-अगडं बगडं लिखके, छेवटमें एक स्तवन लिखा है.

देवांकी मूर्त्तियांकी-पूजा करानेको, तत्पर हुई है। उसमूर्त्तियांको कौनसा चेतनपणा है ? और वह मूर्त्तियांकी कौनसी इंद्रियां काम कर रहियां है ? जो केवल अपना परम पूज्यकी, परम पवित्र मूर्त्तियांकी, अवज्ञा करके-अपना उन्मत्तपणा, और अपना अज्ञानपणा, जाहीर करते हो ? ॥

१ जबसें तीर्थकर देवकी मूर्त्तियांकी, और जैन सिद्धांतोंकी, अवज्ञा करके-यक्षादिक, पितरादिक देवताओंकी-मूर्त्तियांके भक्त बननेको, तत्पर हुये हो तबसें ही तुमेरा समकित तो, नष्ट ही होगया है। तुम समकित धारी बनते हो किस प्रकारसें ? ॥

॥ राग. भूँडीरे भूख अभागणी लालरे. एदेशी ॥

मच्यो हुलर इन लोकमें, खोटो हलाहल धार लालरे ।  
सांच नहीं रंच तेहमें, मिथ्यात्वी कियो पोकार लालरे । मच्यो ॥१॥  
कुंदन मुनि, राजमुनि, निंदक जिन प्रतिमाका होय लालरे ।  
तेपिण ठिकाणें आविया, लीजो चित्रिका जोय लालरे । मच्यो ॥२॥

? यह स्तवन उत्पत्ति होनेका कारण यह है कि—नागपुर-  
पास—हिंगनघाट गाममें, मंदिरकी प्रतिष्ठामें, दोनोपक्ष सामिलयें  
कंकु पत्रिकामें—संवेंगी सुमतिसागरजीका, तथा मणिसागरजीका—  
नाम, दाखल कियाथा ॥

इस दूढकने—खटपट करके, अपना—नाम भी, दाखल करवाया ॥

तब जैन पत्रमें, इस दूढककी—स्तुति, कीई गईथी, ते बदल  
कपीला दासीका, अनुकरण करके, यह पुकार किया है ॥

और एक अप्रासंगिक व्यवहारिक विचारको समझे बिना उ-  
समें अपनी पंडिताई दिखाई है ? ऐसे विचार शून्योको हम बारं-  
वार क्या जुचाप दें ? जो उनको समज होगी तब तो यह हमारा  
एकही ग्रंथ बस है ? ॥

॥ इस दूढकने पृष्ठ-१२ में लिखा है कि, मुनी या श्रावक म-  
त्यक्ष मरणकी पत्रा न करके अन्यमतके धर्मका, देवका, गुरुका, व ती-  
र्थका, शरण कदापि नहीं करेंगे, और नहीं श्रद्धेंगे ॥

इसमें कहनेका इतना ही है कि, दूढनीजी तो—वीर भगवानके,  
परम श्रावकोकी पाससें भी—पितर, दादियां, भूतादिकोकी—मूर्त्ति, दर-  
रोज पूजानेको, तत्पर हुई है । हमारे दूढक भाईयांका ते मत किस  
प्रकारका समजना ? ॥

( ३६ )      जिन प्रतिमाके निंदकोंको शिक्षा.

एहवा ठिकाणे आविया, दूजाने आणो चाय लालरे ।  
एहवा मिथ्या लेख मोकल्या, देश देशांतरभांय लालरे । मच्यो ॥ ३ ॥  
तीन कर्ण तीन जोगसुं, भलो न सरदे मुनिरायरे ।  
छकायारा आरंभथी, उत्तम गति नहीं थाय लालरे । मच्यो ॥ ४ ॥  
चतुर विचारो चित्तमां, कीजो निर्णय एह लालरे ।  
तत्त्वातत्त्व विचारथी, कुगुरुने दीजो छेह लालरे । मच्यो ॥ ५ ॥  
कुंदन नाह्यारी ए विनती, सुणजो सारा लोक लालरे ।  
दया पालो छकायनी, तो पामो बंछित थोक लालरे । मच्यो ॥ ६ ॥  
साल पेंसठ ओगणीसकी, ज्येष्ठ शुक्र मजार लालरे ।  
धर्मध्यान कर शोभतो, अमरावती शहर गुलजार लालरे । मच्यो ॥ ७ ॥

॥ अथ जिन प्रतिमाके निंदक, दूढक शिक्षा बत्रोशी ॥

कका कर्म तणी गति देखो, दूढक नाम धराया है ।  
जिनके नामसें रोटीखावे, तिनका नाम भूलाया है ॥  
जिन मारगका नाम विसारी, साथ मारग निपजाया है ।  
सीखमान सदगुरुकी दूढक, विरथा जनम गमाया है ॥ १ ॥ ए टेका ॥  
खरखा खोजकर जैनधर्मकी, मारग तुम नहीं पाया है ।  
वासी विद्वलखाके तुमने, खरा धरम डुवाया है ॥  
अंदरका मुख खुला रखके, उपर पाटा खांच्या है । सीख० ॥ २ ॥  
गंगा गिलचपणाकर गाढा, जैन धरम लजवाया है ।  
सूत्र निशीथ उदेशे चौथे, अशुची दंड गवाया है ॥  
गपड सपड कर जूठ लगावे, सत्यसेती गभराया है । सीख० ॥ ३ ॥  
घट्या घरकी खबर करो तुम, क्या घरमें बतलाया है ।

१ बारगुणे अरिहंत बिराजे, पाठ कहां दरसाया है ॥  
 मनको भाया मानलिया, मनकल्पितपंथ चलाया है । सीख० ॥४॥  
 चच्चा चोरी देवगुरुकी, करके सर्व चुराया है ।  
 भाष्य चूर्णि निर्युक्ति टीका, अर्थसें चित्त चोराया है ॥  
 चित्तकल्पित जूठे अर्थोंसें, सच्चा अर्थ चुराया है । सीख० ॥ ५ ॥  
 छच्छा छमछरीको चालीश, वीसचोमाते छान्या है ।  
 पक्खी बार लोगस्सका काउसग, पुछो किसमें गाया है ॥  
 मूल मात्र बत्ती सूत्रोंका, खोटा हठकी छाया है ॥ सी० ॥ ६ ॥  
 जज्जा जिनवर ठाणा अंगे, ठवणा सत्य ठराया है ।  
 प्रसु पडिमाको पथर जाणे, जालम कैसा जाया है ॥  
 चार निखेपा जोग जनाया, जिन आगममें जोया है । सी० ॥७॥  
 झझा जूठ बतावे केता, जेता जैनमें गाया है ।  
 तीर्थकर गणधर पूरवधर, सबको जेव लगाया है ॥  
 मुखपर पाटा कानमें डोरा, दैत्यसारूप बनाया है । सी० ॥ ८ ॥  
 टटा टटोल देख टोटोंके, क्या गणधर फरमाया है ।  
 रायपसेनी सत्तर भेदें, जिन प्रतिमा पूजाया है ॥  
 हितसुख मोक्ष तणा फल अर्थे, प्रगटपणे बतलाया है ॥ सी ०॥९॥

१ बत्रीश सूत्रोंके मूल पाठमें—अरिहंतके १२ गुण । और  
 १८ दूषणका वर्णन नहीं है । तांनि छे हमारे दूंडक भाईओ, कहांसें  
 लाके पुकारते है, ते उनका मान्य ग्रंथ बतलावें ॥

२ पंजाब तरफ एक अजीब पंथी बूंदीये है, जिसको सत्यार्थ.  
 पृ. १६७ में दूंडनीजीने में में करनेवाले लिखेथे, सो हमेश चारलो-  
 गसकाही काउसगकरते है । और जीव पंथी—छ मरीको ४० ।  
 चोमासीको २० । पक्खीको १२ का करते है । परंतु बत्रीश सूत्रका  
 मूल पाठमें यह विधि नहीं है । ऐसी बहुतही बातें नहीं है ॥

ठहा ठिक नजर नहीं ठावे, सूत्र उवाई ठराया है ।  
 अंबड श्रावकके अधिकारे, अर्थ ते प्रतिमा ठाया है ॥  
 चैत्य शब्दका अर्थ मरोडी, जूठे जूठ जताया है । सी० ॥ १० ॥  
 डडा डर नहीं डाले डिलमें, डामही डोल चलाया है ।  
 आनंद श्रावक के अधिकारे, अरिहंत चैत्य दिखाया है ॥  
 गपड सपडका अर्थ करीने, जड भारती भडकाया है । सी० ॥ ११ ॥  
 ढढटा दूढक नाम धराया, पिण ते जूठा दूढ्या है ॥  
 मूढ दृढता माया ममता, गूढपणे गोपाया है ॥  
 जूढ कपट शठ नाटक करके, जग सारा भरमाया है । सी० ॥ १२ ॥  
 भत्ता तीर्थ भूलायेसारे, तालों सेती चुकाया है ।  
 अपने आप तीरथ बन बैठे, मूढ लोक भरमाया है ॥  
 माने बांदो माने पूजो, यह विपरीत सिखलाया है । सी० ॥ १३ ॥  
 यथथा थोडी मान बडाई, खातर क्यों थडकाया है ।  
 थोथापोथा प्रगट कराके, परमारथ उलटाया है ॥  
 सूत्र अरथका भेद न जाने, पंडितराज कहाया है । सी० ॥ १४ ॥  
 श्रद्धा दंडा दशवैकालिक, प्रश्न व्याकरण दाया है ।

(१) दूढकोने—शत्रुंजय, गिरनारादिक, तीर्थोंको भूलाके जिसको  
 तीन तेरकीभी खबर नहीं है, उनके चरणांकी स्थापना करके, अथवा  
 समाधि बनवा करके, पूजते है । जैसे पंजाब देशका—लूधीयानामें,  
 मोतीराम पूज्यकी समाधि । जगरांवामें, तथा रायकोट में, रूपचंद  
 दूढियेके चरण, तथा समाधि । अंबालेमें, चमार जातिका लालचंद  
 दूढियाकी समाधि ॥

हमारे दूढकभाइओ—तीर्थकरोंकी निंदाकरके, अपने आप तीर्थ-  
 रूप बन बैठे है ? ॥

(४) बहुतही दूढिये लाठीलेके फिरते है तो पिडे माधव



आचारांग निशीथादिमें, भगवई पाठदिखाया है ॥  
हठ हठ छोड देखे बिन तुमको, पाठ निजर नहीं आयाइ।सी० १५॥  
धध्या धर्म जैन नहीं तेरा, धोक्का पंथ धकाया है ।  
अपने आप बनाजो दूंडा, लवजी आदि धराया है ॥  
बांधी मुखपर पट्टी सतरां, वीसमेंपारो गाया है । सी० ॥ १६ ॥  
नन्नानये कपडेको पसली, तीन रंग नंखाया है ।

[२] सूत्र निशीथमें देख पाठ तूं, क्यों इतना गभराया है ॥  
इसी सूत्रमें देखले बाबल, रजोहरण क्या गाया है । सी. ॥ १७ ॥  
पप्पा पंचकल्याणक जिनवर, जिन आगममें पाया है ।  
इंद्र सुरासुर मिलकर उत्सव, करके अतिहर्षाया है ॥  
द्वीप नंदीश्वर भगवइ जंबू द्वीप पन्नती बताया है । सी० ॥ १८ ॥  
फफफा फेर नहीं भगवतीमें, फांफा मार फिराया है ।  
जंघा चारण विद्या चारण, मुनियों सीस निवाया है ॥  
नंदीश्वरमें कहांसैं आया, जो ज्ञानका ढेर बताया है । सी० ॥ १९ ॥  
बब्बा बडे बिबेकी देवा, दश वैकालिक गाया है ।  
शुद्ध मुनिको सीस निभावे, नर गिनती नहीं आया है ॥  
तदपि दूंडक ते देवनका, करना बोज बनाया है । सी० ॥ २० ॥

दूंडक क्यों निंदता है ? । तुम कहोंगेकि बूढा रक्खे, तबतो सविस्तर  
प्रमाण दिखाओ ? नहीं तो तुमेरा बकवाद मूढपणेका है ? ॥

(१) दूंडनी पार्वतीजीने, अपनीज्ञानदीपिकामें लिखा है कि—  
सं. १७२० में, लवजीने मुहपत्तीको मुखपर लगाई, और दूंडा  
नामभी पडा ? ॥

[२] निशीथ सूत्रमें—प्रमाण रहित रजोहरण [ ओघा ] र-  
खनेवालोंको दंड लिखा है। हे भाई माधव दूंडक ? तूं भी अपना र-  
जोहरणका प्रमाण दंड, किस वास्ते फोगट बकवाद करता है ? ॥

भग्ना भ्रम पडा है भारी, तत्त्वज्ञान नहीं भाया है ।  
 हिंसा हिंसा रटकर मुखसे, आज्ञा धरम भूलाया है ॥  
 हिंसा दयाका भेद न जाने, भोलेंको भरमाया है । सी० ॥ २१ ॥  
 मग्ना मुनि श्रावक दो भेदे, धरम आगममें मान्या है ।  
 सम्यग् दृष्टि सुरगण संघ, चतुरविधे फरमाया है ॥  
 जिनके गुणगानेसे परभव, धरम सुलभ बतलाया है । सी० ॥ २२ ॥  
 यथा यह है पाठ ठाणागे, औरभी यह फरमाया है ।  
 जो अवगुण बोलें सुरगणका, दुर्लभ बोधि कहाया है ॥  
 अचरीज ऐसे पाठ योगसे, जरा न मनमें आया है । सी० ॥ २३ ॥  
 ररा रोरो नहीं छुटेगा, राह बिना रमाया है ।  
 उन्मारगको मारग समजा, यही रणमें रोलाया है ॥  
 प्रभुपूजाका त्याग कराके, रामाराज चलाया है । सी० ॥ २४ ॥  
 लला लक्ष द्रव्यसे पूजा, वीरप्रभु जय जाया है ।  
 कल्प सूत्रका लाभ न माने, अवज्ञाकरके लुराया है ॥  
 पिण तेतो प्रसिद्ध विलायत, लिख अंग्रेजो लुभाया है । सी० ॥ २५ ॥  
 वक्त्रा विधिसे काउसग वरणा, २आवश्यक विवराया है ।  
 दक्षिण हाथ मुहपात्ति बोले, बामे ओघा बताया है ॥  
 लोकशास्त्र विरुद्धरणे ते, मुखपर पाठा बांध्या है । सी. ॥ २६ ॥

१-१४ पूर्व धरकी निर्युक्तिके पाठमें—यह काउसग करनेकी विधि दिखाइ है । इसको तुम प्रमाण नहीं करते हो, तो पीछे-मनःकल्पित मुखपर पटा चढानेका ते कौन प्रमाण करेगा ? ॥ जो अपनी सिद्धि दिखानेको फिरते हो ? ॥

२ यशोविजयजीभी कहते है कि-सिद्धारथ राई जिन पूज्या, कल्पसूत्रमां देखो । इत्यादि उनांकी स्तवनकी दशमी गायामें देखो ॥

शशशा शरमाता नहीं सांढा, सासा सांग सजाया है ।  
 तोभी शठ शउता नहीं मुके, जोर जूलम दरसाया है ॥  
 एकोको बांध अनेक को छोडा, क्या अज्ञान फमाया है । सी०॥१७॥  
 षष्ठा षष्टे अंगे पूजा, द्रौपदीका दरसाया है ।  
 श्रावकका पट्कर्म सज्या है, घुल्लेघुल्ला आया है ॥  
 शत्रुंजय पुंडरगिरि ज्ञाता सूत्रका पाठ भूसाया है । सी. ॥ २८ ॥  
 मस्सा संघ तजाया प्रभुका, अपना संघ सजाया है ।  
 जैन धरमसें विपरीत करके, शुद्ध बुद्ध विसराया है ॥  
 कौशिक सम जिन सूरजसेती, द्वेषभाव सरजाया है । सी ॥ २९ ॥  
 हहा हिया नहीं दूढक तुजको, हा ते जन्म हराया है ।  
 हलवे हालें हलवें चालें, पिण हालाहल पाया है ॥  
 होंस हटाकर श्रावक चितको, चकर चाक चढाया है । सी॥३० ॥  
 दूढक जनको शिक्षादेके, योग्य मारग बतलाया है ।  
 जो जो निंदक दूढक मुख, तिनके प्रति जतलाया है ॥  
 कथन नहीं ए द्वेषभावसुं, सिद्धांत वचनसें गाया है । सी. ॥ ३१ ॥  
 तीर्थकर प्रतिमाका चितसें, भक्तिभाव दरसाया है ।  
 और भी बोध किया है इससें, सूचन मात्र दरसाया है ॥  
 तीर्थकरका बल्लभने तो, दिन २ अधिक सवाया है।सी. ॥ ३२ ॥  
 ॥ इति माधव दूढक उद्देशीने, केवल निंदक दूढकोंको, यह शि-  
 क्षाकी बत्रौसीसें समजाये है ॥ संपूर्ण ॥

( ४२ )      जिनप्रतिमाके निंदाकांको शिक्षा.

॥ अथ दूढक शिक्षा लघुस्तवन ॥

मत निंदो दूढक जिन मूरति । मत० ए ट्रेक ॥

जिन मूरति निंदा करनेसे । नहीं लेखे होय तुम विरति । म० ॥१॥

कष्ट करो पिण ते सुकृतमें । मुको जलती तुम वरति । म० ॥ २ ॥

प्रगट पाठका लोप करनको । मत करो तुम काठी छाती । म० ॥३॥

जिनके बदले वीर श्रावकको । पूजावो न भूतादिक मूरति । म० ॥४॥

वरकी खोट दिखाके द्रौपदीको । पूजावो न कामकी मूरति । म० ॥५॥

सुरगण इंद्र नरींद पूजा । ते निंदो कहीने अविरति । म० ॥ ६ ॥

मित्रकी मूरतिसें भेम जगावो । जिन मूरतिमें ही मूढमति । म० ॥७॥

स्त्रीकी मूरतिसें काम जगावो । जिन मूरतिमें नहीं भक्तिमति । म० ॥८॥

घोडा लाठीका नरम वचनसे । घोडा कहीने हटावे जाति । म० ॥९॥

पहाड पाषाण जिन मूरतिको केहतां लाज न तुमको भ्रष्ट मति । म० ॥१०॥

जिनके नामसें रोटी खावो । तीनकी निंद करो पापमति । म० ॥११॥

भूतादिक पूजावोभावे । उहां न बतावो तुम हिंसा रति । म० ॥१२॥

हिंसा दयाका भेद जाने विन । मत बनो तुम आत्मघाति । म० ॥१३॥

तीर्थकरकी निंदा करतां । नष्ट होय निश्चैहि विभूति । म० ॥ १४॥

मुनि श्रावकका भेद न समजो । भ्रष्ट करो गृहीकी विरति । म० ॥१५॥

कही हित शिक्षा यह छोटी । नहीं ईर्ष्याकी करी है मति । म० ॥१६॥

अमर कहैं निंदा जिनवरकी । तीक्ष्ण धाराकी काति । म० ॥ १७ ॥

॥ इति दूढक शिक्षा लघु स्तवन समाप्तं ॥

॥ इति मुनिराजश्री अमरविजय कृता श्री जिनप्रतिमा मंडन  
स्तवन संग्रहावली समाप्ता ॥

॥ अब हम जे जे सज्जन पुरुषोंके नामकी यादि लिखते है उसमें कितनेक सहायता देने वाले है । और कितनेक ग्राहक तरीके है । और कितनेक बेचने वाली संस्थाके अधिपतिके भी नाम है सो नीचे मुजब ॥

( खानदेश ) आमलनेरा ॥

१५ सा. भागचंद छगनदास ।

५ सा. डायभाई चुनीलाल ।

१ सा. हीरजी घेलानी कंपनी ।

१ सा. विशनजी अर्जून ।

१ सा. भागचंद चुनीलाल ।

१ सा. खेमचंद भाईचंद ।

१ सा. साकरचंद रंगीलदास ।

२ सा. हरसी देवराज । कछी

॥ बाधरपुर ॥

१ सा. मोहनचंद माणेकचंद ॥

॥ सीरसाला ॥

१ शेट. तीलोकचंद रूपचंद ।

२ सा. रामचंद मोहन ॥

१ सा. ननुसा बनारसीदास ।

१ सा. दगडुसा उत्तमचंद ।

१ सा. किसोरदास छगनदास ।

१ सा. कल्याणचंद नथुभाई

१ सा. पोपट नेमीदास ।

१ सा. नथुसा

॥ जलगाम मेरु ॥

१ सा. बाधरभाई माणेकचंद ।

मैलना मेनेजर ॥

२ सा. नाथाभाई बेचरदास ।

१ सा. हरिचंद सखाराम ।

१ डाकतर. देवजीभाई मूलजी ।

॥ पारोला ॥

१ सा. घेलाभाई शिवजी ।

॥ खानदेश, धूलीया ॥

५ सेठ. सखाराम दुलबदास ।

१ सा. रणसीभाई भारमल ।

५१ सा. विशनजीलालजी } रोक  
हस्ते. देवसीभाई ॥ } डा

१ सा. करनीराम गुलाबचंद ।

१ सा. श्रीमल प्रतापमलजी ।

५ सा. भाणजीभाई देवजी ।

- ४० सा. भगवानजी कानजी.  
रोकडा.  
२ सा. राजमल हस्तिमलजी  
५ सा. भीमजी स्यामजी ।  
हस्ते. उकाभाई. रोकडा ॥  
१ सा. फोजमल मानमल ।  
१ सा. पन्नालाल मारवाडी ।  
१ सा. गोवींदजीभाई खीमजी।  
१ सा. उभयाभाइ राधवजी ।  
१ सा. अर्जूनभाई लधधा ।  
१ सा. शिवजीभाई लधधा ।  
१ सा. अंबाईदास स्यामदास ।  
१ सा. वेलजी चतुर्भुज रोकडो।  
१ सा. खीमजी रतनसी ।  
२ सा. खेतसीभाई लद्धा ।  
१ सा. प्रेमचंद हीरजीभाई

## ॥ पांचोरा ॥

- २ सा. भीखचंद दोलतराम ।  
२ सा. बालचंद गुलाबचंद ।

## ॥ चालीस गाम ॥

- ५ सा. धनजी गोवींदजी ।  
२ सा. तेजपाल गोवींदजी ।

## ॥ दक्षिण पुना ॥

- १०० सा. हाथीभाइ जवेर ॥  
भेट देनेके वास्ते ॥  
५० जवेरी मोतीचंद भगवान।  
५० सा. छगनचंद वखतचंद ।  
३० सा. शिवनाथ लुवाजी ।  
२५ मोतीजी कृष्णाजी  
५ खासगी  
३० सा. चुनीलाल मूलचंद ।  
२५ सा. बालचंद लाद्धाजी ।  
२५ सा. बालुभाइ पानाचंद ।  
१५ सा. जमणादास मोकम ।  
२५ सा. मयाचंद गुलाबचंद  
चोरालंड़ीना  
१५ सा. सोभाग्यचंद माणेकचंद।  
११ सा. गगलभाई हाथीभाई ।  
१० सा. मोतीचंद जेताजी ।  
१० सा. चेनाजी खुमाजी ।  
१० सा. पानाचंद दलछाराम ।  
१० सा. पुंजाभाई खीमजी ।  
१० सा. माणिलाल चुनीलाल ।  
५ सा. जवारमल रतनचंद ।  
५ सा. मोहनलाल खुशाल ।  
५ सा. गणपत अमोलक ।  
२१ सा. वीठल मानचंद ।

- १ सा. भोगीलाल नगीनदास।  
 ११ सा. डुंगरसी लखमीचंद ।  
 २ सा. भगवानजी वालाजी।  
 २ सा. मानजी नगाजी ।  
 २ सा. हाथीभाइ बेचर ।  
 २ सा. जसराज फूआजी ।  
 १ सा. लालुभाई नथुराम ।  
 १ सा. मोहनलाल सोभागचंद।  
 १ सा. मगनलाल लखमीचंद ।  
 १ सा. देवचंद हर्षचंद ।  
 २ सा. बेचरदास सीरचंद ।  
 २ सा. कंकुचंद रायचंद ।  
 २ सा. हीराचंद लोलाचंद ।  
 १ सा. डायभाइ वीरचंद ।

हडफसरना

- १ सा. हकमाजी चुनीलाल  
 ५ सा. अमीचंद धनीलाल  
 मदरासवाला

॥ मुंबाइ ॥

- २५ सा. फकीरचंद भाइचंद ।  
 ७५ बाबू. चुनीलाल पन्नालाल  
 ह. चिरंजीवी रतनलाल  
 २५ सा. धर्मसी गोवींद ।  
 २१ सा. लीलाधर कुवरजीनी  
 कंपनी ।

- ५ सा. हीरजी जैठानी कंपनी।  
 ५ सा. जेतसी खीमजी.  
 हस्ते. देवसीभाई ।  
 ५ सा. भीमसी खीमसी ।  
 २ दोसी. वलभ जीवराज ।  
 २ जवेरी. भोगीलाल चुनीलाल  
 १ सा. सोभाग्यचंद कपूरचंद ।  
 १ सा. जीवराज नरसी भैसरी।  
 १ सा. नगीनचंद कपूरचंद ।  
 १ सा. उत्तमचंद मूलचंद ।  
 १ सा. नगीनचंद मनमुखभाई।  
 १ सा. खीमजीभाई हीरजी ।  
 १ मुहता. मूलचंद मारवाडी ।  
 १ सा. भाणजी नागजी ।

कलकत्ता.

- २५ बाबू. पंजी लालजी बना  
 रसीदास. जौहरी मारफते

॥ अमरावती ॥

- ५० सा. सोभागचंद फतेचंद ।  
 २५ सा. भोलुभाई फतेचंद ।

॥ तेलहारा ॥

- १०० सेठ. हर्षचंद गुलाबचंद

आँ० मँ जि स्ट्रेट ।

९५ ज्ञान खात

५ खासगीना

॥ अमदनगर ॥

१० सा. माणेकचंद मोतीचंद  
जवेरी ॥

२ सा. अभेचंद रायचंद ।

१ सा. मलुकचंद जेचंद ।

॥ हंडेरा तलेगण ॥

१० सा. बालचंद स्यामदास ।

॥ एवत ॥

१ सा. अमरचंद उजमसी ।

॥ जेजूरी ॥

५ सा. हंसराज खेंगारजी ।

॥ करमाला ॥

५ सा. चंद्रभानजी खीवराज ॥

॥ पंजाबदेश ॥

॥ जीरा ॥

७ लाला. नथुरामकी मारफते ॥

॥ सिकंदराबाद ॥

३ लाला.ज्वाहारिलाल जैनी ॥

॥समाना. जि. पटीयाला ॥

२ सदाराम जैनी. आत्मा नं-  
दसभाका सक्रेटरी ॥

॥ लुद्धीयाना ॥

४ बाबू. हुकमचंद जैनी ॥

॥ नीकोदर ॥

४ मास्तर.दोलतराम मारफत

१ दोलतराम ।

१ कुलामल ।

१ प्रेमचंद ।

१ रलामल ।

॥ जंहीयाला ॥

१० भावडा. फग्गुमल बागा  
मलकी मारफते ॥

॥ मलेर कोठला ॥

६ लाला. गेंडेराय भगवान-



दासकी मारफते ॥

॥ दीळी ॥

१ जौहरी.दलेलसिंहटीकमचंद

॥ सेहर. अंबाला ॥

२ भावडा. भंगाराम बनारसी-  
दास ।

॥ अमृतसर ॥

२ भावडा. महाराजमल  
रामचंद ॥

॥ आगरा सेहर ॥

१ उपाध्यायजी. वीरविजय-  
जीकी लायब्रेरी ॥

॥ लाहोर ॥

१० आत्मानंद जैन सभा ।  
जसवंतराय जैनी ॥

॥ दोळी सेहर ॥

१० आत्मानंद जैन पुस्तक म-  
चार मंडल ।

॥ भावनगर ॥

१० जैन धर्म प्रसारक सभा.  
ह. कुवरजी आनंदजी ॥

॥ मुंबाइ. पायधूनी ॥

१० मेघजी हीरजीनी कंपनी ।  
जैन बुकसेलर ॥

॥ मालेगाम ॥

१० सा. सखाराम मोतीचंद ।  
२ सा. लालचंद केवल ।  
१ सा. बालचंद हीराचंद

॥ भोपाल जंक्षण ॥

३ सा. अमीचंद तसीलदार

वर्दा नागपुरलेन ।

१ सा. किसनचंद हीरालाल

॥ पुलगाम ॥

२ सा. पुनमचं जुहारमल

॥ आंकोला ॥

२ सा. पृथ्वी राज रतनलाल  
१ सा. रतनसी स्यामजी ।

॥ स्वामगाम ॥

२ सा. विशनजी ज्ञानचंद्रजी ।

॥ प्रतापगढ. मालवा ॥

२ श्रेष्ठ. लखमीचंद्र धीया ॥

॥ गवक ॥

१ सा. मेघजी पुंजाभाइ ॥

॥ अजमेर ॥

१ सा. नथमल धनराज.  
कांसठीया ।

॥ जामनगर ॥

१ सा. कालीदास मुलजी पारेषा ।

॥ सवाइ जयपुर ॥

२ श्री. गुलाबचंद्र ढढढ ॥

मु. बडाली ॥

१ सेठ. जादवजी हर्षचंद्र ।

॥ बारडोली जिल्ला. सुरत ॥

१ सा. जीवनजी देवाजी ।

॥ कलमसरा ॥

१ सा. हीरमल नथमलजी ।

गाम. उंजा ॥

१ सा. भायचंद्र वखतचंद्र ।

१ सा. ललुभाइ माणचंद्र ।

१ सा. चुनीलाल छगनचंद्र ।

१ सा. हीरालाल वस्ताचंद्र ।

१ सा. छगनलाल रवचंद्र ।

१ जैन पाठशाला खाते ।

॥ कुरडवाडी ॥

१ सा. रायमल हीरजी ।

॥ फतेपुर ॥

१ सा. धनराज प्रतापमल ।

॥ मनमाड ॥

१ सा. माणिलाल उत्तमचंद्र ।

॥ संगमनेर ॥

१ सा. भवानदास सांक्रलचंद्र ।

१ सा. त्रिभोवनदास खुशाल  
चंद्रजी ॥

॥ पालणपुर ॥ ४७ बुको ॥

- ५ जैन विद्योत्तेजक सभा ।  
 १ सेठ.चमनलाल मंगलजीभाई  
 १ कोठारी. चंदुलाल सोभा-  
 गचंद ।  
 १ पारी. अमूलकचंद खुबचंद ।  
 १ पारी. रामचंद खुबचंद ।  
 १ पारि. रवचंद उभेदचंद ।  
 १ पा. नगीनदास ललूभाइ ।  
 १ पा. प्रेमचंद केवलचंद ।  
 १ पा. मोतीलाल पानाचंद ।  
 १ सा.भगवानदास छगनभाई ।  
 १ मेता.भायचंद लवजीभाई ।  
 १ भणसाली. दलछा जोईता-  
 राम ।  
 १ गांधी. कस्तुरचंद मंछाचंद ।  
 १ कोठारी. जोईता नथुभाइ ।  
 १ सा. मंछाचंद उत्तमचंद ।  
 १ सा. कवरसिंग उभेद ।  
 १ सा. पुनमचंद भूषणभाइ ।  
 १ मेता. हाथीभाइ रतनचंद ।  
 १ भणसाली.रवचंद रायचंद ।  
 १ सा. बापुलाल चुनीलाल ।  
 १ दोसी. नहालचंद खेमचंद ।  
 १ पा. सुरजमल नहालचंद ।  
 १ सा. मानचंद मगनलाल ।

- १ सा. गुलाबचंद मगनलाल ।  
 १ गांधी. मणिलाल त्रिभोव-  
 नदास ।  
 १ सा. त्रिकमलाल भभूतभाइ ।  
 ५ दोसी. मगनभाइ ककलचं-  
 द हस्ते जैनशाला खाते ।  
 १ सा. नाथाभाइ छगनलाल ।  
 १ सा. रतनचंद रामचंद ।  
 उपर लखेली बुको ३७  
 पारीष मणिलाल खुशालचंद  
 सभाना सक्रेटरीनी मारफते ॥

१० नीचे लखेली दश बुको  
 कोठारी. धरमचंद बेल-  
 जीनी मारफते

- १ पा. सरूपचंद पानाचंद ।  
 १ पा. भोगीलाल चतुरदास ।  
 १ दो. पानाचंद केवलचंद ।  
 १ दो. लखमीचंद केवलचंद ।  
 १ वो. मगन ठाकरसीभाइ ।  
 १ वो. रवचंद मूलचंद ।  
 १ को. शांतीलाल धर्मचंद ।  
 १ सेठ. जीतमल नरसिंगदास ।  
 १ मेता. हेंमजी केशवजी ।  
 १ वो. हेमजी मुलचंद ।

॥ सेहर. डभोई ॥ १५ बुको ॥

२ सा. चुनीलाल कस्तुरचंद।

२ सा. नेमचंद तलकचंद ।

२ सा. करमचंद मोतीचंद ।

१ सा. मगनलाल मोहनलाल।

१ सा. गुलाबचंद हरिलाल ।

ढोलारिया

१ सा. हरगोविंद वेणीदास ।

१ सा. अभीचंद वेणीदास ।

१ सा. नाथाभाई वीरचंद ।

१ सा. छोटालाल वीरचंद ।

१ सा. मगनलाल जीवचंद ।

१ सा. पीतांबर बापुभाई ।

१ सा. फुलचंद दोलत ।

॥ कोपरगाम ॥

५ सा. रूपचंद रामचंद ।

॥ करजत ॥

२ सा. देवचंद जेठीराम ।

॥ राहोरी ॥

१ सा. माणेकचंद राजमल ।

१ सा. इंदुमल राजमल ।

॥ पुना ॥

५ सा. चिमनलाल डुगरसी.

१ सा. अमरचंद हजारामल.

॥ द्वितीय भाग शुद्धि पत्रिका ॥

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सिद्धामेभी—	सिद्धांतेमेभी—	४—	२१
अथात्—	अर्थात्—	११—	१२
यात्किचित्—	यत्किंचित्—	१३—	१३
अव—	अब—	१३—	१८
कार्यकी—	कार्यकी—	२०—	८
तीर्थेकरका—	तीर्थकरका—	२१—	८
निर्द्वधहोके—	निर्द्वहोके—	२९—	१
प्रयोजन—	प्रयोजन—	२९—	३
परतु—	परन्तु—	३३—	१४
पट्टी—	पट्टी—	३७—	९
लिखता—	लिखती—	४५—	१५
सनात—	सनातन—	४५—	२३
नस्कार—	नमस्कार—	४९—	१९
स्त्रीकी—	स्त्रीकी—	५३—	९
स्त्रीकी—	स्त्रीकी—	५३—	९
मूर्त्तिस—	मूर्त्तिसें—	"	२४
मूर्त्तिपूजाको—	मूर्त्तिपूजाको—	५४—	९
मूर्त्तिसें—	मूर्त्तिसें—	"	२२
दूढजीने—	दूढनीजीने—	५६—	१५
नित्य—	नित्य—	५६—	२
विपरीत—	विपरीत—	६०—	९
अशास्वती—	अशाश्वती—	"	१९
प्रति	प्रतिमा	"	१९

पुष्ट—	पष्ट—	६५—	२
शत्यार्थ—	सत्यार्थ—	६९—	८
सिचन—	सिचन—	७०—	५
बदामास—	बदमास—	७३—	९
उत्पन्न—	उत्पन्न—	७४—	१०
कल्याणकी—	कल्याणकी—	७५—	१९
सत्यार्थ—	सत्यार्थ—	११	२१
निक्षेपका—	निक्षेपका—	७६—	६
स्थापना—	स्थापना—	७७—	१०
सुगंधमय—	सुगंधमय—	११	१२
इसमें—	इसमें—	७८—	२०
दालिगीरी—	दालिगीरी—	७८—	२३
करनेसें—	करनेसें—	८०—	४
विचारे—	विचारे—	८१—	९
शुद्ध—	शुद्ध—	८१—	१९
द्रौपदीजिकि—	द्रौपदीजीके—	८८—	२२
अने—	अनेक—	९६—	१८

अथ स्तवनावली.

अशुद्ध	शुद्ध.	पृ.	ओ.
चुनीलाजी	चुनीलालजी	९—	७

## ॥ मुनिराज अमरविजय कृत ग्रंथोंकी यादि ॥

१ धर्मना दरवाजाने जोवानी दिशा ।

शास्त्री अक्षरोंमें-कि. रू. ०—८—० आना

२ ढूढक हृदय नेत्रांजन-कि. रू. १—४

३ तत्त्वार्थ महासूत्र, अर्थ रत्नमाला भाषा टीका सहित,  
अध्याय ४ का प्रथम भाग, थोडे दिनोंमें बहार पड़ेगा ॥

## ॥ मीलनेका पत्ता ॥

१ भावनगर-जैनधर्म प्रसारक सभा ॥

२ दिल्ली-आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल

ठे. नवघरेमें ॥

३ लाहौर-आत्मानंद जैन सभा ॥

४ मुंबाइ-मेघजी हीरजीकी कंपनी ठे. पायधोनी ॥

